सूर्य-उपासना का विवेचक ग्रन्थ

श्रीसाम्बपुराणम्
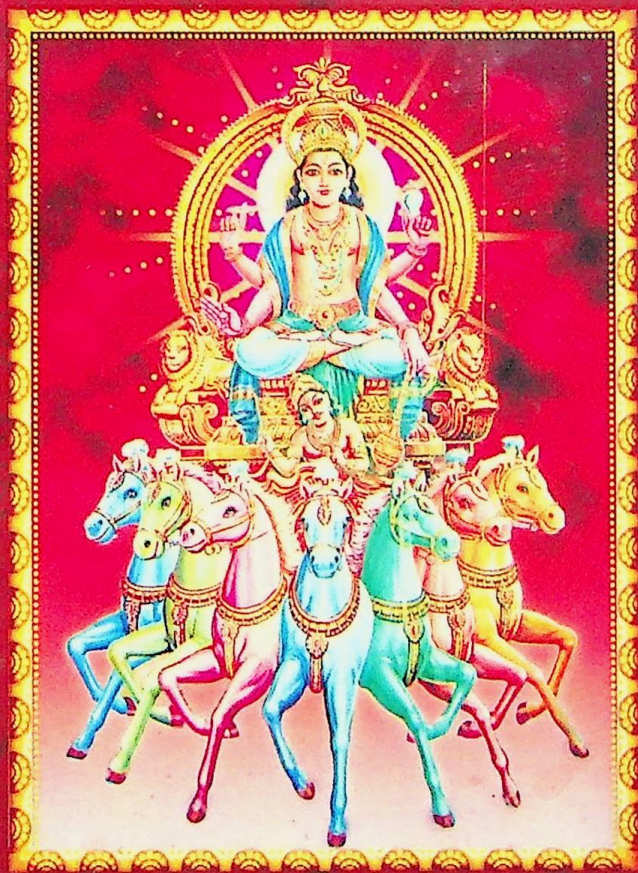
हिन्दी व्याख्याकार

श्री एस. एन. खण्डेलवाल

पुस्तक परिचय

सृष्टा द्वारा सृष्ट इस भौतिक सृष्टि के व्यवस्थापक मानव के साथ आरम्भ से ही किसी न किसी रोग का साहचर्य रहा है । उसमें भी सामजिक दृष्टि से अत्यन्त हेय स्थान पर कुष्ठ रोग से ग्रसित व्यक्ति की गणना की जाती है । इस रोग के निवारण हेतु अद्यावधि अनेकानेक उपाय किये जाते रहे हैं, फिर भी उनकी सफलता सन्दिग्ध ही रही है ।

किसी न किसी देवता-विशेष को उद्देश्य कर उनके विशेष प्रभाव तथा वैशिष्ट्य का विवेचन करना ही उप-पुराणों का प्रतिपाद्य विषय रहा है । इसी क्रम में साम्बपुराण में भगवान् भास्कर का वैशिष्ट्य प्रतिपादित करने के साथ-साथ उनकी उपासना के विविध रूपों का वर्णन किया गया है । इस ग्रन्थ के अनुसार तथा वेदों के अनुसार भी भगवान् भास्कर की उपासना से कुष्ठ रोग का समूल नाश होता है ।

चौरासी अध्यायों में निबद्ध साम्बपुराण में पिता द्वारा प्रदत्त शाप के फलस्वरूप उक्त भयंकर रोग से ग्रसित साम्ब द्वारा भगवान् सूर्य की सविधि उपासना कर कुष्ठ रोग से मुक्त होने का विवेचन किया गया है । साथ ही साथ सूर्य की उपासना के अधिकारियों का भी निर्देश किया गया है ।

ISBN : 978-93-81484-04-3
₹ 600
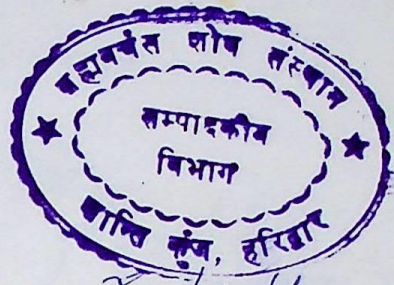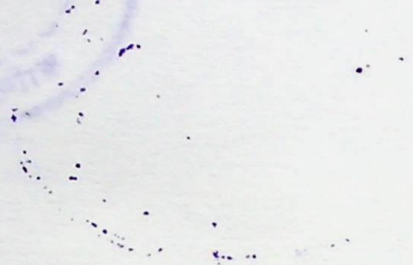
॥ श्रीः ॥

चौखम्बा सुरभारती ग्रन्थमाला

524

श्रीसाम्बपुराणम्

भाषाटीकासहितम्

भाषाभाष्यकारः

श्री एस० एन० खण्डेलवाल

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

वाराणसी

ISBN : 978-93-81484-04-3

प्रकाशक :

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)

के 37/117 गोपाल मंदिर लेन, पोस्ट बॉक्स न. 1129

वाराणसी-221001

दूरभाष : (0542) 2335263

प्रथम संस्करण : 2012

मूल्य : 600.00

अन्य प्राप्तिस्थान :

चौखम्बा पब्लिशिंग हाउस

4697/2, भू-तल (ग्राउण्ड फ्लोर)

गली न. 21-ए, अंसारी रोड़, दरियागंज

नई दिल्ली-110002

दूरभाषः (011) 32996391, टेलीफैक्सः (011) 23286537

*

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

38 यू. ए. बंगलो रोड़, जवाहर नगर,

पोस्ट बॉक्स न. 2113, दिल्ली-10007

*

चौखम्बा विद्याभवन

चौक (बैंक ऑफ बड़ोदा भवन के पीछे)

पोस्ट बॉक्स न. 1069, वाराणसी-221001

मुद्रक

डीलक्स ऑफसेट प्रिंटर्स, दिल्ली

निवेदन

अखिल ब्रह्माण्डनायक श्रीकृष्ण की अहैतुक लीला का एक विचित्र आयाम साम्बपुराण में अंकित है। साम्ब श्रीकृष्ण के पुत्र थे। उनकी पट्टमहिषियों में से अन्यतम जाम्बवती के पुत्र अनुपम रूपराशि के स्वामी होकर भी वे अदृष्टवशात् कुष्ठरोग से आक्रान्त हो गये। वे श्रीकृष्ण द्वारा ही शापित होकर इस दुर्गति को प्राप्त हुये थे। यह भगवान् के कठोर शासन का ही एक रूप है, जहाँ अपने प्रिय पुत्र को भी उन्होंने इतना कठोर दण्ड प्रदान किया।

इस शाप से मुक्ति-हेतु देवर्षि नारद की शरण में जाने पर उन्हें सूर्य की उपासना का उपदेश मिला। तन्त्र के ग्रन्थ साम्बपञ्चाशिका में भी यह वृत्तान्त वर्णित है; लेकिन उसमें साम्बपुराण की तरह बाह्य प्रक्रियात्मक उपासना न होकर स्वात्मदेवतारूप सूर्य की अभेद-रूप अद्वय भक्ति का, अहंविमर्शात्मक पराभक्ति का स्वरूप प्रत्यक्षीभूत होता है, जो शाक्तोपाय की चरम स्थिति है। लेकिन वह सर्वजनग्राह्य अथवा सबके मलिन चित्तमुकुर पर प्रतिच्छवित हो सकने वाली स्थिति नहीं है। पराहंतारूप विमर्श के लाखों करोड़ों में एकाध ही अधिकारी हो सकते हैं। जनसामान्य के लिये वह मार्ग सर्वदा अगोचर ही है। अत: साम्बपुराण के रूप में उसी उपासना का सार्वजनीन रूप प्रस्तुत किया गया है, जो सर्वजन-सुलभ है तथा अज्ञानी जीव भी उस मार्ग का अनुसरण करके क्रमश: अग्रसर हो सकते हैं।

आजकल बिहार में जिस 'छठ पूजा' का विशेष महत्त्व माना जाता है, उसका उत्स इसी साम्बपुराण में ही हैं। षष्ठी-पूजन तथा व्रत के अपूर्व माहात्म्य का इस पुराण में विशेष वर्णन प्राप्त होता है—

एकहारपरो भूत्वा षष्ठ्यां योऽर्चयते रविम्।
नियमव्रतधारी च रवेर्भक्तिसमन्वित:।
सप्तम्यां च महाप्राज्ञः सोश्वमेधफलं भवेत्।
अहोरात्रोपवासेन पूजयेद्यस्तु भास्करम्।
सप्तम्यामथ षष्ठ्यां च सूर्यलोकं स गच्छति।। (अध्याय-३८)

जो षष्ठी के दिन एक बार ही आहार करके सूर्यार्चन करते हैं और सप्तमी को भक्तिभाव से व्रतपालन करते हैं, वे अश्वमेध का फल प्राप्त करते हैं। जो सप्तमी अथवा षष्ठी को अहोरात्र उपवासोपरान्त सूर्योपासना करते हैं, उन्हें सूर्यलोक में स्थान मिलता है।

उपवासेन षष्ठ्यां च सर्वपापैः प्रमुच्यते।
प्रणिधाय शिरो भूम्यां नमस्कारं करोति यः।। (अध्याय-३८)

सूर्यषष्ठी के दिन उपवास द्वारा सभी पापों से मुक्ति मिलती है। साम्बपुराणोक्त यही सूर्यषष्ठी व्रत परम्परागत रूप से बिहार में विशेष रूप से सम्पन्न किया जाता है, जो सर्वथा शास्त्रोक्त है।

इस पुराण की विशेषता यह है कि इसके साधन-विधान की कई श्रेणियाँ हैं। इसमें वैदिक रीति से उपासना के अतिरिक्त तन्त्रोक्त सूर्योपासना का स्वरूप भी दृष्टिगोचर होता है।

मातृका-विज्ञान की साधना से शरीर-साधन का जो प्रसङ्ग इसमें वर्णित है, उसका रहस्यमय स्वरूप इस पुराण के ६१वें अध्याय में दृष्टिगोचर होता है। साथ ही रोगापनयन, मारणाभिचार, देहगत रोग-चिकित्सा आदि प्रकरणों के अध्ययन से इस पुराण का तान्त्रिक स्वरूप प्रतिपन्न हो जाता है। यह ग्रन्थ सूर्योपासकों के लिये अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तथा अनुकरणीय है।

सूर्यषष्ठी सन् २०११ ई

एस. एन. खण्डेलवाल

अध्यायानुक्रमः

अध्यायाः	पृष्ठाङ्काः
प्रथमोऽध्यायः	१
द्वितीयोऽध्यायः	५
तृतीयोऽध्यायः	९
चतुर्थोऽध्यायः	१७
पञ्चमोऽध्यायः	२१
षष्ठोऽध्यायः	२७
सप्तमोऽध्यायः	३१
अष्टमोऽध्यायः	४१
नवमोऽध्यायः	४४
दशमोऽध्यायः	५२
एकादशोऽध्यायः	५५
द्वादशोऽध्यायः	६४
त्रयोदशोऽध्यायः	६८
पञ्चदशोऽध्यायः	७५
षोडशोऽध्यायः	७९
षोडशोऽध्यायः	७९
सप्तदशोऽध्यायः	८४
अष्टादशोऽध्यायः	८७
एकोनविंशोऽध्यायः	९६
विंशोऽध्यायः	१००
एकविंशोऽध्यायः	१०४
द्वाविंशोऽध्यायः	११२
त्रयोविंशोऽध्यायः	११६
चतुर्विंशोऽध्यायः	१२२
पञ्चविंशोऽध्यायः	१२७
षड्विंशोऽध्यायः	१२९
सप्तविंशोऽध्यायः	१३६

अध्यायाः	पृष्ठाङ्काः
अष्टाविंशोऽध्यायः	१३९
एकोनत्रिंशोऽध्यायः	१४३
त्रिंशोऽध्यायः	१४७
एकत्रिंशोऽध्यायः	१५२
द्वात्रिंशोऽध्यायः	१५६
त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः	१६५
चतुस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः	१६८
पञ्चत्रिंशोऽध्यायः	१७७
षट्त्रिंशत्तमोऽध्यायः	१८०
सप्तत्रिंशत्तमोऽध्यायः	१८७
अष्टत्रिंशत्तमोऽध्यायः	१९२
एकोनचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः	२००
चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः	२१०
एकचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः	२१६
द्विचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः	२२१
त्रिचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः	२२६
चतुश्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः	२३४
पञ्चचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः	२४५
षट्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः	२५०
सप्तचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः	२५६
अष्टचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः	२५९
एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः	२६३
पञ्चाशत्तमोऽध्यायः	२६५
एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः	२६९
द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः	२९७
त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः	३०१
चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः	३०३
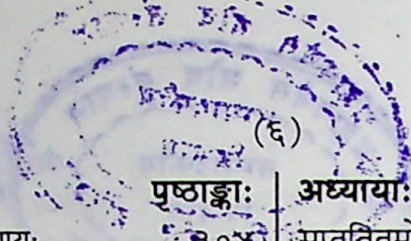
अध्यायाः	पृष्ठाङ्काः
पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः	३०४
षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः	३१९
सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः	३२१
अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः	३२४
एकोनषष्टितमोऽध्यायः	३२५
षष्टितमोऽध्यायः	३२६
एकषष्टितमोऽध्यायः	३२८
द्विषष्टितमोऽध्यायः	३४०
त्रिषष्टितमोऽध्यायः	३४३
चतुःषष्टितमोऽध्यायः	३४५
पञ्चषष्टितमोऽध्यायः	३४९
षट्षष्टितमोऽध्यायः	३५१
सप्तषष्टितमोऽध्यायः	३५३
अष्टषष्टितमोऽध्यायः	३५५
एकोनसप्ततितमोऽध्यायः	३६२
सप्ततितमोऽध्यायः	३६६
एकसप्ततितमोऽध्यायः	३६७
द्विसप्ततितमोऽध्यायः	३६९
त्रिसप्ततितमोऽध्यायः	३७०
चतुःसप्ततितमोऽध्यायः	३७२
पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः	३७६
षट्सप्ततितमोऽध्यायः	३७८
सप्तसप्ततितमोऽध्यायः	३८१
अष्टसप्ततितमोऽध्यायः	३८४
एकोनाशीतितमोऽध्यायः	३८६
अशीतितमोऽध्यायः	३८८
एकाशीतितमोऽध्यायः	३९०
द्व्यशीतितमोऽध्यायः	३९५
त्र्यशीतितमोऽध्यायः	३९८
चतुरशीतितमोऽध्यायः	४०३

●

॥ श्रीः ॥

श्रीसाम्बपुराणम्

भाषाटीकासहितम्

प्रथमोऽध्यायः

मङ्गलाचरणम्

नमः सवित्रे जगदेकचक्षुषे जगत्प्रसूतिस्थितिनाशहेतवे।
त्रयीमयाय त्रिगुणात्मधारिणे विरिञ्चिनारायणशङ्करात्मने ॥१॥
समस्तप्राणदेहाय सदा विशुद्धबुद्धये।
त्रयीमयाय देवाय नमो लोकैकसाक्षिणे ॥२॥

मङ्गलाचरण—जगत् के एकमात्र चक्षुस्वरूप, विश्व की सृष्टि-स्थिति तथा विनाश के कारण, त्रयीमय (ऋक्, यजुः, सामवेदात्मक), त्रिगुणरूप—ब्रह्मा, नारायण तथा शंकरस्वरूप (रजोगुण = ब्रह्मा। सत्त्वगुण = नारायण। तमोगुण = शंकर) प्रकटित सविता देव को नमस्कार है।

सबके प्राण तथा देहरूप, सर्वदा विशुद्ध बुद्धियुक्त, सकल लोकसमूह के एकमात्र साक्षी, त्रयीमय देवता को नमस्कार है।।१-२।।

पितामहाय कृष्णाय योगिनेऽव्यक्तरूपिणे।
भूतभव्यभविष्याय विश्वसंसृष्टये नमः ॥३॥

योगी, अव्यक्तरूपी, भूत-भविष्यत्-वर्त्तमान में भी स्थायी, विश्वसृष्टि करने वाले पितामह कृष्ण को (कृष्णद्वैपायन व्यास को) नमस्कार है (धृतराष्ट्र आदि के जन्म के कारण होने से इन्हें पितामह कहा जाता है)।।३।।

नमस्तस्मै मुनीशाय सन्नताय तपस्विने।
शान्ताय वीतरागाय तस्मै ज्ञानात्मने नमः ॥४॥

उन प्रसिद्ध मुनीश्वर को नमस्कार है। वे सज्जनों द्वारा प्रणम्य हैं। तपस्वी, शान्त तथा विरक्त ज्ञानस्वरूप को नमस्कार है।।४।।

नमस्तस्मै विधात्रे च स्वव्यक्तप्रभवाय च।
भूतसंहारतिग्माय भास्कराय गभस्तिने ॥५॥

उन विधाता, अपने प्रकाश द्वारा प्रभाव-विस्तारकारी, प्राणिगण के संहारार्थ रश्मि-प्रकाशक तेजस्वी सूर्य को नमस्कार है।।५।।

शक्रो वह्निर्यमो रक्षो वरुणोऽथ समीरणः ।
धनदश्चेश्वरश्चैव अध ऊर्ध्वं तथैव च ।
ये दिशो व्याप्य तिष्ठन्ति तस्मै सर्वात्मने नमः ।।६।।

जो इन्द्र, अग्नि, यम, राक्षस, वरुण, वायु, कुबेर तथा ईश्वररूप से ऊर्ध्व अधः सभी दिशाओं को व्याप्त करके स्थित हैं, उन सर्वात्मस्वरूप सूर्य को नमस्कार है।।६।।

उद्देशानुक्रमणिकाकथनम्

शौनको नैमिषारण्ये पुरा सूतमपृच्छत ।
सत्रे द्वादशवार्षिक्ये गते काले च विश्रुते ।।७।।

अनुक्रमणिका कथन—पूर्वकाल में नैमिषारण्य क्षेत्र में द्वादशवार्षिक यज्ञ में अधिक समय व्यतीत हो जाने पर शौनक ऋषि ने सूत से इस प्रकार जिज्ञासा की।।७।।

एतस्मिन्नन्तरे काले कथामेतामपृच्छत ।
त्वयात्र कथिताः सूत पुराणा बहुविस्तराः ।।८।।
षण्मुखस्य कथा चादौ पुनर्ब्रह्माण्डमेव च ।
वायुनापि च यत् प्रोक्तं तथा सावर्णिकेन च ।।९।।
मार्कण्डेयेन यत् प्रोक्तं यद् वैशम्पायनेन च ।
दधीचिना च यत् प्रोक्तं यच्च सर्वेण भाषितम् ।।१०।।
हरिणापि च यत् प्रोक्तमृषिभिः समुदाहृतम् ।
बालखिल्यैश्च यत्प्रोक्तं यच्छ्रुतं चर्षिभिः सह ।।११।।

उन्होंने जिज्ञासा किया कि हे सूत! अपने बहुत विस्तृत पुराणों को कहा है। प्रथमतः कार्त्तिकेय की कथा, तदनन्तर ब्रह्माण्ड की कथा एवं वायु तथा सावर्णि (सूर्यपुत्र) मनु की कथा भी कही। जिसे मार्कण्डेय, वैशम्पायन, दधीचि तथा शर्व (महादेव) ने कहा था, उसे भी कहा। जो हरि ने कहा तथा ऋषियों द्वारा जो कहा गया, बालखिल्यगण ने जो कहा था तथा ऋषियों से जो सुना, वह सब आपने कहा।।८-११।।

हरिपुत्रकृतं चात्र न त्वया कथितं मुने ।
न मे कर्णसुखं मौनं प्रीणात्यमृतसस्मितम् ।।१२।।

हे मुने! किन्तु अपने हरिपुत्र साम्बकृत कुछ भी नहीं कहा, जो हमारे कर्णसुखकर मन के लिये प्रीतिकर नहीं है।।१२।।

भास्करस्य पुराणं यत् पृष्टं साम्बेन धीमता ।
तदेतद्द्वादशाकारं न तु त्रिंशार्धमूर्त्तिकम् ।।१३।।

पुराणमखिलं चात्र सर्वशास्त्रप्रतिष्ठितम्।
कथयस्व महाभाग यथावच्छ्रुतवानसि ॥१४॥

धीमान् साम्ब ने भास्कर से जिस पुराण की जिज्ञासा की थी, वह द्वादशाकार (विवस्वान्, अर्यमा, पूषा, त्वष्टा, सविता, भग, धाता, विधाता, वरुण, मित्र तथा उरुक्रम—यह द्वादश नामधारी सूर्य) अथवा पञ्चदश मूर्त्ति (तीस का आधा) से युक्त नहीं है। जिसमें समग्र पुराण तथा सर्वशास्त्र प्रतिष्ठित है, उसे मुझसे कहिये, जैसा कि आपने सुना था।।१३-१४।।

सूत उवाच

प्रश्नभारो महानेष यथा वदसि सुव्रत।
यन्महाभारताख्यानाद् बह्वर्थं श्रुतिविस्तरात् ॥१५॥

सूत कहते हैं—हे सुव्रत! आप जैसा कहते हैं, वह महत् विस्तृत प्रश्न है। यह विस्तार से श्रवण करने के योग्य है। यह महाभारत के आख्यान से भी अधिक अर्थयुक्त है।।१५।।

पुराणानां च सर्वेषां प्रवरः प्रश्न उत्तरः।
कथाश्च विविधाश्चित्राः पुराणाः सम्प्रतिष्ठिता ॥१६॥

समस्त पुराणों में श्रेष्ठ यह पुराण प्रश्नोत्तर तथा अनेक कथायुक्त है तथा अनेक प्रकार के विचित्र पुराण इसमें सम्प्रतिष्ठित हैं।।१६।।

वेदार्थस्मृतिसाराणि वर्णधर्माश्रयाणि च।
भूतं भव्यं भविष्यं च मन्त्रवादस्तथैव च ॥१७॥

इसमें वेदार्थ तथा स्मृति का सार है तथा वर्णाश्रम धर्म का आश्रय लिया गया है। अतीत-वर्त्तमान तथा भविष्यद् मन्त्रवाद भी इसमें समाहित हैं।।१७।।

वश्याकर्षणविद्वेषस्तम्भनोच्चाटनादिकम्।
प्रतिमालक्षणञ्चैव पूजावासविधानकम् ॥१८॥
मण्डलानि क्रियायागाः सिद्धियागश्च साधनम्।
महामण्डलयागाश्च सान्निध्यं द्वादशात्मनः ॥१९॥
भूमेर्वा तोषणं चैव पुष्पधूपविधिस्तथा।
सप्तमीकरणं चैव उपवासविधिस्तथा ॥२०॥
प्रोक्षणं यच्च दानस्य फलं यच्च प्रकीर्त्तितम्।
वेलाकालविधानञ्च यच्च धर्मविधिस्तथा ॥२१॥
धूपकर्मविधिश्चैव जयस्यापि तथा विधिः।
प्रयताप्रयतस्यैव तथा स्वप्नानुवर्णनम् ॥२२॥

प्रायश्चित्तविधानञ्च तथाचार्यस्य लक्षणम् ।
दीक्षणं सर्वशिष्याणां मन्त्रेणापि विनिश्चयः ॥२३॥
स्तवाश्च विविधाश्चैवं यस्मिन् ग्रन्थे समासतः ।
भविष्यन्ति यथान्यायमाधाय विविधाश्रयाः ॥२४॥

इति श्रीसाम्बपुराणे उद्देशानुक्रमणिकाकथनं नाम प्रथमोऽध्यायः

●

वशीकरण, आकर्षण, विद्वेषण, स्तम्भन, उच्चाटनादि एवं प्रतिमालक्षण, पूजागृह-विधान, मण्डल, क्रियायाग, सिद्धियाग साधन, महामण्डल याग एवं द्वादशात्मक सूर्य का सान्निध्य, भूमि का तोषण, पुष्प तथा धूपविधि, सप्तमी की विशेष पूजाविधि तथा उपवासविधि कही गयी है। प्रोक्षण (यज्ञार्थ मन्त्रों से शुद्ध किया गया मांसादि) तथा दान का फल भी कहा गया है। वेलाकाल विधान (जिस काल में जिस कार्य को करना होता है) एवं धर्मविधि भी वर्णित है। धूपदान की विधि, जय-प्राप्ति का विधान, संयम, असंयम तथा स्वप्न-वृत्तान्त (स्वप्न-दर्शन का शुभा शुभ फल) भी वर्णित है।

प्रायश्चित्त-विधान, आचार्य-लक्षण, सकल शिष्य-दीक्षा तथा किसके लिये कौन-सा मन्त्र उपयोगी है? इसका निश्चय किया गया है। ग्रन्थ में विविध स्तव भी संक्षेप में कहे गये हैं। यथायथ रूप से भी नाना विधि से विषय का सन्निवेश किया गया है (ऐसा यह साम्बपुराण है)।।१८-२४।।

श्री साम्बपुराण का उद्देशानुक्रमणिका-कथन नामक प्रथम अध्याय समाप्त

●

द्वितीयोऽध्यायः

(आदित्यमहिमा)

सूत उवाच

वसिष्ठं स्वस्थमासीनं मुनिराजं बृहद्बलः।
रघुवंशोद्भवोऽपृच्छद् गुरुं निःश्रेयसं परम्॥१॥

सूत कहते हैं—रघुवशोद्भूत राजा बृहद्बल आसन पर आसीन ऋषिश्रेष्ठ अपने गुरु वशिष्ठ से परम निःश्रेयस् की जिज्ञासा करते हैं।।१।।

भगवन् श्रोतुमिच्छामि परं ब्रह्म सनातनम्।
यस्मिन्न पुनरावृत्तिं प्राप्नुवन्ति मनीषिणः॥२॥

हे भगवन्! सनातन परब्रह्म की बात सुनने की इच्छा करता हूँ; जहाँ जाने पर मनीषीगण पुनः जन्मग्रहण नहीं करते।।२।।

गृहस्थो ब्रह्मचारी वा वानप्रस्थोऽथ भिक्षुकः।
य इच्छेन्मोक्षमास्थातुं देवतां कां यजेत्तु सः॥३॥

गृहस्थ, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ अथवा भिक्षुक (संन्यासी) इत्यादि को मोक्षाभिलाषी होने पर किस देवता की अर्चना करनी चाहिये?।।३।।

कुतो ह्यस्य ध्रुवः स्वर्गः कुतो निःश्रेयसं परम्।
स्वर्गतश्चैव किं कुर्याद् येन न च्यवते पुनः॥४॥
देवतानां हि को देवः पितॄणामपि कः पिता।
यस्मात् परतरं नास्ति तस्मै ब्रूहि महामुने॥५॥

मोक्ष चाहने वालों का स्थिर स्वर्ग कहाँ है? परम मंगल कहाँ है? स्वर्ग जाने हेतु क्या करना चाहिये, जिससे कि वहाँ से पतन न हो। देवताओं का कौन देव है? पितृगणों का कौन पिता है, जिससे पर (श्रेष्ठ) कोई नहीं है, हे महामुने! वह मुझसे कहिये।।४-५।।

कुतः सृष्टमिदं ब्रह्मन् विश्वं स्थावरजङ्गमम्।
प्रलयश्च कमभ्येति तद्भवान् वक्तुमर्हसि॥६॥

हे ब्रह्मन्! कहाँ से यह स्थावर-जंगम विश्व सृष्ट हुआ है तथा प्रलय के समय किसका आश्रय लेकर स्थित रहता है? यह आप बतायें।।६।।

वशिष्ठ उवाच

उद्यन् पश्यन् हि कुरुते जगद् वितिमिरं करैः ।
नातः परतरो देवः कश्चिदन्यो नराधिपः ।।७।।

वशिष्ठदेव कहते हैं—जो उदित होकर देखते-देखते ही अपने कर से (किरणों से) जगत् को वितिमिर (अन्धकाररहित) कर देते हैं, हे नराधिप! उनसे परतर कोई भी देवता नहीं है।।७।।

अनादिनिधनो ह्येष पुरुषः शाश्वतोऽव्ययः ।
तापयत्येष लोकांस्त्रीन् भ्रमन् रश्मिभिरुल्बणैः ।।८।।

यह पुरुष आदि-अन्तरहित है। शाश्वत तथा अव्यय है। ये भ्रमण करते-करते अपनी तीक्ष्ण रश्मियों से त्रिभुवन को तापित कर देते हैं।।८।।

सर्वदेवात्मको ह्येष तपसां चानुभावनः ।
सर्वस्य जगतो नाथः कर्मसाक्षी विभावसुः ।।९।।

ये ही सर्वदेवात्मक, तपस्या के अनुभावक, जगत् के नाथ, कर्म के साक्षी तथा प्रभा से युक्त हैं।।९।।

संक्षिपत्येष भूतानि तथा विसृजते पुनः ।
एको भाति तपत्येष कर्षते च गभस्तिभिः ।।१०।।
एष धाता विधाता च भूतानिर्भूतभावनः ।
न ह्येष क्षयमायाति नित्यमक्षयमण्डलः ।।११।।

ये ही समस्त प्राणियों का विनाश करते हैं और पुनः उनकी सृष्टि करते हैं। अकेले प्रकाशित होते हैं, ताप देते हैं तथा रश्मियों द्वारा आकर्षण करते हैं। ये ही धारणकर्त्ता तथा सृष्टिकर्त्ता हैं। समस्त प्राणियों के आदि तथा सभी के उत्पादक हैं। इनका कोई क्षय नहीं है। ये नित्य अक्षय (अविनश्वर) मण्डल में अवस्थित हैं।।१०-११।।

पितृणां हि पिता ह्येष देवानामेष देवता ।
ध्रुवं स्थानं भजन्नेष यस्मान्न च्यवते पुनः ।।१२।।
सर्गकाले जगत् कृत्स्नमादित्यात् सम्प्रसूयते ।
प्रलये च तमे भाति आदित्यं दीप्ततेजसम् ।।१३।।

ये ही पितृगण के पिता एवं देवताओं के भी देवता हैं। ये ध्रुव (स्थिर) स्थान में अवस्थान करते हैं। उससे इनकी विच्युति नहीं होती। सृष्टिकाल में समस्त जगत् आदित्य से ही उत्पन्न होता है और प्रलय में यह दीप्ततेजा आदित्य में ही प्रवेश कर जाता है।।१२-१३।।

योगिनश्चान्ते सांख्याश्च देहं त्यक्त्वा पुरातनम्।
संशुद्धास्तु विशन्त्यस्मिंस्तेजोराशौ दिवाकरे॥१४॥

अन्तकाल में योगीगण तथा सांख्यगण पुरातन देह का त्याग करके सम्यक् शुद्ध होकर इस तेजोराशि दिवाकर में ही प्रविष्ट हो जाते हैं।।१४।।

अस्य रश्मिसहस्राणि शाखा इव विहङ्गमाः।
वसन्नाश्रित्य मुनयः ससिद्धा दैवतैः सह॥१५॥

जैसे पक्षीगण शाखा का सहारा लेकर निवास करते हैं, उसी प्रकार इस सूर्यरश्मिरूपी शाखा का अवलम्बन लेकर सिद्ध मुनिगण देवताओं के साथ वास करते हैं।।१५।।

गृहस्था जनकाद्याश्च राजानो योगधार्मिकाः।
बालखिल्यादयश्चैव ऋषयो ब्रह्मचारिणः॥१६॥
वानप्रस्थाश्च वर्णाद्या भिक्षुः पञ्चशिखस्तथा।
योगमास्थाय ते सर्वे प्रविष्टाः सूर्यमण्डले॥१७॥

गृहस्थ, जनकादि योगधर्माश्रित राजागण, बालखिल्यादि मुनिगण, ऋषिगण, ब्रह्म-चारीगण, वानप्रस्थावलम्बीगण, वर्णश्रेष्ठ ब्राह्मणगण, पञ्चशिख (मुनिगण) तथा संन्यासी गण—सभी योग का अवलम्बन लेकर सूर्यमण्डल में ही प्रविष्ट होते हैं।।१६-१७।।

विशेष—पञ्चशिख = कपिल के शिष्य आसुरि तथा उनकी पत्नी कपिला ने एक बालक को तत्त्वज्ञानोपदेश दिया था। यही बालक पञ्चशिख कहलाया। इसने २२ सूत्रात्मक तत्त्वमास ग्रन्थ से षष्टितन्त्र का प्रणयन किया था।

शुको व्यासात्मजः श्रीमान् योगधर्ममवाप्य सः।
आदित्यकिरणान् पीत्वा ह्यपुनर्भवमास्थितः॥१८॥

व्यासपुत्र शुकदेव ने योगधर्म का अवलम्बन करके सूर्यकिरण का पान करते हुये अपुनर्भव (जिससे पुनरागमन न हो, ऐसा मोक्ष) प्राप्त किया था।।१८।।

शब्दमात्रश्रुतिमुखा ब्रह्मविष्णुशिवादयः।
प्रत्यक्षोऽयं परो देवः सूर्यस्तिमिरनाशनः॥१९॥
तस्मादन्यत्र भक्तिर्हि मा कार्या शुभमिच्छता।
दृष्टेन बाध्यते यस्माददृष्टं नित्यमेव हि॥२०॥
त्वयातः सततं राजन्नभ्यर्च्यो भगवान् रविः।
स हि माता पिता चैव कृत्स्नस्य जगतो गुरुः॥२१॥

इति श्रीसाम्बपुराणे आदित्यमहिमा नाम द्वितीयोऽध्यायः

●

ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि देवताओं को केवल श्रुति में (शब्दों में सुना जाता है, देखा नहीं जा सकता) सुना गया है; किन्तु सूर्य तो प्रत्यक्षरूपेण अन्धकार के नाशक परम देवता हैं। इसीलिये शुभ चाहने वाले लोगों के लिये अन्यत्र भक्ति करनी उचित नहीं है। जिन्हें प्रत्यक्ष नहीं देखा जा सकता, उन ब्रह्मादि देवगण की अप्रत्यक्ष में अनिश्चयता विद्यमान है। अतएव हे राजन्! तुम सर्वदा भगवान् सूर्य की आराधना करो। ये ही सम्पूर्ण जगत् के माता-पिता तथा गुरु भी हैं।।१९-२१।।

श्रीसाम्बपुराण का आदित्य-महिमा नामक द्वितीय अध्याय समाप्त

●

तृतीयोऽध्यायः

(साम्बशापः)

बृहद्बल उवाच

आद्यं स्थानं रवेः कुत्र कस्मिन् द्वीपे महामुने।
यत्र पूजां विधानोक्तां प्रतिगृह्णात्यसौ स्वयम्॥१॥

साम्ब को शाप—बृहद्बल पूछते हैं—हे महामुने! रवि का प्रथम पूजास्थान कहाँ है, जहाँ वे प्रथम बार पूजित हुये हैं। किस द्वीप में वे स्वयं यथाविधि की गई पूजा को ग्रहण करते हैं।।१।।

वशिष्ठ उवाच

चन्द्रभागातटे रम्ये पुरं यत् साम्बसंज्ञितम्।
भूर्लोकि शाश्वतं स्थानं तत्र सूर्यस्य नित्यता॥२॥
प्रीत्या साम्बस्य तत्रार्को जगतोऽनुग्रहाय च।
स्थितो द्वादशभोगेन मित्रो मैत्रेण चक्षुषा॥३॥

वशिष्ठ मुनि कहते हैं—पृथ्वी पर चन्द्रभागा नदी के तट पर साम्ब नामक एक पुरी है। वह शाश्वत स्थान है, जहाँ सूर्य की नित्यता है (नित्य विद्यमानता है)। वहाँ सूर्य साम्ब से प्रीति के कारण तथा जगत् पर अनुग्रहार्थ बन्धु के समान दृष्टि के साथ द्वादश भाग में विराजित हैं।।२-३।।

विशेष—चन्द्रभाग हिमालय का एक अंश है। वहाँ से उत्पन्न नदी है—चन्द्रभागा नामक काश्मीर देशीय नदी। यहाँ स्नान करके चन्द्र दक्षशाप से मुक्त हो गये थे। वर्त्तमान में इसे चेनाब नदी कहते हैं। वेदों में यही असिक्णी नदी कही गई है।

तत्र भक्तिमतः सर्वाननुगृह्णाति भास्करः।
विधिप्रयुक्तां पूजां च गृह्णाति भगवान् स्वयम्॥४॥

वहाँ भगवान् भास्कर सभी भक्तों पर अनुग्रह करते हैं और विधि से प्रयुक्त पूजन को स्वयं ग्रहण करते हैं।।४।।

बृहद्बल उवाच

कोऽयं साम्बः कुतः कस्य पुत्रो नाम्ना रवेः प्रियः।
यस्य चायं सहस्रांशुर्वरदः पुण्यकर्मणः॥५॥

बृहद्बल पूछते हैं—यह साम्ब कौन है? कहाँ से आये अर्थात् कहाँ रहते थे? किसके पुत्र हैं, जो रवि को प्रिय हैं तथा सहस्र किरणयुक्त सूर्य ने जिन्हें घर प्रदान किया है?।।५।।

वशिष्ठ उवाच

अदितेर्द्वादशपुत्रो विष्णुर्यः स पुनस्त्विह।
वासुदेवत्वमापन्नस्तस्य साम्बोऽभवत् सुतः।।६।।
स तु पित्रा भृशं शप्त्वा कुष्ठरोगमवाप्तवान्।
तेनायं स्थापितः सूर्यः स्वनाम्ना च पुरः कृतः।।७।।

वशिष्ठ कहते हैं—देवमाता अदिति के बारहवें पुत्र जो विष्णु हैं, वे ही वसुदेव के पुत्ररूप से अवस्थित हैं (वासुदेव हैं)। उनके ही पुत्र हैं—साम्ब।

किन्तु पिता से भीषण अभिशाप पाकर उन्हें कुष्ठ रोग हो गया था। उन्होंने ही इन सूर्य की स्थापना (चन्द्रभागा के तट पर) की और अपने नाम से पुरी का भी निर्माण कराया।।६-७।।

बृहद्बल उवाच

शप्तः कस्मिन्निमित्तोऽसौ पित्रा पुत्रः स्वसम्भवः।
भाव्यं हि कारणेनात्र येनासौ शप्तवान् सुतम्।।८।।

बृहद्बल पूछते हैं—पिता द्वारा उनके ही आत्मज (पुत्र) क्यों अभिशप्त हुये? अवश्य ही इसमें कोई विशेष कारण है, जिस कारण से पिता ने अपने पुत्र को ही शाप दिया।।८।।

वशिष्ठ उवाच

शृणुष्वावहितो राजंस्तस्य तच्छापकारणम्।
ब्रह्मणो मानसः पुत्रो नारदो नाम यो मुनिः।।९।।
ब्रह्मलोके मुनेस्तस्य विष्णुलोके तथैव च।
सूर्यलोके च सततं रुद्रलोके तथैव च।।१०।।

ऋषि वशिष्ठदेव कहते हैं—हे राजन्! तुम सावधान होकर सुनो। उनके शाप का कारण कहता हूँ। ब्रह्मा के मानसपुत्र नारद नामक मुनि हैं। इनकी ब्रह्मलोक, विष्णुलोक, सूर्यलोक तथा रुद्रलोक में अप्रतिहत गति है।।९-१०।।

पितृराक्षसनागानां यमस्य वरुणस्य च।
इन्द्रस्य चामरावत्यां पुर्यां तु धनदस्य च।।११।।
पृथिव्यां पार्थिवाद्यां ये ये पातालसमुद्भवाः।
सदा वेश्मसु तेषां च तस्याप्रतिहतां गतिः।।१२।।

पितृलोक, राक्षस लोक, नागलोक, यमलोक, वरुणलोक, इन्द्र की अमरावती तथा कुबेर की पुरी में एवं पृथ्वी पर जितने राजागण हैं, जो पाताल में हैं, उन सभी के स्थान पर इनकी बाधाहीन अप्रतिहत गति है।।११-१२।।

वासुदेवं स वै द्रष्टुं नीत्वा द्वारावतीं पुरीम्।
आयान्तं ऋषिभिः सार्द्धं क्रोधनो मुनिसत्तमः ।।१३।।

एक बार वह नारद कोपन स्वभाव ऋषियों के साथ वास्तुदेव का दर्शन करने के लिये द्वारिकापुरी आये।।१३।।

अथात्रागच्छतस्तस्य सर्वे यदुकुमारकाः।
प्रद्युम्नप्रमुखा ये ते प्रह्वेनावनताः स्थिताः ।।१४।।
अभिवाद्यार्घ्यपाद्यैश्च पूजां कुर्वन्ति यत्नतः।
साम्बस्त्ववश्यम्भावित्वात्तस्य शापस्य मोहितः ।।१५।।

तदनन्तर प्रद्युम्न आदि सभी प्रमुख यदुकुमारगण ने वहाँ आकर तथा सविनय अवनत होकर अभिनन्दन-पाद्य-अर्घ्य प्रभृति द्वारा यत्नपूर्वक उनका पूजन किया। अवश्यम्भावी के कारण साम्ब उस शाप से मोहित हो गया।।१४-१५।।

अवज्ञां कुरुते नित्यं नारदस्य महात्मनः।
ततः क्रीडासु सततं रूपयौवनगर्वितः ।।१६।।
अविनीतं सुतं ज्ञात्वा चिन्तयामास नारदः।
अस्याहमविनीतस्य करिष्ये विनयं भृशम् ।।१७।।

साम्ब अपने रूप एवं यौवन से गर्वित होकर सतत् क्रीड़ा में मत्त रहता था और सर्वदा महात्मा नारद की अवज्ञा किया करता था। इस वासुदेवपुत्र को अविनीत देखकर नारद चिन्तित हो गये और विचार किया कि इस अविनीत को मैं अच्छी तरह संयत करूँगा।।१६-१७।।

एवं सञ्चिन्तयित्वा तु वासुदेवं ततोऽब्रवीत्।
इमाः षोडशसाहस्र्यः पत्न्यो देवस्य यास्तव।
सर्वासां च मनांस्यासां साम्बेन किल केशव ।।१८।।
हृतानि पुण्डरीकाक्ष रूपयौवनशालिना।
रूपेणाप्रतिमः साम्बो लोकेऽस्मिन् सचराचरे।
अतो हीच्छन्ति तास्तस्य दर्शनं ह्यपि ते प्रियः ।।१९।।

ऐसा विचार करके नारद ने वासुदेव से कहा—हे केशव! आपकी जो १६००० पत्नियाँ हैं, उन सबका मन साम्ब ने अपहृत कर लिया है। हे पुण्डरीकाक्ष! रूप-

यौवनयुक्त साम्ब का रूप चराचर में अतुलनीय है। इसलिये सभी स्त्रीगण उसे देखने की इच्छा करती हैं, यहाँ तक कि आपकी पत्नियाँ भी।।१८-१९।।

वशिष्ठ उवाच

श्रुत्वैतन्नारदाद्वाक्यं भाविनार्थेन मोहितः।
अविचार्यैव तत् सर्वं देवः प्रोवाच नारदम्।।२०।।

वशिष्ठ कहते हैं—नारद की यह बात सुनकर भवितव्यता के कारण ही वासुदेव ने विना कोई विचार किये नारद से इस प्रकार कहा।।२०।।

वासुदेव उवाच

न ह्यहं श्रद्धधाम्येवं यदेतद् व्याहृतं त्वया।
ब्रुवाणमेवं देवं तु नारदः प्रत्युवाच ह।।२१।।

वासुदेव ने कहा—(हे नारद!) आपने जो कुछ कहा, उसका मैं तनिक भी विश्वास नहीं करता। वासुदेव का यह उत्तर सुनकर नारद ने प्रत्युत्तर दिया—मैं वैसा करूँगा, जिससे आपको विश्वास हो।।२१।।

वशिष्ठ उवाच

एवमुक्त्वा ययौ भूत्वा नारदस्तु यथागतः।
ततः कतिपये चाह्नि द्वारकां पुनरभ्यगात्।।२३।।
तस्मिन्नहनि देवोऽपि सहान्तःपूरिकाजनैः।
अनुभूय जलक्रीड़ा यानमासेवते रहः।।२४।।

ऋषि वशिष्ठ देव कहते हैं—ऐसा कहकर नारद यथाभिलषित देश को चले गये। तदनन्तर कुछ दिनों के उपरान्त पुनः द्वारिका आये। उस दिन श्रीकृष्ण भी अन्तःपुर की रमणियों के साथ जलक्रीड़ा करके निर्जन में अवस्थित थे।।२३-२४।।

रम्ये रैवतकोद्याने हर्म्यमालोपशोभिते।
सर्वर्तुकुसुमैर्नित्यं वासिते चित्रकानने।।२५।।
नृत्यद्भिर्बर्हिभिर्नित्यं केकाशतनिनादिते।
कोकिलारावसंघुष्टे चक्रवाकोपशोभिते।।२६।।

रैवतक (द्वारका के निकट पर्वत) के रम्य उद्यान में अट्टालिकावली शोभित थी। वह सभी ऋतुओं के पुष्पों द्वारा नित्य आमोदित थी। वह विचित्र कानन नित्य नृत्यरत मयूर तथा १००-१०० केका के शब्द से गूंजा करता था। वह कोकिल के शब्द से शब्दित तथा चक्रवाक पक्षियों द्वारा उपशोभित था।।२५-२६।।

कोकिलामधुरालापे जलकुक्कुटनादिते।
षट्पदोद्गीतमधुरे शुकचातकनादिते।।२७।।

नानाजलजपुष्पाभिर्दीर्घिकाभिरलङ्कृते ।
हंसारावसुसंघुष्टे सारसैः समलङ्कृते ॥२८॥
तस्मिन् स रमते देवः स्त्रीभिः परिवृतस्तदा ।
हारनूपुरकेयूररशनाद्यैः विभूषणैः ॥२९॥

कोकिलों के मधुर आलाप, जलकुक्कुट के शब्द, भ्रमर के मधुर गुञ्जन, शुक-चातक की ध्वनि से युक्त, नाना जलज पुष्पविशिष्ट दीर्घिकासमूह में हंसध्वनि तथा सारस पक्षियों से समलंकृत उस स्थान में हार, नूपुर, केयूर, कटिभूषण प्रभृति अलंकार से अलंकृत स्त्रीगण से परिवृत वासुदेव रमण कर रहे थे।।२७-२९।।

भूषितानां वरस्त्रीणां चार्वङ्गीणां विशेषतः ।
कीड़ार्थं पद्मपत्रेषु नियुक्तानां यथार्हतः ॥३०॥
तत्तस्मिन् दीयते तासां मिष्टं पानं सुरासवम् ।
मणिकाञ्चनपात्रेषु नानापुष्पाधिवासितम् ॥३१॥

विशेषत: मधुर अवयवों वाली, श्रेष्ठ रमणीगण की क्रीड़ा हेतु यथायोग्य पद्मपत्र के पात्रों में (दोनों में) मीठा पान रखा था। मणिकाञ्चन के पात्रों में नाना पुष्पों की गन्ध से सुवासित सुरा, आसव रक्खा था।।३०-३१।।

वृन्तैश्च सहकाराणां भग्नैर्नीलोत्पलैरपि ।
एतस्मिन्नन्तरे बुद्ध्वा मद्यमत्ता इति स्त्रियः ॥३२॥
उवाच नारदः साम्बं सुबोध्य त्वरयन्निदम् ।
गच्छ रैवतकं साम्ब मा तिष्ठस्व कुमारक ॥३३॥
त्वां समाहूयते देवो न युक्तं स्थातुमत्र ते ।

साथ ही आम्र का भग्न वृन्त तथा नीलोत्पल भी दिया जा रहा था। इस अवसर पर नारद ने यह देखा कि रमणीगण मद्य पीकर उन्मत्त हैं। अब नारद तीव्र वेग से साम्ब के पास जाकर बोले—हे साम्ब! रैवतक उद्यान में जाओ। उपेक्षा न करो। तुमको वासुदेव ने बुलाया है। अत: तुम्हारा यहाँ रुकना उचित नहीं है।।३३-३४।।

तद्वाक्यार्थमबुद्ध्वैव भाविनार्थेन चोदितः ॥३४॥
गत्वा तु सत्वरं साम्बः प्रणाममकरोत् पितुः ।
एतस्मिन्नन्तरे तत्र याः काश्चित्तुल्यसात्त्विकाः ॥३५॥
दृष्ट्वा ताः सहसा साम्बं सर्वाश्चुक्षुभिरे स्त्रियः ।
न च दृष्टः पुरा याभिः पुष्पकेतुसमो युवा ॥३६॥

उनके वाक्य का निहित अर्थ समझे विना दैवप्रेरित साम्ब शीघ्रता से वहाँ गये और श्रीकृष्ण को प्रणाम किया। इस बीच वहाँ जितनी भी तुल्यसात्विक रमणीगण थीं, जिन्होंने

पूर्व में इस कामदेव के समान युवक को नहीं देखा था, वे सभी साम्ब को देखकर विक्षुब्ध हो गयीं।।३४-३६।।

मद्यदोषात्ततस्तासां स्मृतिलोपात्तथैव च।
योषितामल्पसत्त्वानां योन्यः शीघ्रं प्रसुस्त्रुवुः ।।३७।।

मद्यपान के दोष से उनका स्मृतिलोप हो गया था। उन सभी अल्पसत्त्व स्त्रीगण की योनि शीघ्र ही गीली हो गयी।।३७।।

श्रूयते चाप्ययं श्लोकः पुराणे पठते यथा।
ब्रह्मचर्येऽपि वर्त्तन्त्यः साध्व्यो ह्यपि तथा शृणु ।।३८।।
दृश्यं तु पुरुषं दृष्ट्वा योनिः प्रक्लिद्यते स्त्रियः।
लोके च श्रूयते ह्येतन्मद्यस्यातिप्रसेवनात् ।।३९।।
लज्जां मुञ्चन्ति ह्रीमत्यो नार्यः सत्कुलजा अपि।

ऐसा श्लोक सुना जाता है कि ब्रह्मचर्य में विद्यमान (ब्रह्मचारिणी) स्त्रीगण के भी सम्बन्ध में सुनो—रम्य दर्शन पुरुष को देखकर स्त्रीगण की योनि प्रक्लिन्न हो जाती है। लोक में भी सुना जाता है कि अत्यन्त मद्यसेवन से सत्कुल में उत्पन्न लज्जावान रमणीगण भी लज्जा छोड़ देती हैं।।३८-३९।।

समांसैर्भोजनैः स्निग्धैस्तथा मधुसुरासवैः।
गन्धैर्मनोज्ञैर्वस्त्रैश्च कामः स्त्रीषु विजृम्भते ।।४०।।
एतद्बुद्ध्वा कुलस्त्रीणां श्रेयः परममिच्छता।
मद्यं न देयमल्पं वा पुरुषेण विपश्चिता ।।४१।।

इस प्रकार मांस-भोजन, मधु-सुरा-आसवपान, सुगन्ध द्रव्य तथा मनोज्ञ वस्त्र से स्त्रीगण का कामभाव प्रकाशित होता है। अतः यह समझकर मंगलकामी विज्ञजन की कुलस्त्रीगण को अत्यल्प मद्य भी देना उचित नहीं है।।४०-४१।।

वशिष्ठ उवाच

नारदोऽप्यथ तं साम्बं प्रेषयित्वा त्वरान्वितः।
आजगामाथ तत्रैव साम्बस्यानुपदेन तु ।।४२।।
आयान्तं तमभिप्रेक्ष्य गुरुं देवर्षिसत्तमम्।
सहसैवोत्थिताः सर्वाः स्त्रियस्ता मदविह्वलाः ।।४३।।

ऋषि वशिष्ठ देव कहते हैं—तदनन्तर नारद भी साम्ब को वहाँ जाने के लिये प्रेरित करके साम्ब के पीछे-पीछे वहीं पहुँच गये। गुरु देवर्षि नारद को आया देखकर मदविह्वल युवतीगण सहसा उठकर खड़ी हो गयीं।।४२-४३।।

तासामथोत्थितानां तु वासुदेवस्त्वपश्यत।
भित्वा वासांसि शुक्लानि पत्रेषु पतितं मदम्॥४४॥
तं दृष्ट्वा तु हरिः क्रुद्धस्तां शशाप तदा स्त्रियः।
यस्माद् गतानि चेतांसि मां मुक्त्वान्यत्र वः स्त्रियः॥४५॥
तस्मात् पतिकृतांल्लोकान्नायुषोऽस्ते न यास्यथ।
पतिलोकात् परिभ्रष्टाः स्वर्गं चापि गते मयि।
भूत्वा ह्यशरणा यूयं दस्युहस्तं गमिष्यथ॥४६॥

तब वासुदेव ने देखा कि उठने पर उनके शुक्ल वस्त्र को भेदकर पत्र के ऊपर (योनि के ऊपर) मद पतित हो रहा है। यह देखकर हरि ने क्रुद्ध होकर उन रमणीगण को अभि-शाप दिया—हे स्त्रीगण! मेरा परित्याग करके तुम्हारा चित्त अन्यत्र धृत हो गया है, अतः परलोक में तुम्हें पतिलोक (आयु समाप्त होने पर) नहीं मिलेगा। मेरे स्वर्गारोहण के पश्चात् तुम परिभ्रष्ट होगी तथा अरक्षित होकर डाकुओं के हाथ में पड़ जाओगी।।४४-४६।।

वशिष्ठ उवाच

शापदोषात्ततस्तस्मात् स्त्रियः स्वर्गं गते हरौ।
हृताः पाञ्चनदैश्चौरैरर्जुनस्य तु पश्यतः॥४७॥
ततस्तास्तुल्यशापत्वादेवं संदूषिताः स्त्रियः।
प्राप्तवत्यो महच्छापं मुक्त्वा तिस्रः पतिव्रताः॥४८॥
रुक्मिणीं सत्यभामां च तथा जाम्बवतीमपि।
शप्त्वैवं ताः स्त्रियः कृष्णः साम्बमप्यशपत्ततः॥४९॥

ऋषि वशिष्ठ देव कहते हैं कि तदनन्तर अभिशाप के कारण ही जब हरि ने स्वर्गगमन कर लिया था तब अर्जुन के सामने ही उन स्त्रीगण को पञ्चनद प्रदेश में चोरों ने अपहृत कर लिया था। पतिव्रता रुक्मिणी, सत्यभामा तथा जाम्बवती के अतिरिक्त सभी को यह अभिशाप लगा था। इस प्रकार से इन स्त्रीगण को शाप देकर भगवान् कृष्ण ने साम्ब को भी इस प्रकार शाप दिया था।।४७-४९।।

वासुदेव उवाच

यस्मादतीव कान्तं ते दृष्ट्वा रूपमिमाः स्त्रियः।
क्षुब्धाः सर्वास्तु तस्मात्त्वं कुष्ठरोगमवाप्स्यसि॥५०॥

वासुदेव कहते हैं—जिस कारण से सभी रमणीगण तुम्हारा अतीव सुन्दर रमणीय रूप देखकर क्षुब्ध हो गयीं, इसलिये तुम अब कुष्ठरोग से ग्रसित होगे।।५०।।

वशिष्ठ उवाच

यस्मिन् शप्तः क्षणे चासौ पित्रा पुत्रः स्वसम्भवः।
प्राप्तवान् कुष्ठरोगित्वं विरूपत्वं च दुःसहम्॥५१॥

ऋषि वशिष्ठ देव कहते हैं—जब पिता ने अपने पुत्र को इस प्रकार शाप दिया, तभी उसे कुष्ठरोग हो गया तथा वह कुरूप हो गया।।५१।।

साम्बेन पुनरप्येवं दुर्वासां कोपिता मुनिः।
भाव्येनार्थेन चात्यर्थं पूर्वानुस्मरणेन वै ।।५२।।
प्राप्तवान् सुमहच्छापं साम्बो वै मनुजोत्तमः।
तच्छापान्मुसलं जातं कुलं येनाऽस्य पातितम् ।।५३।।

इसी प्रकार एक बार साम्ब से दुर्वासा मुनि कुपित हो गये थे और भवितव्यता के चलते पूर्व वृत्तान्त का स्मरण न रहने से नरश्रेष्ठ साम्ब ने सुमहत् शाप पाया था। उस शाप से उनके पेट से मूसल उत्पन्न हुआ था, जिसके द्वारा यदुवंश का संहार हो गया था।।५२-५३।।

श्रुत्वा दुर्विनयाद्दोषानेवमादीन् विपश्चिता।
नित्यं भाव्यं विनीतेन गुरुदेवद्विजातिषु ।।५४।।

दुर्विनय के इस प्रकार के दोष को सुनकर विज्ञजनों को गुरु, देवता तथा ब्राह्मणों के सम्मुख विनीत हो जाना चाहिये।।५४।।

ततः शापाभिभूतेन साम्बो नाराध्य भास्करम्।
पुनः सम्प्राप्य तद्रूपं स्वनाम्नार्को निवेशितः ।।५५।।
नारदो दर्शयित्वा तु स्त्रीणां भावविपर्ययम्।
साम्बं शापेन संयोज्य तत्रैवान्तरधीयत ।।५६।।

इति श्रीसाम्बपुराणे साम्बशापो नाम तृतीयोऽध्यायः

●

तदनन्तर अभिशप्त साम्ब ने भास्कर की आराधना से पुनः अपना रूप प्राप्त किया और अपने नाम से सूर्य की स्थापना (चन्द्रभागा के तट पर) किया। इधर नारद भी स्त्रीगण के भावविपर्यय को दिखलाकर तथा साम्ब को शाप दिलवाकर वहाँ से अन्तर्धान हो गये।।५४-५६।।

श्री साम्बपुराण का साम्बशाप नामक तृतीय अध्याय समाप्त

●

चतुर्थोऽध्याय:

(द्वादशमूर्त्त्युपाख्यानम्)

बृहद्वल उवाच

स्थापितो यदि साम्बेन सूर्यश्चन्द्रसरित्तटे।
तस्मान्नाद्यमिदं स्थानं यथेतद् भाषितं त्वया ॥१॥

राजा बृहद्वल पूछते हैं—यदि साम्ब ने चन्द्रभागा नदी के तट पर सूर्य के मूर्त्ति की स्थापना की थी, तब उसे आपने जिस प्रकार कहा है (उससे प्रतीत होता है कि) यह सूर्य का आद्य स्थान नहीं है।।१।।

वशिष्ठ उवाच

आद्यं स्थानमिदं भानोः पश्चात् साम्बेन निर्मितम्।
विस्तरेणास्य चाद्यत्वं कथ्यमानं निबोध मे ॥२॥

ऋषि वशिष्ठ देव कहते हैं—यही सूर्य का आद्य स्थान है। बाद में साम्ब ने यहाँ निर्माण कराया। मैं विस्तार से इस आद्यत्व का वर्णन करता हूँ, तुम सुनो।।२।।

अनाद्यो लोकनाथः स विश्वमाली जगत्पतिः।
मित्रत्वेऽवस्थितो देवस्तपस्तेपे नराधिपः ॥३॥

अनादि लोकनाथ जगत्पति नरगण के अधिपति मित्ररूपेण अवस्थित देवता ने पूर्व में एक बार तपस्या किया था।।३।।

अनादिनिधनो ब्रह्मा नित्यश्चाक्षर एव च।
सृष्ट्वा प्रजापतीन् सर्वान् सृष्ट्वा च विविधाः प्रजाः ॥४॥

जिनकी उत्पत्ति तथा विनाश नहीं है, ऐसे नित्य अक्षररूप (क्षररहित) ब्रह्मा ने समस्त प्रजापतियों एवं विविध प्रजा की सृष्टि की।।४।।

ततः स च सहस्रांशुरव्यक्तपुरुषः स्वयम्।
कृत्वा द्वादशधात्मानमदित्यमुदपद्यत ॥५॥

तदनन्तर उन अव्यक्त पुरुष सहस्रांशु (सूर्य) स्वयं द्वादश रूपों में देवमाता अदिति के गर्भ से उत्पन्न हुये।।५।।

इन्द्रो धाताथ पर्जन्यः पूषा त्वष्टाऽर्यमा भगः।
विवस्वान् विष्णुरंशुश्च वरुणो मित्र एव च ॥६॥

आभिर्द्वादशभिस्तेन सूर्येण परमात्मना।
सर्वं जगदिदं व्याप्तं मूर्त्तिभिस्तु नराधिपः ।।७।।

इन्द्र, धाता, पर्जन्य, पूषा, त्वष्टा, अर्यमा, भग, विवस्वान्, विष्णु, अंशु, वरुण तथा मित्र। हे नराधिप! परमात्मा सूर्य अपनी इन द्वादश मूर्त्तियों से समस्त जगत् को व्याप्त करके स्थित हैं।।६-७।।

तस्या या प्रथमा मूर्त्तिरादित्यस्येन्द्रसंज्ञिता।
स्थिता सा देवराजत्वे देवानामनुशासिनी ।।८।।

आदित्य की प्रथम मूर्त्ति इन्द्र के नाम से विख्यात है। यह मूर्त्ति देवगण के शासक देवराजरूप में वर्त्तमान है।।८।।

द्वितीयार्कस्य या मूर्त्तिर्नाम्ना धातेति कीर्त्तिता।
स्थिता प्रजापतित्वे सा विविधाः सृजते प्रजाः ।।९।।

सूर्य की द्वितीय मूर्त्ति का नाम है—धाता। यह प्रजापति रूप से नानाविध प्रजा की सृष्टि करती है।।९।।

तृतीयार्कस्य या मूर्त्तिः पर्जन्य इति विश्रुता।
मेघे व्यवस्थिता सा तु वर्षते च गभस्तिभिः ।।१०।।

सूर्य की तृतीय मूर्त्ति पर्जन्य के नाम से ख्यात है। यह मेघमण्डल में स्थित होकर अपनी किरणों से वर्षा करती है।।१०।।

चतुर्थी तस्य या मूर्त्तिर्नाम्ना पूषेति विश्रुता।
अन्ने व्यवस्थिता सा तु प्रजाः पुष्णाति नित्यशः ।।११।।

इनकी चतुर्थ मूर्त्ति पूषा नाम से विख्यात है। यह अन्न में स्थित होकर नित्य समस्त प्रजा का पोषण करती है।।११।।

पञ्चमी तस्य या मूर्तिर्नाम्ना त्वष्टेति विश्रुता।
स्थिता वनस्पतौ सा तु ओषधीषु च सर्वशः ।।१२।।

इनकी पञ्चम मूर्त्ति त्वष्टा के नाम से प्रसिद्ध है। यह वनस्पति तथा औषधियों में सर्वतोभावेन स्थित है।।१२।।

मूर्त्ति षष्ठी रवेर्या तु अर्यमा इति विश्रुता।
वायोः सञ्चरणार्था सा देहेष्वेव समाश्रिता ।।१३।।

इनकी षष्ठ मूर्त्ति को अर्यमा कहते हैं। यह वायु के संचरण के कारण सभी देह में स्थित है।।१३।।

भानोर्या सप्तमी मूर्त्तिर्नाम्ना भग इति श्रुता।
भूमौ व्यवस्थिता सा तु शरीरेषु च देहिनाम्॥१४॥

सूर्य की सप्तम मूर्त्ति का नाम है—भग। यह भूमि में स्थित होकर सभी देहधारियों के शरीर में स्थित है।।१४।।

मूर्त्तिर्या चाष्टमी वास्य विवस्वानिति विश्रुता।
अग्नौ व्यवस्थिता सा तु पचत्यन्नं शरीरिणाम्॥१५॥

अष्टम मूर्त्ति विवस्वान् कहलाती है। यह अग्नि में स्थित होकर शरीरधारियों का अन्नपाक करती है।।१५।।

नवमी मित्रभानोर्या मूर्त्तिविष्णुश्च नामतः।
प्रादुर्भवति सा नित्यं देवानामरिसूदनी॥१६॥

सूर्य की नवम मूर्त्ति का नाम है—विष्णु। देवगण के शत्रुओं का नाश करने के लिये यह मूर्त्ति (विष्णु) नित्य प्रादुर्भूत होती है।।१६।।

दशमी तस्य या मूर्त्तिरंशुमानिति विश्रुता।
वायौ प्रतिष्ठिता सा तु प्रह्लादयति वै प्रजाः॥१७॥

इनकी दशम मूर्त्ति को अंशुमान कहा गया है। यह वायु में प्रतिष्ठित होकर सभी प्रजावर्ग का आनन्दवर्धन करती है।।१७।।

मूर्त्तिस्त्वेकादशी या तु भानोर्वरुणसंज्ञिता।
सा जीवयति वै कृत्स्नं जगदप्सु प्रतिष्ठितम्॥१८॥

इनकी एकादश मूर्त्ति 'वरुण' कहलाती है। यह जल में प्रतिष्ठित होकर जगत् को जीवनदान देती है।।१८।।

अपां स्थानं समुद्रस्तु वरुणोऽप्सु प्रतिष्ठितः।
तस्माद्वै प्रोच्यते नाम्ना सागरो वरुणालयः॥१९॥

जल का स्थान है—समुद्र। वरुण जल में प्रतिष्ठित होकर समस्त जगत् को जीवनदान देते हैं। तभी तो सागर को वरुणालय कहा गया है।।१९।।

मूर्त्तिर्या द्वादशी भानोर्नामतो मित्रसंज्ञिता।
लोकानां सा हितार्थाय स्थिता चन्द्रसरित्तटे॥२०॥

सूर्य की बारहवीं मूर्त्ति का नाम है—मित्र। यह लोकालय का हित चाहती है, तभी तो चन्द्रभागा नदी के तट पर अवस्थित है।।२०।।

वायुभक्षस्तपस्तेपे स्थितो मैत्रेण चक्षुषा॥२१॥

वह मित्र वायुभक्षण करता है और वह बन्धु के समान चक्षु में स्थित होकर तपस्या कर रहे हैं।।२१।।

अनुगृह्णन् सदा भक्तान् वरैर्नानाविधैस्तु सः ।
एवमाद्यमिदं स्थानं पश्चात् साम्बेन निर्मितम् ॥२२॥

वे सर्वदा नानाविध वरों से भक्तों पर अनुग्रह करते हैं। यही है—सूर्य का आदि स्थान (चन्द्रभागा नदी का तट); जिसका निर्माण साम्ब ने कराया था।।२२।।

तत्र मित्रस्थितो यस्मात् तस्मान्मित्रवनं स्मृतम् ।
एवं द्वादशभिस्तेन सवित्रा परमात्मना ॥२३॥

मित्र जहाँ अवस्थान करते हैं, उसे मित्रवन कहा गया है। इस प्रकार से सविता द्वादश मूर्त्तियों में स्थित हैं।।२३।।

इत्येवं द्वादशादित्यं जगद् ज्ञात्वा तु मानवः ।
नित्यं श्रुत्वा पठित्वा च सूर्यलोके महीयते ॥२४॥

इति श्रीसाम्बपुराणे द्वादशमूर्त्त्युपाख्यानं नाम चतुर्थोऽध्यायः

●

मनुष्यस्वरूप द्वादश आदित्य लोक को जानकर, नित्य सुनकर तथा पाठ करके साधक सूर्यलोक में पूजनीय हो जाता है।।२४।।

श्री साम्बपुराण का द्वादश मूर्त्ति-वर्णन नामक चतुर्थ अध्याय समाप्त

●

पञ्चमोऽध्यायः

(मित्रवरुणयोस्तपः)

बृहद्बल उवाच

यदि तावदसौ सूर्यश्चादिदेवः सनातनः।
तत् किमर्थं तपस्तेपे वरैस्तु प्राकृतो यथा॥१॥

बृहद्बल जिज्ञासा करते हैं—यदि सूर्य सनातन आदिदेव हैं, तब वर-प्राप्ति हेतु प्राकृत व्यक्ति के समान उन्होंने तप क्यों किया?।।१।।

वशिष्ठ उवाच

एतत्तेऽहं प्रवक्ष्यामि परं गुह्यं विभावसोः।
पुरा मित्रेण यत् प्रोक्तं नारदाय महात्मने॥२॥

ऋषि वशिष्ठ देव कहते हैं—सूर्य के इस परम रहस्य की कथा तुमसे कहता हूँ। पहले मित्र ने महात्मा नारद से इसे कहा था।।२।।

प्राङ्मयोक्ताश्च यास्तुभ्यं रवेर्द्वादशमूर्त्तयः।
मित्रश्च वरुणश्चोभौ तासां तु तपसि स्थितौ॥३॥

पहले मैंने तुमसे सूर्य की जिस द्वादश मूर्त्ति की कथा कही है, उनमें से मित्र तथा वरुण तपस्या में लगे थे।।३।।

अब्भक्षौ वरुणस्ताभ्यां तस्थौ पश्चिमसागरे।
मित्रो मित्रवने चास्मिन् वायुभक्षोऽचरत्तपः॥४॥

उनमें से वरुण केवल जल पीकर (तप करते हुये) पश्चिम सागर में अवस्थित थे तथा मित्र इस मित्रवन में वायुभक्षण करके तप कर रहे थे।।४।।

अथ मेरोर्गिरिशृङ्गात् प्रच्युतो गन्धमादनात्।
नारदः सुमहद्भूतः सर्वलोकानचीवरत्॥५॥
आजगामाथ तत्रैव यत्र मित्रोऽचरत्तपः।
तद्दृष्ट्वा तु तपस्यन्तं तस्य कौतूहलं ह्यभूत्॥६॥

तदनन्तर मेरुपर्वत के शृङ्ग गन्धमादन से सभी लोकों से होते हुये विचरण करते नारद (देवर्षि) वहाँ आये, जहाँ मित्र तपस्या कर रहे थे। उनको तप करते देखकर नारद को अत्यन्त कुतूहल हो गया।।५-६।।

योऽक्षयश्चाव्ययश्चैव व्यक्ताव्यक्तः सनातनः।
धृतं चैकात्मना येन त्रैलोक्यमिदमात्मना ।।७।।
यः पिता सर्वदेवानां दैवतं चापि यः परम्।
यजते देवतां कास्तु पितॄन् कान् यजते च सः ।।८।।

जो अक्षय, अव्यय, प्रकट-अप्रकट, सनातन हैं; जिनके एक रूप से यह त्रिभुवन धृत है, जो सभी देवताओं के पिता तथा परम देवता हैं, वे स्वयं किस देवता का यजन कर रहे हैं? किस पितृगण का पूजन कर रहे हैं।।७-८।।

इति सञ्चिन्त्य मनसा तं देवं नारदोऽब्रवीत्।
वेदेषु च पुराणेषु साङ्गोपाङ्गेषु गीयते ।।९।।

नारद मन ही मन ऐसा चिन्तन करके मित्र से पूछने लगे—साङ्गोपाङ्ग वेद तथा पुराणों में कहा गया है कि।।९।।

नारद उवाच

त्वमजः शाश्वतो धाता महाभूतमनुत्तमः।
भूतं भव्यं भविष्यं च त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम् ।।१०।।

आप ही शाश्वत, अज, धाता (सृष्टिकर्त्ता-धारणकर्त्ता) अनुत्तम महाभूत हैं। भूत-भविष्य-वर्त्तमान सब आपके अन्दर प्रतिष्ठित है।।१०।।

चत्वारो ह्याश्रमा देव गृहस्थाद्यास्तथैव च।
यजन्ते त्वामहरहः नानामूर्त्तिसमाश्रितम् ।।११।।
पिता माता च सर्वस्य दैवतं त्वं हि शाश्वतम्।
यजसे पितरं कं त्वं देवं चापि न वेद्म्यहम् ।।१२।।

हे देव! गृहस्थ प्रभृति चारो आश्रम दिन-रात नाना मूर्त्तियों में विद्यमान आपकी पूजा करते रहते हैं। आप ही सभी के पिता, माता तथा नित्य देवता हैं। आप किस पिता अथवा देवता का यजन कर रहे हैं, यह मैं नहीं जानता।।११-१२।।

मित्र उवाच

अवाच्यमेतद् वक्तव्यं परं गुह्यं सनातनम्।
त्वयि भक्तिमति ब्रह्मन् प्रवक्ष्यामि यथातथम् ।।१३।।

मित्र कहते हैं—यह अकथनीय कथा है, परम गोपनीय है। हे ब्रह्मन्! तुझ भक्तिमान से मैं वह यथायथ रूपेण बतलाता हूँ।।१३।।

यत्तत् सूक्ष्ममविज्ञेयमव्यक्तमचलं ध्रुवम्।
इन्द्रियैरिन्द्रियार्थैश्च सर्वभूतैश्च वर्जितम् ।।१४।।

स ह्यन्तरात्मा भूतानां क्षेत्रज्ञश्चैव कथ्यते।
त्रिगुणव्यतिरिक्तोऽसौ पुरुषश्चेति विश्रुतः ॥१५॥

जो सूक्ष्म, अविज्ञेय, अव्यक्त (अप्रकाश), अचल, ध्रुव (नित्य) हैं; इन्द्रिय, इन्द्रियार्थ तथा सभी प्राणियों से जो बहिर्भूत हैं, सभी प्राणीगण की अन्तरात्मा तथा क्षेत्रज्ञ हैं। वे त्रिगुणातिरिक्त पुरुषरूपेण विश्रुत हैं।।१४-१५।।

हिरण्यगर्भो भगवान् स वै बुद्धिरिति स्मृतः।
धृतेनैकात्मना येन त्रैलोक्यमिदमात्मना ॥१६॥

वे हिरण्यगर्भ भगवान् जो बुद्धिस्वरूप कहे जाते हैं, जो अपने एक रूप से त्रिलोक को धारण करते हैं।।१६।।

अशरीरः शरीरेषु सर्वेषु निवसत्यसौ।
वसन्नपि शरीरेषु न स लिप्यति कर्मभिः ॥१७॥

सभी देव-देवियों के शरीर में वे अशरीरी रूपेण निवास करते हैं। सभी शरीर में वास करने पर भी वे कर्मों से लिप्त नहीं होते।।१७।।

ममान्तरात्मा तव च ये चान्ये देहसंज्ञिताः।
सर्वेषां साक्षिभूतोऽसौ न ग्राह्यः केनचित्क्वचित् ॥१८॥
सगुणो निर्गुणो विश्वो ज्ञानगम्यो ह्यसौ स्मृतः ॥१९॥

वे हम सबकी अन्तरात्मा हैं तथा सभी देहधारियों के साक्षी-स्वरूप हैं। वे कभी भी किसी के द्वारा ग्रहण करने योग्य नहीं हैं। वे सगुण-निर्गुण विश्वरूप तथा ज्ञानगम्य कहे जाते हैं।।१८-१९।।

सर्वतः पाणिपादोऽसौ सर्वतोऽक्षिशिरोमुखः।
सर्वतः श्रुतिमांल्लोके सर्वमावृत्त्य तिष्ठति ॥२०॥

वे सर्वतः पाणि-पादयुक्त, चक्षु, मस्तक तथा मुखयुक्त हैं। वे सर्वतः (सबके) कर्ण हैं तथा समस्त लोक के सब कुछ को घेर कर अवस्थित हैं।।२०।।

सर्वेन्द्रियगुणावासः सर्वेन्द्रियमथो ह्यसौ।
यथा दीपसहस्राणि स च एकः प्रसूयते ॥२१॥
बुध्यते स यदात्मानं तदा भवति केवलः।
एकत्वं प्रलये चास्य बहुत्वं च प्रवर्त्तनात् ॥२२॥
नित्यं हि नास्ति जगति भूतं स्थावरजङ्गमम्।
ऋते तमेकमीशानं भूतं स्थावरजङ्गमम् ॥२३॥

समस्त इन्द्रियों के गुणाश्रय वे सकल इन्द्रियरूप हैं। जैसे एक ही दीपक से हजारों दीपक प्रज्वलित होते हैं, वैसे ही वे अकेले ही बहुरूपेण प्रकाशित हो रहे हैं। जब उन्हें जाना जाता है, तब वे केवल आत्मरूपेण अवस्थान करते हैं। प्रलय में इनका एक-रूपत्व रहता है एवं सृष्टिकाल में इनका बहुरूपत्व हो जाता है। यह एक एवं नित्यस्वरूप हैं। इन एक ईश्वर के अतिरिक्त इस जगत् में कोई भी स्थावर-जंगम प्राणी नित्य नहीं है।।२१-२३।।

अक्षयश्चाप्रमेयश्च सर्वगश्च स उच्यते।
तस्मादव्यक्तमुत्पन्नं त्रिगुणं द्विजसत्तम ।।२४।।

वे अक्षय, अप्रमेय (अतुलनीय), सर्वग (सर्वत्र गमनशील) एवं अव्यक्त हैं। हे द्विजोत्तम! उनसे ही त्रिगुण उत्पन्न हुआ है।।२४।।

अव्यक्तव्यक्तभावस्था या सा प्रकृतिरुच्यते।
तां योनिं ब्रह्मणो विद्धि नित्यं योऽसौ मदात्मकः ।।२५।।

जो अव्यक्त तथा व्यक्तभावरूप हैं, उन्हें प्रकृति कहा गया है। वह ब्रह्मयोनि (प्रकाश स्थान) है। वह नित्य तथा मेरा ही स्वरूप है।।२५।।

लोके च पूज्यते योऽसौ दैवे पैत्र्ये च कर्मणि।
नास्ति तस्मात्परो ह्यन्यः पिता देवोऽपि सात्त्विकः ।।२६।।

जगत् में वे दैव तथा पितृकर्म में पूजित होते हैं, उनकी अपेक्षा अन्य कोई पिता अथवा सात्त्विक देवता नहीं है।।२६।।

आत्मा हि नः स विज्ञेयस्ततस्तं पूजयाम्यहम्।
स्वर्गस्था अपि ये केचित्तं नमस्यन्ति देहिनः ।।२७।।
ते तत्प्रसादाद् गच्छन्ति तेनोद्दिष्टफलाद् गतिम्।
तं देवाश्चाश्रमस्थाश्च नानामूर्तिसमाश्रिताः ।।२८।।
भक्त्या सम्पूजयन्त्याद्यगतिं चैषां ददाति सः।
स हि सर्वगतश्चैव निर्गुणश्चैव कथ्यते ।।२९।।

वे हमारी आत्मारूप से विज्ञेय हैं, अतएव मैं उनकी पूजा करता हूँ। स्वर्गस्थ कोई-कोई देहधारी उनको नमस्कार करते हैं। वे उनकी कृपा से उनके द्वारा प्रदत्त गति प्राप्त करते हैं। नाना मूर्त्तियुक्त देवता तथा आश्रमस्थ साधकादि जो उनकी अर्चना करते हैं, भक्तियुक्त पूजनादि करते हैं, वे उन्हें उत्तमा गति प्रदान कर देते हैं। वे सर्वत्र, सर्व प्राणीगण में गमनशील तथा निर्गुण कहे जाते हैं।।२७-२९।।

एवं ज्ञात्वा तमात्मानं पूजयामि सनातनम्।
ये तु तद्भाविता लोका एकत्वञ्च समाश्रिताः ।।३०।।

तमेव चैव ते सर्वे विशन्त्यक्षयमव्ययम्।
एतदभ्यधिकं तेषां यदैनं प्रविशन्ति ते॥३१॥

ऐसा जानकर मैं उन आत्मस्वरूप सनातन तत्त्व का पूजन करता हूँ। जो उनके भाव से सराबोर, भावित तथा तन्मय हैं एवं एकत्व से युक्त हैं, वे सभी इस अक्षय-अव्ययस्वरूप में प्रवृष्ट हैं। यह उनकी प्राप्ति है। वे उनमें ही प्रवेश करते हैं।।३०-३१।।

इति गुह्यसमुद्देशस्तव नारद कीर्त्तितः।
अस्मद् भक्त्या तु देवर्षे त्वयापि परमं श्रुतम्॥३२॥

हे नारद! यह गोपनीय रहस्य तुमको मैंने बतलाया। हे देवर्षि! मेरी भक्ति के कारण तुमने भी इस परम तत्त्व को सुना।।३२।।

सुरैर्वा मुनिभिर्वापि पुराणं यैरिदं स्मृतम्।
ते सर्वे परमात्मानं पूजयन्ति दिवाकरम्॥३३॥

देवगण अथवा मुनिगण जो इस पुराण का स्मरण करते हैं, वे सभी परमात्मा दिवाकर का पूजन करते हैं।।३३।।

इदमाख्यानमार्षेयं यन्मया कीर्त्तितं तव।
न ह्यनादित्यभक्ताय त्वया देयं कथञ्चन॥३४॥

यह ऋषियों द्वारा कथित आख्यान है, जिसे मैंने तुमसे कहा। इसे आदित्यभक्त के अतिरिक्त किसी को भी नहीं बतलाना चाहिये।।३४।।

यश्चैतच्छ्रावयेन्नित्यं यश्चैतत् शृणुयान्नरः।
स सहस्रार्चिषं देवं प्रविशेन्नात्र संशयः॥३५॥

जो नित्य इसको सुनते हैं तथा सुनाते हैं, वे सहस्र किरणों वाले देवता सूर्य में प्रवेश करते हैं; यह निःसंदिग्ध है।।३५।।

मुच्येतार्त्तस्तथा रोगान्मुने श्रुत्वा कथामिमाम्।
जिज्ञासुर्लभते ज्ञानं गतिमिष्टां तथैव च॥३६॥
क्षेमेन ब्रजतेऽध्वानमिदं यः पठते पथि।
यो यं कामयते कामं स तं प्राप्नोत्यसंशयः॥३७॥

इसका श्रवण करके आर्त्त व्यक्ति रोगमुक्त हो जाता है, जिज्ञासु ज्ञानलाभ करता है और अभीप्सित गति को प्राप्त करता है। जो मार्ग में इसे पढ़ता है, वह निर्विघ्न अपने गन्तव्य तक पहुँच जाता है। इस प्रकार जो जिस कामना को करते हैं, वे उसे निःसंदेह प्राप्त कर लेते हैं।।३६-३७।।

वशिष्ठ उवाच

एवमेतन्मयाख्यातं नारदेन महात्मना ।
मयापि च तवाख्यातं भक्त्या भानोरिदं नृप ॥३८॥

ऋषि वशिष्ठदेव कहते हैं—महात्मा नारद ने मुझसे यह कहा था। हे राजन्! सूर्य की भक्ति के कारण मैंने इसे तुमसे कहा।।३८।।

त्वया तत् सततं राजन्नभ्यर्च्यो भगवान् रविः ।
स हि धाता विधाता च सर्वस्य जगतो गुरुः ॥३९॥

इति श्रीसाम्बपुराणे मित्रवरुणयोस्तपोनाम पञ्चमोऽध्यायः

●

अतएव हे राजन्! तुम सर्वदा भगवान् सूर्य की अर्चना करो। वे ही धाता, विधाता तथा समस्त जगत् के गुरु हैं।।३९।।

श्री साम्ब पुराणान्तर्गत मित्र-वरुणतपस्या नामक पञ्चम अध्याय समाप्त

●

षष्ठोऽध्यायः

(भक्त्युपस्थानम्)

बृहद्बल उवाच

कथं साम्बः प्रपन्नोऽर्कं केन वा प्रतिपादितः ।
उग्रं शापं च सम्प्राप्य पितरं स किमुक्तवान् ॥१॥

बृहद्बल कहते हैं—साम्ब किसलिये सूर्य के शरणापन्न हुये? वह कैसे सम्पन्न हुआ तथा उग्र शाप पाकर उन्होंने पिता से क्या कहा।।१।।

वशिष्ठ उवाच

ततः शापाभिभूतश्च साम्बः पितरमब्रवीत् ।
किं मयापकृतं देव येन शप्तो ह्यहं त्वया ॥२॥

ऋषि वशिष्ठदेव कहते हैं—तदनन्तर साम्ब शाप से अभिभूत होकर पिता से बोले—हे देव! मैंने क्या अपराध किया था, जो आपके शाप द्वारा मैं अभिशप्त हो गया?।।२।।

अहं त्वदाज्ञया देव त्वरमाण इहागतः ।
कथं निपातितः शापो मयि तेऽनपकारिणी ॥३॥

मैंने तो आपका कोई अपराध नहीं किया था। आप की आज्ञा पाकर ही यहाँ आया था। आप प्रसन्न हो जायँ। हे देवेश! शाप लौटा लीजिये। हे प्रभु! आप मुझ पर प्रसन्न होईये।।३।।

न तेऽपकुर्मेऽहं किञ्चित् प्रसीद जगतः पते ।
शापं नियच्छ देवेश प्रसादं कुरु मे प्रभो ॥४॥

मैंने आपका कोई अपराध नहीं किया है। हे जगत् के पति! आप प्रसन्न हो जाईये। शाप लौटा लीजिये। प्रसन्न हो जाईये।।४।।

तमुवाच ततः कृष्णः साम्बं बुद्ध्वा ह्यनागसम् ॥५॥
तस्मात्त्वमेव पृच्छस्व प्रसाद्य ऋषिसत्तमम् ।
आख्यास्यति स ते देवः शापं यस्ते विनेष्यति ॥६॥

तदनन्तर कृष्ण ने बुद्धि द्वारा साम्ब को निरपराध जानकर उससे कहा—तुम ऋषि-श्रेष्ठ (नारद) को प्रसन्न करके पूछो। वे ही तुमको बतायेंगे कि कौन देवता इस शाप का अपनोदन कर सकते हैं।।५-६।।

अथैतत् स पितुर्वाक्यं श्रुत्वा जाम्बवतीसुतः।
दीनः शापपरीताङ्गस्ततः सञ्चिन्त्य वै पुनः ॥७॥
द्वारवत्यां स्थितं विष्णुं कदाचिद्द्रष्टुमागतम्।
विनयादुपसङ्गम्य साम्बः प्रपच्छ नारदम् ॥८॥

अब जाम्बवती-पुत्र साम्ब पिता का वाक्य सुनकर और अतिदीन भाव से कुष्ठ रोगाक्रान्त होकर रहने लगे। तदनन्तर एक बार द्वारका में विष्णुदर्शनार्थ आये नारद के पास जाकर सविनय जिज्ञासा करने लगे।।७-८।।

साम्ब उवाच

भगवन् ब्रह्मणः पुत्र सर्वज्ञः सर्वलोकगः।
दयां हि कुरु विप्रेन्द्र प्रणतस्य ममानघ ॥९॥
त्वत्तोऽहं श्रोतुमिच्छामि निश्चयं ब्रूहि तन्मम।
कः स्तुत्यः सर्वदेवानां कः परः पुरुषोऽव्ययः ॥१०॥
दीनस्यार्तिहरः कश्च शरणं कं व्रजाम्यहम्।
पितृशापसमुत्थेन कश्मलेन महामुने ॥११॥
अतिभूतस्य मोक्षो मे किं प्रपन्नस्य वै भवेत्।

साम्ब कहते हैं—हे भगवन् ब्रह्मपुत्र, सर्वज्ञ, सर्वलोक-गमनकारी, विप्रेन्द्र, निष्पाप! मैं प्रणत हूँ, मुझ पर दया करिये। मैं आपसे जो सुनना चाहता हूँ, वह आप अवश्य कहिये। सभी देवताओं में कौन स्तुत्य है? कौन अव्यय पुरुष है? कौन दीनों का हितकारी है? हे महामुने! पिता द्वारा शापोद्भूत पाप के क्षालनार्थ मैं किसकी शरण ग्रहण करूँ?।।९-११।।

वशिष्ठ उवाच

एवं सम्पृच्छते तस्मै साम्बायोवाच नारदः ॥१२॥

ऋषि वशिष्ठदेव कहते हैं—इस प्रकार का प्रश्न पूछने पर नारद ने साम्ब से कहा।।१२।।

नारद उवाच

कदाचित् पर्यटंल्लोकान् सूर्यलोकमहं गतः।
तत्र दृष्ट्वा मया सूर्यः सर्वदेवगणैर्वृतः ॥१३॥
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च नागैर्यक्षैः सराक्षसैः।
गायन्ति तत्र गन्धर्वा नृत्यन्तोऽप्सरसस्तथा ॥१४॥
रक्षन्त्युद्यतशस्त्रास्त्रा यक्षराक्षसपन्नगाः।
ऋचो यजूंषि सामानि मूर्त्तिमन्ति हि तत्र च ॥१५॥

नारद कहते हैं—किसी समय मैं नाना स्थानों में पर्यटन करते-करते सूर्यलोक में गया था। वहाँ देखा कि देवता, गन्धर्व, अप्सरा, नाग, यक्ष, राक्षस सभी सूर्यदेव को घेरे हुये हैं। वहाँ गन्धर्वगण गायन कर रहे थे तथा अप्सरायें नृत्य कर रहीं थी। यक्ष, राक्षस तथा सर्पगण उद्यत शस्त्र-अस्त्र द्वारा सूर्यदेव की रक्षा कर रहे थे एवं ऋक्, यजुः तथा सामवेद मूर्त्तिमान होकर वहाँ विराजित थे।।१३-१५।।

तत्कृतैर्विविधैः स्तोत्रैः स्तुवन्ति ऋषयो रविम्।
मूर्त्तिमन्तः शुभास्तत्र तिस्रः सन्ध्याः शुभाननाः।।१६।।

ऋषिगण ऋक् आदि स्तोत्रों से उनकी स्तुति का गायन कर रहे थे। मंगलमयी शुभानना प्रातः, मध्याह्न तथा सायं सन्ध्या मूर्त्ति धारण करके वहाँ स्थित थीं।।१६।।

गृहीतैर्वज्रनाराचैः परिचर्य रविं स्थिताः।
आदित्या वसवो रुद्रा मरुतश्चाश्विनौ तथा।।१७।।

वज्र, नाराच प्रभृति अस्त्र धारण किये अदिति के पुत्रगण, वसुगण, मरुद्गण तथा अश्विनीकुमारद्वय वहाँ सूर्य की परिचर्या करते हुये विद्यमान थे।।१७।।

त्रिसन्ध्यं पूजयत्यर्कं तत्रान्यं च दिवौकसः।
ईरयन् जयशब्दं तु शक्रस्तत्रैव तिष्ठति।।१८।।

वहाँ तीनों सन्ध्या में सूर्य का पूजन हो रहा था तथा जय-जयकार शब्द का उद्घोष करते हुये इन्द्र भी वहाँ उपस्थित थे।।१८।।

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च प्रयुञ्जन्त्याशिषः शुभाः।
रथं हि वाहते तस्य अरुणो नाम सारथिः।।१९।।
हरितैः सप्तभिर्युक्तं छन्दोभिर्वाजिरूपिभिः।
द्वे भार्ये पार्श्वयोस्तस्य ते राज्ञीनिक्षुभे शुभे।।२०।।

ब्रह्मा-विष्णु तथा रुद्र शुभाशीष दे रहे थे। अरुण नामक सूर्य का सारथी सप्तवर्ण अश्वरूप छन्दों से युक्त रथ चला रहा था। उसके दोनों पार्श्व में दो भार्या मंगलमयी राज्ञी तथा निक्षुभा बैठीं थी।।१९-२०।।

अन्यैश्च नामभिर्देवाः परिचर्यविधिं स्थिताः।
पिङ्गलो देवकस्तत्र ततोऽन्यो दण्डनायकः।।२१।।
राज्ञस्तोषौ च तद्द्वारे ततः कल्माषपक्षिणौ।
ततो व्योमचतुःशृङ्गं मेरोः सदृशलक्षणम्।।२२।।

दण्डिर्नग्नोऽग्रतस्तस्य दिक्षु चान्ये स्थिताः सुराः ।
एवं सर्वगतं नित्यं प्रदीप्तं जगतः शुभम् ।
ब्रह्माद्यैः संस्तुतं देवैरादित्यं शरणं व्रज ॥२३॥

इति श्रीसाम्बपुराणे भक्त्युपस्थानो नाम षष्ठोऽध्यायः

●

अन्य विविध नामों के देवगण उनकी परिचर्या कर रहे थे। उनमें पिङ्गल, देवक, दण्डनायक सूर्य के द्वारदेश पर विद्यमान थे। स्तोषनामक कल्माष पक्षीद्वय मेरुतुल्य व्योम के चार शृङ्गरूप थे। उनके सामने नग्न तथा दण्डि एवं चतुर्दिक अन्य देवता अवस्थित थे। इस प्रकार सर्वगत, नित्य, प्रदीप्त (उज्ज्वल), जगत् का शुभ करने वाले ब्रह्मादि देवताओं से संस्तुत आदित्य की शरण ग्रहण करो।।२१-२३।।

श्रीसाम्बपुराण का भक्त्युपस्थान नामक षष्ठ अध्याय समाप्त

●

सप्तमोऽध्यायः

(रवेः सर्वव्यापित्वनिरूपणम्)

सान्ब उवाच

तत्त्वतः श्रोतुमिच्छामि कथं सर्वगतो रविः।
कतिधा रश्मयस्तत्र मूर्त्तयश्च कति स्मृताः ॥१॥
का राज्ञी निक्षुभा का च कश्चायं दण्डनायकः।
पिङ्गलश्चापि कः प्रोक्तः किं चासौ लिखने सदा ॥२॥

साम्ब ने नारद से पूछा—मैं यह तत्त्वतः सुनना चाहता हूँ कि रवि सर्वगत क्यों हैं? उनकी कितनी किरणें तथा कितनी मूर्त्तियाँ कही गयी हैं? (तत्त्वविभाग का निरूपण सुनना चाहता हूँ) राज्ञी कौन हैं? निक्षुभा कौन है तथा वे दण्डनायक कौन हैं? पिङ्गला किसे कहा गया है? वे सदा क्या लिखने में व्यापृत रहते हैं?।।१-२।।

राज्ञस्तोषौ च कौ द्वारे कौ च कल्माषपक्षिणौ।
किं दैवतञ्च तद्व्योम मेरोः सदृशलक्षणम् ॥३॥
को दण्डिर्नग्नको यश्च के देवा दिक्षु ये स्थिताः।
तत्त्वतो निगमञ्चैव विस्तरेण वदस्व मे ॥४॥

(सूर्य के) राजद्वार पर स्तोषद्वय कौन हैं? कल्माष पक्षिद्वय कौन हैं? मेरुशृङ्ग के समान उस व्योम में कौन देवता है? नग्नक नामक दण्डि कौन है? चारो ओर स्थित देवगण कौन हैं? कृपया इनका तत्त्वतः स्वरूप कहिये।।३-४।।

नारद उवाच

विस्तरेणानुपूर्व्या च सूर्यं निगदितं शृणु।
ततः शेषं प्रवक्ष्यामि नमस्कृत्य विवस्वते ॥५॥

नारद कहते हैं—विस्तृत रूप से मैं आनुपूर्विक सूर्य का तत्त्व कहता हूँ, सुनो। तदनन्तर सूर्य को नमस्कार करके शेष तत्त्व कहूँगा।।५।।

अव्यक्तं कारणं यत्तत् नित्यं सदसदात्मकम्।
प्रधानं प्रकृतिश्चेति तमाहुस्तत्त्वचिन्तकाः ॥६॥
गन्धवर्णरसैर्हीनं शब्दस्पर्शविवर्जितम्।
जगद्योनिं समुद्भूतं परं ब्रह्म सनातनम् ॥७॥

जो अव्यक्त कारणस्वरूप, नित्य सत् तथा असदात्मक है, उन्हें तत्त्वविद् गण प्रधान एवं प्रकृति कहते हैं। वे गन्ध, वर्ण, रस, शब्द, स्पर्श से रहित एवं जगत् के कारण के रूप में समुद्भूत सनातन परम ब्रह्म हैं।।६-७।।

विग्रहः सर्वभूतानामव्यक्तमभवत् पुरा ।
अनाद्यन्तमजं सूक्ष्मं त्रिगुणप्रभवाप्ययम् ।।८।।

जो सभी प्राणिगण के विग्रहस्वरूप हैं, वे पूर्व में अव्यक्त थे। वे आदि-अन्तरहित, अज, सूक्ष्म, त्रिगुणात्मक, सृष्टि-प्रलयरूप हैं।।८।।

असाम्प्रतमति ज्ञेयं तमाहुः परमं पदम् ।
तेनात्मना सर्वमिदं जगद् व्याप्तं महात्मना ।।९।।

जो बुद्धि से भी अतीत तथा दुर्विज्ञेय हैं, उन्हें (विद्वान्) परमपद कहते हैं। उन महात्मा के आत्मस्वरूप के द्वारा यह समस्त जगत् व्याप्त है।।९।।

तस्येश्वरस्य प्रतिमा ज्ञानवैराग्यलक्षणा ।
धर्मैश्वर्यकृता बुद्धिर्ब्राह्मी तस्याभिमानिता ।।१०।।

उन ईश्वर की प्रतिमा ज्ञान-वैराग्यरूप है। धर्म में ऐश्वर्यकृता बुद्धि है। ब्राह्मी है—उनकी अभिमानिता।।१०।।

अव्यक्ताज्जायते तस्य मनसा यद् यदिच्छति ।
चतुर्मुखस्य ब्रह्मत्वे कालत्वे चान्तकृद्भवः ।।११।।

वे जो इच्छा मन ही मन करते हैं, वह अव्यक्त से उत्पन्न हो जाता है। चतुर्मुख में ब्रह्मत्व, कालत्व एवं विनाशकारित्व तथा उत्पन्नत्व है।।११।।

सहस्रमूर्धा पुरुषः तिस्रोऽवस्थाः स्वयम्भुवः ।
सत्त्वं रजश्च ब्रह्मत्वे कालत्वे च रजस्तमः ।।१२।।

वे सहस्र मस्तक वाले पुरुष जो विशिष्ट हैं तथा स्वयम्भु हैं, उनकी तीन अवस्था है। ब्रह्मरूप से सत्त्व एवं रजोगुण तथा कालरूप से रजः एवं तमोगुण।।१२।।

सात्त्विकं पुरुषत्वे च गुणावृत्तं स्वयम्भुवः ।
ब्रह्मत्वे सृजते लोकान् कालत्वे स क्षिपत्यपि ।।१३।।

पुरुषरूप से उनके सात्त्विक गुण का प्रकाश होता है। स्वयम्भु ब्रह्मा रूप से वे जगत् की सृष्टि करते हैं तथा कालरूप से वे निक्षेप (विनाश) करते हैं।।१३।।

पुरुषत्वे ह्युपासीने तिस्रोऽवस्थाः स्वयम्भुवः ।
त्रिधा विभज्य चात्मानं त्रैकाल्यं सम्प्रवर्त्तते ।।१४।।

पुरुषरूप से पालन करते हैं (स्थिति); यह है—स्वयम्भु की तीन अवस्था। वे स्वयं को तीन भाग करके भूत-भविष्य-वर्त्तमान अथवा सृष्टि-स्थिति-संहार का प्रवर्त्तन करते हैं।।१४।।

सृज्यते ग्रसते चैव वीक्ष्यते च त्रिभिः स्वयम्।
अग्रे हिरण्यगर्भस्तु प्रादुर्भूतः स्वयम्भुवः ॥१५॥

स्वयं ही तीन गुणों से सृष्टि, विनाश तथा दर्शन (सृष्टि, स्थिति, प्रलय) करते हैं। स्वयम्भु ही हिरण्यगर्भ रूप से प्रादुर्भूत हैं।।१५।।

आदित्यस्त्वादिदेवत्वादजातत्वादजः स्मृतः।
देवेषु च महादेवो महादेवस्ततः स्मृतः ॥१६॥
सर्वेशत्वाच्च लोकस्य ह्यवश्यत्वात् स चेश्वरः।
बृंहित्वाच्च स्मृतो ब्रह्मा भूतत्वाद्भव उच्यते ॥१७॥

वे आदिदेव आदित्य हैं (आदिदेव होने के कारण आदित्य हैं)। अजात होने के कारण अज हैं। देवों में वे महान् देव होने के कारण महादेव हैं। समस्त जगत् के सत्त्वरूप होने के कारण तथा उन्हें कोई वश में नहीं कर सकता, इस कारण वे ईश्वर हैं। बृहत् होने से वे ब्रह्मा हैं तथा भूतरूप (उत्पन्नरूप) होने से वे भव हैं।।१६-१७।।

यान्ति यस्मात् प्रजाः सर्वाः प्रजापतिरिति स्मृतः।
पुर्यां तु शेते यस्माच्च तस्मात् पुरुष उच्यते ॥१८॥

जिससे समग्र प्रजा की उत्पत्ति होती है, वे प्रजापति यही हैं। वे पुरी में (प्रत्येक देह में) शयन करने के कारण पुरुष कहलाते हैं।।१८।।

नोत्पादनत्वात् पूर्वत्वात्स स्वयम्भुरिति स्मृतः।
हिरण्येन तु गर्भस्थो यस्मादेव समावृतः ॥१९॥
तस्माद्धिरण्यगर्भेति सूर्यो देवो निगद्यते।

वे कभी भी उत्पन्न नहीं होते अर्थात् उनका उत्पादक, जनक कोई भी नहीं है तथा वे सबसे पूर्व के होने के कारण स्वयम्भु कहलाते हैं। हिरण्य द्वारा गर्भस्थ होकर समावृत होने के कारण वे हिरण्यगर्भ कहलाते हैं।।१९।।

आपो नारा इति प्रोक्ता ऋषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥२०॥
अयनं तस्य तत्पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः।

तत्त्वदर्शी ऋषिगण 'नारा' जल को कहते हैं, उसके अयन होने के कारण इनको नारायण कहा जाता है।।२०।।

अरमित्येष सिद्धार्थे निपातः करिभिः स्मृतः ॥२१॥

कविगण अर शब्द का अर्थ सिद्धार्थ निपात कहते हैं।।२१।।

एकार्णवे पुरा तस्मिन् नष्टे स्थावर-जङ्गमे।
नारायणाख्यः पुरुषः सुष्वाप सलिले स्मृतः ॥२२॥

स्थावर एवं जंगम के नष्ट हो जाने पर अर्थात् प्रलय में सृष्टि का विनाश हो जाने पर इसी एकार्णव सलिल में नारायण नामक पुरुष शयन करते हैं।।२२।।

सहस्रशीर्षा सुमहान् सहस्रपात् सहस्रचक्षुर्वदनः सहस्रभुक्।
सहस्रबाहुः प्रथमः प्रजापतिः सूर्याख्यतेजाः पुनरुच्यते रविः ॥२३॥
आदित्यवर्णो भुवनस्य गोप्ता ह्यपूर्व एकः पुरुषः पुराणः।
हिरण्यगर्भः पुरुषो महात्मा स ईष्यते वै तमसः परस्तात् ॥२४॥

वह महान् पुरुष सहस्र मस्तकों से युक्त है (सहस्र = असंख्य)। वह सहस्र पैरों से युक्त है। सहस्र चक्षु तथा मुखयुक्त है। वह हजारों बार (असंख्य बार) भोजन करने वाला है। उसके हजारों बाहु हैं। वह प्रथम प्रजापति सूर्य नामक तेजयुक्त है; अतः उसे रवि कहते हैं। वह आदित्यवर्ण (सूर्य के समान उज्ज्वल कान्ति वाला), भुवनों का पालक, अपूर्व, पुराणपुरुष, हिरण्यगर्भ है। तमोलोक के पश्चात् उसे प्राप्त किया जाता है।।२३-२४।।

तुल्यं युगसहस्रस्य नैशं कालमुपास्यतः।
संवर्त्तान्ते प्रकुरुते ब्रह्मत्वं सर्गकारणात् ॥२५॥
सलिलेनाप्लुतां भूमिं दृष्ट्वा कार्यं विचिन्त्य सः।
भूत्वा वै स तु वाराहो ह्यपः संविशते प्रभुः ॥२६॥

वे हजारों युगों के तुल्य नैश (रात्रि) अन्धकार को दूर करके प्रलयान्त में सृष्टि के लिये ब्रह्मारूप से आविर्भूत हो जाते हैं। वह प्रभु भूमि को जल से आप्लुत देखकर सृष्टिकार्य की विवेचना करके वराह रूप से जल में प्रवेश करते हैं।।२५-२६।।

सञ्चिन्त्यैवं च देवोऽसौ भूमेरुद्धरणं क्षमः।
महीं महार्णवे मग्नामुद्धर्त्तुमुपचक्रमे ॥२७॥

पृथ्वी के उत्तरण में सक्षम वह देव इस प्रकार की चिन्तना करके महार्णव में डूबी पृथ्वी का उद्धार करने का उपक्रम करने लगे।।२७।।

उत्तिष्ठतस्तस्य जलार्द्रकुक्षेर्महावराहस्य महीं निधाय।
विधुन्वतो वेदमयं शरीरं लोमान्तरस्था मुनयो जयन्ति ॥२६॥

पृथ्वी को धारण करके जल से उत्थित जलसिक्त कुक्षियुक्त महावराह के विकम्पन से प्रकटित वेदमय शरीर की उनके लोमों में स्थित मुनिगण आराधना करने लगे।।२८।।

उद्धृत्य चोर्वी सलिलात् प्रजासर्गमकल्पयत्।
विसृजन् मानसान् पुत्रानात्मनस्तेजसा समान्॥२९॥

सलिल से पृथ्वी का उद्धार करके प्रजासृष्टि-हेतु चिन्तन करके उन्होंने अपने तेज के समान तेजोमय मानस पुत्रगण की सृष्टि की।।२९।।

भृग्वङ्गिरसमत्रिं च पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम्।
मरीचिमथ दक्षं च वशिष्ठं नवमं तथा॥३०॥
नव प्रजापतीन् सृष्ट्वा ततः स पुरुषोत्तमः।
प्रादुर्भूतोऽदितेः पुत्रः प्रजानां हितकाम्यया॥३१॥

भृगु, अङ्गिरा, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, मरीचि, दक्ष तथा वशिष्ठ—ये नौ प्रजापति हैं। ये सृष्टि करते हैं। तत्पश्चात् वे पुरुषोत्तम प्रजा की मङ्गलकामना के लिये अदिति के पुत्ररूप में प्रादुर्भूत हुये।।३०-३१।।

मरीचिः कश्यपं पुत्रं नावि वै जनयज्जले।
प्रजापतीनां दशमं तेजसा ब्रह्मणा समम्॥३२॥

जल में नौका के समान (जैसे जलोत्तरण में लोग नौका का सहारा लेते हैं) सहायता के लिये (सृष्टिकार्य में सहायता के लिये) मरीचि ने कश्यप नामक पुत्र को उत्पन्न किया। इनका तेज ब्रह्मा के समान था और ये दशम प्रजापति कहे जाते हैं।।३२।।

दक्षकन्यादितिर्नाम्ना पत्नी सा कश्यपस्य तु।
अण्डं सा जनयामास भूनभस्तलविस्तरम्॥३३॥
तत्रोत्पन्नः सहस्रांशुर्द्वादशात्मा दिवाकरः।
नवयोजनसाहस्रो विस्तारस्तस्य वै स्मृतः।
विस्तारत्रिगुणश्चास्य परिणाहस्तु मण्डले॥३४॥

दक्ष की अदिति नामक कन्या कश्यप की पत्नी थी। उन्होंने एक अण्डा उत्पन्न किया, जो पृथ्वी से आकाश तक विस्तार वाला था। उससे सहस्रांशु द्वादशात्मा (१२ मूर्त्तिरूप से प्रकट) दिवाकर उत्पन्न हुये। उनका विस्तार ९००० योजन प्रसिद्ध है। इसकी परिधि की विशालता त्रिगुण विस्तृत थी।।३३-३४।।

तथा पुष्पं कदम्बस्य समन्तात् केशरैर्वृतम्।
तथैव तेजसो गोलं समन्ताद् रश्मिभिर्वृतम्॥३५॥

जैसे कदम्बपुष्प चारो ओर केशर से परिवृत्त रहता है, उसी प्रकार उनका तेजोमय गोला (वर्त्तुलाकार) चारो ओर रश्मियों से घिरा रहता है।।३५।।

सहस्रशीर्षा पुरुषः प्राङ्मया य उदाहृतः ।
तेजसस्तस्य गोलस्य स तु मध्ये व्यवस्थितः ।।३६।।

पहले जिन सहस्रशीर्षा पुरुष की कथा इस ग्रन्थ में कही गयी है, इस तेजोमय गोला के मध्य में वे स्थित हैं।।३६।।

आदित्यः स तपत्येष वियन्नापो गभस्तिभिः ।
सहस्रपादस्त्वेषोऽग्निर्वृत्तकुम्भनिभः स्मृतः ।।३७।।
आदत्ते स तु रश्मीनां सहस्रेण समन्ततः ।
आपो नदीसमुद्रेभ्यो ह्रदकूपेभ्य एव च ।।३८।।
प्रभा सौरी तु पादेन ह्यस्तं याति दिवाकरे ।
अग्निमाविशते रात्रौ तस्माद् दूरात् प्रकाशते ।।३९।।

वह आदित्य अपनी किरणों से द्युलोक तथा जलाशयों को ताप प्रदान करते हैं। वे वृत्ताकार कुम्भतुल्य सहस्रपाद युक्त अग्नि कहे जाते हैं। ये चारो ओर हजारों-हजारों रश्मियों द्वारा नदी, समुद्र, ह्रद तथा कूप से जल का आहरण करते हैं।

दिवाकर का सूर्यास्त होने पर रात्रि में सूर्य की प्रभा का एक पाद अग्नि में प्रवेश करता है, तब दूर से सूर्यप्रभा प्रकाशित होती है।।३७-३९।।

उदिते च पुनः सूर्यो चौष्ण्यमाग्नेयमाविशत् ।
पादेन तेजसश्चाग्नेस्तथा तत्तपते दिवा ।।४०।।
प्रकाश्यं च तथौष्ण्यञ्च सौर्याग्नेये च तेजसि ।
परस्परानुप्रवेशादाप्यायेते दिवानिशम् ।।४१।।

सूर्य के पुनः उदित होने पर उसमें अग्नि की उष्णता प्रवेश करती है। ऐसे ही अग्नि का तेज एक पाद से दिन में ताप देता है। सूर्य तथा अग्नि के दो तेज हैं—प्रकाशक धर्म तथा उष्णत्व अर्थात् सूर्य का तेज है—प्रकाशक धर्म तथा अग्नि का तेज है—उष्णत्व धर्म। ये परस्पर अनुप्रवेश द्वारा दिवा-रात्रि को प्रकाशित करते हैं।।४०-४१।।

नारद उवाच

व्यापकत्वं च रश्मीनां नामानि च निबोध मे ।
हेतयः किरणा गावो रश्मयोऽथ गभस्तयः ।।४२।।
अभीषवो वनान्युस्रा घृणयोऽथ मरीचयः ।
नाड्यो दिधीतयः साध्या मयूखा भानवोंऽशवः ।।४३।।
सप्तर्षयः सुपर्णाश्च कराः पादास्तथैव च ।
एवं नाम्ना तु पर्यायाः रश्मीनां विंशतिः स्मृता ।।४४।।

नारद कहते हैं—रश्मियों का व्यापकत्व तथा नाम मैं कहता हूँ, श्रवण करो। हेति, किरण, गो, रश्मि, गभस्ति, अभीषव, वन, उस्र, घृणि, मरीचि, नाड़ी, दीधिति, साध्य, मयूख, भानु, अंश, सप्तर्षिगण, कर तथा पाद—ये सूर्यरश्मि के २० पर्यायवाची नाम कहे गये हैं।।४२-४४।।

वन्दनादिति वक्ष्यामि नामान्येषां पृथक्-पृथक्।
रवेः करसहस्रं तु शीतवर्षोष्मभिस्तपन्।।४५।।

इन सबके प्रणाम तथा स्तुतियोग्य नाम पृथक्-पृथक् हैं। रवि के करसहस्र शीत, वर्षा तथा ऊष्म के साथ ताप प्रदान करते हैं।।४५।।

तासां चतुःशतं नाड्यो वर्षन्तेऽचिन्त्यमूर्त्तयः।
वन्दनाश्चैव मेध्याश्च कातनाः केतनास्तथा।।४६।।

तदनन्तर उनकी ४०० अचिन्त्य मूर्त्ति नाड़ियाँ वर्षण करती हैं। वन्दनीय, मेध्य (पवित्र), कातना एवं केतना—ये हैं सूर्यरश्मियों के नाम।।४६।।

अमृता नामतः सर्वाः रश्मयो वृष्टिसर्जनाः।
हिमावहास्तु त्रिंशद्वै ताभ्योऽन्या रश्मयः स्मृताः।।४७।।

अमृतरूप रश्मिसमूह वृष्टि के उत्पादक हैं। उनमें से ३० हिमवाहक एवं अन्य रश्मि के नाम से अभिहित हैं।।४७।।

चन्द्रास्ता नामतः सर्वाः पीताभास्तु गभस्तयः।
रश्मयो मेघपौष्ण्यश्च ह्लादिन्यो हिमसर्जनाः।।४८।।

चन्द्र नामक जो रश्मियाँ हैं, वे सभी पीताभ (पीत वर्ण कान्ति वाली) हैं। मेघ तथा पूषा-सम्बन्धित रश्मियाँ ह्लादकारी (आनन्ददायक) तथा हिम की उत्पादिका हैं।।४८।।

समं बिभ्रति ताः सर्वान् मनुष्यान् देवताः पितॄन्।
मनुष्यानोषधीभिस्तु स्वधया च पितॄनपि।।४९।।
अमृतेन सुरान् सर्वांस्त्रयस्त्रिभिरतर्पयेत्।
वसन्ते चैव ग्रीष्मे च शतैः प्रतपति त्रिभिः।।५०।।

ये सब मनुष्य, देवता तथा पितरों का पोषण करती हैं। औषधि द्वारा मनुष्यों का तथा स्वधा (पिण्डादि) द्वारा पितरों का तथा अमृत द्वारा समस्त देवताओं का तृप्ति-विधान करती हैं। मनुष्य, पितर तथा देवता यथाक्रमेण औषधि, स्वधा तथा अमृत से तृप्त होते हैं। वसन्त तथा ग्रीष्म में ३०० किरणों द्वारा सूर्य ताप प्रदान करते हैं।।४९-५०।।

शरत्सु चैव वर्षासु चतुर्भिः सम्प्रवर्षति।
हेमन्ते शिशिरे चैव हिमोत्सर्गं त्रिभिः पुनः।।५१।।

ओषधीषु बलं धत्ते स्वधायां च स्वधी पुनः ।
सूर्योऽमृतावमृते च त्रयं त्रिषु नियच्छति ।।५२।।

शरत् काल तथा वर्षाकाल में सूर्य चार रश्मियों से वर्षण करते हैं। हेमन्त में तथा शिशिर में पुनः तीन रश्मियों से हिमयोग करते हैं। सूर्य औषधियों में (लता-गुल्म-शस्यादि में), स्वधा तथा अमृत में बल देते हैं। तीन में (मनुष्य-देवता तथा पितरों में) तीन वस्तु (यथाक्रम औषधि-अमृत तथा स्वधा) की स्थापना करते हैं।।५१-५२।।

कालोऽग्निर्ब्रह्मणश्चैव द्वादशात्मा प्रजापतिः ।
तपत्येष सुरश्रेष्ठस्त्रींल्लोकान् सचराचरान् ।।५३।।
एष ब्रह्मा च विष्णुश्च एष एव महेश्वरः ।
ऋचो यजूंषि सामानि ह्येष एव न संशयः ।।५४।।

काल में ब्रह्मा के द्वादशात्मा प्रजापति स्थावर-जंगम त्रिभुवन को ताप प्रदान करते हैं। सूर्य ही ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर हैं। ये ही निःसन्दिग्ध रूप से ऋक्, यजुः तथा साम वेदरूप हैं।।५३-५४।।

उद्यन् सन्दीप्यते ऋग्भिर्मध्याह्ने यजुभिस्ततः ।
सामभिश्चापि सायाह्ने दीप्यते भास्करः क्रमात् ।।५५।।
स एष तेजसो राशिर्दीप्तिमान् सार्वलौकिकः ।
पार्श्वेनोर्ध्वमधश्चैव प्रपतत्येष सर्वतः ।।५६।।

ये उदयकाल में ऋक् के द्वारा सन्दीप्त होते हैं, मध्याह्न में यजु के द्वारा तथा सायाह्न में साम द्वारा दीप्त होते हैं अर्थात् प्रातःकाल में ऋक् मन्त्र से, मध्याह्न काल में यजुर्मन्त्र से तथा सन्ध्या में साम मन्त्र से पूजित होते हैं। यह तेजोराशि, दीप्तिमान तथा सार्वलौकिक है। ये ही पार्श्व, ऊर्ध्व या अधोदेश को ताप प्रदान करते हैं।।५५-५६।।

यथा प्रभाकरो दीपो गृहमध्ये व्यवस्थितः ।
पार्श्वेनोर्ध्वमधश्चैव तमो नाशयते समम् ।।५७।।
तद्वत् सहस्रकिरणो ग्रहराजो जगत्पतिः ।
त्रीणि रश्मिशतान्यस्य भूर्लोकं द्योतयन्ति च ।।५८।।

जैसे प्रभायुक्त दीपक गृह में स्थित होकर पार्श्व-ऊर्ध्व तथा अधः के अन्धकार को समान रूप से नष्ट करता है, वैसे ही सहस्र किरणयुक्त ग्रहराज, जगत्पति सूर्य सर्वत्र ताप प्रदान करते हैं एवं इनकी तीन सौ रश्मियाँ भू-लोक को उद्भासित—द्योतित करती हैं।।५७-५८।।

चत्वारि तु पुनस्तिर्यक् त्रीणि चोर्ध्वं सुरालयम् ।
इत्येतन्मण्डलं शुक्लं भास्करं लोकसंज्ञितम् ।।५९।।

नक्षत्र-ग्रह-सोमानां प्रतिष्ठा योनिरेव च।
चन्द्राद्याश्च ग्रहाः सर्वे विज्ञेयाः सूर्यसम्भवाः ॥६०॥

चार सौ रश्मियाँ तिर्यक् रूप से पितृलोक को तथा तीन सौ रश्मियाँ ऊर्ध्व रूप में स्वर्गलोक को प्रकाशित करती हैं। यह मण्डल शुक्ल है तथा भास्कर लोक कहा जाता है। सूर्य ही नक्षत्र, ग्रह तथा सोम की प्रतिष्ठा का कारण है। चन्द्रादि सभी ग्रह सूर्य से ही उत्पन्न हैं।।५९-६०।।

रवेः करसहस्रं यत् प्राङ्मया समुदाहृतम्।
तेषां श्रेष्ठाः शुभाः सप्तरश्मयो ग्रहयोनयः ॥६१॥
सुषुम्नो हरिकेशश्च विश्वकर्मा तथैव च।
विश्वव्यचाः पुनश्चान्यः सौम्यश्च सुरतः स्मृतः ॥६२॥
उदन्वसुः पुनश्चान्यः सुरादन्यः प्रकीर्त्तितः ॥६३॥

मैंने जो पूर्व में सूर्य के सहस्र किरणों की बात कही है, उनमें से श्रेष्ठ मंगलकारी सात रश्मियाँ ग्रहयोनि हैं अर्थात् ग्रहों की उत्पत्ति में अलग से सुषुम्न, हरिकेश, विश्व-कर्मा, विश्वव्यचा, सौम्य (बुध ग्रह), सुव्रत तथा उदन्वसु देवता कहे गये हैं।।६१-६३।।

सुषुम्नः सूर्यरश्मिर्यः क्षीणं शशिनमेधते।
अमृतं स्वर्धमानेन सम्भृत्यैकेन रश्मिना ॥६४॥

सुषुम्न नामक क्षीण सूर्यरश्मि क्षीण चन्द्र को वर्द्धित करती है एवं एक रश्मि द्वारा मिलित होकर अमृत का वर्द्धन करती है।।६४।।

आप्यायनाच्च देवानामादित्यश्चन्द्रतिग्मतः।
शुक्लत्वामृतशीतत्त्वे दीप्तौ चाह्लादनेऽपि च ॥६५॥
धातुश्च दीप्तिबह्व्यस्तेनासौ चन्द्र उच्यते।
संयद्वसुस्तु यो रश्मिर्योनिः सोऽङ्गारकस्य तु ॥६६॥

आदित्य के चन्द्रकिरणों से देवगण आप्यायन करते हैं। शुक्लत्व, अमृतत्व, शीतत्व, दीप्ति तथा आह्लाददान (आनन्ददान), दीप्ति प्रभृति अनेक अर्थ के वाचक होने से इसे चन्द्र कहा जाता है। संयद्वसु नामक जो योनि है, वह अङ्गारक (मङ्गल) की योनि है।।६५-६६।।

दक्षिणे विश्वकर्मा तु रश्मिराप्यायते बुधम्।
उदावसुस्तु यो रश्मिर्योनिः स तु बृहस्पतेः ॥६७॥

दक्षिण दिशा की विश्वकर्मा नामक रश्मि बुध को आप्यायित करती है। उदावसु नामक रश्मि बृहस्पति की योनि (कारण) है।।६७।।

विश्वव्यचास्तु यः पश्चाच्छुक्रयोनिः स वै स्मृतः ।
शनैश्चैवं पुनश्चापि रश्मिराप्यायते स्वराट् ।।६८।।
हरिकेशस्तु यो रश्मिस्तेजो नक्षत्रयोगिनः ।
न क्षीयन्ते यतस्तानि तेषां नक्षत्रता ततः ।।६९।।
क्षत्रं वीर्यं बलं तेज इति चैकार्थवाचकम् ।
सूर्यः क्षत्रं तथादत्ते तेषां नक्षत्रता स्मृता ।।७०।।

विश्वव्यचा नामक जो रश्मि पीछे रहती है, वह शुक्र की उत्पत्ति का कारण है। सूर्य स्वयं शनैश्चर को आप्यायित करते हैं। हरिकेश नामक जो रश्मि है, वह नक्षत्रयोगियों का तेज है; क्योंकि वे क्षय-प्राप्त नहीं होते, अतः नक्षत्र कहे गये हैं। क्षत्र, वीर्य, बल, तेज— ये सभी एकार्थ-वाचक शब्द हैं। सूर्य का तेज ग्रहण करने के कारण ही इनको नक्षत्र कहा गया है।।६८-७०।।

अस्माद् लोकादमुं लोकं तीर्णानां सुकृतैर्गृहात् ।
तारणात्तारका ह्येषा शुक्लत्वाच्चैव तारकाः ।।७१।।
सूर्यस्यैवापरो रश्मिर्नाम्ना वृष्टिपतिः स्मृतः ।
समत्वं प्रतिबद्धस्तु स जीवयति वै जगत् ।।७२।।

इति श्रीसाम्बपुराणे सर्वव्यापित्वनिरूपणं नाम सप्तमोऽध्यायः

●

इस पृथ्वीलोक से लेकर उस लोक में (स्वर्गादि में) सुकृति के फल से जो उत्तीर्ण हैं, उन्हें तारण कराने के लिये तारका नाम से अभिहित हैं। शुक्लत्व के कारण भी इन्हें तारका कहते हैं। सूर्यदेव की ही अन्य रश्मि वृष्टिपति नाम से स्मृत है। सूर्य के साथ युक्त होने से समान रूप से रक्षा करके ये जगत् को जीवित करते हैं।।७१-७२।।

श्रीसाम्बपुराण का सर्वव्यापित्व-निरूपण नामक सप्तम अध्याय समाप्त

●

अष्टमोऽध्यायः

(सूर्यनिगमनम्)

नारद उवाच

आदित्यमूलमखिलं त्रैलोक्यं यदुनन्दन।
भवत्यस्माज्जगत् सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥१॥
रुद्रोपेन्द्रमहेन्द्राणां विप्रेन्द्रत्रिदिवौकसाम्।
महाद्युतिमतां चैव तेजो यत् सार्वलौकिकम् ॥२॥

नारद कहते हैं—हे यदुनन्दन (जाम्बवतीसुत साम्ब)! समस्त त्रिभुवन के मूल आदित्य हैं। देवता, असुर तथा मनुष्य के साथ समस्त जगत् सूर्य से ही उत्पन्न है। रुद्र, उपेन्द्र, महेन्द्र, ब्राह्मणश्रेष्ठ, स्वर्गवासी देवगण एवं महाद्युति-सम्पन्न सबका जो सार्वलौकिक तेज है, वह सूर्य से ही उत्पन्न है।।१-२।।

सर्वात्मा सर्वलोकेशो देवदेवः प्रजापतिः ॥३॥

वे सर्वात्मा, समस्त लोक के ईश्वर, देवताओं के देवता तथा प्रजागण के पालक प्रजापति हैं।।३।।

सूर्य एव त्रिलोकस्य मूलं परमदैवतम्।
अग्नौ क्षिप्त्वाऽहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते।
आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजा ॥४॥

सूर्य त्रिलोक के मूल (प्रधान) परम दैवत हैं। अग्नि में प्रक्षिप्त आहुति सम्यक् रूपेण आदित्य को मिलती है। आदित्य से वृष्टि का उदय होता है। वृष्टि से अन्न तथा अन्न से प्रजागण उत्पन्न होते हैं।।४।।

सूर्यात् प्रसूयते सर्वं तत्र चैव प्रलीयते।
भावाभावौ हि लोकानामादित्यान्निःसृतौ पुरा ॥५॥
सततं ध्यायिनो ध्यानं मोक्षश्चाप्येष मोक्षिणाम्।
अत्र गच्छन्ति निर्वाणं जायन्तेऽस्मात् पुनः प्रजाः ॥६॥

सूर्य से ही सब कुछ उत्पन्न होता है और अन्त में वहीं विलीन हो जाता है। समस्त लोक की उत्पत्ति तथा विनाश आदित्य से ही होता है। इनका निरन्तर ध्यान से ध्यानकारीगण ध्यान तथा मोक्षाकांक्षीगण (सूर्य में) मोक्ष प्राप्त करते हैं। इसी से सबका निर्वाण होता है एवं पुनः सूर्य से ही प्रजागण उत्पन्न होते हैं।।५-६।।

क्षणा मुहूर्त्ता दिवसा निशाः पक्षास्तथैव च।
मासाः संवत्सराश्चैव ऋतवोऽथ युगानि च।।७।।
तदादित्यादृते ह्येषां कालसंख्या न विद्यते।
कालादृते न नियमो नाग्नेर्विहरणक्रिया।।८।।

क्षण, मुहूर्त्त, दिन, रात्रि, पक्ष, मास, संवत्सर, षड् ऋतु, चारो युग—इन सबकी आदित्य के अतिरिक्त कोई कालसंख्या नहीं हो सकती। काल के विना कोई नियम नहीं है। निर्दिष्ट काल में ही सभी अनुष्ठानादि सम्पन्न होते हैं। काल के अभाव में अग्नि की कोई विहरण क्रिया भी नहीं है अर्थात् निर्दिष्ट काल में ही अग्नि में आहुति प्रदान की जाती है।।७-८।।

ऋतूनामभिभावश्च पुष्पं मूलं फलं कुतः।
कुतश्च सस्यनिष्पत्तिः तृणौषधिगणाः कुतः।।९।।
अभावो व्यवहाराणां जन्तूनां दिवि चेह च।
जगत्प्रतानमृते भास्करे वारितस्करम्।।१०।।

ऋतुओं का आविर्भाव हुये विना फूल, मूल, फल कैसे उत्पन्न होंगे? कैसे शस्यादि तृण, औषधिगण उत्पन्न होंगे? उसके अभाव से जगत् में प्राणीगण तथा स्वर्ग लोक में देवगण के खाद्य का अभाव परिलक्षित होने लगेगा। जगत् को ताप न देकर भास्कर अपनी रश्मि संहत कर लेंगे। (जब रश्मियाँ संहत हो जायेंगी तब पानी वाष्प होकर कैसे मेघरूप में सञ्चित होगा)।।९-१०।।

नावृष्ट्या तपते सूर्यो नावृष्ट्या परितुष्यति।
नावृष्ट्या परिषिध्यन्ते वारिणा दीयते रविः।।११।।

वृष्टिपात के विना सूर्य ताप नहीं देते, वृष्टिपात के विना उनकी तुष्टि नहीं होती, वृष्टिपात के विना उनकी सिद्धि नहीं होती, जल के द्वारा ही रवि दान करते हैं।।११।।

वसन्ते कपिलः सूर्यो ग्रीष्मकाञ्चनसन्निभः।
श्वेतो वर्षासु वर्णेन पाण्डुः शरदि भास्करः।।१२।।
हेमन्ते ताम्रवर्णस्तु शिशिरे लोहितो रविः।
इति वर्णा समाख्याताः सूर्यस्य ऋतुसम्भवाः।
ऋतुस्वभावजैर्वर्णैः सूर्यः क्षेमे सुभिक्षकृत्।।१३।।

इति श्रीसाम्बपुराणे सूर्यनिगमनं नामाऽष्टमोऽध्यायः

●

वसन्तकाल में सूर्य कपिलवर्ण, ग्रीष्म में स्वर्णतुल्य वर्ण, वर्षा में श्वेतवर्ण, शरत् काल में पाण्डुवर्ण धारण करते हैं। हेमन्त काल में सूर्य ताम्रवर्ण एवं शिशिर में लोहित-वर्ण हो जाते हैं। इस प्रकार सूर्य की प्रति ऋतु में वर्णकला का वर्णन किया गया। प्रति ऋतु में उन-उन वर्ण से रञ्जित होकर सूर्य शोभित होते हैं। यदि ऋतुओं का आविर्भाव न हो तब सूर्य अपने गृह में भिक्षुक के समान श्रीहीन प्रतीत होते हैं।।१२-१३।।

श्रीसाम्बपुराण में सूर्य-निगमन नामक अष्टम अध्याय समाप्त

●

नवमोऽध्यायः

(सूर्यनिगमनम्)

नारद उवाच

अथादित्यस्य नामानि सामान्यानीह द्वादश।
द्वादशापि पृथक्त्वेन तानि वक्ष्याम्यशेषतः ॥१॥

नारद कहते हैं—अब आदित्य के सामान्य द्वादश नाम कहता हूँ; पृथक् से भी इनके द्वादश नाम कहे गये हैं, अतः उन सबको विस्तृत रूपेण कहता हूँ।।१।।

आदित्यः सविता सूर्यो मिहिरोऽर्कः प्रभाकरः।
मार्त्तण्डो भास्करो भानुश्चित्रभानुर्दिवाकरः ॥२॥
रविर्द्वादशकश्चैव ज्ञेयः सामान्यनामभिः।
विष्णुर्धाता भगः पूषा मित्रेन्द्रो वरुणोर्यमाः ॥३॥
विवस्वानंशुमांस्त्वष्टा पर्जन्यो द्वादशः स्मृतः।
इत्येते द्वादशादित्याः पृथक्त्वेन प्रकीर्त्तिताः ॥४॥

आदित्य, सविता, सूर्य, मिहिर, अर्क, प्रभाकर, मार्त्तण्ड, भास्कर, भानु, चित्रभानु, दिवाकर तथा रवि—ये १२ सूर्य के साधारण नाम हैं। इसके अतिरिक्त विष्णु, धाता, भग, पूषा, मित्र, इन्द्र, वरुण, यम, विवस्वान्, अंशुमान्, त्वष्टा तथा पर्जन्य—ये १२ भी अलग से आदित्य के नाम कहे गये हैं।।२-४।।

उत्तिष्ठन्ति सदा ह्येते मासैर्द्वादशभिः क्रमात्।
विष्णुस्तपति चैत्रे तु वैशाखे चार्यमा तथा ॥५॥
विवस्वान् ज्येष्ठमासे तु आषाढ़े चांशुमान् स्मृतः।
पर्जन्यः श्रावणे मासे वरुणः प्रोष्ठसंज्ञके ॥६॥
इन्द्राख्यश्चाश्विने मासे धाता तपति कार्त्तिके।
मार्गशीर्षे तपेन्मित्रः पौषे पूषा दिवाकरः ॥७॥
माघे भगस्तु विज्ञेयस्त्वष्टा तपति फाल्गुने।
एतैर्द्वादशभिर्विष्णुरश्मिभिर्दीप्यते सदा ॥८॥

ये क्रमानुसार सर्वदा द्वादश मास में प्रकट होते हैं। चैत्र मास में विष्णु नामक सूर्य ताप प्रदान करते हैं। वैशाख में अर्यमा, ज्येष्ठ में विवस्वान्, आषाढ़ में अंशुमान्, श्रावण में पर्जन्य, भाद्र में वरुण, आश्विन में इन्द्र, कार्तिक में धाता, अग्रहायण में मित्र ताप प्रदान

करते हैं। पौष मास में पूषा, माघ में भग तथा फाल्गुन में त्वष्टा नामक सूर्य ताप देते हैं। यह द्वादशरूप विष्णुरश्मि द्वारा सदा दीप्त होते हैं।।५-८।।

दीप्यते गोसहस्रेण शतैश्च त्रिभिरर्यमा।
द्विसप्तकैर्विवस्वांस्तु ह्यंशुमान् पञ्चकैस्त्रिभिः ।।९।।
विवस्वानिव पर्जन्यो वरुणश्चार्यमा तथा।
इन्द्रस्तु द्विगुणैः षड्भिर्धातैकादशभिः शतैः ।।१०।।
मित्रस्तु दशभिः सार्द्धैः पूषा तु दशभिः शतैः।
मित्रवच्च भगस्त्वष्टा सहस्रेण शतेन च ।।११।।

३०० किरणों द्वारा अर्यमा दीप्त होते हैं। १४०० किरणों से विवस्वान् तथा १५०० किरणों से अंशुमान दीप्त होते हैं। विवस्वान् के ही समान (१४०० किरणों से) पर्जन्य, वरुण तथा अर्यमा दीप्त होते हैं। किन्तु इन्द्र १२०० किरणों से, धाता ११०० किरणों से, मित्र १५०० किरणों से एवं एक हजार किरणों से ही पूषा दीप्त होते हैं। भग १५०० किरणों से तथा सहस्र-शत किरणों से त्वष्टा दीप्त होते हैं।।९-११।।

उत्तरोपक्रमेऽर्कस्य वर्धन्ते रश्मयस्तथा।
दक्षिणोपक्रमे तस्य ह्रसन्ते सूर्यरश्मयः ।।१२।।
एवं रश्मिसहस्रं तत् सूर्यलोकार्थसाधकम्।
भिद्यते ऋतु-मासाद्यैः सहस्रं बहुधा पुनः ।।१३।।
एवं नाम्ना चतुर्विंशतिरेषा च प्रकीर्त्तिता।
विस्तरेण सहस्रं तु पुनरन्यत् प्रकीर्त्तितम् ।।१४।।

उत्तरायण में सूर्य की रश्मि वृद्धि को प्राप्त होती है एवं दक्षिणायन में उसका ह्रास होता है। इस प्रकार की सहस्र रश्मि से सूर्यलोक के प्रयोजन-साधक ऋतु-मासप्रभृति में भेद होता है और भी बहुरूप सहस्र भेद प्राप्त होते हैं। इस प्रकार चौबीस नाम सूर्य के कहे गये हैं। विस्तृत रूप से और भी १००० नाम कहे गये हैं।।१२-१४।।

अथ चैषां पुनर्नाम्नां धात्वर्थनिगमं शृणु।
दिव्यानां पार्थिवानां च वंशानामिह सर्वशः ।।१५।।
अदनान्नित्यमादित्यस्तपसां तेजसामयम्।
अदितेर्वा सुतो यस्मान्निगमज्ञैरुदाहृतः ।।१६।।
अपत्यप्रत्ययात्तस्मात् सूर्यस्यादित्यता स्मृता ।।१७।।

अब इन नामों की धातु तथा अर्थगत व्युत्पत्ति को सुनो। दिव्य तथा पार्थिव नामों को सर्वतोभावेन (अर्थयुक्त) सुनो। ये तपस्या तथा तेज का ग्रहण करने वाले (भक्षणकारी) हैं; अतः आदित्य हैं। अथवा देवमाता अदिति के पुत्र होने के कारण वेदविद् इन्हें आदित्य

कहते हैं। अदिति के पुत्र इस अर्थ में अपत्यार्थ 'ष्यय' प्रत्यय के योग से इनका नाम आदित्य कहा गया है।।१५-१७।।

स्रवन्ति स्यन्दनार्थे च धातुरेषा निपात्यते।
स्रवणात्तेजसोऽद्धा च तेनासौ सविता स्मृतः ॥१८॥
शश्वच्च जायते यस्माच्छश्वत् संतिष्ठते यतः।
तस्मात् सर्वैः स्मृतः सूर्यो निगमज्ञैर्मनीषिभिः ॥१९॥

प्रसव करना तथा क्षरित होना अर्थ में (सू) धातु निपातन से एवं साक्षात् तेज के क्षरणार्थ इन्हें सविता कहते हैं। जिससे निरन्तर प्राणिगण उत्पन्न होते हैं और जिनके कारण जीवगण अवस्थान करते हैं; अतः सभी वेदज्ञों ने इन्हें सूर्य कहा है।।१८-१९।।

नुदिति प्रेरणे धातुर्भादीप्तौ चैव कीर्त्तितः।
नोदनात् कारणादासां भानुरित्यभिधीयते ॥२०॥

'नु' शब्द के प्रेरण एवं 'भा' धातु के 'दीप्ति पाना' अर्थ से, रश्मिसमूह का प्रेरण तथा दीप्ति प्राप्त करने के कारण इन्हें भानु कहा गया है।।२०।।

चित्रा हि भानवो यस्य वर्णैः शुक्लादिभिर्यतः।
भानवो रश्मयः प्रोक्ताश्चित्रभानुस्ततः स्मृतः ॥२१॥
भास्वतस्तु करा ह्यस्य भासोऽत्यर्थं करोति च।
भासृ दीप्तौ स्मृतो धातुर्भास्करस्तेन स स्मृतः ॥२२॥

चित्र अर्थात् जिनकी शुक्लादि अनेक वर्ण की रश्मियाँ हैं, (यहाँ भानु शब्द से रश्मि का तात्पर्य है) इसलिये उन्हें चित्रभानु कहते हैं। जिनके किरणसमूह उज्ज्वल हैं, जो अत्यन्त दीप्ति प्रदान करते हैं। 'भा' धातु का दीप्ति अर्थ है; अतः इन्हें भास्कर शब्द से कहा जाता।।२१-२२।।

भा दीप्तावित्ययं धातुश्चोपसर्गेण योजितः।
भास्करोति प्रकर्षेण यस्मात्तस्मात् प्रभाकरः ॥२३॥
दिवेति चाव्ययं लिङ्गं पठ्यते सूरिभिः सदा।
दिवा करोति यस्माच्च तस्मादेव दिवाकरः ॥२४॥

'भा' धातु दीप्ति अर्थ में उपसर्ग के साथ युक्त है। प्रकर्षरूपेण जो दीप्ति दान करते हैं, अतः सूर्य का नाम प्रभाकर नाम है। दिवा शब्द को पण्डितगण अव्यय लिङ्ग में कहते है; क्योंकि दिन करते हैं, इसलिये वे दिवाकर हैं।।२३-२४।।

अवति त्रीनिमाल्लोकान् यस्मादेष परिभ्रमन्।
अवेति रक्षणे धातुरवनात् सविता स्मृतः ॥२५॥

क्योंकि यह सूर्य परिभ्रमण करके लोकत्रय की रक्षा करते हैं। रक्षणार्थ 'अव' धातु होता है। रक्षा करने के कारण इनको सविता कहते हैं।।२५।।

देवैरभ्यर्चितो यस्मात्तस्मादर्कः स उच्यते।
अण्डे द्विधा कृते ह्यार्तं दृष्ट्वा स्नेहात्पिताऽब्रवीत्।
आर्त्तो मा भव देवेश मार्त्तण्डस्तेन स स्मृतः ॥२६॥

देवगण उनकी अर्चना करते हैं, तभी वे अर्क हैं। अण्ड को दो भाग में विभक्त होने पर उन्हें आर्त्त देखकर पिता ने स्नेह से कहा—हे देवेश! तुम आर्त्त न हो। तभी उनको मार्त्तण्ड कहा जाने लगा।।२६।।

यस्माद् धारयते लोकान् भूमिं तेषां ददाति च।
डुधाञ् धारणे धातुस्तस्माद् धाता स उच्यते ॥२७॥

क्योंकि लोकों को धारण करते हैं तथा उन्हें भूमिदान करते हैं। धा धातु (डुधाञ्) का अर्थ है—धारण करना। तभी उन्हें धाता कहा जाता है।।२७।।

अचि प्रत्ययपूर्वस्य ऋधातोर्यनिपात्यते।
गतौ यस्मात् परो नास्ति तेन सूर्योऽर्यमा स्मृतः ॥२८॥

ऋ धातु के गमनार्थक य (ऋ + मन्—कनिन्) प्रत्यय के अर्थ में, जो गमन करते हैं अथवा जिनसे श्रेष्ठ कोई नहीं है। इस अर्थ में सूर्य को अर्यमा कहा गया है।।२८।।

स्नेहेन सर्वभूतानि यस्मात् त्रायति भास्करः।
ञिमिधा स्नेहने धातुस्तस्मान्मित्रः स उच्यते ॥२९॥

भास्कर स्नेहवशात् सभी प्राणियों की विपत्ति से रक्षा, त्राण करते हैं। मिद् धातु का अर्थ है—स्नेह, इसलिये इन्हें मित्र कहा गया है।।२९।।

वरान् विवृण्वतो देवान् वरदो हि वरार्थिनाम्।
धातुर्वृङ् वरणे प्रोक्तस्तेनासौ वरुणः स्मृतः ॥३०॥

वरप्रार्थी देवगण सर्वदा जिनसे वर माँगते रहते हैं, जो उनके लिये वरद हैं, वृ (वृञ्) धातु का अर्थ है—वरण। इसलिये ये वरुण कहे गये हैं।।३०।।

ऐश्वर्यं परमं यस्य पन्नगाश्च सुरासुराः।
ईदिश्च परमैश्वर्ये धातुरिन्द्रस्ततस्तु सः ॥३१॥

सभी देवता, असुर तथा पन्नगगण जिनके परम ऐश्वर्य हैं, यहाँ इदि धातु का ऐश्वर्य अर्थ है, अत: ये इन्द्र नाम से ख्यात हैं।।३१।।

शक्तोऽयं जगतः कर्त्तुं सर्गानुग्रहसंग्रहान्।
शक्लृ शक्तौ स्मृतो धातुः शक्रस्तेन स उच्यते ॥३२॥

ये जगत् की सृष्टि-स्थिति-विनाश करने में सक्षम हैं, शक् धातु का अर्थ है—समर्थ; अतः इन्हें शक्र कहा गया है।।३२।।

वसत्यदृष्टः सर्वेषु भूतेष्वन्तर्हितो रविः ।
धातुर्वस निवासेति विवस्वांस्तेन तूच्यते ॥३३॥

रवि सभी प्राणियों के अभ्यन्तर में अदृश्य तथा अन्तर्हित होकर वास करते हैं। 'वस' धातु का अर्थ है—निवास। इसलिये इनका नाम विवस्वान् कहा गया है।।३३।।

गर्जशब्दे प्रपूर्वस्य धातोः पर्जन्निपातके ।
गर्जत्यतीव यस्माच्च तस्मात् पर्जन्य उच्यते ॥३४॥

प्रपूर्वक गर्ज धातु के निपात से पर्जन शब्द निष्पन्न होता है, क्योंकि वे अत्यन्त गर्जन करते हैं, इसलिये इन्हें पर्जन्य नाम से कहा गया है।।३४।।

यस्मात् सिञ्चति लोकांस्त्रीन् भूर्भुवःस्वोऽमृतादिभिः ।
पुष पुष्टौ स्मृतो धातुस्तस्मात् पूषा स उच्यते ॥३५॥

अमृतादि द्वारा भू-भुवः तथा स्वः—इन लोकत्रय का सिञ्चन (पोषण) करते हैं। पुष धातु का अर्थ है—पुष्टि (पोषण करना); इस कारण उनको पूषा कहते हैं।।३५।।

अंशु व्याप्तावयं धातुः प्रियश्चापानुरागतः ।
सूर्यो व्याप्तं जगद् यस्मात्तस्मादंशुः स उच्यते ॥३६॥

अंशु धातु का अर्थ है—व्याप्ति एवं प्रीति तथा अनुरागवशात् सूर्य समस्त जगत् को व्याप्त करते हैं; अतः उनको अंशु कहा जाता है।।३६।।

सेव्यते यः सुरैः सर्वैः भाश्चैव भजते यतः ।
धातुर्भजेति सेवायां तेनासौ भग उच्यते ॥३७॥

सकल देवगण के द्वारा जो सेवित होते हैं, क्योंकि ये किरणसमूह का भजन करते हैं। भज धातु का अर्थ है—सेवा; अतः यह सूर्य भग नाम से उक्त हैं।।३७।।

तुष तुष्टौ स्मृतो धातुस्तस्मात् त्वष्टा निपात्यते ।
सृजत्येष प्रजास्तुष्टस्त्वष्टा तेन स उच्यते ॥३८॥

तुष धातु का अर्थ तुष्टि है। उससे त्वष्टा शब्द का निपातन होता है। ये तुष्ट होकर प्रजागण की सृष्टि करते हैं; अतः इन्हें त्वष्टा कहा गया है।।३८।।

यस्माद्विश्वमिदं सर्वमादित्येनेह रश्मिभिः ।
विष्लृ व्याप्तौ स्मृतो धातुस्तस्माद्विष्णुः स उच्यते ॥३९॥

आदित्य अपनी रश्मि द्वारा इस समस्त विश्व को व्याप्त करते हैं; विष्लृ धातु का व्याप्ति अर्थ है, तभी वे विष्णु हैं।।३९।।

बृहदस्य शरीरं यदप्रमेयं प्रमाणतः।
बृहद्विस्तीर्णमित्युक्तं ब्रह्मा तेन स उच्यते ॥४०॥

इनका बृहद् शरीर परिमाण में अप्रमेय है; बृहद् का अर्थ है—विस्तीर्ण। अत: वे ब्रह्मा कहे जाते हैं।।४०।।

पूज्यन्ते च सुरैः सर्वैर्महांश्चैव प्रमाणतः।
धातुर्मह तु पूजायां महादेवस्ततः स्मृतः ॥४१॥

समस्त देवताओं से जो पूजित होते हैं तथा प्रमाणत: जो महान् हैं। मह धातु का अर्थ है—पूजा; अत: वे महादेव कहे गये हैं।।४१।।

सन्निर्वहति यद्वीक्षेद् यदुग्रो यत् प्रतापवान्।
मांस-शोणित-मज्जादौ यत्ततो रुद्र उच्यते ॥४२॥

जो निर्वाह करते हैं, जो देखते हैं, जो उग्र तथा प्रतापवान हैं, जो मांस, रक्त, मज्जादि में वर्त्तमान हैं, इसलिये वे रुद्र कहे जाते हैं।।४२।।

यस्मात् सृष्ट्यनुगृह्णीते गृह्यते चैव यत् पुनः।
गुणात्मना तु त्रैकाले तस्मादेकः स उच्यते ॥४३॥

जो गुणात्मस्वरूप है (सत्त्व, रज, तमरूप); जो सृष्टि तथा अनुग्रह करते हैं, पुन: ग्रहण करते हैं (लय करते हैं); इसीलिये उनको त्रैकाल कहा जाता है।।४३।।

अयं परमयं नेति ब्रुवन्ते भिन्नदर्शनाः।
तामसान् मूढ़भावाच्च दृष्ट्वा तान् विब्रुवन्ति च ॥४४॥

भिन्न दर्शन वाले इन्हें 'हैं, नहीं हैं'—इत्यादि से कहते हैं। तामस तथा मूढ़ भाव वाले ऐसा कहते हैं।।४४।।

ब्रह्मणः कारणः केचित् केचिदाहुर्दिवाकरम्।
केचिद्भक्तिपरत्वेन त्वाहुः विष्णुं तथापरे ॥४५॥
कारणं तु स्मृता ह्येते नानार्थेषु सुरोत्तमाः।
एकः स तु पृथक्त्वेन स्वयम्भुरिति विश्रुतः ॥४६॥

कुछ लोग सूर्य को ही ब्रह्मा की उत्पत्ति में कारण मानते हैं, तो कुछ लोग भक्ति के वशीभूत होकर विष्णु को कारण मानते हैं। ये देवश्रेष्ठगण नाना अर्थ में 'कारण' कहे गये हैं। वे इन सबसे पृथक् रूप से अकेले ही स्वयम्भु हैं।।४५-४६।।

यथानुरुध्यते वर्णैर्विचित्रैः स्फटिको मणिः।
तथा गुणवशात्तस्य स्वयम्भोरनुरञ्जनात् ॥४७॥

जैसे स्फटिक मणि विचित्र वर्णाभा से युक्त होती है, वैसे ही गुणवशत: अनुरञ्जन हेतु वे स्वयम्भु नाना रूप से युक्त होते हैं।।४७।।

एको भूत्वा महामेघः पृथक्त्वेनावतिष्ठते।
वर्णतो रूपतश्चैव यथा गुणवशानुगः ।।४८।।

जैसे महामेघ एक होने पर भी गुणवशात् वर्ण तथा रूपभेद से पृथक्-पृथक् रूप से अवस्थित रहता है, वैसे ही एक स्वयम्भु सूर्य गुणवशतः पृथक्-पृथक् रूप से प्रतीत होते हैं।।४८।।

नभसः पतितः तोयं याति तोयान्तरं यथा।
भूमे रसविशेषेण तथा गुणवशात्तु सः ।।४९।।

जैसे आकाश से पतित जल भूमि तथा विशेष रस के साथ युक्त होकर अन्न-जलरूप में प्रतीत होता है, वैसे ही वे गुणवशात् पृथक् रूप में प्रतीत होते हैं।।४९।।

यथा दिव्यविशेषाद्वा वायुरेकः पृथग् भवेत्।
दुर्गन्धो वा सुगन्धो वा तथा गुणवशात्तु सः ।।५०।।

जैसे आकाश में अविशेष एक वायु दुर्गन्ध अथवा सुगन्धभेद से पृथक् होती है, वैसे ही गुणवशात् वह सूर्य पृथक् रूपेण प्रतिभात होता है।।५०।।

यथा वा गार्हपत्योऽग्निरन्यत्संज्ञान्तरं व्रजेत्।
दक्षिणाहवनीयादि ब्रह्मादिषु तथा ह्यसौ ।।५१।।

जैसे एक गार्हपत्य अग्नि दक्षिण, आहवानीयादि भेद से पृथक् संज्ञायुक्त हो जाती है, वैसे ही एक सूर्य ब्रह्मादि विविध नाम से अभिहित होते हैं।।५१।।

एकत्वे च पृथक्त्वे च प्रोक्तमेतन्निदर्शनम्।
तस्माद्भक्तिः परा कार्या देवे ह्यस्मिन् दिवाकरे ।।५२।।

एकत्व तथा पृथक्त्व का यही कारण है। अतएव दिवाकर की परम भक्ति करना ही उचित है।।५२।।

एष ब्रह्मा च विष्णुश्च एष एव महेश्वरः।
एष वेदाश्च यज्ञाश्च स्वर्गश्चैव न संशयः ।।५३।।

ये ही ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर हैं। ये ही समस्त वेद, यज्ञ तथा स्वर्गलोक हैं, इसमें कोई संदेह नहीं है।।५३।।

सूर्यव्याप्तमिदं विश्वं जगत् स्थावरजङ्गमम्।
अद्यते पीयते चैव अन्नपानात्मको रविः ।।५४।।

स्थावर-जङ्गमात्मक यह समस्त विश्व सूर्य से ही व्याप्त है। ये ही भक्षित तथा पीत होते हैं। अन्नपानात्मक रवि यही हैं।।५४।।

सर्वत्र सविता देवस्तनूभिर्नामभिश्च सः।
नृक्षेषु चातिथौ वायौ व्योम्नि चाग्नौ च सर्वशः।।५५।।

नक्षत्र, अतिथि, वायु, आकाश तथा अग्नि सर्वत्र—यह सविता देव विशेष तनु तथा विभिन्न नाम से विद्यमान हैं।।५५।।

एवंविधो ह्ययं सूर्यः सदा पूज्यो विजानता।
आदित्यं वेत्ति यत्नेन स तस्मिन्नेव लीयते।।५६।।

इस प्रकार से विज्ञजन के लिये सूर्य सदा पूज्य हैं। इन आदित्य को जो जानते हैं, वे इन्हीं में लीन हो जाते हैं।।५६।।

अप्येकं वेत्ति यो नाम धात्वर्थनिगमैः रवेः।
स रागैर्वर्जितः सर्वैः सद्यः पापात् प्रमुच्यते।।५७।।
नहि पापकृतः साम्ब भक्तिर्भवति भास्करे।
तस्मात्त्वं परया भक्त्या प्रपद्यस्व दिवाकरम्।।५८।।

इति श्रीसाम्बपुराणे सूर्य-निगमनं नाम नवमोऽध्यायः

●

रवि के नाम-धात्वर्थ तथा निगमों द्वारा जो एक सूर्य को भी जानते हैं, वे सभी रोगों से आरोग्य प्राप्त करके सद्यः पापमुक्त हो जाते हैं। हे साम्ब! पापकारी लोग कभी भी भास्कर की भक्ति नहीं पाते। अतएव तुम परम भक्ति के साथ दिवाकर के शरणागत हो जाओ।।५७-५८।।

श्रीसाम्ब पुराणान्तर्गत सूर्य के विभिन्न नामों का
अर्थ-निरूपण नामक नवम अध्याय समाप्त

●

दशमोऽध्यायः

(राज्ञी-निक्षुभोत्पत्तिः)

वशिष्ठ उवाच

एवं श्रुत्वा तु कात्स्न्येन दृष्टो जाम्बवतीसुतः ।
जातकौतूहलो भूयः परिपप्रच्छ नारदम् ॥१॥

वशिष्ठ देव कहते हैं—ऐसा समुदय वृत्तान्त सुनकर आनन्दित होकर जाम्बवती-पुत्र साम्ब ने कौतूहल-वशात् नारद से पूछा।।१।।

साम्ब उवाच

अहो सूर्यस्य माहात्म्यं वर्णितं हर्षवर्धनम् ।
येन मे भक्तिरुत्पन्ना परे देवे विभावसौ ॥२॥
अतो राज्ञीं महाभागां निक्षुभां च महामुने ।
दण्डिनं पिङ्गलादींश्च एवमेतद् वदस्व मे ॥३॥

साम्ब कहते हैं—अहो! आनन्दवर्धक सूर्य के माहात्म्य का आपने वर्णन किया; जिससे परमदेव विभावसु में मेरी भक्ति उत्पन्न हो गई है। अत: हे महामुने! महाभाग्यवती राज्ञी तथा निक्षुभा, दण्डी तथा पिङ्गलादि की कथा भी मुझसे कहिये।।२-३।।

नारद उवाच

प्रागुक्तेऽर्कस्य द्वे भार्ये ते राज्ञीनिक्षुभे शुभे ।
तयोश्च राज्ञी द्यौर्ज्ञेया निक्षुभा पृथिवी स्मृता ॥४॥
पौषस्य कृष्णसप्तम्यां द्यौरर्केणेह पूज्यते ।
माघस्य कृष्णसप्तम्यां मह्या सह भवेद्रविः ॥५॥

नारद कहते हैं—पहले जो सूर्य की दो पत्नियों की बातें कही हैं, (मंगलमयी राज्ञी तथा निक्षुभा) इनमें राज्ञी है—स्वर्ग तथा निक्षुभा हैं—पृथिवी। पौष मास के कृष्णपक्ष की सप्तमी को राज्ञी का पूजन अर्क (सूर्य) के साथ होता है एवं माघ मास की कृष्ण सप्तमी को निक्षुभा के साथ रवि पूजित होते हैं।।४-५।।

भूश्चादित्यश्च भगवान् गच्छतः सङ्गमं तदा ।
ऋतुस्नाता मही तत्र गर्भं गृह्णाति भास्करात् ॥६॥
द्यौर्जलं सूर्यतो गर्भं वर्षास्वृतुषु भूतले ।
तत्र लौकिकवार्त्तार्थं मही सस्यं प्रसूयते ॥७॥

तब पृथिवी एवं भगवान् आदित्य संगत होते हैं। ऋतुस्नाता पृथिवी वहाँ भास्कर से

गर्भ धारण करती हैं। स्वर्ग लोक में सूर्य से जलरूप गर्भ धारण करके वर्षा ऋतु में भूतल पर जल प्रदान करती है। लौकिक जीविकार्थ शस्य उत्पन्न होता है।।६-७।।

सस्योपयोगसंहृष्टा आहुतिं जुह्वति द्विजाः।
स्वाहाकारैः वषट्कारैर्यजन्ते पितृदेवताः ।।८।।

शस्यलाभ से प्रसन्न होकर ब्राह्मणगण यज्ञ में भूतल पर आहुति देते हैं। स्वाहाकार तथा वषट्कार द्वारा पितृदेवों का यजन करते हैं।।८।।

निक्षुभा कुरुते यस्मादोषधीभिः स्वधामृतैः।
मर्त्यान् पितृंश्च देवांश्च तेन भूर्निक्षुभा स्मृता ।।९।।

निक्षुभा औषधी ही स्वधा तथा अमृत द्वारा मनुष्य, पितृगण तथा देवताओं को स्वस्थ करती हैं, अतएव पृथिवी को निक्षुभा कहा गया है।।९।।

यथा राज्ञी द्विधा भूता यस्य चेयं सुता स्मृता।
अपत्यानि च यान्यस्यास्तानि वक्ष्यामि तच्छृणु ।।१०।।

जिस प्रकार से राज्ञी ने दो स्वरूप ग्रहण किया है और उन्हें कन्या कहा गया है और उनके जितने सन्तान हैं, उन सबको कहता हूँ; सुनो।।१०।।

मरीचिर्ब्रह्मणः पुत्रो मरीचेः कश्यपः सुतः।
तस्माद्धिरण्यकशिपुः प्रह्लादस्तस्य चात्मजः ।।११।।
प्रह्लादस्य सुतो नाम्ना विश्रुतोऽथ विरोचनः।
विरोचनस्य भगिनी सञ्ज्ञाया जननी तु सा ।।१२।।

मरीचि ब्रह्मा के पुत्र हैं। मरीचि के पुत्र हैं—कश्यप। उनके पुत्र थे—हिरण्यकशिपु एवं इनके पुत्र थे—प्रह्लाद। विरोचन नाम का विख्यात प्रह्लाद का पुत्र हुआ। विरोचन की बहन सञ्ज्ञा को उत्पन्न करने वाली हुई।।११-१२।।

हिरण्यकशिपोः पौत्री दितेः पुत्रस्य सा स्मृता।
सा विश्वकर्मणः पत्नी प्रह्लादी चोच्यते बुधैः ।।१३।।

हिरण्यकश्यप की पौत्री दिति विश्वकर्मा की पत्नी थी। उन्हें प्रह्लादी (प्रह्लाद की पुत्री) भी कहते हैं।।१३।।

अथ नाम्ना सुरूपेति मरीचेर्दुहिता शुभा।
पत्नी त्वङ्गिरसः सा तु जननी च बृहस्पतेः ।।१४।।
बृहस्पतेस्तु भगिनी भुवनी ब्रह्मवादिनी।
प्रभासस्य तु सा पत्नी वसूनामष्टमस्य तु ।।१५।।

तदनन्तर सुरूपा नामक मरीचि की जो कन्या थीं, वे ऋषि अंगिरस की पत्नी तथा बृहस्पति की जननी थीं। बृहस्पति की भगिनी ब्रह्मवादिनी भुवनी अष्टम वसु प्रभास की पत्नी हैं।।१४-१५।।

प्रसूता विश्वकर्माणं सर्वशिल्पवतां वरम्।
स वै नाम्ना पुनस्त्वष्टा त्रिदशानां स वर्धकिः ॥१६॥

उन्होंने सभी शिल्पियों में श्रेष्ठ विश्वकर्मा को जन्म किया। वे पुन: देवताओं के संवर्धक त्वष्टा भी कहे जाते हैं।।१६।।

देवाचार्यस्य तस्यायं दुहिता विश्वकर्मणः।
सरेणुरिति विख्याता त्रिषु लोकेषु भाविनी ॥१७॥

इन देवाचार्य विश्वकर्मा की कन्या सरेणु नाम से प्रख्यात है। ये त्रैलोक्य का उत्पादन करने वाली हैं।।१७।।

राज्ञी संज्ञा च सा स्त्री च प्रभा सैव तु भास्वतः।
तस्या एव सुता छाया निक्षुभा सा महीयसी ॥१८॥

राज्ञी, संज्ञा तथा प्रभा नाम से ख्यात ये सूर्यपत्नी हैं। उनकी कन्या है—छाया, जो पृथ्वीमयी निक्षुभा हैं।।१८।।

विशेष—पुराणों में छाया को सूर्यपत्नी कहा गया है—'छायामार्त्तण्ड सम्भूत'। छाया एवं सूर्यसम्भूत (पुत्र) शनि हैं। परन्तु यहाँ इस श्लोक के अनुसार छाया सूर्यपुत्री हैं। यह संदेहास्पद कथन है। हो सकता है कि यह पाठ की त्रुटि हो। इसका पाठान्तर है—तस्या एषा तु या छाया। विज्ञजन सत्यासत्य का निर्णय स्वयं करें।

सापि भार्या भगवतो मार्तण्डस्य महात्मनः।
साध्वी पतिव्रता देवी रूपयौवनशालिनी।
रन्तुं वै नररूपेण सूर्यो भवति वै पुरा ॥१९॥

वे भी भगवान् मार्तण्ड की भार्या हैं। वे साध्वी, पतिव्रता, रूप-यौवनशालिनी देवी हैं। पूर्व में सूर्य से रमण करने के लिये उन्होंने नररूप धारण किया था।।१९।।

आदित्यस्य तु यद्रूपं महता स्वेन तेजसा।
गात्रेषु प्रतिरूद्धेषु नातिकान्तमिवाभवत् ॥२०॥
अन्विष्यन्नेषु गात्रेषु भगं दृष्ट्वा पिताब्रवीत्।
आर्त्तत्त्वं भव मार्त्तण्ड मार्त्तण्डस्तेन न स्मृतः ॥२१॥

इति साम्बपुराणे राज्ञीनिक्षुभोत्पत्तिर्नाम दशमोऽध्यायः

●

निज के महान् तेज से आदित्य का जो रूप है, गात्र में प्रतिरुद्ध होकर वह अति कमनीय नहीं है। (उनके शरीर का) गात्र का अन्वेषण करके भग को देखकर (सूर्य को देखकर) पिता ने कहा है—मार्त्तण्ड! तुम आर्त्त न होओ, अत: उनका नाम मार्त्तण्ड पड़ा।।२०-२१।।

श्री साम्बपुराण में राज्ञी तथा निक्षुभा की उत्पत्ति-नामक दशम अध्याय समाप्त

●

एकादशोऽध्यायः

(सूर्यपुत्राणां विवरणम्)

नारद उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि प्रजास्तस्य महात्मनः ।
त्रीण्यपत्यानि संज्ञायां जनयामास वै रविः ।।१।।
द्वौ पुत्रौ तु महाभागौ कन्यां कालिन्दिमेव च ।
मनुर्वैवस्वतो ज्येष्ठः श्राद्धदेवः प्रजापतिः ।।२।।
ततो यमो यमी चैव यमलौ सम्बभूवतुः ।
तेजस्त्वभ्यधिकं तस्य नित्यमेव विवस्वतः ।।३।।

नारद कहते हैं—इसके पश्चात् महात्मा सूर्य के सन्तानों का वर्णन करता हूँ। रवि की संज्ञा नामक भार्या से तीन सन्तानें हुईं। महाभाग्यवान दो पुत्र हुये तथा कन्या कालिन्दी का जन्म हुआ। ज्येष्ठ पुत्र वैवस्वत मनु तथा द्वितीय हैं—प्रजापति श्राद्धदेव। तत्पश्चात् यमज (जुड़वा) सन्तान हुई—यम तथा यमी। इस प्रकार इन सूर्य का तेज नित्य अधिक होने लगा।।१-३।।

तेनातितापयामास त्रींल्लोकान् सचराचरान् ।
गोलाकारं तु तद्रूपं दृष्ट्वा संज्ञा विवस्वतः ।
असहन्ती तु तत्तेजः स्वां छायां प्रेष्य चाब्रवीत् ।।४।।

सूर्य का वह तेज तीनों लोकों को तापित करने लगा। सूर्य का वह गोलाकार रूप देखकर संज्ञा उसे सहन न कर सकी। उन्होंने अपनी छाया से कहा।।४।।

संज्ञोवाच

भव नारीस्वरूपा त्वं लक्षणैः सदृशी मम ।।५।।
एवमुक्त्वा समुत्तिष्ठत्तस्याः सदृशलक्षणा ।
महीमयी तु सा संज्ञा तस्या च्छाया समुत्थिता ।।६।।

संज्ञा कहती है—'तुम मेरे समान नारीरूपा हो जाओ'। तत्पश्चात् संज्ञा पृथिवीमयी होकर छायारूपेण उत्थित हो गयीं।।५-६।।

प्राञ्जलिः प्रणता भूत्वा छाया संज्ञामभाषत ।।७।।
यदर्थमहमुत्पन्ना तदाज्ञापय शोभने ।
सर्वमेव करिष्यामि यद्यपि स्यात्तु दुष्करम् ।।८।।

विनम्रतापूर्वक प्रणाम करके छाया ने संज्ञा से कहा कि मैं जिस कार्य के लिये उत्पन्न हुई हूँ, मुझसे कहें। आप जो भी कहेंगी, वह सब मैं करूँगी, यद्यपि यह बहुत ही दुष्कर है॥७-८॥

संज्ञोवाच

अहं यास्यामि भद्रं ते स्वयमेव गृहं विभुः।
निर्विकारेण वक्तव्यं त्वयेह भवने मम॥९॥
हेमौ च बालकौ ह्यङ्के कन्या च वरवर्णिनी।
सम्भाव्या नैव चाख्येयमिदं भगवतस्त्वया॥१०॥

संज्ञा कहती है—तुम्हारा मंगल हो, मैं अपने पिता के घर जाऊँगी। तुम मेरे रूप में स्थिर भाव से अवस्थान करो। इन दो बालकों की तथा वरवर्णिनी गोद की कन्या की तुम देखभाल करो। तुम भगवान् सूर्य से कभी भी यह सब नहीं कहना।।९-१०।।

नाख्यास्यामि मतं तस्मै गच्छ देवि! यथासुखम्।
इत्युक्ता छायया संज्ञा जगाम भवनं पितुः॥११॥
पितुः समीपे गत्वा तु व्रीड़िता सा तपस्विनी।
वर्षाणां तु सहस्त्रं वै वसमाना पितुर्गृहे॥१२॥

छाया ने उत्तर दिया—मैं तुम्हारी बात को सूर्यदेव से कभी प्रकट नहीं करूँगी। हे देवि! तुम यथासुख जाओ। छाया द्वारा ऐसा कहने पर संज्ञा पिता के घर चली गयीं; किन्तु पिता के पास जाकर लज्जित होकर सहस्त्र वर्ष-पर्यन्त पिता के घर में रहती हुई तपस्या करने लगीं।।११-१२।।

भर्त्तुः समीपं याहीति पित्रोक्ता सा पुनः पुनः।
आगच्छत् बड़वा भूत्वा त्यक्त्वा रूपं यशस्विनी॥१३॥

जब पिता ने बार-बार यह कहा कि स्वामी के पास जाओ, तब उन यशस्विनी ने अपना रूप छोड़कर घोड़ी का रूप धारण कर लिया।।१३।।

उत्तरांश्च कुरून् गत्वा तृणान्यथ चचार ह।
ततो गतायां संज्ञायां संज्ञायां वचनेन सा॥१४॥
संज्ञारूपं ततः कृत्वा छाया सूर्यमुपस्थिता।
द्वितीयायां तु संज्ञायां संज्ञेयमित्यचिन्तयत्॥१५॥

तदनन्तर संज्ञा उत्तर कुरु में जाकर तृण खाती हुई रहने लगी। इधर संज्ञा के पितृगृह चले जाने पर छाया संज्ञा के कथनानुसार संज्ञा का रूप धारण करके सूर्य के पास गई और उन्हें भगवान् सूर्यदेव ने भी संज्ञा ही समझा।।१४-१५।।

भास्करो जनयामास पुत्रौ कन्यां च रूपिणीम्।
पूर्वजस्य मनोस्तुल्यौ सादृश्येन च तावुभौ ॥१६॥

छाया को सूर्यदेव से दो पुत्र तथा एक कन्या उत्पन्न हुई। उन पुत्रद्वय ने ज्येष्ठ भ्राता मनु का सादृश्यलाभ किया।।१६।।

श्रुतश्रवा स्वधर्मज्ञ श्रुतकर्मा तथैव च।
श्रुतकर्मा मनुस्ताभ्यां सावर्णेयो भविष्यति ॥१७॥

श्रुतश्रवा स्वधर्मज्ञ एवं श्रुतकर्मा भी उसी प्रकार थे। श्रुतश्रवा तथा मनु से बहुत से सूर्यवंशीगणों का उद्भव हुआ। श्रुतश्रवा भविष्य में सावर्णि मनु होंगे।।१७।।

श्रुतकर्मा स विज्ञेयो ग्रहो यो वै शनैश्चरः।
कन्या च तपती नाम्ना रूपेणाप्रतिमा भुवि ॥१८॥

श्रुतकर्मा ग्रहरूप में अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। वे शनिग्रह नाम से प्रसिद्ध हैं और कन्या तपती रूप में अत्यन्त अपूर्व थी।।१८।।

संज्ञा तु पार्थिवी तेषामात्मजानां तथाकरोत्।
स्नेहेन पूर्वजानां तु तथा कृतवती तु सा ॥१९॥

पृथिवी संज्ञा (अर्थात् छाया) अपने पुत्र से जितना स्नेह करती थी, वैसा पूर्वजात (पहले उत्पन्न हुये) संज्ञा के पुत्रों से नहीं करती थी।।१९।।

मनुस्तु क्षमते तस्या यमस्तस्या न च क्षमेत्।
बहुशो शोच्यमानस्तु पितुः पत्न्या सुदुःखितः ॥२०॥
स वै कोपाच्च बाल्याच्च भाविनोऽर्थस्य गौरवात्।
पादेन तर्जयामास छायां वैवस्वतो यमः ॥२१॥

वह मनु को जिस प्रकार प्रेम करती थी, उस प्रकार यम को प्रेम नहीं करती थी, इस कारण अत्यधिक शोक करते हुये अपने पिता की पत्नी से दुःखित उन वैवस्वत यम ने क्रोध से बाल्यवशात् तथा भावी दैवावेश के कारण पैर से छाया का तर्जन किया।।२०-२१।।

तं शशाप ततः क्रुद्धा संज्ञा सा पार्थिवी शुभा।
यदा तर्जयसे यन्मां पितुर्भार्यां गरीयसीम्।
तस्मात्तवैष चरणः पतिष्यति न संशयः ॥२२॥

इससे क्रुद्ध होकर पार्थिवी संज्ञा (छाया) ने यम को अभिशाप दिया कि 'पिता की भार्या गरीयसी होती है; क्योंकि तुमने मेरा तर्जन किया है, अतएव तुम्हारा यह पैर (जिससे मुझ पर प्रहार किया है) गिर जायेगा'। यह निःसंदिग्ध है।।२२।।

यमस्तु तेन शापेन भृशं पीड़ितमानसः।
मनुना सह धर्मात्मा पृष्टः सर्वं न्यवेदयत् ॥२३॥
स्नेहेन तुल्यं महता माता देव! न वर्त्तते ॥२४॥

इससे धर्मात्मा यम ने उस शाप से अत्यन्त पीड़ित होकर मनु के साथ पिता के पास जाकर समस्त वृत्तान्त बताया। 'हे देव (पिता)! माँ के समान स्नेह की समता इसमें कहीं नहीं है।।२३-२४।।

सन्त्यज्य प्रायशोऽस्मान् सा कनीयांसो विधित्सति।
तस्यां मयोद्यतः पादो न च देहे निपातितः ॥२५॥

प्रायः हमारा परित्याग करके वे छोटे भाइयों का अधिक यत्न करती हैं। मैंने उन्हें पैर दिखलाया था, किन्तु वह उनके शरीर से नहीं लगा।।२५।।

बालाद्वा यदि वा मोहात् तद्भवान् वक्तुमर्हसि।
शप्तोऽहमेव देवेश जनन्या तपसा वर।
तव प्रसादाच्चरणस्त्रायतां महतो भयात् ॥२६॥

हे देवेश! बालक-स्वभाव से अथवा मोह से आप जो भी कहें, हे तपश्रेष्ठ! जननी द्वारा मैं अभिशप्त हो गया हूँ। उस महाभय से आपकी कृपा से मेरी रक्षा हो।।२६।।

रविरुवाच

असंशयं मरुत्पुत्र भविष्यत्यत्र कारणम्।
येन त्वामाविशत् क्रोधो धर्मज्ञं धर्मशालिनम् ॥२७॥

रवि कहते हैं—हे पुत्र! इस व्यापार में निश्चय ही विशेष कारण है; क्योंकि धर्मज्ञ तथा धर्मशाली तुममें क्रोध ने प्रवेश किया है।।२७।।

सर्वेषामेव शापानां प्रतिघातस्तु विद्यते।
न तु मात्राभिशप्तानां क्वचिन्मोक्षो भवेदिह ॥२८॥
न शक्यमेतन्मिथ्या तु कर्त्तुं मातुर्वचस्तव।
क्वचित्तेऽहं विधास्यामि पुत्रस्नेहादनुग्रहम् ॥२९॥
कृमयो मांसमादाय पतिष्यन्ति महीतले।
कृतमस्या वचः सत्यं त्वं च त्राता भविष्यति ॥३०॥

समस्त शाप का प्रतिकार है; किन्तु माता के अभिशाप को मिथ्या कर सकने में मैं भी समर्थ नहीं हूँ। किन्तु पुत्रस्नेह के कारण कुछ कृपा कर सकता हूँ। कृमिगण मांस लेकर भूमि पर पतित होंगे, इससे उनके वाक्य की सत्यता भी होगी और तुम भी त्राण पा जाओगे।।२८-३०।।

नारद उवाच

आदित्यस्त्वब्रवीत् छायां किमर्थं तनयेषु वै।
तुल्येष्वभ्यधिकः स्नेह एकत्र क्रियते त्वया॥३१॥
सा परिहरन्त्यस्मै नाचचक्षे विवस्वतः।
आत्मानं स समाधाय युक्तस्तथ्यमपश्यतः॥३२॥
तां शप्तुकामो भगवान् नाशाय कुपितः प्रभुः।
ततः च्छाया यथावृत्तमाचचक्षे विवस्वतः॥३३॥

नारद कहते हैं—तत्पश्चात् आदित्य भगवान् ने छाया से पूछा कि तुम बराबर के पुत्रों में से एक में अधिक स्नेह करती हो? युक्तियुक्त कोई मार्ग न देखकर स्वयं को संयत करके छाया ने परिहार करने की इच्छा से सूर्य को कोई उत्तर नहीं दिया। इससे क्रुद्ध होकर प्रभु सूर्यदेव छाया के विनाश के लिये शाप देने हेतु कुपित हो गये। तदनन्तर छाया ने सूर्य को सब वृत्तान्त बतलाया।।३१-३३।।

विवस्वांस्तु ततः श्रुत्वा क्रुद्धः श्वशुरमभ्यगात्।
स चापि तं यथान्यायमर्चयित्वा तु रोपितम्॥३४॥
निर्दग्धुकामं रोषेण सान्त्वयामास तं शनैः॥३५॥

विवस्वान् छाया के वचन सुनकर क्रोधित हो अपने श्वसुर के पास गये। उन्होंने (विश्वकर्मा ने) भी उनकी यथायोग्य संवर्धना करके उनके कोप से दग्धकाम चित्त को धीरे-धीरे सान्त्वना प्रदान किया।।३४-३५।।

विश्वकर्मोवाच

तवातितेजसाविष्टमिदं रूपं सुदुःसहम्।
असहन्ती तु सा संज्ञा वने वसति शाद्वले॥३६॥
द्रक्ष्यसे तां भवानद्य स्वां भार्यां शुभचारिणीम्।
रूपार्थं भवतोऽरण्ये चरन्तीं सुमहत्तपः॥३७॥

तुम्हारा यह तेजोरूप अत्यन्त दुःसह है। वह संज्ञा उसे सहन न कर पाने से तृणाच्छादित वन में तप कर रही है। आज तुम अपनी मंगलचारिणी भार्या को देख सकोगे। तुम्हारे इस तेजोरूप के कारण वह अरण्य में महान् तप कर रही है।।३६-३७।।

मतं मे ब्राह्मणो वाक्यं यदि ते देव! रोचते।
रूपं निवर्त्तयाम्यद्य तव कान्तमरिन्दम॥३८॥
रूपं विवस्वतश्चासीत्तिर्यगूर्ध्वमधः समम्।
तेनापि पीड़ितो देवो रूपेण ते दिवस्पतिः॥३९॥

सन्तुष्टस्तस्य तद्वाक्यं बहु मेने महातपाः।
अनुज्ञातस्ततस्त्वष्टा रूपनिर्वर्त्तनस्य तु ॥४०॥

हे देव! मेरे समान ब्राह्मण का वाक्य यदि आपको रुचिकर लगे, तब हे अरिन्दम! आपके इस रूप को मैं कमनीय बना दूँ। सूर्य का रूप तब तिर्यक्, ऊर्ध्व, अधः, सम था। उस रूप से सूर्यदेव स्वयं पीड़ित थे। सन्तुष्ट होकर महातपा सूर्य ने उनके वाक्य का सम्मान किया और रूप-परिवर्त्तनार्थ त्वष्टा (विश्वकर्मा) को अनुमति प्रदान किया।।३८-४०।।

विश्वकर्माभ्यनुज्ञातः शकद्वीपे विवस्वतः।
भ्रमिमारोप्य तत्तेजः शान्तयमास तस्य वै ॥४१॥
आज्ञया लिखितश्चासौ निपुणं विश्वकर्मणा।
नाभ्यनन्दत्तल्लिखनं ततस्तेनावतारितः ॥४२॥
तत्तु निष्पादितं रूपं तेजसापहृतेन तु।
कान्तात् कान्ततरं भूत्वा ह्यधिकं शुशुभे ततः ॥४३॥

विश्वकर्मा ने अनुज्ञात होकर शकद्वीप में चक्र का आरोपण करके सूर्य के उस तेज को संयत किया। आदेश पाकर विश्वकर्मा ने निपुणता से रेखा बनाया; किन्तु उस अङ्कन को सूर्य ने पसन्द नहीं किया। तब उन्होंने वहाँ से उतर कर तेज का अपहार करके (तेज-संवरण करके) अपना रूप निष्पन्न किया। तदनन्तर सुन्दर से सुन्दर रूप में इनकी आकृति शोभित हो गयी।।४१-४३।।

ददर्श योगमास्थाय स्वां भार्यां बड़वां तदा।
अघृष्यां सर्वभूतानां तेजसा स्वेन संवृताम् ॥४४॥
अश्वरूपेण मार्तण्डस्तां मुखे समभावयत्।
मैथुनाय विचेष्टन्ती परपुंसो विशङ्कया ॥४५॥
सा तद्विवस्वतः शुक्रं नासिकाभ्यां निरावमत्।
देवौ तस्यामजायेतामश्विनौ भिषजां वरौ ॥४६॥

तब सूर्यदेव ने अपने योगबल से अपने तेज को संवृत करके सकल प्राणियों द्वारा अघृष्य घोड़ी रूप से वर्त्तमान अपनी भार्या को देखा। तब मार्त्तण्ड ने भी अश्वरूप धारण करके उनसे मुख मिलाया। परपुरुष से मैथुन असंगत जानकर संज्ञा ने सूर्य के शुक्र को अपनी नासिका से बाहर निकाल दिया, जिससे चिकित्सकश्रेष्ठ अश्विनीकुमार उत्पन्न हुये।।४४-४६।।

नासत्यश्चैव दस्रश्च स्मृतौ तौ नामतोऽश्विनौ।
ततः कान्तं स्वकं रूपं दर्शयामास भास्करः ॥४७॥

वे अश्विनीकुमार नासत्य (नासिका से तेज त्याग करने से) तथा दस्र (रोग नाशकारी) नाम से अभिहित हो गये। तदनन्तर सूर्यदेव ने संज्ञा के समक्ष अपना रूप प्रदर्शित किया।।४७।।

तं दृष्ट्वा सापि संज्ञा तु तुतोष च मुमोद च।
तस्माच्च शुक्रसंयोगाद् गुणाद् भूमेस्तथैव च।।४८।।
अश्वारूढ़शरी धन्वी कुमारः समजायत।
यतो यं रेतसो जातस्तेन देवेन भावितः।।४९।।
रैवतो नामतस्त्वेष ख्यातिं लोके गमिष्यति।
सप्तद्वयादितो लोकात् पूजां प्राप्स्यति नित्यशः।।५०।।

उन्हें देखकर संज्ञा भी तुष्ट तथा आनन्दित हो गयीं। उस शुक्रसंयोग तथा भूमि के गुण से अश्वारूढ़ कुमार उत्पन्न हुये। सूर्यदेव का जो रेत: जहाँ गिरा था, वह जगत् में रैवत नाम से प्रसिद्ध हो गया तथा वह चतुर्दश भुवन में नित्य पूजित हो गया।।४८-५०।।

प्लवन गच्छन् प्रयन् यस्माद्वसुमत्यां यतस्ततः।
मनुर्यमो यमी चैव सावर्णिश्च शनैश्चरः।।५१।।
तपती चाश्विनौ चैव रेवन्तश्च रवेः सुताः।।५२।।

वसुमति से धावन, गमन तथा संयमन के कारण मनु, यम तथा यमी, सावर्णि, शनि-ग्रह, तपती, अश्विनीकुमार-द्वय तथा रेवन्त—ये सब रवि के पुत्रगण हुये।।५१-५२।।

एवमेषा पुरा संज्ञा द्वितीया पार्थिवी स्मृता।
या संज्ञा सा स्मृता राज्ञी छाया या सापि निक्षुभा।।५३।।

इस प्रकार इनमें पूर्व में जो थीं, वे संज्ञा थीं और जो द्वितीया थीं (छाया थीं) वे पार्थिवी कही जाती हैं। जो संज्ञा हैं, वे राज्ञी हैं और जो छाया है, वे हैं निक्षुभा।।५३।।

राजृ दीप्तौ स्मृतो धातुः राजा राजयते सदा।
अधिकं सर्वभूतेभ्यो राजते च दिवाकरः।।५४।।
राजपत्नी तु सा यस्मात्तेन राज्ञी प्रकीर्त्तिता।।५५।।

राज् धातु का अर्थ है—दीप्ति। जो सदा प्रदीप्त हैं, वे राजा एवं समस्त प्राणिगण के मध्य अधिक दीप्तिलाभ करते हैं। अधिक रूप से दीप्त होने के कारण वे राजा कहलाते हैं। संज्ञा राजपत्नी होने के कारण राज्ञी कहलाती हैं।।५४-५५।।

ते यं सञ्चालिता यस्माद् राज्ञा यत्तदुपाहृतम्।
क्षुभ सञ्चलने धातुर्निक्षुभा तेन निश्चला।।५६।।

राजा द्वारा सञ्चालित होने के कारण उन्हें ऐसा कहा गया है। क्षुभ धातु का अर्थ है—संचालन। अतएव निक्षुभा का अर्थ है—निश्चला।।५६।।

भवन्त्यतीव यस्माद्वा स्वर्गेऽपि क्षुद्विवर्जिता।
छायाति विशते दिव्या स्मृता सा तेन निक्षुभा।।५७।।

जो अत्यन्त रूप से विद्यमान है अथवा स्वर्ग में जो क्षुधा-विवर्जित है, दिव्य छाया में जो प्रवेश करती है, इसी कारण उन्हें निक्षुभा कहा गया है।।५७।।

यमस्तु तेन शापेन भृशं पीड़ितमानसः।
धर्मेण रक्षयामास धर्मराजस्ततोऽभवत्।।५८।।

यम उस अभिशाप से अत्यन्त पीड़ित होकर धर्म द्वारा (पिता द्वारा) रक्षित हुये थे; इसीलिये उनको धर्मराज कहा गया।।५८।।

शुभेन कर्मणा चैव संप्राप्तः परमां द्युतिम्।
पितृणामाधिपत्यं च लोकपालत्वमेव च।।५९।।

शुभ कर्म द्वारा (यम ने) परम द्युति प्राप्त किया तथा पितृगण का आधिपत्य एवं लोकपालत्व पाया।।५९।।

यस्तु ज्येष्ठो मनुस्तेषां सर्गस्तस्य तु साम्प्रतम्।
तस्याप्यैक्ष्वाकवो वंशो यस्मिन् जातो बृहद्बलः।।६०।।

इनमें से जो ज्येष्ठ मनु थे, उनसे ही सृष्टि हुई है। उनसे इक्ष्वाकु वंश प्रादुर्भूत हुआ। उसी वंश में महाराज बृहद्बल ने जन्म लिया था।।६०।।

कनीयसी तयोर्यातु यमी कन्या यशस्विनी।
अभवत्सा सरिच्छ्रेष्ठा यमुना लोकपावनी।।६१।।

उनमें जो कनिष्ठा, यशस्विनी कन्या यमी थी, वे लोकपावनी श्रेष्ठ नदी यमुना हुईं।।६१।।

मनुः प्रजापतिश्चैव सावर्णिः सुमहातपाः।
भाव्यः सोऽनागते तस्मिन् मनुः सावर्णिकोऽन्तरे।।६२।।

मनु प्रजापति एवं महातपा सावर्णि भविष्य में सावर्णि मनु होंगे।।६२।।

मेरुपृष्ठे तपो दिव्यमथापि चरति प्रभुः।
भ्राता शनैश्चरस्तस्य ग्रहत्वं स तु लब्धवान्।।६३।।

उनके भ्राता शनिश्चर ने मेरुपृष्ठ पर तपस्या करके ग्रहत्व प्राप्त किया था।।६३।।

तपती नाम या भानोस्तयोः कन्या कनीयसी।
सा बभूव शुभा पत्नी राज्ञः संवरणस्य तु।।६४।।

जो तपती नामक सूर्य की कनीयसी कन्या थी, वे राजा संवरण की मंगलमयी पत्नी हुईं।।६४।।

तपती नाम नद्येवं विन्ध्यपादाद् विनिष्टता।
नित्यं पुण्यजला स्नानैर्मार्तण्डतनया शुभा।।६५।।

तपती नामक जो नदी विन्ध्य पर्वत के पाददेश से निकलती है, वे मार्त्तण्डतनया नित्य पुण्यसलिला तथा स्नान द्वारा मङ्गलदात्री हैं।।६५।।

अश्विनौ देववैद्यत्वं लब्ध्यवन्तौ यशस्विनौ।
तयोः कर्मोपजीवन्ति लोकेऽस्मिन् भिषजः शुभाः।।६६।।

अश्विनी कुमारद्वय देववैद्यत्व लाभ करके यशस्वी हो गये। उनका कर्म इस जगत् के कुशल चिकित्सकगण ग्रहण करके जीवन-यापन करते हैं।।६६।।

रेवन्तो नाम योऽर्कस्य रूपेणाप्रतिमः सुतः।
सत्ववान् पावनः सोऽथ शीघ्रमेव प्रसीदति।।६७।।

रेवन्त नामक रूप में अतुलनीय जो सूर्यपुत्र हैं, वे सात्विक तथा पवित्रकारक हैं। वे शीघ्र प्रसन्न होते हैं।।६७।।

क्षेमेण ब्रजते ध्यानं यस्तु पूजयते पथि।
सुखप्रसादो मर्त्यानामाख्यास्यति यथासुखम्।।६८।।

जो मंगलपूर्ण ध्यान करते हैं तथा कहीं जाते समय इनका ध्यान करते हैं, वे मर्त्यगण के (पृथ्वी के) यथेच्छ सुख प्रसन्नता पाते हैं।।६८।।

य इदं जन्म देवानां श्रृणुयाद्वा पठेत्तथा।
विवर्द्धयतोऽथ पुत्राणां सर्वेषामपि तैजसम्।।६९।।
आपदं प्राप्य मुच्येते प्राप्नुयाच्च महत्फलम्।।७०।।

इति श्रीसाम्बपुराणे सूर्यपुत्राणां विवरणं नामैकादशोऽध्यायः

●

जो इन देवता के जन्म-वृत्तान्त को सुनते हैं अथवा पाठ करते हैं, वे सभी पुत्रगण की तैजस कृपा (वृद्धि) को प्राप्त करते हैं एवं विपत्ति से मुक्त होकर महान् फल पाते हैं।।६९-७०।।

श्री साम्बपुराण में सूर्यपुत्र-विवरण नामक एकादश अध्याय समाप्त

●

द्वादशोऽध्यायः

(सूर्यस्य शरीरलिखनम्)

साम्ब उवाच

शरीरलिखनं भानोरुक्तं संक्षेपतस्त्वया।
विस्तराच्छ्रोतुमिच्छामि तन्ममाचक्ष्व सुव्रत ।।१।।

साम्ब कहते हैं—सूर्य के शरीर के मसृणता-सम्पादन के विषय में आपने संक्षेप में कहा है। मैं विस्तार से सुनना चाहता हूँ। हे सुव्रत! मुझसे कहिये।।१।।

नारद उवाच

पितृगृहे गतायां तु संज्ञायां यदुनन्दन।
भास्करश्चिन्तयामास संज्ञां मद्रूपकाङ्क्षिणीम् ।।२।।
याता पितुर्गृहं यच्च तपस्तेपे यशस्विनी।
तस्मान्मनीषितं तस्याः पूरयामि मनोरथम् ।।३।।

नारद कहते हैं—हे यदुनन्दन साम्ब! संज्ञा के पितृगृह चले जाने पर भास्कर चिन्ता करने लगे 'संज्ञा मुझे रूपवान् देखना चाहती है। पिता के घर पर वह यशस्विनी तप कर रही है। अतएव मैं उसका मनोरथ पूर्ण करूँगा'।।२-३।।

एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा तत्रागत्य दिवाकरम्।
ऊचे मधुरया वाचा रवेः प्रीतिकरं वचः ।।४।।

इस अवसर पर ब्रह्मा वहाँ आकर मधुर भाषा में प्रीतिकर वाक्यों द्वारा सूर्य से इस प्रकार कहने लगे।।४।।

आदिदेवोऽसि देवानां ज्ञातमेतत् स्वयं मया।
श्वशुरो विश्वकर्मा ते रूपं निर्वर्त्तयिष्यति ।।५।।

तुम देवगण के आदिदेव हो, यह मैं स्वयं जानता हूँ। तुम्हारे श्वसुर विश्वकर्मा तुम्हारे रूप का परिवर्त्तन कर देंगे अर्थात् काट-छाँटकर मसृण तथा सुश्रीक कर देंगे।।५।।

एवमुक्त्वा रविं ब्रह्मा विश्वकर्माणमब्रवीत्।
निर्वर्त्तयस्व रूपं तं मार्त्तण्डस्य तु शोभनम् ।।६।।

तदनन्तर ब्रह्मा ने रवि से ऐसा कहने के उपरान्त विश्वकर्मा से कहा—तुम मार्त्तण्ड को शोभन रूप से युक्त कर दो।।६।।

ततो ब्रह्मसमादेशाद् भ्रमिमारोप्य भास्करम्।
रूपं निवर्त्तयामास विश्वकर्मा शनैः शनैः ।।७।।

तदनन्तर भगवान् ब्रह्मा के आदेशानुसार विश्वकर्मा ने घूर्णिचक्र पर भास्कर को स्थापित करके धीरे-धीरे उनके रूप को मसृणता प्रदान किया।।७।।

ततस्तुष्टाव तं ब्रह्मा सर्वैर्देवगणैः सह।
गुह्यैर्नानाविधैः स्तोत्रैर्वेदवेदाङ्गसम्मितैः ।।८।।

तदनन्तर ब्रह्मा सभी देवगण के साथ उनकी वेद-वेदांगसम्मत नानाविध गुह्य स्तोत्रों से स्तुति करने लगे।।८।।

स्वस्ति तेऽस्तु जगन्नाथ वर्षधर्महिमप्रभ।
शान्तिं जुषस्व लोकानां देवदेव दिवाकर! ।।९।।
ततो रुद्रश्च विष्णुश्च भक्त्या तुष्टुवतुस्तदा।
तेजस्ते वर्धतां देव खिल्यमानं दिवस्पते ।।१०।।
इन्द्रस्त्वागत्य तं देवं लिख्यमानमथास्तुवत्।
जय देव जयस्त्वेति शश्वज्जय जगत्पते ।।११।।
ऋषयश्च ततः सप्त विश्वामित्रपुरोगमाः।
तुष्टुवुर्विविधैः स्तोत्रैः स्वस्तिस्वस्तीति वादिनः ।।१२।।

हे जगन्नाथ! आपका मंगल हो। वर्षा, ताप तथा दिन प्रदान करने वाले हे देवदेव दिवाकर! लोकों का शान्ति-विधान करिये। तदनन्तर रुद्र तथा विष्णु ने उनकी स्तुति किया—हे देव! हे दिवस्पति! आपका मसृण तेजवर्द्धित हो। तदनन्तर इन्द्र ने मसृणता-प्राप्त सूर्य की स्तुति की—जय हो! हे देव! आप जयलाभ करें। हे जगत्पते! आपकी सदा जय हो। तदनन्तर विश्वमित्र आदि सप्तर्षियों ने स्तुति की—'आपका मंगल हो'। यह कहकर वे सभी विविध स्तोत्रों को पढ़ने लगे।।९-१२।।

वेदोक्ताभिस्तथाशीर्भिर्बालखिल्याश्च तुष्टुवुः।
त्वं नाथ मोक्षिणां मोक्षो ध्येयस्त्वं ध्यायिनां सदा ।।१३।।
स्वर्गतिः सर्वसत्त्वानां त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम्।
शं प्रजाभ्योऽस्तु देवेश प्रसन्नोऽस्तु जगत्पते ।।१४।।

बालखिल्यादि वेदोक्त आशीर्वाद द्वारा उनकी स्तुति करने लगे। हे नाथ! आप मोक्षार्थी गण के मोक्ष तथा ध्यानकोविदों के सर्वदा ध्येय हैं। सकल प्राणिगण के आप स्वर्ग-प्रापक हैं। आप ही में सबकुछ प्रतिष्ठित है। हे देवेश! प्रजागण का मंगल हो। जगत्पति आप प्रसन्न होईये।।१३-१४।।

यथा विद्याधरा नागा यक्षराक्षसपन्नगाः ।
कृताञ्जलिपुटाः सर्वे शिरोभिः प्रणता रविम् ।।१५।।
ऊचिरे विविधा वाचो मनःश्रोत्रसुखावहाः ।
सह्यं भवतु तेजस्ते भूतानां भूतभावन! ।।१६।।

विद्याधर, नाग, यक्ष, राक्षस, पन्नग सभी अञ्जलिबद्ध होकर रवि का मन तथा कानों को सुखावह लगने वाले विचित्र स्तोत्र पढ़ने लगे। हे भूतभावन! आपका तेज सभी प्राणीगण सहन कर सकें।।१५-१६।।

ततो हाहा हुहुश्चैव तुम्बुरुर्नारदस्तथा ।
उपगायितुमारब्धा गन्धर्वकुशला रविम् ।।१७।।
षड्ज-मध्यम-गान्धार-ग्रामत्रय-विशारदाः ।
मूर्च्छनाभिश्च तालैश्च सन्ध्यारितशकैशिकैः ।।१८।।

तदनन्तर हाहा, हुहु, तुम्बुरु तथा नारद स्तुति करने लगे। गन्धर्वकुशल गण रवि-सम्बन्धित गायन गाने लगे। षड्ज, मध्यम, गान्धार, ग्रामत्रय में जो विशारद थे, वे मूर्च्छना तथा ताल के संयोग से गायन करने लगे।।१७-१८।।

विश्वाची च घृताची च ह्युर्वशी च तिलोत्तमा ।
मेनका च सुजन्या च रम्भा चाप्सरसां वरा ।।१९।।
उपनर्त्तितुमारब्धा लिख्यमानं विभावसुम् ।
हावभावविलासैश्च कुर्वन्त्योऽभिनयान् बहून् ।।२०।।

विश्वाची, घृताची, उर्वशी, तिलोत्तमा, मेनका, सुजन्या तथा अप्सरागण में श्रेष्ठ रम्भा नृत्य आरम्भ करके मसृणता-प्राप्त विभावसु के उद्देश्य से हाव-भाव-विलास के द्वारा अनेक अभिनय करने लगीं।।१९-२०।।

ततः तीव्रलयं गेयं मधुरं चाभ्यवर्त्तत ।
सर्वेषामेव देवानां मनःश्रोत्रसुखप्रदम् ।।२१।।

तत्पश्चात् अति मधुर अव्यक्त कलकल ध्वनि उत्थित होने लगी, जो सभी देवताओं के मन तथा कर्ण के लिये सुखप्रद थी।।२१।।

प्रवाद्यन्तः ततस्तन्त्री-वीणा-देवादिदर्दुरा ।
पणवाः पुस्कराश्चैव मृदङ्गाः पटहास्तथा ।।२२।।
देवदुन्दुभयः शङ्खाः शतशोऽथ सहस्रशः ।
गायद्भिश्चैव गन्धर्वैर्नृत्यद्भिश्चाप्सरोगणैः ।।२३।।
तुर्यवादित्रघोषैश्च सर्वं कोलाहलीकृतम् ।।२४।।

ततः कृतैः करपुटैः पद्मकेशरसंयुतैः ।
ललाटोपरि विन्यस्तैः प्रणेमुः सर्वदेवताः ॥२५॥

तत्पश्चात् तन्त्री, वीणा, वेणु-प्रभृति, दर्दुर, पणव, पुष्कर, मृदंग, पटह, देव-दुन्दुभि, शत-सहस्त्र शङ्ख बजाये गये। गन्धर्वगण गायन करने लगे, अप्सरागण नृत्य करने लगीं। तूर्य वादित्र शब्द की ध्वनि से कोलाहल होने लगा। तदनन्तर पद्म-केसरयुक्त करपुट का ललाट में विन्यास करके समस्त देवगण ने भगवान् सूर्य को प्रणाम किया।।२२-२५।।

ततः कोलाहले तस्मिन् सर्वदेवसमागमे ।
तेजसः शातनं चक्रे विश्वकर्मा शनैः शनैः ॥२६॥

समस्त देवगण-कृत इस कोलाहल के मध्य में विश्वकर्मा धीरे-धीरे सूर्यदेव के तेज को खण्ड-खण्ड छेदित करने लगे।।२६।।

इति हिमजलघर्मकालहेतो हरकमलासन विष्णुसंस्तुतस्य ।
तनुपरिलिखनं निगद्य भानोर्ब्रजति दिवाकरलोकमायुषोऽन्ते ॥२७॥

इति श्रीसाम्बपुराणे सूर्यस्य शरीरलिखनं नाम द्वादशोऽध्यायः

●

हिम, जल तथा ताप और काल के जो कारण हैं, ब्रह्मा विष्णु से जो संस्तुत हैं, उन सूर्य की मसृणता का जो सम्पादन करते हैं (पाठ करते हैं), वे आयु-समाप्ति के अनन्तर सूर्यलोक प्राप्त करते हैं।।२७।।

श्री साम्बपुराण का श्रीसूर्य शरीर-मसृणता-सम्पादन नामक द्वादश अध्याय समाप्त

●

त्रयोदशोऽध्यायः

(विश्वकर्मणः सूर्यस्तुतिः)

साम्ब उवाच

तस्मिन् काले भ्रमे रूपे लिख्यमानो दिवस्पतिः ।
ब्रह्मादिभिर्यथा देवः स्तुतो वै तद्वदस्व मे ।।१।।

साम्ब पूछते हैं—घूर्णि चक्र से जब सूर्यदेव मसृण हो गये, तब ब्रह्मादि देवगण ने जैसे उनकी स्तुति की, वह कहिये।।१।।

नारद उवाच

ततो लिखितुमारब्धः प्रहृष्टेनान्तरात्मना ।
विश्वकर्माथ मार्तण्डः स्तोत्रेणानेन संस्तुवन् ।।२।।

नारद कहते हैं—तदनन्तर विश्वकर्मा प्रहृष्ट अन्तःकरण से मार्त्तण्ड की यह स्तुति करते-करते उनको मसृण करने का कार्य करने लगे।।२।।

विश्वकर्मोवाच

प्रयत्नतः प्रणतहितानुकम्पिने मरुत्वतः समनवसप्तसप्तये ।
विवस्वते कमलकुलावबोधिने नमस्तमःपटलपटावपाटिने ।।३।।
पावनाय शुचिपुण्यकर्मणे नैककामविषयप्रदायिने ।
भास्वरामलमयूखमालिने सर्वलोकहितकारिणे नमः ।।४।।
अजाय लोकत्रयकारणाय भूतात्मने गोपतये वृषाय ।
नमो महाकारुणिकोत्तमाय सूर्याय सर्वप्रभवाप्ययाय ।।५।।

विश्वकर्मा कहते हैं—जिनकी अनुकम्पा प्रणत जनों के लिये रहती है, मनुगण के साथ जो ४९ मरुत् रूपेण अवस्थित हैं, जो कमलों की निद्रा भंग करने वाले हैं (सूर्य के उदय से कमल खिलते हैं), गाढ़ अन्धकाररूप पर्दे को जो हटाने वाले हैं, उन विवस्वान् को हम प्रणाम करते हैं। जो पवित्र करने वाले, शुचि तथा पुण्यकर्मा हैं, बहुत-सी कामनाओं को फलित—पूर्ण करने वाले हैं, उज्ज्वल-निर्मल किरण वाले, सर्वजनहितकारी सूर्यदेव को नमस्कार करता हूँ। जो अज, त्रिभुवन के कारणरूप, प्राणियों के आत्मस्वरूप, गौ (किरणों) के रक्षक, प्रसिद्ध कामवर्षणकारी, महाकारुणिकों में श्रेष्ठ, सबकी उत्पत्ति तथा विनाश के कारण हैं, उन सूर्यदेव को नमस्कार है।।३-५।।

विवस्वते ज्ञानभृदन्तरात्मने जगत्प्रतिष्ठाय जगद्धितैषिणे ।
स्वयम्भुवे लोकसमस्तचक्षुषे सुरोत्तमायामिततेजसे नमः ॥६॥

जो ज्ञानियों की अन्तरात्मा, जगत् के प्रतिष्ठारूप, जगत् के हितकामी, स्वयम्भु, समस्त लोकों के चक्षुरूप, देवश्रेष्ठ, असीम तेजोरूप सूर्यदेव हैं, उनको नमस्कार है।।६।।

क्षणमुदयाचलमौलिमणिः सुरगणवन्द्योऽपि हितो जगतः ।
त्वमुरुमयूखसहस्रवपुर्जगति विभाति तमोसि नुदन् ॥७॥
तव तिमिरासवपानमदाद् भवति विलोहितविग्रहता ।
तिमिरविभासि यतः सुतरां त्रिभुवनभावनतीक्ष्णकरैः ॥८॥

क्षण काल के लिये उदय पर्वत शिखर के मणिरूप, सुरगण से पूजित होने पर भी जगत् का हित करने वाले हे सूर्य! आप सहस्त्रों किरणयुक्त शरीर से अन्धकार दूर करते हैं और जगत् प्रकाशित होता है। तिमिररूप मद्यपान से मत्ततावशात् आपकी देह रक्तवर्ण हो गयी है, अतएव हे तिमिर! आप अपनी त्रिभुवन-प्रकाशक तीव्र किरणों से अधिक रूप से प्रकाशित हो रहे हैं।।७-८।।

रथमधिरुह्य समावयवैः परिविधिकल्पितभूरुचिरम् ।
सततमखिन्नहयैर्भगवंश्चरसि जगत् स्थितयेऽविरतम् ॥९॥
अमृतसुधादिरसेन समं सुरगणभूतगणेन समम् ।
प्रणिपतितैकपदं त्रितयं शुकसमवर्णहयप्रथितम् ॥१०॥
तव पदपांसुपवित्रतमं ह्यभिरतवत्सल मां प्रणतम् ।
त्रिभुवनपावनपाहि रवे विविधगदार्त्तियुतं सततम् ॥११॥

इति श्रीसाम्बपुराणे विश्वकर्मणः सूर्यस्तुतिर्नाम त्रयोदशोऽध्यायः

●

हे भगवन्! समान अवयवयुक्त अक्लान्त अश्वगण द्वारा पृथ्वी पर सुन्दर परिधि की रचना करते हुये रथ पर सवार होकर निरन्तर जगत् की स्थिति के लिये आप विचरण करते हैं। अमृत तथा सुधारस के तुल्य, सुरगण तथा भूतगण के समान, एक पद में प्रणिपतित त्रितयरूप, शुक्र के समान जिनके अश्व हैं, ऐसे आप प्रसिद्ध हैं। हे भक्तवत्सल! त्रिभुवनपावन रवि! आप अपनी चरणधूलि से पवित्रतम, प्रणत नानारोग से ग्रस्त मेरा सतत पालन करिये।।९-११।।

श्री साम्बपुराण में विश्वकर्माकृत सूर्यस्तुतिनामक त्रयोदश अध्याय समाप्त

●

चतुर्दशोऽध्यायः

(ब्रह्मभाषितः स्तवः)

श्रीसाम्ब उवाच

भूयोऽपि कथय त्वं मां कथां सूर्यसमागताम्।
न तृप्तिमधिगच्छामि कथां शृण्वन्निमां शुभाम्॥१॥

श्री साम्ब कहते हैं—आप सूर्य से सम्बन्धित और प्रसङ्ग कहिये। इस शुभकर बात को सुनने से मुझे तृप्ति नहीं मिलती॥१॥

नारद उवाच

आदित्यस्य कथां दिव्यां सर्वपापप्रणाशिनीम्।
वक्ष्यामि कथिता पूर्वं ब्रह्मणा लोकभाविना॥२॥
ऋषयः परिपृच्छन्ति ब्रह्मलोके पितामहम्।
तापिताः सूर्यकिरणैः ऋषयोऽज्ञानमोहिताः॥३॥

नारद कहते हैं—लोकस्रष्टा ब्रह्मा के सर्वपापनाशक आदित्य की दिव्य कथा को कहता हूँ। इसे पूर्व में ऋषिगणों ने ब्रह्मलोक में पितामह से पूछा था। वे ऋषिगण सूर्यकिरणों से तप्त तथा अज्ञानमोहित थे॥२-३॥

ऋषय ऊचुः

कोऽयं दीप्तो महातेजा वह्निरश्मिसमप्रभः।
एतद्वेदितुमिच्छामः प्रभवोऽस्य कुतः प्रभो॥४॥

ऋषिगण कहते हैं—अग्निशिखा-तुल्य यह दीप्त महातेज-युक्त कौन है? यह हम जानना चाहते हैं। हे प्रभु! इनकी उत्पत्ति कहाँ से है?॥४॥

ब्रह्मोवाच

ततो भूतेषु सर्वेषु नष्टे स्थावरजङ्गमे।
प्रवृत्ते गुणहेतुत्वे पूर्वं बुद्धिरजायत॥५॥

ब्रह्मा कहते हैं—स्थावर-जंगम समस्त प्राणी के लय प्राप्त होने पर गुणों (सत्व-रजः-तमोगुण) के कारण सबसे पहले बुद्धि उत्पन्न होती है॥५॥

अहङ्कारस्ततो जातो महाभूतप्रवर्त्तकः।
वाय्वग्निजलखंभूमिस्ततस्त्वण्डमजायत ॥६॥

तदनन्तर महाभूत द्वारा प्रवर्त्तित होकर अहंकार उत्पन्न होता है। तत्पश्चात् वायु, अग्नि, जल, आकाश तथा भूमि उत्पन्न होता है, तदनन्तर अण्ड उत्पन्न होता है।।६।।

तस्मिंस्त्वण्डे इमे लोकाः सप्त वै सम्प्रतिष्ठिताः ।
पृथिवी सप्तभिर्द्वीपे समुद्रश्चैव सप्तभिः ।।७।।

वह अण्ड इस सप्तलोक में प्रतिष्ठित हुआ। तत्पश्चात् सप्तद्वीप तथा सप्त समुद्र के साथ पृथिवी प्रतिष्ठित हो गई।।७।।

तत्र चावस्थितो ह्यासन्नहं विष्णुर्महेश्वरः ।
विमूढ़ास्तमसः सर्वे प्रध्यायन्नीश्वरं परम् ।।८।।

वहाँ (मैं (ब्रह्मा), विष्णु तथा महेश्वर अवस्थित थे। हम सब अन्धकार में विमूढ़ होकर परमेश्वर का ध्यान कर रहे थे।।८।।

ततोऽचिन्त्यं महत्तेजः प्रादुर्भूतं तमोनुदम् ।
ध्यानयोगेन चास्माभिर्विज्ञातः सविता तदा ।।९।।

तदनन्तर अन्धकार-विदारक अचिन्त्य महत् तेज प्रादुर्भूत हो गया। तब ध्यानयोग से हमने जाना कि वे सविता हैं।।९।।

ज्ञात्वा च परमात्मानं सर्व एव पृथक्-पृथक् ।
दिव्याभिस्तुतिभिर्देवास्तं स्तोतुमुपचक्रमुः ।।१०।।

उन परमात्मा को जानकर हम देवगण ने पृथक्-पृथक् रूप से दिव्य स्तुति से उनकी स्तुति आरम्भ कर दिया।।१०।।

आदिदेवोऽसि देवानामैश्वर्याच्च त्वमीश्वरः ।
आदिकर्त्तासि भूतानां देवदेवो दिवाकरः ।।११।।

देवों में तुम आदिदेव हो, ऐश्वर्य में तुम ईश्वर हो, तुम प्राणीगण के आदिकर्त्ता एवं देवताओं के देवता दिवाकर हो।।११।।

जीवनं सर्वसत्त्वानां देव-गन्धर्वरक्षसाम् ।
मुनिकिन्नरसिद्धानां तथैवोरगपक्षिणाम् ।।१२।।

तुम समस्त प्राणिगण, देवता-गन्धर्व तथा किन्नर, राक्षस, सिंह, मुनि, नाग, पक्षीगण के जीवन हो।।१२।।

त्वं ब्रह्मा त्वं महादेवस्त्वं विष्णुस्त्वं जगत्पतिः ।
वायुरिन्द्रश्च सोमश्च विवस्वान् अरुणस्तथा ।।१३।।

तुम ही ब्रह्मा, महादेव एवं जगत् के पति हो। तुम ही वायु, इन्द्र, सोम, विवस्वान् तथा अरुण हो।।१३।।

त्वं कालः सृष्टिकर्त्ता च हन्ता भर्त्ता प्रभुस्तथा।
सरितः सागराः शैला विद्युरिन्द्रधनूंषि च ॥१४॥

तुम ही काल तथा सृष्टिकर्त्ता हो। तुम विनाशक, पोषणकारी तथा प्रभु हो। नदी-सागर-पर्वत-विद्युत् तथा इन्द्रधनुष भी तुम्हीं हो।।१४।।

प्रलयः प्रभवश्चैव व्यक्ताव्यक्तः सनातनः।
ईश्वरात् परतो विद्या विद्यायाः परतः शिवः ॥१५॥
शिवात् परतरो देवस्त्वमेव परमेश्वरः ॥१६॥

प्रलय तथा उत्पत्ति, व्यक्त एवं अव्यक्त, सनातन तुम हो। ईश्वर से विद्या श्रेष्ठ है, विद्या से शिव श्रेष्ठ है एवं शिव से तुम श्रेष्ठ हो। तुम ही परमेश्वर हो।।१५-१६।।

सर्वतः पाणिपादस्त्वं सर्वतोऽक्षिशिरोमुखः।
सर्वतः श्रुतिमांल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥१७॥

तुम सर्वभावेन हस्त-पादयुक्त, सर्वतः चक्षु-मस्तक तथा मुख-विशिष्ट (तुम ही सबके हस्तपाद, चक्षु-मस्तक-मुख) हो। सर्वतः कर्म-विशिष्ट हो तथा तुम ही लोक में सबको व्याप्त करके स्थित हो।।१७।।

सहस्रांशुः सहस्राक्षः सहस्रचरणेक्षणः।
भूतादिर्भूर्भुवःस्वश्च महः सत्यं तपो जनः ॥१८॥

तुम्हारी किरणें हजारों हैं। हजारों मुख, चरण तथा नयन हैं। तुम ही प्राणियों के आदि, भूः (पृथिवी), भुवः (अन्तरिक्ष), स्वः (स्वर्गलोक), महः, सत्य, तप एवं जनलोक भी तुम ही हो।।१८।।

प्रदीप्तं दीपनं दिव्यं सर्वलोकप्रकाशनम्।
दुर्निरीक्ष्यं सुरेन्द्राणां यद्रूपं तस्य ते नमः ॥१९॥

प्रदीप्त, उज्ज्वल, दिव्य, सर्वलोक-प्रकाशक, दुर्निरीक्ष्य, देवश्रेष्ठों का जो रूप है, वही तुम्हारा रूप है; तुमको नमस्कार है।।१९।।

सुरसिद्धगणैर्जुष्टं भृग्वत्रिपुलहादिभिः।
स्तुतं परममव्यक्तं यद्रूपं तस्य ते नमः ॥२०॥

देवताओं तथा सिद्धों द्वारा प्रीति से सेवित एवं भृगु-अत्रि-पुलह आदि द्वारा स्तुत जो परम अव्यक्त रूप है, वह तुम्हारा ही है; अतः तुमको नमस्कार है।।२०।।

वेद्यं वेदविदां नित्यं सर्वज्ञानसमन्वितम्।
सर्वदेवातिदेवस्य यद्रूपं तस्य ते नमः ॥२१॥

वेदविद्गणों के तुम ही वेद्य हो, नित्य सर्वज्ञानयुक्त सकल देवगण के भी श्रेष्ठ देवता का जो रूप है, वही तुम्हारा रूप है। तुमको नमस्कार है।।२१।।

विश्वकृद्विश्वभूतिश्च वैश्वानरसुरार्चितम्।
विश्वस्थितमचिन्त्यञ्च यद्रूपं तस्य ते नमः ॥२२॥

तुम विश्वकृत् (विश्व के सृष्टिकर्त्ता), विश्व के पालक, वैश्वानर (जठराग्नि) तथा देवताओं से अर्चित हो। विश्व में स्थित तथा अचिन्त्य जो रूप है, वह तुम्हारा है। ऐसे तुमको मैं नमस्कार करता हूँ।।२२।।

परं वेदात्परं यज्ञात् परं लोकात् परं दिवः।
परमात्मेति विख्यातं तद्रूपं यस्य ते नमः ॥२३॥

जो वेद के परतत्त्व, यज्ञ के परतत्त्व हैं, भूलोक-द्युलोक से भी जो श्रेष्ठ हैं, वे परमात्मा नाम से विख्यात हैं। वह जिनका रूप है, ऐसे तुमको नमस्कार है।।२३।।

अविज्ञेयमनालक्ष्यमध्यात्मगति चाव्ययम्।
अनादिनिधनं चैव यद्रूपं तस्य ते नमः ॥२४॥

सहज में जाना नहीं जाता, दुर्निरीक्ष्य, आत्मा के प्रापक एवं आदि-अन्तहीन जो रूप है, वह तुम्हारा है। तुमको नमस्कार है।।२४।।

नमो नमः कारणकारणाय नमो नमः पापविमोचनाय।
नमो नमो वन्दितवन्दिताय नमो नमस्तापविनाशनाय ॥२५॥

जो कारण के भी कारण हैं, उन तुमको नमस्कार है, नमस्कार है। तुम पापविमोचक को नमस्कार है, नमस्कार है। तुम पूज्य से भी पूजनीय को नमस्कार है, नमस्कार है। तुम ताप-पाप-विनाशक को नमस्कार है, नमस्कार है (अर्थात् तुम्हें मैं पुनः पुनः नमस्कार करता हूँ)।।२५।।

नमो नमः सर्ववरप्रदाय नमो नमः सर्वधनप्रदाय।
नमो नमः सर्वसुखप्रदाय नमो नमः सर्वमतिप्रदाय ॥२६॥

सबको सभी वर देने वाले तुमको नमस्कार-नमस्कार। समस्त धनप्रदाता तुमको नमस्कार-नमस्कार। सकल सुखप्रदायक तुमको नमस्कार-नमस्कार। सबके मतिप्रदाता तुमको नमस्कार-नमस्कार।।२६।।

श्रुत्वा भगवान् देवस्तैजसं रूपमास्थितः।
उवाच वाचं कल्याणीं को वरो वः प्रदीयताम् ॥२७॥

यह सब सुनकर भगवान् लीलाशील सूर्यदेव ने तैजस रूप में विराजित होकर कल्याणकर वाक्य कहा—तुम सबको क्या वर दूँ?।।२७।।

ब्रह्मोवाच

तवातितैजसं रूपं न कश्चित् सोढुमुत्सहेत्।
सहनीयं भवत्वेतद्धिताय जगतः प्रभो ॥२८॥

ब्रह्मा कहते हैं—आपके इस तेजस्कर रूप को कोई सहन नहीं कर पाता। हे प्रभु! जगत् के हित के लिये आपका यह रूप सहनीय हो जाय।।२८।।

एवमस्त्विति सोऽप्युक्त्वा भगवान् दिनकृद् विभुः।
लोकानां कार्यसिद्ध्यर्थं घर्मवर्षहिमप्रदः ॥२९॥

सूर्यदेव ने कहा—ऐसा ही हो और भगवान् विभु दिनकर लोक की कार्यसिद्धि के लिये उष्ण, वृष्टि तथा शीतल हिमप्रद हो गये (वर्षा, ग्रीष्म तथा शीत—तीन रूप वाले हो गये)।।२९।।

अतः सांख्याश्च योगाश्च ये चान्ये मोक्षकाङ्क्षिणः।
ध्यायन्ति ध्यानिनो नित्यं हृदयस्थं दिवाकरम् ॥३०॥
सर्वलक्षणहीनोऽपि युक्तो वा सर्वपातकैः।
सर्वमन्तवते पापं देवमर्कसमाश्रितः ॥३१॥

इसीलिये सांख्य गण, योगीगण एवं अन्य मोक्षार्थी तथा ध्यानीगण हृदयस्थ दिवाकर का नित्य ध्यान करते हैं। समस्त लक्षणहीन होने पर भी अथवा सर्वपातकी व्यक्ति भी सूर्यदेव का आश्रय लेकर समस्त पापों को दूर कर लेता है।।३०-३१।।

अग्निहोत्रञ्च वेदाश्च यज्ञाश्च बहुदक्षिणाः।
भानोर्भक्तेर्नमस्कारात् कलां नार्हति षोडशीम् ॥३२॥

अग्निहोत्र, समस्त वेद, यज्ञ तथा बहुत दक्षिणा आदि भी सूर्यभक्त को नमस्कार करने की तुलना में सोलहवाँ भाग भी नहीं है।।३२।।

तीर्थानां परमं तीर्थं मङ्गलानाञ्च मङ्गलम्।
पवित्राणां पवित्रं च प्रपद्येऽहं दिवाकरम् ॥३३॥
ब्रह्माद्यैः संस्तुतं देवैर्ये नमस्यन्ति भास्करम्।
सर्वकिल्विषनिर्मुक्ताः सूर्यलोकं व्रजन्ति ते ॥३४॥

इति श्रीसाम्बपुराणे ब्रह्मभाषितः स्तवो नाम चतुर्दशोऽध्यायः

●

जो तीर्थों में परमतीर्थ, मंगल में परम मंगल, पवित्रों में परम पवित्र हैं, उन दिवाकर का मैं शरणापन्न होता हूँ। जो ब्रह्मादि देवगण द्वारा संस्तुत दिवाकर को नमस्कार करता है, वह सभी पापों से निर्मुक्त होकर सूर्यलोक में जाता है।।३३-३४।।

श्रीसाम्बपुराण में ब्रह्मा द्वारा कथित सूर्यस्तव नामक चतुर्दश अध्याय समाप्त

●

पञ्चदशोऽध्यायः

(ब्रह्मकृतस्तोत्रम्)

साम्ब उवाच

शरीरलिखनं भानोः कथं वै कति वादितः।
देवैर्वा ऋषिभिर्वापि तन्ममाख्यातुमर्हसि ।।१।।

साम्ब कहते हैं कि सूर्य का यह शरीर-लेखन (शरीर का अङ्कन, प्रचण्ड उग्र तापमय शरीर का संक्षेपीकरण) किसलिये, कितने प्रकार से, किंवा देवता अथवा ऋषि द्वारा कहा गया है, वह कहिये।।१।।

नारद उवाच

ब्रह्मलोके सुखासीनं ब्रह्माणं ससुरासुरम्।
ऋषयश्चोपसङ्गम्य इदमूचुः समाहिताः ।।२।।

नारद कहते हैं—ब्रह्मलोक में देवता तथा असुरों के साथ सुखपूर्वक बैठे ब्रह्मा के निकट उपस्थित होकर ऋषियों ने समाहित चित्त से इस प्रकार कहा।।२।।

भगवन्नदितेः पुत्रो य एष दिवि राजते।
मार्तण्ड इति विख्यातस्तिग्मतेजो महातपाः ।।३।।
अस्य तेजोभिरखिलं जगत् स्थावरजङ्गमम्।
क्लिश्यमानमनाक्रन्दमुपेक्षसि कथं प्रभो ।।४।।

हे भगवन्! अदिति के पुत्र जो द्युलोक में विराजित हैं, जो मार्त्तण्ड कहलाते हैं, जो प्रचण्ड किरणों वाले तथा महातपस्वी हैं, उनके तेज से अखिल स्थावर-जंगम विश्व क्लिष्ट होकर चित्कार कर रहा है। हे प्रभु! आप क्यों उपेक्षा कर रहे हैं।।३-४।।

वयमप्याहिताशङ्कास्तेजसा सम्प्रमोहिताः।
दिवि भुव्यन्तरिक्षे च शर्म नोपलभामहे ।।५।।

हम भी भीत-त्रस्त हैं, तेज से सम्यक् रूपेण विमोहित होकर द्युलोक, भूलोक तथा अन्तरिक्ष लोक में कहीं भी कल्याण नहीं पा रहे हैं।।५।।

एवमुक्तस्तु भगवानुवाच कमलासनः।
तमेव शरणं देवं गच्छामः सहितं वयम् ।।६।।

ततस्तमुदयोदग्रं शैलराजावतंसकम्।
सप्रजापतयः सर्वे संस्तौतुमुपचक्रमुः ॥७॥

ऐसा कहने से (उनके इस प्रकार कहने से) भगवान् कमलासन (ब्रह्मा) कहते हैं— तुम्हारे साथ मैं इन देव की शरण लेता हूँ। तदनन्तर श्रेष्ठ पर्वत के वंशधर उदयाचल के शिखर पर अवस्थित सूर्यदेव के लिये प्रजापति गण के साथ वे सब स्तुति करने लगे।।६-७।।

ब्रह्मोवाच

नमो नमः सुरवरतिग्मतेजसे नमो नमः प्रणतहितानुकम्पिने।
नमो नमस्त्रिभुवनभूतभाविने क्रतुक्रियाशुभफलसम्प्रदायिने ॥८॥
शुभाशुभप्रविचयकर्मसाक्षिणे सहस्रसंदीधितये नमो नमः।
प्रशस्तसप्ताश्वयुतान्तपक्षिणे ध्रुवैकरश्मिग्रथितायते नमः ॥९॥
सबालखिल्याप्सरकिन्नरोरगैः ससिद्धगन्धर्वपिशाचगुह्यकैः।
सयक्षरक्षोगणचारणोत्तमैर्नमो नमः सत्कृतवन्दिताय ते ॥१०॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे देवश्रेष्ठ! तीक्ष्ण किरणमालिन्! आपको नमस्कार है, नमस्कार है। आप प्रणतजनों के लिये हितानुकम्पी हैं, आपको नमस्कार है, नमस्कार है। त्रिभुवन के प्राणियों के रक्षक, यज्ञक्रिया का शुभ फल देने वाले आपको बार-बार नमस्कार है। बालखिल्य, अप्सरा, किन्नर, सर्पगण, सिंह, गन्धर्व, पिशाच, गुह्यक, यक्ष, राक्षस और चारणश्रेष्ठ द्वारा पूजित तथा स्तुत आपको नमस्कार है।।८-१०।।

यदा रसान् संसृजते शरीरिणां गभस्तिभिर्घर्महिमाम्बुसर्जनैः।
जगच्च संशोषयसे ससागरं नमः सदाम्नायनुताय भास्वते ॥११॥

जब तेज, हिम तथा जल सृष्टि के द्वारा देहधारी गण में रस की सृष्टि करते हैं, तब आपकी किरणों द्वारा सागर के साथ-साथ समस्त जगत् का भी शोषण किया जाता है, सर्वदा वेदस्तुत तेजप्रकाशक आपको नमस्कार है।।११।।

जड़ान्धमूकान् वधिरान् सकुब्जकान्
सदद्रुकुष्ठान् कृमिभिः स्रवद्व्रणान्।
करोषि तानेव पुनर्नवान् यदा
तदा महाकारुणिकाय ते नमः ॥१२॥

जड़, अन्ध, मूक, वधिर, कुब्ज, दद्रु, कुष्ठ, कृमि-क्षारित, व्रणयुक्त तथा काश-रोगीगण को आप पुनः नवीन शरीर-सा कर देते हैं। अतः आप महा कारुणिक को नमस्कार है।।१२।।

यदोदरं ज्योतिरतिग्मकं स्थितं यदप्सु तेजो यदपीह चक्षुषि।
अग्नौ यदुष्णं भगणे यदाहितं तथैव तद्रूपमनेकधा स्थितम् ॥१३॥

जठर का जो तेज है, जल का जो तेज है, चक्षु का जो तेज है, अग्नि की जो उष्णता है और नक्षत्रों में जो तेज आहित है, वह आपका ही रूप है और आप ही अनेक रूप में अवस्थान करते हैं।।१३।।

सुरद्विषः सागरतोयवासिनः प्रचण्डपाशासिपरश्वधायुधाः।
समुत्थिता ये भुवि पापचेतसः प्रयान्ति नाशं तव देवदर्शनात् ॥१४॥

हे देव! सागर जलनिवासी, प्रचण्ड पाश, परशु तथा विविध अस्त्रधारी असुरगण एवं पृथ्वी में पापचेता जो असुर उत्थित होते हैं, वे तुम्हारे दर्शनमात्र से ही नाश प्राप्त हो जाते हैं।।१४।।

स्तुतः स भगवानेवं प्रजापतिमुखैः सुरैः।
मत्वा तेषामभिप्रायमुवाच भगवानिदम् ॥१५॥

इस प्रकार से प्रजापति-प्रमुख देवगण द्वारा स्तुत होकर सूर्यदेव उनके अभिप्राय को जानकर इस प्रकार बोले।।१५।।

हितं चोपहितं नित्यं गायत्र्यं यद्वचः परम्।
तद्वै ब्रूत सुरा क्षिप्तं किं मया क्रियतां स्वयम् ॥१६॥

आपके गायत्री-मूलक जो वाक्य हैं, वे सदा हितकारी हैं। हे देवगण! शीघ्र कहिये, मुझे क्या करना है?।।१६।।

लब्धानुज्ञास्ततस्ते तु सुराः संहृष्टमानसाः।
त्वष्टारं पूजयामासुर्मनोवाक्कायकर्मभिः ॥१७॥

आदेश पाकर देवगण हृष्टचित्त से मानसिक-वाचिक तथा कायिक कर्म से त्वष्टा (सूर्य) की पूजा करने लगे।।१७।।

ततस्तं तेजसो राशिं सर्वलोकविधानवित्।
भ्रमिमारोपयामास विश्वकर्मा विभावसुम् ॥१८॥

तदनन्तर सकल लोकों के विधानकारी विश्वकर्मा ने तेजोराशि विभावसु (सूर्य) को भ्रमि (घूर्णिचक्र) पर स्थापित किया।।१८।।

अमृतेनाभिषिक्तस्य स्तूयमानस्य चारणैः।
तेजसः शातनं चक्रे विश्वकर्मा शनैः शनैः ॥१९॥

विश्वकर्मा धीरे-धीरे अमृत से अभिषिक्त एवं चारणों द्वारा स्तूयमान सूर्यदेव के तेज का छेदन करने लगे (उनकी काट-छाँट करके मसृणता सम्पादन करने लगे)।।१९।।

आजानुलिखितश्चासौ सुरासुरमनोरगैः ।
नाभ्यनन्दत् सलिखनं ततस्तेनावतारितः ॥२०॥

देवता, असुर तथा सर्पगण द्वारा सूर्य को जानु-पर्यन्त लिखा गया (छेदन किया गया), उसे उन्होंने अभिनन्दित नहीं किया। तब विश्वकर्मा ने उन्हें घूर्णिचक्र से उतारा।।२०।।

ततः प्रभृति देवस्य चरणौ नित्यसंवृतौ ।
तापय हृदयं चैव युक्ततेजोऽभवत्ततः ॥२१॥

तब से सूर्य के चरणद्वय नित्य संवृत हैं तथा वे हृदय को तप्त करने वाले तेज से युक्त हैं।।२१।।

शातितश्चास्य यत्तेजस्तेन चक्रं विनिर्मितम् ।
येन विष्णुर्जघानोग्रान् दानवानमितौजसः ॥२२॥

इन सूर्य का जो तेज खण्डित किया गया था, उससे चक्र निर्मित हुआ और उस चक्र से विष्णु भगवान् ने अति तेजस्वी असुरों का विनाश किया।।२२।।

शूलशक्तिगदाचक्रं शरासनपरश्वधान् ।
दैवतेभ्यो ददौ कृत्वा विश्वकर्मा महामतिः ॥२३॥

महामति विश्वकर्मा ने उस तेज से शूल, शक्ति, गदा, चक्र, धनुष, बाण तथा परशु का निर्माण करके देवताओं को प्रदान किया।।२३।।

ब्रह्मवक्त्रोद्भवं स्तोत्रं संध्ययोरुभयोर्जपन् ।
कुलं पुनाति पुरुषो व्याधिभिर्न च पीड्यते ॥२४॥
प्रजावान् सिद्धकर्मा च जीवेत् साग्रं शरच्छतम् ।
पुत्रवान् धनवांश्चैव सर्वत्रैवापराजितः ॥२५॥
विभिन्नप्राणसंघाते सावित्र्यं लोकमाप्नुयात् ॥२६॥

इति श्रीसाम्बपुराणे ब्रह्मस्तोत्रं नाम पञ्चदशोऽध्यायः

●

ब्रह्मा के मुख से निर्गत इस स्तोत्र को प्रातः तथा सायं सन्ध्याकाल में जो जपता है, वह पुरुष अपने कुल को पवित्र करता है और उसे व्याधिजनित पीड़ा नहीं होती। वह पुरुष प्रजायुक्त तथा सिद्धकर्मा होकर शताधिक वर्ष तक जीवित रहता है एवं पुत्रवान्, धनवान् होकर सर्वत्र विजयी होता है। विभिन्न जन्मों में क्रमशः उन्नत योनि में जन्म पाता है और पवित्र लोकों में गमन करता है।।२४-२६।।

श्री साम्बपुराण का ब्रह्मास्तव नामक पञ्चदश अध्याय समाप्त

●

षोडशोऽध्यायः
(सूर्यस्य परिवारवर्णनम्)

नारद उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि दण्डनायकपिङ्गलौ।
राज्ञस्तोषौ तथा चान्यान् पार्श्वस्थान् दिण्डिना सह ।।१।।

नारद कहते हैं—इसके अनन्तर दण्डनायक पिङ्गल, राज्ञ, स्तोष एवं दण्डि के साथ अन्य पार्श्वचरों की कथा कहता हूँ।।१।।

ब्रह्मणा सह संगम्य पुरा देवैर्विचारितम्।
एष कारुणिकः सूर्यो दैत्येभ्यो दास्यते वरान् ।।२।।
ते तु लब्धवरा भूत्वा बाधयन्ते दिवौकसः।
तस्मात्तेषां विघातार्थमेधामः प्रणता वयम् ।।३।।

पुराकाल में एक समय देवगण ब्रह्मा के साथ बैठकर सोच रहे थे कि एकमात्र कारुणिक सूर्य दैत्यों को वर देते हैं और उनसे वर प्राप्त करके स्वर्ग में रहने वाले देवताओं को वे दैत्यगण पीड़ित करते हैं। अतएव उनको प्रतिहत करने के लिये हमको सूर्यदेव के समक्ष प्रणत होना चाहिये।।२-३।।

अस्माभिः प्रतिरुद्धास्ते न द्रक्ष्यन्ति दिवाकरम्।
सम्मन्त्र्यैवं ततस्त्विन्द्रो वामपार्श्वे रवेः स्थितः ।।४।।
दण्डनायकसंज्ञस्तु सर्वलोकस्य स प्रभुः।
उक्तश्च स तदार्केण त्वं प्रजा दण्डनायकः ।।५।।
दण्डनीतिकरो यस्मात्तस्मात्त्वं दण्डनायकः।
लिखते यः प्रजानां तु सुकृतं यच्च दुष्कृतम् ।।६।।

हमारे द्वारा प्रतिरुद्ध होकर वे (असुर) दिवाकर सूर्य को नहीं देख पायेंगे। इस प्रकार मन्त्रणा करके इन्द्र ने रवि के वाम पार्श्व में अवस्थान किया। दण्डनायक नाम से प्रसिद्ध वे सभी लोकों के प्रभु हैं। उनसे सूर्यदेव ने कहा—तुम प्रजागण के दण्ड का विधान करो। दण्डनीति का विधान करने के लिये तुम दण्डनायक कहलाओगे तथा तुम प्रजा के सुकृत या दुष्कृत को लिखोगे।।४-६।।

अग्निर्दक्षिणपार्श्वे तु पिङ्गलत्वात् स पिङ्गलः।
अश्विनौ चापि सूर्यस्य पार्श्वयोरुभयोः स्थितौ।
अश्वरूपात् समुत्पन्नौ तेन तावश्विनौ स्मृतौ ।।७।।

अग्नि ने सूर्य के दाहिने पार्श्व में अवस्थान किया। पिङ्गल वर्ण के कारण उनको पिङ्गल कहा गया। दोनों अश्विनीकुमार सूर्य के दोनों पार्श्व में स्थित हुये। अश्वरूप में उत्पन्न होने के कारण इनको अश्विनद्वय कहा जाता है।।७।।

पूर्वद्वारे स्थितौ तस्य राज्ञस्तोषौ महाबलौ।
कार्त्तिकेयः स्मृतो राज्ञस्तोषश्चापि हरः स्मृतः ।।८।।
राजृदीप्तौ स्मृतो धातुर्नकारः प्रत्ययोऽस्य तु।
सुरसेनापतित्वेन स यस्माद्दीप्यते सदा।
तस्माच्च कार्त्तिकेयस्तु नाम्ना राज्ञ इति स्मृतः ।।९।।

सूर्य के पूर्व द्वार पर महाबलशाली राज्ञ तथा स्तोष ने अवस्थान किया। कार्त्तिकेय राज्ञ नाम से तथा हर स्तोष नाम से अभिहित हैं। राज (राजृ) धातु का अर्थ दीप्ति है और प्रत्ययार्थ 'न' इससे युक्त होता है। देवगण के सेनापतिरूप से वे सर्वदा दीप्तिमान रहते हैं।।८-९।।

तुस गतौ स्मृतो धातुस्तस्य सप्रत्ययः स्मृतः।
गच्छत्यतीव यस्माद्वा राज्ञस्तोषो विधीयते ।।१०।।
खरं हि दुरतिक्रान्तं कृत्वा द्वारमवस्थितौ।
पक्षिप्रेताधिपौ नाम्ना स्मृतौ कल्माषपक्षिणौ ।।११।।

तुस धातु का अर्थ है—गति, यह प्रत्ययार्थ 'स' से युक्त है। जो अत्यन्त गमन करते हैं, इस अर्थ में हर को स्तोष नाम से अभिहित किया गया है। यह राज्ञ तथा स्तोष का वर्णन किया गया। खर (मुखविवर) दुरतिक्रमणीय दो जन द्वार पर स्थित हैं। वे पक्षी तथा प्रेतों के अधिपति हैं। इनको कल्माष तथा पक्षी भी कहते हैं।।१०-११।।

वर्णस्य शबलत्वात्तु यतः कल्माष उच्यते।
पक्षोऽस्यास्तीत्यतः पक्षी गरुड़ः परिकीर्त्तितः ।।१२।।

उनमें जिसका वर्ण धवल है, उसे कल्माष कहते हैं। जिसे पंख (पक्ष) है, वह पक्षी है। यहाँ गरुड़ को ही पक्षी कहा गया है।।१२।।

स्थितो दक्षिणतस्तस्य जान्दकारः समाठरः।
जान्दकारश्चित्रगुप्तो माठरः काल उच्यते ।।१३।।
यमस्यार्थकरो नित्यं चित्रगुप्तो महामतिः।
कालो जान्द इति प्रोक्तो जान्दकारस्ततस्तु सः ।।१४।।

सूर्य के दक्षिण में जान्दकार तथा माठर रहते हैं। चित्रगुप्त को जान्दकार एवं काल तथा यम को माठर कहा गया है। यम का अर्थ-साधन करते हैं—महामति चित्रगुप्त।

जान्द शब्द का अर्थ है—प्रयोजन। इसलिये यम का सब समय सर्वप्रयोजन-साधक होने के कारण चित्रगुप्त जान्दकार कहे जाते हैं।।१३-१४।।

दक्षिणस्यां निवासोऽस्य दिशि यस्मात्तु नित्यशः।
धातुर्मठ निवासेति कालस्तेन तु माठरः ।।१५।।

क्योंकि नित्य दक्षिण दिशा में ये निवास करते हैं और मठ धातु का अर्थ है—निवास; इसीलिये काल को माठर कहते हैं।।१५।।

प्राप्नुयानक्षुतापौ तु रवेः पश्चिमतः स्थितौ।
क्षुतापो वरुणो ज्ञेयः प्राप्नुयानस्तु सागरः ।।१६।।

प्राप्नुयान तथा क्षुताप रवि के पश्चिम में स्थित हैं। वरुण को क्षुताप तथा सागर को प्राप्नुयान कहा जाता है।।१६।।

उत्तरेण स्थितोऽर्कस्य कुबेरः सविनायकः।
कुबेरो धनदो ज्ञेयो हस्तिरूपो विनायकः ।।१७।।

सूर्य के उत्तर में विनायक के साथ कुबेर स्थित हैं। कुबेर धनद हैं तथा हस्तिरूप विनायक हैं।।१७।।

रेवन्तश्चैव दिण्डिश्च द्वावेव पूर्वतः स्थितौ।
दिण्डिर्ज्ञेयस्तयो रुद्रो रेवन्तस्तनयो रवेः ।।१८।।

रेवन्त तथा दिण्डि दोनों सूर्य के पूर्व में स्थित हैं। उनमें दिण्डि को रुद्र जानना चाहिये तथा रेवन्त रविपुत्र हैं।।१८।।

इत्येतेऽनुचराः प्रोक्ता संख्या चैषां निबोध मे।
माठरो जान्दकारश्च धनदोऽथ विनायकः ।।१९।।
प्राप्नुयानक्षुतापौ तु द्वौ च कल्माषपक्षिणौ।
अश्विनौ तु ततो ज्ञेयो दण्डनायकपिङ्गलौ ।।२०।।
सखरद्वारिकौ ज्ञेयौ राज्ञस्तोषौ ततः स्मृतौ।
रेवन्तश्चैव दिण्डिश्च इत्येतेऽनुचराः स्मृता ।।२१।।

ये सभी सूर्य के अनुचर हैं। इनकी संख्या मुझसे सुनो—माठर, जान्दकार, धनद, विनायक, प्राप्नुयान, क्षुताप, कल्माष, पक्षी, अश्विनीकुमार, दण्डनायक, पिङ्गल, खर, द्वारिक, राज्ञ, स्तोष, रेवत तथा दिण्डि—ये सभी उनके अनुचर कहे गये हैं।।१९-२१।।

दशाष्टौ च समाख्याताः संक्षेपात् संख्यया पुनः।
इति ते नामभिस्तुत्यैर्दानवार्थे विनायकाः।
परिवार्य स्थिता सूर्यं नानाप्रहरणायुधाः ।।२२।।

संक्षेप में इन १८ अनुचरों का वर्णन किया गया। ये सभी दानवों को बाधा देने के लिये नाना प्रकार के अस्त्र तथा आयुध धारण करके सूर्य को घेर कर सदा अवस्थित रहते हैं।।२२।।

स्वरूपाश्चान्यरूपाश्च विरूपाः कामरूपिणः।
परिवार्य स्थिताः सूर्यं भानुरूपाश्च देवताः ।।२३।।
ऋचो यजूंषि सामानि वाङ्मयोक्तानि यानि तु।
नानारूपैः स्थितान्येव रवेस्तानि समन्ततः ।।२४।।

स्वरूप, अन्यरूप, विरूप, कामरूप एवं भानुरूप देवतागण सूर्य को घेर कर अवस्थान करते हैं। वाङ्मयरूपेण प्रसिद्ध ऋक्, यजुः तथा साम नानारूपेण सूर्य के चारो ओर स्थित रहते हैं।।२३-२४।।

नारद उवाच

वक्ष्याम्यथातः पुनरेव दिण्डिं सूर्यस्य सर्वप्रवरं प्रधानम्।
व्योम्न्यावसं तिष्ठति यस्तु नग्नः सोऽप्युच्यते रुद्र इहापि दिण्डी ।।२५।।

नारद कहते हैं—मैं पुनः दिण्डि की बात कहता हूँ। वे सूर्य के अनुचरों में श्रेष्ठ हैं। वे नग्नावस्था में आकाश में विराजमान रहते हैं और वे ही रुद्र भी हैं, जो यहाँ दिण्डि नाम से कथित हैं।।२५।।

छित्वा पुरा ब्रह्मशिरः किलासौ प्रगृह्य तच्चास्य शिरःकपालम्।
बहूदकं पुष्पफलैरुपेतं नग्नो ययौ दारुवनं ऋषीणाम् ।।२६।।
दृष्ट्वा तु तं भैक्ष्यकरं सुरेशं क्षुब्धास्त्रियो मुक्तवस्त्राः प्रयाताः।
योषित्सु तासु क्षुभितासु सर्वे जघ्नुर्हरन्तं मुनयः सुरुष्टा ।।२७।।
स हन्यमानो मुनिमुख्यसर्वे गृहीतलोष्ठैर्ऋषिदण्डकाष्ठैः।
विहाय तं देशमजःस्वरूपी ततो रवेर्लोकमथाजगाम ।।२८।।

पूर्व काल में उन्होंने ब्रह्मा के शिर का छेदन किया और उस मस्तक, कपाल तथा फल-फूल के साथ बहुत जल पीकर नग्नावस्था में ऋषिगण के दारुवन में आये। ऐसे भिक्षुकरूपी सुरेश (रुद्र) को देखकर वहाँ की स्त्रियाँ क्षुब्ध होकर विवस्त्र हो गईं। स्त्रियों की विक्षुब्धता को देखकर सभी मुनिगण रुष्ट होकर रुद्र (हर) को मारने लगे।।२७-२८।।

आगच्छमानं प्रकरास्तमूचुर्देवेश नित्यं भ्रमसे किमर्थम्।
स त्वाह तान् पापविमोचनार्थं भ्रमामि तीर्थानि सुरालयांश्च ।।२९।।

सूर्यदेव के प्रधान परिचारक ने आकर इनसे पूछा—हे देवेश! किसलिये नित्य भ्रमण करते हैं? इसपर उन्होंने कहा कि तीर्थों एवं देवालयों में पापों को दूर करने के लिये मैं भ्रमण करता हूँ।।२९।।

ते भूय ऊचुः प्रवरास्तमेवमत्रैव तिष्ठस्व रवेः पुरस्तात्।
शुद्धिं तवैवैष करिष्यतीह शुद्धस्ततो यास्यसि रुद्रलोकम्॥३०॥

वे श्रेष्ठ परिकरगण पुनः उनसे बोले—यहाँ रवि भगवान् के सम्मुख आप रहिये। ये ही आपका शुद्धि-विधान करेंगे। तदनन्तर हे रुद्र! शुद्ध होकर अपने लोक जाईयेगा।।३०।।

इत्येवमुक्तः प्रवरैः स रुद्रस्तत्रैव तस्थौ रवितोषणार्थम्।
नग्नो जटी यष्टिकपालपाणी रूपेण चैवाप्रतिमस्त्रिलोके॥३१॥
तुष्टाव देवं सविता तदाह प्रीतोऽस्मि तं वागमृतात्तवाहम्।
मद्दर्शनादेव भवान् विशुद्धो दिण्डी च नाम्ना भवितासि लोके॥३२॥
स्थानं व्रजस्व त्वमतीव पुण्यं पापापहं लौकिकनामधेयम्।
त्यक्त्वा कपालं प्रविशुद्धमूर्त्तिर्मया सह स्थास्यसि तत्र नित्यम्॥३३॥

उन श्रेष्ठ परिकरों के उनसे यह कहने पर रुद्र ने वहीं पर अवस्थान किया। वे नग्न, जटाधारी, हस्तद्वय में कपाल तथा लाठीधारी—इस रूप में त्रिभुवन में अतुलनीय थे। उन्होंने सूर्य का स्तवन किया तब सूर्यदेव ने उनसे कहा—तुम्हारे वाक्यामृत से मैं तुमसे प्रसन्न हो गया। मेरे दर्शन मात्र से तुम विशुद्ध हो गये हो तथा दिण्डी नाम से लोक में प्रसिद्धि प्राप्त करोगे। तुम पापविनाशक लौकिक नामयुक्त हो अति पुण्यस्थानों पर विचरण और कपाल त्याग करके मेरे साथ नित्य सौम्य मूर्त्ति में रहोगे।।३१-३३।।

अष्टादशैते प्रवरास्तु भानोश्चतुर्दशान्ये च रवेरधस्तात्।
देवौ च तौ द्वौ तु ऋषिप्रधानौ गन्धर्वसर्पावमितप्रभावौ॥३४॥
यक्षौ च यौ द्वौ च निशाचरौ तु नृत्ये च ये द्वेऽप्सरसां वरिष्ठे।
वसन्ति येहर्तिषु खेऽप्सु सूर्ये तेषां समीतिश्चतुरुत्तराणाम्॥३५॥

इति श्रीसाम्बपुराणे सूर्यपरिकरवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः

●

ये १८ लोग भानु के श्रेष्ठ परिकर हैं। रवि के निम्न भाग में अपर १४ लोग एवं दो लोग ऋषिप्रधान देवता तथा अतुल शक्तियुक्त गन्धर्व तथा सर्प हैं। ये दोनों यक्ष हैं। ये निशाचर हैं तथा नृत्य में भी श्रेष्ठ हैं। जो इस ऋषिलोक में, आकाश, जल तथा सूर्यलोक में निवास करते हैं, उनका समाज उत्तरादि चतुर्दिक् है।।३४-३५।।

श्री साम्बपुराण का सूर्यपरिवार-वर्णन नामक षोड़श अध्याय समाप्त

●

सप्तदशोऽध्यायः

(माहेश्वरस्तोत्रम्)

नारद उवाच

दिण्डिप्रोक्तमिदञ्चापि शृणु साम्ब महास्तवम्।
प्रणम्य शिरसा देवमुदयस्थं दिवाकरम्॥१॥
भक्त्या भानुं प्रपद्येऽहं सर्वपापप्रणाशनम्।
देवदानवयक्षाणां ग्रहाणां ज्योतिषामपि॥२॥
तेजस्याभ्यधिकं देवं ब्रजामि शरणं प्रभुम्।
एवमुक्त्वा विरूपाक्षो ध्यानासक्तो बभूव ह॥३॥

नारद कहते हैं—हे साम्ब! दिण्डि द्वारा कथित महास्तव का भी स्मरण करो। उदीयमान देव दिवाकर को मस्तक से प्रणाम करके वे स्तुति करने लगे। भक्तिपूर्वक सर्वपाप-प्रणाशक भानु की शरण लेता हूँ। जो देव, दानव, यक्ष, ग्रह तथा ताराओं के मध्य में अतिशय तेजयुक्त हैं; मैं उनकी शरण लेता हूँ। इस प्रकार कहकर दिण्डीरूप रुद्र विरूपाक्ष ने सूर्यदेव की स्तुति हेतु ध्यान किया।।१-३।।

ध्यानात् संस्मृत्य मनसा पौराणीमात्मनस्तनूम्।
वाग्भिस्तुष्टाव तं देवं तमोघ्नं रश्मिमालिनम्॥४॥

ध्यान-प्रभाव से मन द्वारा अपने पूर्वतन शरीर का स्मरण करके वाक्य से तमोविनाशक उन देव की स्तुति करने लगे।।४।।

दिविस्थितं मयूखाग्रैर्द्योतयन्तं दिशो दश।
वसुधामन्तरिक्षं च व्याप्तवन्तं मरीचिभिः॥५॥
आदित्यं भास्करं सूर्यं सवितारं दिवाकरम्।
पूषाणमर्यमानं च स्वर्भानुं दीप्ततेजसम्॥६॥

जो द्युलोक में विराजमान हैं, अपनी किरणों के अग्रभाग से दशो दिशाओं को आलोकित करते हैं, अपनी किरणों द्वारा भूलोक तथा द्युलोक को व्याप्त करते हैं, जो आदित्य, भास्कर, सूर्य, सविता, दिवाकर, पूषा, अर्यमा, स्वर्भानु तथा दीप्ततेजा हैं।।५-६।।

चतुर्युगान्तं कालाग्निं दुष्प्रेक्ष्यं प्रलयान्तकम्।
योगेश्वरमनन्तं च रक्तं पीतं सितासितम्॥७॥

ऋषीणामग्निहोत्रेषु यज्ञे वेदेषु संस्थितम्।
अक्षरं परमं गुह्यं मोक्षद्वारं सुरोत्तमम्॥८॥
छन्दोभिरश्वरूपैश्च सकृद्युक्तैर्विहङ्गमैः।
उदयास्तमनोयुक्तं सदा मेरोः प्रदक्षिणम्॥९॥
अमृतीभूतसत्यं च पुण्यतीर्थं पृथग्विधम्।
विश्वस्थितिमचिन्त्यञ्च प्रपन्नोऽस्मि प्रभाकरम्॥१०॥

जो चतुर्युग का अन्त करते हैं अर्थात् उदयास्त रूप कालक्रम से क्रमशः एक-एक युग का अन्त करते-करते चारो युगों का क्रम समाप्त कर देते हैं; जो कालाग्नि के समान दुष्प्रेक्ष्य, महाप्रलय के अन्तक के समान हैं; जो योगेश्वर, अनन्त एवं रक्त-पीत-शुक्ल तथा कृष्ण वर्ण वाले हैं; जो ऋषियों के अग्निहोत्र, यज्ञ तथा वेद में स्थित हैं; जो विनाशरहित, परमगृह, मोक्षद्वार के समान, देवताओं में उत्तम हैं, उन देव की स्तुति करता हूँ। जो अश्वरूप छन्दों से तथा पक्षिगण द्वारा युक्त तथा उदयास्त काल में सदैव मेरु पर्वत की प्रदक्षिणा करते हैं; जो अविनश्वर तथा सत्यरूप, पुण्य तीर्थरूप, नानारूप युक्त, विश्व के स्थितिकारक, अचिन्त्य, प्रभाकर हैं, उनकी मैं शरण लेता हूँ।।७-१०।।

त्वं ब्रह्मा त्वं महादेवस्त्वं विष्णुस्त्वं प्रजापतिः।
वायुराकाशमापश्च पृथिवीगिरिसागराः॥११॥
ग्रहनक्षत्रचन्द्रार्कावनयस्त्वं महौषधम्।
व्यक्ताव्यक्तेषु भूतेषु धर्माधर्मप्रवर्त्तकः॥१२॥
दर्शनादेव ते देव मुक्तोऽहं ब्रह्महत्यया।
दिव्यं पश्यामि ते रूपं प्रकाशं ज्ञानचक्षुषा॥१३॥

आप ही ब्रह्मा, महादेव, विष्णु, प्रजापति, वायु, आकाश तथा जल हैं; आप ही पृथिवी, पर्वत तथा सागर भी हैं। आप ही ग्रह, नक्षत्र, चन्द्र, सूर्य, पृथिवी, महौषधी, व्यक्त-अव्यक्त हैं। आप ही प्राणीगण के धर्म तथा अधर्म के प्रवर्त्तक भी हैं। हे देव! आपके दर्शनमात्र से ही मैं ब्रह्महत्या-जैसे पाप से मुक्त हो सका हूँ। मैं ज्ञान-चक्षु से आपका प्रकाशक दिव्यरूप देखता हूँ।।११-१३।।

स्रवद्भिरिव दीप्ताभिर्गोभिर्लोकान् प्रकाशयन्।
धारयन् दृश्यसे वापि विभूतिं पारमेश्वरीम्॥१४॥

आप क्षरणशील दीप्त किरणों से सभी भुवनों को प्रकाशित करते-करते पारमेश्वरी विभूति धारण करके स्वयं प्रकाशित हो रहे हैं।।१४।।

एवं स्तुतः स देवेशस्तुष्टः प्रोवाच तं हरम्।
ज्ञानमैश्वर्यमोक्षौ च क्षराक्षरविकल्पना॥१५॥

महत्त्वं सूक्ष्मता चैव सर्वभूतेष्ववस्थितिः ।
सर्वं तत्तुल्यमस्माकमहं यत् स भवानपि ॥१६॥

इस प्रकार स्तुत होकर परितुष्ट देवेश सूर्य ने दिण्डीरूपी हर से कहा—ज्ञान, ऐश्वर्य, मोक्ष, क्षर-अक्षर विकल्पना, महत्त्व, सूक्ष्मता, सर्व प्राणियों में अवस्थिति, जो कुछ मेरा है, वह तुम्हारा हो जाय। मैं जैसा हूँ, वैसे ही तुम भी हो जाओ।।१५-१६।।

ब्राह्मी माहेश्वरी चैव वैष्णवी चैव या तनुः ।
एकः स पुरुषो भूत्वा कारणादुद्वहा स्थितिः ॥१७॥
एतज्ज्ञात्वा महाज्ञानं ज्ञात्वा मामात्मनस्तनुम् ।
अत्रैव देव! तिष्ठ त्वं विमुक्तो ब्रह्महत्यया ॥१८॥
अविमुक्त इहागत्य मुक्तस्त्वं पाप्मना यथा ।
अविमुक्तं तथा नाम्ना क्षेत्रमेतद् भविष्यति ॥१९॥
ये क्रोशपरिमाणे तु ह्यस्मिन् क्षेत्रे नराः स्थिताः ।
आवयोः प्रणमस्यन्ति ते भविष्यन्त्यकल्मषाः ॥२०॥

ब्राह्मी, माहेश्वरी तथा वैष्णवी जो तनु है, वह एक ही कारण से उद्भूत होकर स्थिति-विधान करती है। हे देव! यह महाज्ञान-लाभ करके मेरे तथा अपने तनु को एक जानकर ब्रह्महत्या से मुक्त होकर तुम यहाँ अवस्थान करो। अविमुक्त अवस्था में यहाँ आकर तुम पाप से मुक्त हो गये हो, अतएव यह क्षेत्र अविमुक्त कहा जायेगा। इस क्षेत्र के क्रोशपरिणाम में जो लोग हम दोनों को प्रणाम करेंगे, वे अकल्मष तथा पापरहित हो जायेंगे।।१७-२०।।

पठन् श्रृण्वंस्तथा चेमं पुण्यं संवादमावयोः ।
किल्विषाच्च विमुच्येते मुच्यते च महाभयात् ॥२१॥
चक्षुपीडा मनःपीड़ा ग्रहपीड़ा तथैव च ।
शमयेदेकजप्येन दुःस्वप्नं शमयेत्तथा ॥२२॥

इति श्रीशाम्बपुराणे माहेश्वरस्तोत्रं नाम सप्तदशोऽध्यायः

●

हमारे इस पुण्यमय संवाद को जो पढ़ेंगे अथवा सुनेंगे, वे पाप से मुक्त होंगे तथा महान् भय से भी मुक्त होंगे। नेत्रपीड़ा, मनःपीड़ा तथा ग्रहपीड़ा का इस स्तुति के एक बार जप से ही शमन हो जायेगा तथा दुःस्वप्न नष्ट होंगे।।२१-२२।।

श्री साम्बपुराण का माहेश्वर स्तुति नामक सप्तदश अध्याय समाप्त

●

अष्टादशोऽध्यायः

(देवताख्यापनम्)

नारद उवाच

अतो व्योमं प्रवक्ष्यामि यत्रोत्पन्नं यथा च यत्।
अण्डैः हिरण्यगर्भस्य यदल्पं गर्भसंज्ञितम्॥१॥
तत्रोत्पन्नमिदं व्योम कपाले द्योमहीमये।
अथोल्बणः काञ्चनमयश्चतुरस्त्रोऽङ्घ्रितो महान्॥२॥
उत्पन्नः स चतुःशृङ्गो मेरुर्दैवतसंश्रयः।
दिक्पद्मपत्रा पृथिवी मेरुस्तस्याश्च कर्णिका॥३॥

नारद कहते हैं—अब व्योम (आकाश) की कथा कहूँगा। इसकी उत्पत्ति जहाँ से जिस प्रकार से होती है, अब उसे कहूँगा। हिरण्यगर्भ के अण्डसमूह द्वारा अथवा अल्प गर्भ नामक स्थान से यह व्योम उत्पन्न हुआ है। स्वर्ग तथा पृथ्वी इसके दो हिस्से हैं (जैसे घड़े के दो हिस्से (कपाल) होते हैं, उसी प्रकार)। तदनन्तर अति उज्ज्वल स्वर्णमय महान् चतुरस्त्र चरणों से उत्पन्न हुआ। यह है—चार शृङ्गयुक्त मेरु अथवा देवगण का आश्रयस्थल। इसकी सभी दिशायें पद्मपत्रतुल्य हैं, पृथिवी तथा मेरु उसकी कर्णिका हैं।।१-३।।

युगाक्षकोटिविन्यस्तं तत्र कृत्वा रथं रविः।
सर्वैर्देवैः परिवृतस्तस्य याति प्रदक्षिणम्॥४॥

वहाँ रवि युगाक्षकोटि विन्यस्त रथ का निर्माण करके देवगण के साथ परिवृत होकर उस पर्वत की प्रदक्षिणा करते हैं।।४।।

तस्मिन् मेरौ त्रयस्त्रिंशद् वसन्ते याज्ञिकाः सुराः।
रुद्रा एकादश ज्ञेया आदित्या द्वादशैव तु॥५॥
तथैव वसवो ह्यष्टावश्विनौ चैव याज्ञिकौ।
वसून् वदन्ति हि पितृन् रुद्रस्त्वेव पितामहान्॥६॥
प्रपितामहाश्च आदित्यानाश्विनावात्मनस्तनुम्।
पितृन् भूयः प्रवक्ष्यामि ऋतुसंवत्सरार्तवान्॥७॥

उस मेरु पर ३३ याज्ञिक देवता वास करते हैं। ११ रुद्र, १२ आदित्य, आठ वसु एवं अश्विनीकुमारद्वय वहाँ यज्ञिक हैं। सब मिलाकर ३३ होते हैं पितृपुरुष। रुद्रगण के पितामह हैं, आदित्य गण के प्रपितामह हैं तथा अश्विनीकुमारद्वय को निज-तनु कहा गया है। अब पितृगण, ऋतु, संवत्सर तथा ऋतुजात द्रव्यादि का प्रसङ्ग कहा जायेगा।।५-७।।

अतो यज्ञभुजामेषां पृथङ्नामानि मे शृणु।
अजैकपादहिर्बुध्न्यस्त्वष्टा रुद्रश्च वीर्यवान् ॥८॥
हरश्चैवाथ शर्वश्च त्र्यम्बकश्चापराजितः।
वृषाकपिश्च शम्भुश्च कपर्दी रैवतस्तथा ॥९॥
ईश्वरो भुवनस्येति रुद्रा एकादश स्मृताः।

अब यज्ञभुक् (जो यज्ञ का भाग लेते हैं) देवता का नाम मुझसे सुनो—अज, एकपात्, अहिर्बुध्न्य (स्त्रष्टा तथा वीर्यवान्), रुद्र, हर, शर्व (अपराजित), त्र्यम्बक, वृषाकपि, शम्भु, कपर्दी, रैवत। ये ११ रुद्र भुवन के ईश्वर कहे गये हैं।।८-९।।

आदित्यानां तु नामानि विष्णुः शक्रश्च वीर्यवान् ॥१०॥
अर्यमा चैव धाता च मित्रोऽथ वरुणस्तथा।
विवस्वान् सविता चैव पूषा त्वष्टा तथैव च ॥११॥
अंशुर्भगश्चातितेजा आदित्या द्वादश स्मृताः।
धरो ध्रुवश्च सोमश्च आपश्चैवानिलोऽनलः ॥१२॥
प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवोऽष्टौ प्रकीर्त्तिताः।
नासत्यश्चैव दस्रश्च स्मृतौ द्वावश्विनावपि।

आदित्यगण के नाम हैं—विष्णु, वीर्यवान्, शक्र, अर्यमा, धाता, मित्र, वरुण, विवस्वान्, सविता, पूषा, त्वष्टा, अंशु तथा भग। ये सभी अति तेजस्वी द्वादश आदित्य कहे गये हैं। अब अष्टवसु का नाम सुनो—धर, ध्रुव, सोम, आप, अनिल, अनल, प्रत्यूष एवं प्रभात। नासत्य तथा दस्र—ये दो अश्विनीकुमार हैं।।१०-१२।।

विश्वेदेवान् प्रवक्ष्यामि नामभिस्तान्निबोध मे ॥१३॥
क्रतुर्दक्षो वसुः सत्यः कालः कामो धुरिस्तथा।
लोचनश्चार्दवश्चैव पुरुरव इमे दश ॥१४॥

अब विश्वेदेव का नाम कहता हूँ, मुझसे सुनो। क्रतु, दक्ष, वसु, सत्य, काल, काम, धुरि, लोचन, आर्दव तथा पुरुरव—ये दस विश्वेदेव कहे गये हैं।।१३-१४।।

वर्त्तमाना इमे देवाः शृणु मन्वन्तरे भवान्।
याम्याश्च तुषिताश्चैव तथैव वशवर्त्तिनः ॥१५॥
सत्याश्च भूतरजसः साध्याश्च तदनन्तरम्।
उक्तमन्वन्तरेष्वेव देवा द्वादश द्वादश ॥१६॥
पारावतास्तथा त्वन्ये साध्याश्च तुषितैः सह।
साध्यान् देवान् प्रवक्ष्यामि नामभिस्तान् निबोध मे ॥१७॥

अब मन्वन्तर की बात सुनो। याम्य, तुषित, वशवर्त्ती, सत्य, भूतरज, साध्यगण। उक्त मन्वन्तर समूह के १२-१२ देवता हैं। पारावत एवं तुषित गण के साथ अन्य साध्यगण हैं। साध्य देवताओं का नाम कहता हूँ; सुनो।।१५-१७।।

मनोऽनुमन्ता प्रापश्च नरो नारायणस्तथा।
वृत्तिस्तपो हयश्चैव हंसो धर्मश्च वीर्यवान्॥१८॥
विष्णुश्चापि प्रभुश्चैव साध्या द्वादश कीर्त्तिताः।
एवं यज्ञभुजो देवा नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठिताः॥१९॥
अतीतान् वर्त्तमानांश्च पुनश्चैव निबोध मे।
आदित्या मरुतो रुद्राः कश्यपस्यात्मजाः स्मृताः॥२०॥

मन, अनुमन्ता, प्राण, नर, नारायण, वृत्ति, तप, हय, हंस, वीर्यवान्, धर्म, विष्णु तथा प्रभु—ये १२ साध्य कहे गये हैं। यज्ञभुक् देवगण नित्य यज्ञ में प्रतिष्ठित हैं। अतीत एवं वर्त्तमान (देवगण की बात) मुझसे सुनो। आदित्यगण, मरुद्गण, रुद्रगण कश्यप के आत्मज हैं।।१८-२०।।

विश्वे च वसवः साध्या विज्ञेया धर्मसूनवः।
एवं धर्मसुतः सोमस्तृतीयो वसुरुच्यते॥२१॥
धर्मोऽपि ब्रह्मणः पुत्रः पुराणे विश्रुतो मतः।
अथेन्द्रांश्च मनूंश्चैव नामभिस्तु निबोध मे॥२२॥

विश्वेदेवगण, वसुगण तथा साध्यगण को धर्मपुत्ररूप से जानना चाहिये। इसी प्रकार से धर्मपुत्र सोम को तृतीय वसु कहा गया है। धर्म भी ब्रह्मा के पुत्र हैं। यह पुराण में कहा गया है। अब इन्द्रों का तथा मनुगण का नाम सुनो।।२१-२२।।

स्वायम्भुवो मनुः पूर्वं ततः स्वारोचिषः स्मृतः।
औत्तमिस्तामसश्चैव रैवतश्चाक्षुषस्तथा॥२३॥
इत्येते षडतिक्रान्ताः सप्तमः साम्प्रतो मनुः।
वैवस्वत इति ज्ञेया भविष्याः सप्त चापरे॥२४॥
तेषामाद्योऽर्कसावर्णिर्ब्रह्मसावर्णिरेव च।
तस्माच्च भवसावर्णिर्धर्मसावर्णिरित्यतः॥२५॥
पञ्चमो दक्षसावर्णिः पञ्च सावर्णयः स्मृताः।
रौत्यो भौत्यश्च द्वावन्त्यावित्येते मनवः स्मृता॥२६॥

प्रथम स्वायम्भुव मनु एवं तत्पश्चात् स्वरोचिष मनु प्रसिद्ध हैं। औत्तमि, तामस, रैवत तथा चाक्षुष—ये छः मनु अतिक्रान्त हो चुके हैं। सम्प्रति सप्तम मनु वैवस्वत हैं। तदनन्तर भविष्यत् के सात मनु हैं। उनमें प्रथम हैं—अर्कसावर्णि, ब्रह्मसावर्णि, भवसावर्णि,

धर्मसावर्णि, दक्षसावर्णि—ये पञ्च सावर्णि हैं। शेष दो लोग हैं—रौत्य तथा भौत्य। ये सब मनुगण हैं।।२३-२६।।

इन्द्रस्तु विष्णुर्विज्ञेयो विपश्चित्तदनन्तरम्।
अद्भुतस्त्रिदिवश्चैव दशमस्त्विन्द्र उच्यते।।२७।।
सुशान्तिश्च सुकीर्तिश्च ऋतुधामा दिवस्पतिः।
इति भूता भविष्याश्च ज्ञेया इन्द्राश्चतुर्दश।।२८।।
कश्यपोऽत्रिर्वशिष्ठश्च भरद्वाजोऽथ गौतमः।
विश्वामित्रो जमदग्निश्च सप्तैते ऋषयः स्मृता।।२९।।

इन्द्र को विष्णु जानना चाहिये। तदनन्तर विपश्चित्, अद्भुत एवं त्रिदिव को दशम इन्द्र कहा गया है। सुशान्ति, सुकीर्त्ति, ऋतुधामा तथा दिवस्पति—ये अतीत के इन्द्र थे। भविष्यत् के इन्द्र चौदह हैं। कश्यप, अत्रि, वशिष्ठ, भरद्वाज, गौतम, विश्वामित्र तथा जमदग्नि ये सात प्रसिद्ध ऋषि हैं।।२७-२९।।

अतः परं प्रवक्ष्यामि मरुतोऽग्नीन् पितॄन् ग्रहान्।
प्रवहोऽथावहश्चैव उद्वहः संवहस्तथा।।३०।।
विवाहो निवहश्चैव परिवाहस्तथैव च।
अन्तरिक्षचरा ह्येते पृथङ्मार्गविचारिणः।।३१।।

अब मरुद्गण, अग्निसमूह, पितृगण, सभी ग्रह, प्रवह, आवह, उद्वह, संवह, विवाह, निवह एवं परिवाह—ये पृथक्-पृथक् पथ में विचरणशील अन्तरिक्षचारी हैं।।३०-३१।।

महेन्द्रेण प्रभिन्नाङ्गा मरुतः सप्त कीर्त्तिताः।।३२।।

महेन्द्र द्वारा किये गये भिन्न-भिन्न अंगों के कारण मरुद्गण सात कहे गये हैं।।३२।।

शौराग्निः शुचिनामा तु वैद्युतः पावकः स्मृतः।
निर्मथ्यपरमोऽन्योऽग्निस्त्रयः प्रोक्ता इमेऽग्नयः।।३३।।

शुचिनामक शौराग्नि, वैद्युताग्नि पावक हैं। अपर निर्मथ्यमान (अरणि काष्ठ के मन्थनजनित अग्नि) अग्नि, ये तीन अग्नि कही गयी हैं।।३३।।

अग्नीनां पुत्रपौत्रांश्च चत्वारिंशन्नवैव तु।
मरुतामपि सर्वेषां विज्ञेयाः सप्तसप्तकाः।।३४।।

अग्नि के पुत्र तथा पौत्रगण चालीस हैं तथा ऐसे ही मरुद्गण भी उनचास हैं।।३४।।

एवं संवत्सरो ह्यग्निर्ऋतवस्तस्य जज्ञिरे।
ऋतुपुत्रार्त्तवाः पञ्च इति सर्गः सनातनः।।३५।।

इसी प्रकार संवत्सर की अग्नि से ऋतुगण उत्पन्न होते हैं। ऋतुपुत्र पाँच आर्त्तवगण नित्य सर्ग से उत्पन्न हैं।।३५।।

संवत्सरस्तु प्रथमो द्वितीयः परिवत्सरः।
इद्वत्सरस्तृतीयश्च चतुर्थस्त्वनुवत्सरः ।।३६।।
पञ्चमो वत्सरस्तेषां वायुश्चैवानुवत्सरः।
तेषु संवत्सरो ह्यग्निः सूर्यस्तु परिवत्सरः ।।३७।।
सोम इद्वत्सरस्तेषां वायुश्चैवानुवत्सरः।
रुद्रस्तु वत्सरो ज्ञेयः पश्चाद्वायोर्युगात्मकाः ।।३८।।

संवत्सर अग्नि प्रथम है। द्वितीय परिवत्सर है। तृतीय इद्वत्सर, चतुर्थ अनुवत्सर एवं पञ्चम है—वत्सर। इनमें वायु है—अनुवत्सर, संवत्सर है—अग्नि, सूर्य है—परिवत्सर, सोम है—इद्वत्सर एवं रुद्र को वत्सर कहा गया है। तदनन्तर वायु के युगात्मकगण आगे कहते हैं।।३६-३८।।

आर्त्तवाः पितरो ज्ञेया ये जाता ऋतुसूनवः।
पितामहास्तु ऋतवो मासा वै सोमसूनवः ।।३९।।
प्रपितामहाश्च ऋतवः पश्चाद्वा ब्रह्मणः सुताः।
सौम्या बर्हिषदश्चैव अग्निष्वात्ताश्च ते त्रिधा ।।४०।।
आदित्यश्चैव सोमश्च लोहिताङ्गो बुधस्तथा।
बृहस्पतिश्च शुक्रश्च तथा चैव शनैश्चरः ।।४१।।
राहुश्च धूमकेतुश्च इत्येते वै नवग्रहाः।
त्रैलोक्यस्य त्विमे नित्यं भावाभावनिवेदकाः ।।४२।।

ऋतुपुत्र आर्त्तवगण को पितृपुरुष जानना चाहिये। पितामह हैं—ऋतुगण, मास हैं—सोमपुत्र। प्रपितामह ऋतुगण हैं, पश्चात् हैं—ब्रह्मपुत्रगण। सौम्य, बर्हिषद् एवं अग्निष्वात्त—ये तीन पितृपुरुष हैं। आदित्य (रवि), सोम (चन्द्र), लोहिताङ्ग (मंगल), बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनैश्चर राहु तथा केतु—ये नव ग्रह हैं। ये त्रिभुवन में नित्य शुभाशुभ के ज्ञापक हैं।।३९-४२।।

आदित्यश्चैव सोमश्च स्मृतौ द्वौ मङ्गलग्रहौ।
राहुश्छायाग्रहश्चैव शेषास्ताराग्रहाः स्मृताः ।।४३।।

रवि तथा चन्द्र—ये मंगल ग्रह कहे गये हैं। राहु है—छायाग्रह। अन्य सबको ताराग्रह कहा गया है।।४३।।

नक्षत्राधिपतिः सोमो ग्रहराजो दिवाकरः।
पठ्यते वाग्निरादित्यश्चाब्मयश्चन्द्रमाः स्मृतः ।।४४।।

नक्षत्र का अधिपति सोम है (चन्द्र है)। ग्रहराज हैं—दिवाकर। चन्द्रमा अग्नि तथा जलमय है।।४४।।

आदित्यः पठ्यते ब्रह्मा विष्णुस्तेषां च चन्द्रमाः ।
माहेश्वरस्तु विज्ञेयस्तृतीयोऽङ्गारको ग्रहः ।।४५।।

रवि हैं—ब्रह्मा, विष्णु हैं—चन्द्रमा एवं महेश्वर के पुत्र हैं—मंगल।।४५।।

कश्यपस्य सुतः सूर्यः सोमो धर्मसुतः स्मृतः ।
देवासुरगुरू द्वौ तु भानुमन्तौ महाग्रहौ ।।४६।।

कश्यप के पुत्र सूर्य हैं एवं चन्द्र धर्मपुत्र हैं। देव तथा असुरों के गुरु क्रमशः बृहस्पति तथा शुक्र हैं। ये उज्ज्वल महाग्रह हैं।।४६।।

प्रजापतिसुतावेतावुभौ शुक्रबृहस्पतिः ।
बुधः सोमात्मजः श्रीमान् सूर्यपुत्रः शनैश्चरः ।।४७।।

प्रजापति के पुत्र शुक्र तथा बृहस्पति हैं। बुध है—चन्द्रपुत्र तथा श्रीमान् शनैश्चर सूर्यपुत्र हैं।।४७।।

सैंहिकेयः स्मृतो राहुः केतुश्च ब्रह्मणः सुतः ।
सर्वेषां तु ग्रहाणां वै ह्यधस्ताच्चरते रविः ।।४८।।

राहु को सिंहिका का पुत्र तथा केतु को ब्रह्मा का पुत्र कहा गया है। समस्त ग्रहों के मध्य निम्न भाग में विचरणशील हैं—सूर्य।।४८।।

रवेरुर्ध्वं स्थितः सोमः सोमान्नक्षत्रमण्डलम् ।
नक्षत्रेभ्यो बुधस्तूर्ध्वं बुधादूर्ध्वं तु भार्गवः ।।४९।।
तस्मादङ्गारकश्चोर्ध्वं तस्य चोर्ध्वं बृहस्पतिः ।
तस्माच्छनैश्चरश्चोर्ध्वं तस्योर्ध्वमृषिमण्डलम् ।।५०।।

रवि के ऊपर सोम (चन्द्र) स्थित है। सोम के ऊपर नक्षत्रमण्डल है। नक्षत्र के ऊपर शुक्र हैं और उसके ऊर्ध्व में है—मंगल। उसके ऊर्ध्व में है—बृहस्पति। उसके ऊर्ध्व में शनि तथा उसके ऊर्ध्व में ऋषिमण्डल विराजमान है।।४९-५०।।

ऋषिभ्यश्च ध्रुवस्योर्ध्वमासनं कथितं बुधैः ।
आदित्यनिलये राहुः कदाचित् सोममार्गगः ।।५१।।
सूर्यमण्डलसंस्थस्तु केतुर्नित्यं प्रसर्पति ।
नवयोजनसाहस्रो विस्तारो भास्करस्य तु ।।५२।।
विस्तारात् त्रिगुणं चास्य परिणाहेन मण्डलम् ।
द्विगुणः सूर्यविस्ताराद् विस्तारः शशिनः स्मृतः ।।५३।।

ऋषियों से ऊर्ध्व में ध्रुव का आसन है। यह विद्वान् लोग कहते हैं। रविमण्डल में राहु अवस्थित है, जो कदाचित् सोम के पथ पर गमन करता है। सूर्यमण्डल-स्थित केतु नित्य सोममण्डल में गमन करता है। सूर्य का विस्तार ९००० योजन है। इस विस्तार से तीन गुणा परिणाह वाला मण्डल है। सूर्य के विस्तार का दूना चन्द्र का विस्तार कहा गया है।।५१-५३।।

विशेष—सूर्य से चन्द्र को दूना बताया गया है, यह सम्भव नहीं है।

त्रिगुणं मण्डलं चास्य यथैव सवितुस्तथा।
चन्द्रतः षोडशो भागो भार्गवस्य विधीयते।।५४।।
भार्गवात् पादहीनो वै विज्ञेयस्तु बृहस्पतिः।
बृहस्पतेः पादहीनौ कुजसौम्यावुदाहृतौ।।५५।।
विस्तारमण्डलाभ्यां च पादहीनस्तयोर्बुधः।
बुधतुल्यानि ऋक्षाणि सर्वह्रस्वानि यानि तु।।५६।।

चन्द्र का मण्डल सूर्य से तिगुना (?) विस्तृत है। चन्द्र के सोलहवें भाग की विस्तृति शुक्र की है। शुक्र का पादहीन विस्तार बृहस्पति का है। बृहस्पति के एक पादहीन विस्तार के बराबर मंगल तथा बुध हैं। बुध के समान ही समस्त नक्षत्रों का विस्तार है।।५४-५६।।

योजनार्धप्रमाणानि तेभ्यो ह्रस्वं न विद्यते।
राहुः सूर्यप्रमाणस्तु कदाचित् सोऽपि सम्मितः।
तस्माद् ग्रहप्रमाणन्तु केतुस्त्वनियतः स्मृतः।।५७।।

जो सब से हीन नक्षत्र है, उसका विस्तार आधा योजन प्रमाण है। उससे ह्रस्व कोई नक्षत्र नहीं है। राहु कभी-कभी सूर्यवत् प्रतीत होता है। तभी राहु को ग्रह मानते हैं। केतु का स्थान नियत नहीं है।।५७।।

भूर्लोकोऽथ भुवर्लोकः स्वर्लोकस्तदनन्तरम्।
महर्जनस्तपःसत्यं सप्तलोकाः प्रकीर्त्तिताः।।५८।।
भूरूपं पार्थिवो लोको ह्यन्तरिक्षं भुवः स्मृतः।
स्वरित्येवं दिवं विद्याच्छेषास्तूर्ध्वं यथाक्रमम्।।५९।।

भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपःलोक, सत्य लोक—ये सात लोक कहे गये हैं। भूलोक है—पार्थिव लोक, अन्तरिक्ष है—भुवर्लोक, स्वर्लोक है—द्युलोक। अन्य सबको यथाक्रम से ऊर्ध्वलोक जानना चाहिये।।५८-५९।।

भूतस्याधिपतिश्चाग्निस्ततो भूतपतिस्तु सः।
नभसोऽधिपतिर्वायुस्तेन वायुर्नभस्पतिः।।६०।।

गन्धर्वाप्सरसश्चैव गुह्यकाः सह राक्षसैः ।
भूर्लोकवासिनः सर्वेऽप्यन्तरिक्षचरान् शृणु ॥६१॥

भूलोकाधिपति हैं—अग्नि, इसीलिये अग्नि को भूतपति कहते हैं। नभोलोक के अधिपति हैं—वायु, तभी वे नभस्पति कहलाते हैं। स्वर्गलोकाधिपति हैं—सूर्य, अतः उन्हें दिवस्पति कहते हैं। गन्धर्व, अप्सरा, गुह्यक तथा राक्षस भूलोकवासी हैं। अब अन्तरिक्षचारियों की बात सुनो।।६०-६१।।

मरुतः सप्तभिः स्कन्धैः रुद्रास्तत्रैव चाश्विनौ ।
आदित्या वसवः स्वर्गे तत्रैव च गवां गणः ॥६२॥

मरुद्गण, सप्त स्कन्धगण, रुद्रगण तथा अश्विनीकुमारद्वय वहाँ अन्तरिक्ष में रहते हैं। आदित्यगण एवं वसुगण स्वर्ग में रहते हैं। वहीं गौ की भी स्थिति है।।६२।।

चतुर्थे च महर्लोके तिष्ठन्त्याकल्पवासिनः ।
प्रजानां पतिभिः सर्वैः सेव्यते पञ्चमो जनः ॥६३॥
मनुः सनत्कुमाराद्या वैराजश्च तपःस्थिताः ।
सत्यस्तु सप्तमो लोको ह्यपुनर्मार्गगतानिमान् ॥६४॥

चतुर्थ लोक महर्लोक में आकल्पवासी निवास करते हैं। सभी प्रजागण के पतिगण जनलोक में स्थित रहते हैं। वसु, सनत्कुमारादि तथा विराट-सम्बन्धित (वैराज) सभी तपलोक में अवस्थान करते हैं। सत्य सप्तम लोक में अवस्थित है। सभी मार्गगत लोकों का यही प्राप्ति-स्थान है।।६३-६४।।

ब्रह्मलोकः समाख्यातो ह्यप्रतीघातलक्षणः ।
महीतलां सहस्राणां शतादूर्ध्वं दिवाकरः ॥६५॥

यह जो सत्यलोक (ब्रह्मलोक) नाम से ख्यात है, वह विघ्नरहित स्थान है। महीतल (पृथ्वी) से शत सहस्र ऊर्ध्व में दिवाकर स्थित हैं।।६५।।

दश तानि ध्रुवं यावद् द्विगुणाद् द्विगुणोत्तरे ।
दश योजनकोट्यस्तु भूमेरुर्ध्वं ध्रुवः स्मृतः ॥६६॥

ये दस लोक ध्रुव लोक-पर्यन्त द्विगुण से लेकर उत्तरोत्तर द्विगुण वर्धित होते हैं। भूमि से ऊर्ध्व में दश योजन कोटि ध्रुवलोक को कहा गया है।।६६।।

त्रयोविंशतिलक्षाणि त्रैलोक्यात् संघ उच्यते ।
द्विगुणेषु सहस्रेषु योजनानां शतेषु च ॥६७॥

तेईस लाख त्रैलोक्य की उच्चता कही गई है। उसका द्विगुण है—शत सहस्र योजन।।६७।।

लोकोत्तरमथैकैकं ध्रुवादूर्ध्वं विधीयते।
देवदानवगन्धर्वयक्षराक्षसपन्नगाः।
भूता विद्याधराश्चैव अष्टौ ते देवयोनयः॥६८॥
अस्मिन्व्योम्नि त्वमी लोकाः सप्तैव सम्प्रतिष्ठिताः।
मरुतः पितरो छन्दास्तस्मिन्नेवाग्नयो ग्रहाः॥६९॥
ये चाप्येते समाख्याता मयाष्टौ देवयोनयः।
मूर्तयोऽमूर्त्तयश्चैव सर्वे ते व्योम्न्यवस्थिताः॥७०॥
एवंविधमिदं व्योम सर्वदेवमयं स्मृतम्।
सर्वभूतमयं चैव सर्वश्रुतिमयं तथा॥७१॥
तस्माद् योऽर्चयते व्योम तेन सर्वेऽर्चिताः पुराः।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन शुभार्थी व्योम पूजयेत्॥७२॥

इति श्री साम्बपुराणे देवतोपाख्यापनं नामाष्टादशोऽध्यायः

●

ध्रुवलोक के ऊर्ध्व में एक लोक है। देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, पन्नग, भूत तथा विद्याधर—यह आठ देवयोनि है। उस व्योम में यह सप्तलोक प्रतिष्ठित हैं। मरुद्गण, पितृगण, मेघसमूह, अग्नि तथा सभी ग्रह वहाँ अवस्थित हैं।

इस प्रकार यह व्योम सर्वदेवमय है। यह सर्वभूतमय तथा सर्वश्रुतिमय है। अतएव जो व्योम की अर्चना करते हैं, वे समस्त देवों की अर्चना करते हैं। अत: मंगलकामी व्यक्ति को सर्वप्रयास के साथ व्योम का पूजन करना चाहिये।।६८-७२।।

श्री साम्बपुराण का देवतोपाख्यान नामक अष्टादश अध्याय समाप्त

●

एकोनविंशोऽध्यायः

(व्योमोत्पत्तिः)

नारद उवाच

आकाशं खं वियद्व्योम चान्तरिक्षं नभोऽम्बरम्।
पुष्करं गगनं चेति मेरुस्तत्रैव कीर्त्यते ।।१।।
मेरुश्च पृथिवीमध्ये समन्तात्तस्य मेदिनी।
भूमेर्द्वीपविभागस्तु प्रवक्ष्यामि समन्ततः ।।२।।

आकाश, खं, वियत्, व्योम, अन्तरिक्ष, नभ, पुष्कर तथा गगन—यह सब आकाश के पर्याय हैं। वहीं मेरु भी कीर्त्तित है। यह पृथिवी के मध्य में है। उसके चारो ओर मेदिनी (पृथिवी) है। चारो ओर भूमि का द्वीपविभाग है।।१-२।।

जम्बूशककुशद्वीपक्रौञ्चगोमेदकानि च।
शाल्मलीपुष्कराख्ये च सप्तद्वीपानि भागशः ।।३।।
लवणक्षीरदध्यम्बुघृतोदेक्षुरसोदकाः ।
स्वादूदकश्च सप्तैते समुद्राः परिकीर्त्तिता ।।४।।

जम्बू, शक, कुश, क्रौञ्च, गोमेध, शाल्मलि तथा पुष्कर नामक सात द्वीप कहे गये हैं। लवण, क्षीर, दध्यम्बु, घृतोद, इक्षु, रसोदक तथा स्वादूदक नामक सात समुद्र कहे गये हैं।।३-४।।

हिमवान् हेमकूटश्च निषधो नील एव च।
श्वेतश्च शृङ्गवांश्चैव षडेते वर्षपर्वताः ।।५।।

हिमवान्, हेमकूट, निषध, नील, श्वेत तथा शृङ्गवान्—ये छः वर्ष पर्वत कहे गये हैं।।५।।

मानसः सप्तमस्तेषां पुर्योऽष्टौ यत्र संस्थिताः।
माहेन्द्री चाप्यथाग्नेयी याम्या च नैर्ऋती तथा ।।६।।
वारुणी वायवी चैव सौम्येशानी तथैव च।
मानसान्निर्जला भूमिर्लोकालोकस्ततो गिरिः ।।७।।

तदनन्तर सप्तम है—मानस पर्वत। वहाँ आठ नगरी विद्यमान है। माहेन्द्री, आग्नेयी, याम्या, नैर्ऋती, वारुणी, वायवी, सौम्या तथा ईशानी—ये आठ नगरी हैं। मानस पर्वत से आगे निर्जला भूमि है और उसके आगे है—लोकालोक पर्वत।।६-७।।

ततस्त्वण्डकपालं तु तस्माच्च परतस्तमः ।
ततोऽग्निर्वायुराकाशं ततो भूतादिरुच्यते ॥८॥
ततो महान् प्रधानं च प्रकृतिः पुरुषस्ततः ।
पुरुषादीश्वरो ज्ञेय ईश्वरेणावृतं जगत् ॥९॥

तदनन्तर अण्डकपाल उसके बाद अन्धकार है। उसके आगे अग्नि, वायु, आकाश, तदनन्तर भूतादि हैं। तदनन्तर महान्, प्रधान एवं प्रकृति है। उसके पश्चात् पुरुष है और उस पुरुष से आगे ईश्वर अवस्थित है। उसी ईश्वर के द्वारा यह जगत् आवृत है।।८-९।।

ऊर्ध्वं मध्यमधश्चैते प्राङ्मया ये प्रकीर्त्तिता ।
भूयस्तान् सम्प्रवक्ष्यामि ह्यण्डावरणकारणात् ॥१०॥

ऊर्ध्व, मध्य एवं अध:—यह मैंने पहले कह दिया है। अण्ड के आवरण का कारण कहकर पुन: उसकी बात कहूँगा।।१०।।

भूर्लोकश्च भुवश्चैव तृतीयः स्वः प्रकीर्त्तितः ।
महर्जनस्तपः सत्यं सप्तलोकाः प्रकीर्त्तिताः ॥११॥

भूलोक, भुवर्लोक तथा तृतीय स्वर्गलोक कहा गया है। मह, जन, तप, सत्य—ये सात लोक प्रसिद्ध हैं।।११।।

ततस्त्वण्डकपाले च तस्माच्च परतस्तमः ।
ततोऽग्निर्वायुराकाशः ततो भूतादिरुच्यते ॥१२॥

तदनन्तर अण्डकपाल एवं तत्पश्चात् अन्धकार की स्थिति है, तत्पश्चात् अग्नि, वायु, आकाश एवं तदनन्तर भूतादि की स्थिति कही जाती है।।१२।।

ततो महान् प्रधानं च प्रकृतिः पुरुषस्ततः ।
पुरुषादीश्वरो ज्ञेय ईश्वरेणावृतं जगत् ॥१३॥

तदनन्तर महान्, प्रधान तथा प्रकृति; तदनन्तर पुरुष। पुरुष के पश्चात् ईश्वर, ईश्वर के द्वारा जगत् आवृत है।।१३।।

भूमेरधस्तात् सप्तैव लोकांस्तान्नामभिः शृणु ।
ततः सुतलपातालौ तमस्तालस्ततः परः ॥१४॥
सुशालश्च विशालश्च सप्तमश्च रसातलः ॥१५॥

भूमि के निम्न भाग के सात लोकों के नाम सुनो। भूमि के नीचे सुतल, पाताल, तम, ताल, सुशाल, विशाल एवं सप्तम है—रसातल।।१४-१५।।

ततो महान् प्रधानं च प्रकृतिः पुरुषस्ततः ।
पुरुषादीश्वरो ज्ञेय ईश्वरेणावृतं जगत् ॥१६॥

एवं मेरोः समन्तात्तु सर्वमेतत् प्रकीर्त्तितम्।
उत्पन्नं स चतुःशृङ्गः सुमेरुः शुद्धकाञ्चनः ॥१७॥
पृथिव्यां संस्थितो मध्ये सिद्धगन्धर्वसेवितः।
चतुर्भिः काञ्चनैः शृङ्गैर्दिव्यैर्देवमिवोल्लिखत् ॥१८॥

तदनन्तर महान्, प्रधान तथा प्रकृति; तदनन्तर पुरुष, पुरुष के परे ईश्वर, ईश्वर द्वारा समस्त जगत् आवृत रहता है। मेरु के चारो ओर यह सब है। चतुःशृङ्ग-विशिष्ट शुद्ध स्वर्णमय सुमेरु उत्पन्न है। यह पृथिवी के मध्य में है। यह सिद्ध तथा गन्धर्व द्वारा सेवित है। यह चार स्वर्णमय दिव्य शिखरों से युक्त है तथा इसे देवता के समान कहा गया है।।१६-१८।।

योजनानां सहस्राणि चतुराशीतिरुच्छ्रितः।
प्रवृष्टः षोडशाधस्तादष्टाविंशतिविस्तृतः ॥१९॥
विस्तरात् त्रिगुणश्चास्य परीणाहः समन्ततः।
तस्य सौमनसं नाम शृङ्गमेकं तु काञ्चनम् ॥२०॥

इसका एक शृङ्ग चौरासी हजार योजन उन्नत, सोलह सहस्र योजन वर्षणयोग्य स्थान एवं निम्न देश में अट्ठारह हजार योजन विस्तृत एवं विस्तार का तीन गुना चारो ओर फैला है। वह सौमनस नामक सुवर्णमय शृङ्ग है।।१९-२०।।

द्वितीयं पद्मरागाभं ज्योतिष्कं नामनामतः।
तृतीयं नामतश्चित्रं सर्वधातुमयं शुभम् ॥२१॥

द्वितीय शृङ्ग पर पद्मराग की प्रभातुल्य ज्योतिष्क नामक लोक विराजमान है। तृतीय शृङ्ग पर चित्रनामक सर्वधातुमय शुभ लोक है।।२१।।

चतुर्थं राजतं शुक्लं चान्द्रमासमिति स्मृतम्।
तस्य सौमनसं यत्तत् शृङ्गं जाम्बूनदं श्रुतम् ॥२२॥
तदेव चोदयन्नाम्ना यत्रोद्यन् दृश्यते रविः।
उत्तरेण परिक्रम्य जम्बूद्वीपे दिवाकरः ॥२३॥
दृश्यो भवति भूतानां शिखरं तत्समाश्रितः।
काञ्चनस्य च शृङ्गस्य तेजसार्कस्य चावृते ॥२४॥

चतुर्थ चाँदी के समान शृङ्ग पर शुक्ल चान्द्र लोक ख्यात है। उसका जो सौमनस्य शृङ्ग है, वह जाम्बूनद नाम से प्रसिद्ध है। जो उदयाचल कहा गया है, वहाँ रवि दृष्ट होते हैं। उत्तर दिक् में परिक्रमा करके जम्बूद्वीप में उस शिखर का आश्रय लेकर दिवाकर प्राणियों को दृष्ट होते हैं। वह स्वर्णशृङ्ग सूर्यतेज से ढका है।।२३-२४।।

उभे सन्ध्ये प्रकाशेते आताम्रे पूर्वपश्चिमे ।
शृङ्गे सौमनसे सूर्ये ह्यत्तिष्ठत्युत्तरायणे ॥२५॥

उस सौमनस शृङ्ग पर उत्तरायण में सूर्य के आने पर प्रातः तथा सायंकाल में पूर्व तथा पश्चिम दिक् में सूर्य ताम्रवर्ण दिखलाई पड़ता है।।२५।।

ज्योतिष्के दक्षिणे चापि विषुवे मध्यगस्तयोः ।
तस्येशानेऽभवत्सर्वः शृङ्गेऽग्निः पूर्वदक्षिणे ॥२६॥

सूर्य के दक्षिण दिशा (दक्षिणायन में जाने पर)······पूर्व तथा पश्चिम दिक् शुभ्र अग्निवर्ण के हो जाते हैं।।२६।।

नैर्ऋत्ये पितरो ज्ञेयो वायव्ये मरुतस्तथा ।
मध्ये नारायणः साक्षाद् ब्रह्मज्योतींषि चैव हि ।
आदित्यः स्वेन रूपेण तस्मिन् व्योम्नि प्रतिष्ठितः ॥२७॥

इति श्री साम्बपुराणे व्योमोत्पत्तिनर्मिकोनविंशोऽध्यायः

●

नैर्ऋत्य में पितरों का एवं वायव्य में मरुद्गणों का स्थान है तथा मध्य में साक्षात् नारायण विराजमान हैं, जो ब्रह्मज्योतिःस्वरूप हैं। उसी आकाश में सूर्य अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित है।।२७।।

श्री साम्बपुराण का व्योमोत्पत्ति नामक उनविंश अध्याय समाप्त

●

विंशोऽध्यायः

(सूर्यपरिक्रमणम्)

नारद उवाच

अथ हेममयस्यास्य मेरोः प्रतिदिशं स्थिताः।
चतुर्णां लोकपालानां पूर्यस्तान्नामभिः श्रृणु ।।१।।

नारद कहते हैं—हेममय इस मेरु के प्रत्येक दिशा में स्थित चार लोकपालों की नगरी विद्यमान है। अब उनके नाम सुनो।।१।।

प्राच्यां दिशि सुमेरोस्तु महेन्द्रस्यामरावती।
दक्षिणे तु पुनर्मेरोर्यमस्य यमनीपुरी ।।२।।
प्रतीच्यां तु पुनर्मेरोर्वरुणस्य सुखापुरी।
दिश्युत्तरस्यां मेरोस्तु सोमस्यापि विभापुरी ।।३।।
मध्याह्नं मध्यरात्रं च उदयास्तमने तथा।
कुर्वंश्चतुर्षु पार्श्वेषु तपत्येष हि भास्करः ।।४।।

सुमेरु के पूर्व की ओर महेन्द्र की अमरावती नगरी विद्यमान है। मेरु के दक्षिण में यमनी नामक यम की पुरी है। मेरु के पश्चिम में वरुण की सुखा नामक पुरी है और मेरु के उत्तर की ओर सोम की विभानामक पुरी स्थित है। उदय तथा अस्तगमन काल में मध्याह्न तथा मध्यरात्र (अर्थात् उदयकाल के दिवाभाग में मध्याह्न तथा अस्तगमनकाल में रात्रि में मध्यरात्र) का सम्पादन करके चारो ओर भास्कर ताप-दान करते हैं।।२-४।।

मध्यगश्चामरावत्यां यदा भवति भास्करः।
वैवस्वते संयमने चोत्तिष्ठन् दृश्यते तदा ।।५।।

जब सूर्य अमरावती के मध्यगामी होता है, तब वैवस्वत (सूर्य) सयमनी पुरी से उठते हैं तथा दिखलाई पड़ते हैं।।५।।

सुखायामर्धरात्रं तु विभायामस्तमेति च।
वैवस्वते संयमने मध्यगस्तु रविर्यदा ।।६।।
सुखायामथ वारुण्यामुत्तिष्ठन् दृश्यते तदा।
विभायामर्धरात्रं तु माहेन्द्र्यामस्तमेति च ।।७।।
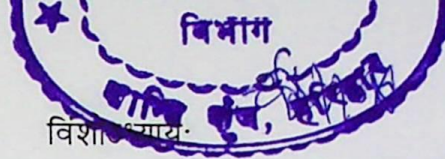
सुखा (वरुणपुरी) में आधी रात को तथा विभा (सोम की पुरी) में सूर्य अस्त होते हैं। वैवस्वत संयमनी पुरी में जब मध्यगामी होते हैं तब वरुण की सुखा पुरी में उदित सूर्य दृश्यमान होते हैं। किन्तु तब विभा में अर्धरात्रि होती है एवं माहेन्द्र (अमरावती) पुरी में सूर्य का अस्तगमन होता है।।६-७।।

सुखायां चापि वारुण्यां मध्याह्ने चार्यमा यदा।
विभायां सोमपुर्यां स उत्तिष्ठति विभावसुः ।।८।।

सुखा नामक वरुण की पुरी में जब मध्याह्न में अर्यमा (सूर्य) रहते हैं तब विभा की सोमपुरी में विभावसु (सूर्य) उदित होते हैं।।८।।

रात्र्यर्धे त्वमरावत्यामस्तमेति यमस्य वै।
सोमपुर्यां विभायान्तु मध्याह्ने त्वर्यमा यदा ।।९।।

जब अमरावती में अर्द्धरात्रि होती है, तब यमपुरी में सूर्यास्त होता है। तब सोमपुरी विभा में मध्याह्न होता है।।९।।

माहेन्द्र्याममरावत्यामुत्तिष्ठति दिवाकरः।
अर्द्धरात्रं संयमने वारुण्यामस्तमेति च ।।१०।।

महेन्द्रपुरी अमरावती में जब दिवाकर उदित होते है, संयमनी में तब आधी रात होती है तथा वरुण की पुरी में सूर्यास्त होता है।।१०।।

एवं चतुर्षु पार्श्वेषु मेरोः कुर्वन् प्रदक्षिणाम्।
उदयास्तमने चासावुत्तिष्ठति पुनः पुनः ।।११।।

इस प्रकार मेरु के चारो ओर प्रदक्षिणा करते हुये अस्त होने के पश्चात् बार-बार सूर्य उदित होता है।।११।।

पूर्वाह्णे वापराह्णे च द्वौ द्वौ देवालयौ तु सः।
तपत्येकञ्च मध्याह्ने ताभिरेव गभस्तिभिः ।।१२।।

पूर्वाह्ण तथा अपराह्ण में वह सूर्य दो-दो देवालय एवं मध्याह्न में एक देवालय में सब किरणों द्वारा ताप प्रदान करते हैं।।१२।।

उदितो वर्धमानाभिरामध्याक्रान्तये रविः।
ततः परं ह्रसन्तीभिर्गौभिरस्तु नियच्छति ।।१३।।

रवि उदित होने पर (मेरु) अतिक्रम के लिये क्रमशः वर्द्धमान किरण प्रकाशित करके एवं तदनन्तर क्षीण किरणों के साथ अस्तगमन करता है।।१३।।

यत्रोद्यन् दृश्यते चैव स तेषामुदयः स्मृतः।
अदृश्यं गच्छते यत्र तेषामस्तं तदुद्यते ।।१४।।

सूर्य उदित होने पर जहाँ दृश्य होता है, उसे उदय कहते हैं तथा जहाँ अदृश्य होते हैं, उसे अस्त कहते हैं।।१४।।

विदूरभावादर्कस्य भूमिलेखागतस्य च।
लीयते रश्मयो यस्मात्तेन रात्रौ न दृश्यते ।।१५।।

भूमिरेखा से सूर्य के अतिदूर स्थित होने के कारण तथा रश्मिसमूह लीन होने के कारण रात में सूर्य दृश्य नहीं होता।।१५।।

लेखायामास्थितः सूर्यो यत्र यत्र प्रदृश्यते।
ऊर्ध्वं शतसहस्रं तु योजनानां स दृश्यते ।।१६।।

भूमि रेखा में अवस्थित सूर्य जहाँ-जहाँ दृश्य होता है, शतसहस्र योजन ऊर्ध्व में भी वह दृश्य होता है।।१६।।

एवं पुष्करमध्यन्तु यथा भवति भास्करः।
त्रिंशद्भागन्तु मेदिन्यां मुहूर्त्तेन स गच्छति ।।१७।।
पूर्णं शतसहस्राणामेकत्रिंशच्छताधिकम्।
निमेषान्तरमात्रेण दिवि सूर्यः प्रसर्पति ।।१८।।

जब सूर्य पुष्कर-मध्य में अवस्थान करते हैं, तब पृथ्वी का तीस भाग मुहूर्त्त में अतिक्रम करते हैं। पूर्ण, शत, सहस्र, एकत्रिंश शताधिक निमेषमात्र सूर्य आकाश में गमन करते हैं।।१७-१८।।

पञ्चाशता तथान्यानि सहस्राण्यधिकानि तु।
मौहूर्त्तिकी गति ह्येषा सूर्यस्य तु विधीयते ।।१९।।
योजनानां सहस्रे द्वे शते द्वे चैव योजने।
निमिषान्तरमात्रेण दिवि सूर्यः प्रसर्पति ।।२०।।

पञ्चशत तथा अन्य सहस्राधिक मौहूर्त्तिकी गति इस सूर्य की होती है। सूर्य निमेष मात्र में दो हजार दो सौ योजन गमन करते हैं।।१९-२०।।

.स शीघ्रमेव पर्येति भास्करोऽलातचक्रवत्।
भ्रमाद्यैर्भ्रममानेषु ऋक्षेषु विहरत्यसौ ।।२१।।

वह भास्कर शीघ्रता से अलातचक्र के समान परिभ्रमण करते-करते भ्रममाण नक्षत्रों में विहार करते हैं।।२१।।

इन्द्रः पूजयते सूर्यमुदयन्तं दिने दिने।
मध्याह्ने धर्मराजस्तु ह्यस्तं यान्तमपांपतिः ।।२२।।

इन्द्र प्रतिदिन उदीयमान सूर्य का पूजन करते हैं। मध्याह्न काल में धर्मराज पूजन करते हैं तथा अस्तगामी सूर्य का पूजन वरुण करते हैं।।२२।।

सोमस्तथार्धरात्रे तु कुबेरश्चैव सानुगः।
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च पूजयन्ति निशाक्षये ।।२३।।
एवमग्निर्निर्ऋतिश्च वायुरीशान एव च।
पूजयन्ति क्रमेणैव भ्रममाणं दिवाकरम् ।।२४।।

इति श्रीसाम्बपुराणे सूर्यस्य परिक्रमणं नाम विंशतितमोऽध्यायः

●

इसी प्रकार अर्द्धरात्रि में सोम एवं सानुग (अनुगामी गण के साथ) कुबेर पूजन करते हैं। रात्रि के शेष काल में ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव सूर्य का पूजन करते हैं। इसी प्रकार अग्नि, निर्ऋति (दक्षिण पश्चिम कोण के शासक देवता), वायु तथा ईशान (अष्टम रुद्र) क्रमशः भ्रममान सूर्य का पूजन करते हैं।।२३-२४।।

श्री साम्बपुराणोक्त सूर्यपरिक्रमा तथा देवपूजन नामक विंश अध्याय समाप्त

●

एकविंशोऽध्यायः

(आदित्यरथवर्णनम्)

नारद उवाच

अथ सूर्यरथस्यास्य सन्निवेशं निबोध मे।
स्यन्दते चैकचक्रेण पञ्चारेण त्रिणेमिना ॥१॥

नारद कहते हैं—अब सूर्यरथ का सन्निवेश कहता हूँ, मुझसे सुनो। एक चक्र, पाँच अर (चक्र की नाभि तथा नेमि में संयोजित काष्ठ) तथा तीन नाभि द्वारा वह परिचालित होता है।।१।।

हिरण्मयेन कान्तेन ह्यष्टचर्मैकनेमिना।
चक्रेण भास्वता चैव दिवि सूर्यं प्रसर्पति ॥२॥

हिरण्मय कान्तियुक्त अष्ट चर्म के नेमियुक्त उज्वल रथ द्वारा द्युलोक में सूर्य गमन करते हैं।।२।।

नवयोजनसाहस्रो विस्तारायाम उच्यते।
द्विगुणोऽस्य रथोपस्थादीषादण्डप्रमाणतः ॥३॥

नव योजन सहस्र (९०००) इसकी विस्तृति एवं विशालता कही गयी है तथा रथ से द्विगुण इषादण्ड का प्रमाण है (अक्ष तथा युगधारणार्थ दण्ड)।।३।।

धुरेऽस्यैव तु विस्तीर्णे अरुणो नाम सारथिः।
स तस्य ब्रह्मणा सृष्टो रथः संवत्सरात्मकः ॥४॥

इस विस्तीर्ण धूर का अरुण नामक सारथी है। उनका यह रथ ब्रह्मा द्वारा सृष्ट तथा संवत्सरात्मक है।।४।।

आसङ्गः काञ्चनो दिव्यो युक्तः परमगैर्हयैः।
छन्दोभिर्वाजिरूपैस्तैर्यतश्चक्रं ततः स्थितैः ॥५॥
तेनासौ सर्पते व्योम्नि भास्वता तु दिवस्पतिः ॥६॥

यह स्वर्णवर्ण के द्रुतगामी अश्वों से जुता रथ है। अश्वरूप छन्दों से आकाश को उद्भासित करने वाले इस रथ पर दिवाकर संक्रमण करते हैं।।५-६।।

अथ मारीचसूर्यस्य प्रत्यङ्गानि रथस्य तु।
संवत्सरास्यावयवैः कल्पितानि यथाक्रमम् ॥७॥

नाभ्यास्तिस्रस्तु चक्रस्य त्रयः कालाः प्रकीर्त्तिताः ।
आराः पञ्चार्तवास्तस्य नेमिः षड्ऋतवः स्मृताः ।।८।।
तथोर्व्यो तस्य चायने दक्षिणोत्तरे ।
मुहूर्त्ताश्च बन्धु रास्तस्य सव्यास्तस्य कलाः स्मृताः ।।९।।

मारीच सूर्य के रथ के अंगसमूह संवत्सर के अवयव के द्वारा यथाक्रम से कल्पित होते हैं। चक्र की तीन नाभि में तीन काल (भूत-भविष्यत् तथा वर्त्तमान) रहता है। जो अर हैं, वे पञ्च ऋतु हैं। नेमि को षड् ऋतु कहा है। उसकी दो डोरियाँ दक्षिण-उत्तर अयन हैं, धुरा मुहूर्त है एवं सव्य कलायें हैं।।७-९।।

तस्य काष्ठाः स्मृता घोणा ह्यक्षदण्डाः क्षणास्तु वै ।
निमेषाश्चानुकक्षाश्च ईषा चास्य लवाः स्मृताः ।।१०।।
नाभिर्धनूर्ध्वो धर्मस्य ऊर्ध्वं तस्य समुच्छ्रितः ।
युगाक्षकौ तु तौ तस्य चार्थकामावुभौ स्मृतौ ।।११।।

इसके काष्ठासमूह को (अष्टादश निमेषात्मक काल को) घोण तथा अक्षदण्ड-समूह को क्षण कहते हैं। निमेषसमूह को अनुकक्ष तथा ईषा को (रथावयव-विशेष को) लव कहा जाता है। नाभि के धनु के ऊर्ध्व को धर्म का ऊर्ध्व भाग कहते हैं। उसके युग को अर्थ तथा अक्ष को काम कहा गया है।।१०-११।।

अक्षरूपाणि च्छन्दांसि वहन्ते क्रमतो धुरम् ।
गायत्री चैव त्रिष्टुप् च जगत्यनुष्टुबेव च ।।१२।।
पंक्तिश्च बृहती चैव उष्णिगेव च सप्तमी ।
चक्रमक्षनिबद्धं तु ध्रुवे चाक्षः समर्थितः ।।१३।।

इसके अक्षरूप छन्द यथाक्रम से भार वहन करते हैं। गायत्री, त्रिष्टुप्, जगती, अनुष्टुप्, पंक्ति, बृहती तथा उष्णिक्—ये सात छन्द हैं। इसके चक्र से अक्षसमूह निबद्ध है तथा ध्रुव में अक्ष समर्थित है।।१२-१३।।

सहचक्रो भ्रमत्यक्षः स चाक्षो भ्रमति ध्रुवे ।
मोक्षः सहैव चक्रेण भ्रमतेऽसौ धुवेरितः ।।१४।।

चक्र के साथ अक्ष भ्रमण करता है और वह अक्ष धुव में भ्रमण करता है। ध्रुव के द्वारा परिचालित वह अक्ष चक्र के साथ भ्रमण करता है।।१४।।

एवमर्थवशात्तस्य सन्निवेशो रथस्य तु ।
तथा संसर्पते व्योम्नि संसिद्धो भास्करो रथः ।।१५।।

इस प्रकार प्रयोजनानुरूप सूर्यदेव का रथ सन्निवेशित है। आकाश में यह सिद्ध सूर्यरथ क्रमपूर्वक परिभ्रमण करता है।।१५।।

जेतासौ तु रविर्देवान्नभः संसर्पते तथा।
युगाक्षकोटिसम्बद्धे तस्य वै स्यन्दनस्य तु॥१६॥
ते भ्रमेते ध्रुवासक्ते तच्चक्रं युगयोस्तु वै।
भ्रमतो मण्डलान्यस्य खेचरस्य रथस्य तु॥१७॥

जयशील रवि देवगण को आकाश में परिचालित करते हैं। उनका रथ का युग कोटि अक्ष से सम्बद्ध है। चक्र तथा युग ध्रुव से आसक्त है। ऐसा आकाशगामी रथ मण्डलों में भ्रमण करता रहता है।।१६-१७।।

कुलालचक्रवद् भाति मण्डलं सर्वतोदिशम्।
रज्जुभ्यां प्रगृहीते ते चक्रे वै चेरतुर्ध्रुवे॥१८॥

यह मण्डल कुम्हार के चक्र के समान सभी दिशाओं को प्रकाशित करता है। रज्जु के द्वारा प्रगृहीत दो चक्र ध्रुव में विचरण करते रहते हैं।।१८।।

ह्रसेते तस्य रश्मी ते मण्डले दक्षिणायने।
उत्तरे त्वथ वर्धेते पुरा रश्मी युगे तु वै॥१९॥
तथैव बाह्यतः सूर्यो भ्रमते मण्डलानि तु।
अशीतिमण्डलशतं काष्ठयोरन्तरं तयोः।
स रथोऽधिष्ठितो देवैरादित्यै ऋषिभिस्तथा॥२०॥
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च सर्पग्रामणिराक्षसैः।
एते वसन्ति सूर्ये वै मासौ द्वौ द्वौ क्रमेण तु॥२१॥

दक्षिणायन में सूर्यरश्मि का ह्रास होता है। पुनः उत्तरायण में रश्मियुक्त होकर वृद्धि प्राप्त करता है। ऐसे ही सूर्य बाहर मण्डलों में भ्रमण करते हैं। उन काष्ठाद्वय के पार्थक्य से अशीति शत मण्डल होता है। देवगण, आदित्यगण तथा ऋषिगण, गन्धर्व, अप्सरा, सर्प, ग्रामणि तथा राक्षसों के साथ सूर्यदेव रथ पर अधिष्ठित रहते हैं। ये सभी क्रमशः दो-दो मास सूर्य के रथ में अवस्थान करते हैं।।१९-२१।।

धातार्यमा पुलस्त्यश्च पुलहश्च प्रजापतिः॥२२॥
उरगो वासुकिश्चैव कच्छनीरस्तथेरितः।
तुम्बुरुर्नारदश्चैव गन्धर्वौ गायतां वरौ॥२३॥
कृतस्थल्यप्सराश्चैव या तथा पुञ्जिकस्थली।
ग्रामण्यौ रथगृत्स्नश्च रथौजाश्चैव तावुभौ॥२४॥

धाता, अर्यमा, पुलस्त्य, पुलह, प्रजापति, सर्प, वासुकी, कच्छ, नीर, तुम्बुरु तथा नारद, गायन में श्रेष्ठ गन्धर्वद्वय, गायिका कृतस्थली, पुञ्जिकस्थली अप्सरायें, दो यातुधान, दो सर्प तथा व्याघ्र उस रथ पर रहते हैं।।२२-२४।।

रक्षो हेतिः प्रहेतिश्च यातुधानौ स्मृतावुभौ।
मधुमाधवयोरेष गणौ वसति भास्करे ॥२५॥

राक्षस हेति-प्रहेती—ये दो लोग यातुधान कहे गये हैं। मधु (चैत्र) तथा माधव (वैशाख) मास में गणलोग सूर्य में अवस्थान करते हैं।।२५।।

वसतो ग्रैष्मिकौ मासौ मित्रश्च वरुणश्च ह।
ऋषिरत्रिर्वशिष्ठश्च तक्षकोऽनन्त एव च ॥२६॥
मेनका सहजान्या च गन्धर्वौ च हहाहुहूः।
रथस्वनश्च ग्रामण्यौ रथचित्रश्च तावुभौ ॥२७॥

ग्रीष्म के दो मास में मित्र तथा वरुण वास करते हैं। ऋषि हैं—वशिष्ठ तथा अत्रि। सर्प हैं—तक्षक एवं अनन्त। मेनका तथा सहजन्या हैं—अप्सरा। हाहा-हूहू गन्धर्व हैं। रथस्वन तथा रथचित्र हैं—ग्रामणी।।२६-२७।।

पौरुषेयो वधश्चैव यातुधानौ च तावुभौ।
शुचिशुक्रौ तु द्वौ मासौ सूर्ये ह्येते वसन्ति वै ॥२८॥

पौरुषेय तथा वध—ये दो यातुधान हैं। शुचि तथा शुक्र (शुचि अर्थात् ज्येष्ठ, शुक्र अर्थात् आषाढ़) मास में ये सूर्य में वास करते हैं।।२८।।

अथ सूर्ये पुनस्त्वन्या निवसन्तिस्म देवताः।
इन्द्रश्चैव विवस्वांश्च अङ्गिरा भृगुरेव च ॥२९॥
एलापत्रस्तथा शङ्खपालः सर्पौ च तावुभौ।
विश्वावसूग्रसेनौ च प्रेतोऽसमरथस्तथा ॥३०॥
प्रम्लोचन्त्यप्सराश्चैवाऽनुम्लोचन्तीव ते शुभे।
यातुधानौ तथा सर्पौ व्याघ्रश्चैव स्मृतावुभौ ॥३१॥

तदनन्तर सूर्य में अन्य देवता वास करते हैं—इन्द्र तथा विवस्वान् देवता, अंगिरा तथा भृगु ऋषि, एलापत्र तथा शङ्खपाल सर्प, विश्वावसु, उग्रसेन, प्रेत, असमरथ, गन्धर्व, प्रम्लोचन्ती तथा अनुम्लोचन्ती शुभजनक अप्सरा, दो यातुधान, दो सर्प एवं व्याघ्र निवास करते हैं।।२९-३१।।

एते नभौ नभस्यौ च निवसन्ति दिवाकरे।
शरद्यन्याः पुनः शुभ्रा निवसन्तिस्म देवताः ॥३२॥

ये सभी श्रावण तथा भाद्र में सूर्य में निवास करते हैं। शरत् काल में अन्यान्य देवगण वास करते हैं।।३२।।

पर्जन्यश्चैव पूषा च भारद्वाजः सगौतमः।
चित्रसेनश्च गन्धर्वस्तथा वसुरुचिश्चयः॥३३॥
विश्वाची च घृताची च उभे तु पुण्यलक्षणे।
नागस्त्वैरावतश्चैव विश्रुतश्च धनञ्जयः॥३४॥
सेनजिच्च सुषेणश्च सेनानी ग्रामणीश्च तौ।
आपो वातश्च द्वावेतौ यातुधानौ प्रकीर्त्तितौ॥३५॥
वसन्त्येते तु वै सूर्ये ईषोर्जौ कालपर्ययात्।

पर्जन्य तथा पूषा देवता, भारद्वाज तथा गौतम ऋषि, गन्धर्वगण, चित्रसेन, रुचि तथा चय नामक वसुद्वय, पुण्यलक्षणा विश्वाची तथा घृताची अप्सरा, नाग तथा ऐरावत, विश्रुत एवं धनञ्जय, सेनजित् सुषेण-सेनानी तथा ग्रामरक्षक, अप तथा वात—ये दो यातुधान। ये सभी कालक्रम से आश्विन एवं कार्तिक में सूर्य में निवास करते हैं।।३३-३५।।

हैमन्तिकौ तु द्वौ मासौ वसन्ति तु दिवाकरे॥३६॥
अंशो भागश्च द्वावेतौ कश्यपश्च क्रतुश्च तौ।
भुजङ्गश्च महापद्मः सर्पः कर्कोटकस्तथा॥३७॥
चित्राङ्गदश्च गन्धर्व ऊर्णायुश्चैव तावुभौ।
अप्सराः पूर्वचित्तिश्च गन्धर्वा चोर्वशी तथा॥३८॥
तार्क्ष्यश्चारिष्टनेमिश्च सेनानीर्ग्रामणीश्च तौ।
अवस्फूर्जश्च विद्युच्च यातुधानौ तु तौ स्मृतौ॥३९॥

अग्रहायण तथा पौष (हैमान्तिक) मास में ये दिवाकर में निवास करते हैं—अंश तथा भाग ये दो देवता, कश्यप तथा क्रतु ऋषि, भुजङ्ग महापद्म तथा कर्कोटक सर्प, चित्रांगद तथा ऊर्णायु गन्धर्व, पूर्वचित्ति तथा उर्वशी अप्सरा, तार्क्ष्य (गरुड़) तथा अरिष्टनेमि—दो सेनानी (ग्रामणी) एवं दो यातुधान—अवस्फूर्ज तथा विद्युत्।।३६-३९।।

सह चैव सहस्ये च वसन्त्येते दिवाकरे।
ततः शैशिरयश्चापि मासयोर्निवसन्ति वै॥४०॥
त्वष्टा विष्णुर्जमदग्निः विश्वामित्रस्तथैव च।
काद्रवेयौ तथा नागौ कम्बलाश्वेतरावुभौ॥४१॥
गन्धर्वौ धृतराष्ट्रश्च सूर्यवर्चाश्च तावुभौ।
इत्येते निवसन्ति स्म द्वौ द्वौ मासौ दिवाकरे॥४२॥

माघ तथा फाल्गुन में ये सूर्य में अवस्थान करते हैं। तदनन्तर शीतकालीन मासद्वय में ये वास करते हैं—त्वष्टा एवं विष्णु देवता, जगदग्नि तथा विश्वामित्र ऋषि, काद्रवेय तथा कम्बलाश्वतर नाग, धृतराष्ट्र तथा सूर्य वर्चा गन्धर्व—ये सब दो-दो मास सूर्य में रहते हैं।।४०-४२।।

स्थानाभिमानिनो ह्येते गणा द्वादशसप्तकाः ।
तिलोत्तमा च रम्भा च शुभे चाप्सरसां वरे ।।४३।।
ग्रामणीः ऋतुजिच्चैव सप्तजिच्च महायशाः ।
ब्रह्मप्रेतश्च रक्षो वै यक्षप्रेतश्च तावुभौ ।।४४।।
सूर्यमाप्याययन्त्येते तेजसां तेज उत्तमम् ।
प्रथितैः स्वैर्वचोभिश्च स्तुवन्ति ऋषयो रविम् ।।४५।।

स्थानाभिलाषी ये ८४ जन सूर्य के परिकर हैं। मंगलमयी अप्सराश्रेष्ठ तिलोत्तमा तथा रम्भा, ऋतुजित् तथा सप्तजित् महायशस्वी ग्रामणी, ब्रह्मप्रेत तथा यक्षप्रेत—ये राक्षस। तेजस्वी सूर्य को आप्यायित करते हैं। ऋषिगण अपने-अपने प्रसिद्ध वाक्यों से सूर्य की स्तुति करते हैं।।४३-४५।।

गन्धर्वाप्सरसश्चैव गीतनृत्यैरुपासते ।
विद्युद् ग्रामणिनो यक्षाः कुर्वन्तिस्म प्रदक्षिणम् ।।४६।।

गन्धर्व तथा अप्सरायें गीत-नृत्य से उपासना करते हैं। विद्युत्, ग्रामणीगण तथा यक्षगण प्रदक्षिणा करके स्तुति करते हैं।।४६।।

सर्पाः वहन्ति सूर्यं वै यातुधानानुयान्ति च ।
बालखिल्या नयन्त्यस्तं परिवार्योदयाद्रविम् ।।४७।।

सर्पगण सूर्य का वहन करते हैं। यातुधान उनका अनुगमन करते हैं। बालखिल्य ऋषिगण उदय के समय सूर्य को परिवृत करके अस्ताचल-पर्यन्त ले जाते हैं।।४७।।

एतेषामेव देवानां यथावीर्यं यथातपः ।
यथायोगं यथातत्त्वं यथासत्त्वं यथाबलम् ।।४८।।
तथा तपत्यसौ सूर्यस्तेषामिन्द्रस्तु तेजसाम् ।
एते तपन्ति वर्षन्ति यान्ति भान्ति सृजन्ति च ।।४९।।

जिन देवतागण की जैसी शक्ति है, जैसी तपस्या है, जैसा योग है, जैसा तत्त्व है, जैसा सत्व है, जैसा बल है, उसे तेजोसमूह श्रेष्ठ सूर्य उसी प्रकार का ताप प्रदान करते हैं। तब ये देवगण ताप देते हैं, वर्षा कराते हैं, गमन-प्रकाश प्रदान करते हैं तथा सृष्टि करते हैं।।४८-४९।।

भूतानामशुभं कर्म व्यपोहन्ति च कीर्त्तिताः ।
एते सहैव सूर्येण भ्रमन्ते सानुगा दिवि ।।५०।।
तपन्तश्च जपन्तश्च ह्लादयन्तश्च वै प्रजाः ।
गोपायन्तिस्म भूतानि सर्वाणीहानुकम्पया ।।५१।।

ये प्राणियों के जो अशुभ कर्म कहे गये हैं, उनका अपनोदन करके सूर्य के साथ द्युलोक में भ्रमण करते हैं। ये प्रजागण को ताप देते हैं, जप करने पर आनन्द देते हैं और जगत् पर कृपा करके प्राणीगण की रक्षा करते हैं।।५०-५१।।

स्थानाभिमानिनामेतत् स्थानं मन्वन्तरेषु वै।
अतीतानागताश्चैव वर्त्तन्ते साम्प्रतं च ये।।५२।।

स्थानाभिमानियों के मन्वन्तर का यही स्थान है। अतीत, अनागत तथा वर्त्तमान में जो हैं, उनके लिये भी यही स्थान है।।५२।।

ग्रैष्मे हिमे च वर्षासु विमुञ्चमानो
घर्मं हिमं च वर्षं च दिवानिशं च।
गच्छत्यसावृतुवशात् परिवर्त्य रश्मीन्
देवान् पितृंश्च मनुजांश्च स तर्पयन् वै।।५३।।

ग्रीष्म, हिम तथा वर्षा में यथाक्रमेण गर्मी, हिम तथा वृष्टि प्रदान करते हैं। सूर्य ऋतु के वशात् रश्मि-निवर्त्तन नहीं करके देवता, पितृ एवं मनुष्यों को तृप्ति प्रदान करते हैं।।५३।।

प्रीणाति देवानमृतेन सूर्यः सोमं सुषुम्नेन विवर्द्धयित्वा।
शुक्ले तु पूर्णं दिवसक्रमेण तं कृष्णपक्षे विबुधाः पिबन्ति।।५४।।

सूर्य देव अमृत द्वारा देवगण का प्रीतिविधान करते हैं। सोम का वर्षण सुषुम्ना नाड़ी से करते हैं। शुक्लपक्ष के दिवसक्रम में (प्रतिदिन क्रमानुसार) उसे पूर्ण करते हैं। कृष्ण पक्ष में देवता उसका पान करते हैं।।५४।।

पीतं तु सोमं हि कलावशिष्टं कृष्णे च पक्षे रुचिभिः क्षरन्तम्।
स्वधामृतं तं पितरः पिबन्ति सर्पाश्च सौम्याश्च तथैव काव्याः।।५५।।

पीत कलावशिष्ट कृष्ण पक्ष की कान्ति द्वारा क्षरित उसे पितृगण स्वधामृत रूप से पान करते हैं। वैसे ही सर्प, सौम्य तथा काव्यगण भी पीते हैं।।५५।।

सूर्येण गोभिस्तु समुद्धृताभिरद्भिः पुनश्चैव समुज्झिताभिः।
वृष्ट्याभिवृद्ध्यापि तथौषधीभिर्मर्त्याः सुधामन्नरसैर्जयन्ति।।५६।।

सूर्य की किरणों से समुद्धृत, पुनः परित्यक्त जल द्वारा वृष्टिरूपेण अभिवृद्ध औषधि द्वारा, अन्नरस द्वारा मर्त्यगण (मनुष्य जाति) सुधा प्राप्त करते हैं।।५६।।

मासार्द्धतृप्तिस्त्वमृतात्सुराणां मासं च तृप्तिः स्वधया पितॄणाम्।
अन्नेन शश्वच्च दधाति मर्त्यान् सूर्यः स्वयं तत्र विभाति गोभिः।।५७।।

अमृत से देवगण की एक पक्ष (आधा मास) तक तृप्ति होती है। स्वधा से देवगण एक मास तृप्त रहते हैं। मृत्युलोक-वासी जीवगण को निरन्तर अन्न से तृप्त करके सूर्य अपनी किरणों से प्रकाश प्रदान करते हैं।।५७।।

अयं हरिद्भिर्हरितैस्तुरङ्गैः हरद्भिरापो हरितैश्च रश्मिभिः।
विसर्गकाले विसृजंश्च ताः पुनर्विभर्ति शश्वत् सविता चराचरम्॥५८॥

यह सूर्य हरित वर्ण तुरङ्ग के साथ हरित वर्ण रश्मि द्वारा जल का आहरण करते हैं। पुनः वर्षा काल में उसका वर्षण करते हैं। यह सविता स्वयं निरन्तर चराचर का पालन करते हैं।।५८।।

अहोरात्राद्रथेनासावेकचक्रेण वै भ्रमन्।
सप्तद्वीपसमुद्रां गां सप्तभिः सप्तभिर्द्रुतम्॥५९॥

अहोरात्र एक चक्रयुक्त रथ पर आसीन वह सूर्य सात अश्वों द्वारा द्रुत गति होकर सप्तद्वीप-युक्त समुद्रवेष्टित पृथिवी का परिक्रमण करते हैं।।५९।।

छन्दोभिर्वाजिरूपैस्तैर्यतश्चक्रं ततः स्थितैः।
कामरूपैः सकृद्युक्तैर्बृहद्भिस्तैर्मनोजवैः॥६०॥
हरितैरथ यैः पिङ्गैरीश्वरैर्ब्रह्मवादिभिः।
त्र्यशीतिमण्डलं प्रातरह्नोऽर्धेन विभावसोः॥६१॥
वहन्ति हरयश्चैव मण्डलं दिवसक्रमात्।
कल्पादौ सम्प्रयुक्तास्ते वहन्त्याभूतसम्प्लवम्॥६२॥
आवृतो बालखिल्यैस्तैर्भ्रमतो रात्र्यहानि तु।
ग्रथितैः स्ववर्चोभिश्च स्तूयमानो महर्षिभिः॥६३॥

अश्वरूप छन्द के द्वारा वहाँ स्थित चक्र परिचालित होता है। वह कामरूप है। मन की अपेक्षा से गमनशील है। वह रथ से युक्त होकर वहन करता है। वे हरित तथा पिंगल वर्ण हैं। ब्रह्मवादी ईश्वर गण के साथ दिन के अर्धभाग में सूर्य के तिरासी मण्डल दिवसक्रम से अश्वगण वहन करते हैं। दिन-रात में भ्रमण करते-करते बालखिल्य द्वारा आवृत होकर (सूर्य) महर्षिगण द्वारा ग्रथित स्वर्गीय वचन द्वारा स्तुत हैं।।६०-६३।।

सेव्यते गीतनृत्यैश्च गन्धर्वैरप्सरोगणैः।
पतङ्गपतगैरश्वैर्भ्रममाणैर्दिवस्पतिः।
वीथ्याश्रयाणि चरति नक्षत्रानुगतः शशी॥६४॥

इति श्रीसाम्बपुराणे आदित्यरथवर्णनं नामैकविंशोऽध्यायः

●

गन्धर्व तथा अप्सरागण द्वारा गीत एवं नृत्य तथा भ्राम्यमाण पतङ्ग, पक्षी और अश्वसमूह द्वारा दिवस्पति (सूर्य) सेवित होते हैं। नक्षत्रगण से अनुगत होकर निर्दिष्ट पथ से चन्द्रमा विचरण करते हैं।।६४।।

श्रीसाम्बपुराण में सूर्य के रथवर्णन नामक इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त

●

द्वाविंशोऽध्यायः

(सोमवृद्धिक्षयः)

साम्ब उवाच

सूर्यलोके त्वया दृष्टः सूर्यसोमसमागमः।
स कथं क्षीयते सोमः क्षीणश्चाप्यायते कथम्॥१॥
यथा सोमं पिबन्तिस्म कृष्णपक्षेऽमृताशिनः।
देवताः पितरश्चैव तन्ममाचक्ष्व सुव्रत॥२॥

साम्ब कहते हैं—आपने सूर्यलोक में सूर्य तथा चन्द्र का समागम देखा है। चन्द्र का क्यों क्षय होता है और क्षय के उपरान्त वे कैसे वृद्धि प्राप्त होते हैं?

हे सुव्रत! कृष्णपक्ष में अमृत-भक्षणकारी देवगण तथा पितृगण जैसे सोमपान करते हैं, वह मुझसे बताईये।।१-२।।

नारद उवाच

राका चानुगती चैव पौर्णमासी द्विधा स्मृता।
सिनीवाली कुहूश्चैव अमावास्या द्विधैव तु॥३॥

नारद कहते हैं—पूर्णिमा राका तथा अनुगतिभेद से दो प्रकार की कही गयी है। अमावास्या भी सिनीवाली तथा कुहू—दो तरह की होती है।।३।।

अमा नाम रवे रश्मिश्चन्द्रलोके प्रतिष्ठितः।
तस्यां सोमो वसेद् यस्मादमावस्या ततः स्मृता॥४॥
पूर्वोदिते कलाहीने पौर्णमास्यां निशाकरे।
पूर्णिमानुमतीर्ज्ञेया पश्चाद् गच्छति भास्करः॥५॥

सूर्य की अमा नामक रश्मि चन्द्रलोक में वास करती है, उसे ही अमावस्या कहा जाता है। पूर्णिमा तिथि में चन्द्र कलाहीन होकर पूर्व में उदित होते हैं। उस पूर्णिमा तिथि को अनुमति जानना चाहिये। तब सूर्य पीछे जाते हैं।।४-५।।

यस्मात्तामनुमन्यन्ते पितरो दैवतैः सह।
तस्मादनुमतिर्नाम पूर्णिमा प्रथमा स्मृता॥६॥
यदा ह्यस्तमियात् सूर्यः पूर्णचन्द्रस्य चोदयः।
युगपत् सा तु वै राका तदा भवति पूर्णिमा॥७॥

चूँकि पितृगण देवताओं के साथ अनुगमन करते हैं, इसलिये अनुमति नामक पूर्णिमा को पहले कहा गया है। जब सूर्य अस्तगामी होते हैं एवं युगपत् पूर्ण चन्द्र का उदय होता है, तब उस पूर्णिमा तिथि को राका कहते हैं।।६-७।।

राका तामनुमन्यन्ते देवताः पितृभिः सह।
रक्षणाच्चैव सूर्यस्य राकेति कवयोऽब्रुवन्।।८।।
सिनीवाली प्रमाणन्तु क्षीणशेषो निशाकरः।
अमावास्यां विशत्यर्कः सिनीवाली ततः स्मृता।।९।।

देवगण पितृगण के साथ राका के शेष भाग का अनुमान करके सूर्य का रक्षण करने के कारण विद्वान् लोग इसे राका कहते हैं। सिनीवाली चन्द्र के क्षीणशेष का प्रमाण करके अमावस्या में सूर्य प्रवेश करते हैं, अत: उसे सिनीवाली कहा गया है।।८-९।।

कुहेति कोकिलस्योक्तिर्यावत् कालं समाप्यते।
तत्कालतुल्या चैषा वै ह्यमावास्या कुहूः स्मृता।।१०।।

कोकिल के मुख से निर्गत वाणी जितने समय में समाप्त होती है, उस कालतुल्य अमावस्या को कुहू कहे हैं।।१०।।

अनुमत्यां सराकायां सिनीवाल्यां कुहूं विना।
एतासां पुरतः कालः कुहूमात्रं कुहूः स्मृता।।११।।

राका के अनुमति के अंश तथा कुहू के अतिरिक्त सिनीवाली के अंश के पूर्वकाल को कुहू कहते हैं।।११।।

कलाः षोडश सोमस्य शुक्ले वर्धयते रविः।
अमृतानामतः कृष्णे पीयन्ते दैवतैः क्रमात्।।१२।।

रवि शुक्ल पक्ष में चन्द्र के सोलह भाग को बढ़ाता है। उस अमृत को कृष्णपक्ष के देवता क्रमश: पान करते हैं।।१२।।

प्रथमां पिबते वह्निर्द्वितीयां तु रविः कलाम्।
विश्वेदेवास्तृतीयां तु चतुर्थीं तु प्रजापतिः।।१३।।

प्रथम कला का अग्नि पान करते हैं, सूर्य द्वितीय कला का पान करता है, विश्वदेवगण तृतीय कला का तथा प्रजापति चतुर्थ कला का पान करते हैं।।१३।।

पञ्चमीं वरुणश्चापि षष्ठीं पिबति वासवः।
सप्तमीमृषयो दिव्या वसवोऽष्टौ तथाष्टमीम्।।१४।।

वरुण पञ्चम कला का, वासव षष्ठ कला का, दिव्य ऋषिगण सप्तम कला का एवं अष्टवसुगण अष्टम कला का पान करते हैं।।१४।।

नवमीं कृष्णपक्षस्य पिबतीन्दोः कलां यमः।
दशमीं मरुतश्चापि रुद्रा एकादशीं कलाम् ॥१५॥
द्वादशीं तु कलां विष्णुर्धनदश्च त्रयोदशीम्।
चतुर्दशीं पशुपतिः कलां पिबति नित्यशः ॥१६॥

कृष्णपक्ष की नवम कला का यम पान करते हैं। मरुद्गण दशम कला का, रुद्रगण एकादश कला का, विष्णु द्वादश कला का, कुबेर त्रयोदश कला का तथा पशुपति नित्य ही चतुर्दश कला का पान करते हैं।।१५-१६।।

ततः पञ्चदशीं चापि पिबन्ति पितरः कलाम्।
कलावशिष्टो निष्पीतः प्रविष्टः सूर्यमण्डलम्।
अमायां विशते तस्मादमावास्या ततः स्मृता ॥१७॥

तदनन्तर पञ्चदश कला का पितृगण पान करते हैं। बची हुई कला सूर्य में प्रविष्ट हो जाती है। अमा में प्रवेश करने के कारण ही इसे अमावस्या कहा जाता है।।१७।।

विशेष—अमा—चन्द्र मण्डल में १६ कला है। अमा तो महाकला है। माला का सूत्र जैसे सब दानों में अनुप्रविष्ट है, उसी प्रकार यह कला भी अन्य कलाओं में अनुप्रविष्ट रहती है। यह नित्य है, वृद्धि-क्षयरहित है। यह सभी कलाओं का आश्रय है।

पूर्वाह्ने प्रविशत्यर्कं मध्याह्ने च वनस्पतिम्।
अपराह्ने विशत्यप्सु स्वां योनिं वारिसम्भवः ॥१८॥

पूर्वाह्न में चन्द्र सूर्य में प्रवेश करता है। मध्याह्न में वनस्पति में, अपराह्न में जलोद्भूत सोम (चन्द्र) स्वयोनि (अपने उत्पत्तिस्थान—जल) में प्रवेश करता है।।१८।।

वनस्पतिगते सोमे यश्छिनत्ति वनस्पतिम्।
पातयेदपि वा पर्णं युज्यते ब्रह्महत्यया ॥१९॥

सोम मध्याह्न में वनस्पति में गमन करते हैं। जो व्यक्ति इस समय वनस्पति का छेदन करते हैं या उसके पत्तों को गिराते हैं, उन्हें ब्रह्महत्या का पाक लगता है।।१९।।

अपः प्रविश्य सोमस्तु शेषया कलयैकया।
तृणगुल्मलतावृक्षान्निष्पादयति चौषधीम् ॥२०॥

सोम शेष एक कला द्वारा जल में प्रविष्ट होकर तृण, गुल्म, लता, वृक्ष तथा औषधि का वर्द्धन करते हैं।।२०।।

तमोषधिगतं गावश्चरन्त्यापः पिबन्ति वै।
तदङ्गानुगतं गोभ्यो क्षीरत्वमुपगच्छति ॥२१॥

गाय जब औषधिस्थित जल का पान करती है, तब उसके अंग-प्रत्यङ्ग में क्षीरत्व प्राप्त होता है।।२१।।

तत्क्षीरममृतं भूत्वा मन्त्रपूतं द्विजातिभिः ।
स्वाहाकारवषट्कारैर्हुताश्चाहुतयः क्रमात् ।।२२।।
हुतमग्निषु देवार्थे पुनः सोमं विवर्धयेत् ।
एवं संक्षीयते सोमः क्षीणश्चाप्यायते पुनः ।।२३।।

ब्राह्मणों द्वारा मन्त्रपूत उस अमृतमय क्षीर से स्वाहा तथा वषट् मन्त्रों से क्रमशः अग्नि में आहुति दी जाती है। देवता के उद्देश्य से अग्नि में आहूत होकर वह सोम का वर्धन करती है। इस प्रकार सोम क्षीणता को प्राप्त करके पुनः वर्द्धित होता है।।२२-२३।।

तस्मात् सूर्यः शशाङ्कस्य वृद्धिकर्त्ता स्वरश्मिभिः ।
एवं सम्पूज्यते देवैः परमात्मा महाद्युतिः ।।२४।।
गत्वा मित्रवनं साम्ब त्वमाराधय भास्करम् ।
नहि पापकृतः साम्ब भक्तिर्भवति भास्करे ।
तस्मात्त्वं परया भक्त्या प्रपद्यस्व दिवाकरम् ।।२५।।

इति श्रीसाम्बपुराणे सोमवृद्धिक्षयो नाम द्वाविंशोऽध्यायः

●

अतएव सूर्य अपनी रश्मियों द्वारा चन्द्र के वृद्धिकर्त्ता हैं। इसलिये देवगण महाकान्तियुक्त सूर्य की पूजा करते हैं। हे साम्ब! तुम मित्रवन में जाकर सूर्याराधना करो। पापीगण कभी भी सूर्य की भक्ति नहीं कर सकते। अतएव हे साम्ब! तुम परम भक्ति के साथ सूर्य की शरण लो।।२४-२५।।

श्रीसाम्बपुराण का चन्द्र की वृद्धि तथा क्षयनामक द्वाविंश अध्याय समाप्त

●

त्रयोविंशोऽध्यायः

(राहुग्रहणविचारः)

साम्ब उवाच

सूर्यलोके त्वया विप्र गतेन ऋषिसत्तम।
आश्चर्याणि विचित्राणि दृष्टानि सुबहूनि वै॥१॥
जन्मविस्मयकर्तॄणि दुर्विज्ञेयानि मानुषैः।
तदिदं मम सन्देहं चिरकालस्थितं हृदि॥२॥
यदि श्राव्यमिदं वापि मन्यसे कथयस्व मे।
सूर्यस्य ग्रहणं दृष्ट्वा ममासीद्व्याकुलं मनः॥३॥
राहुश्च तमसो राशिस्तेजोराशिर्दिवाकरः।
स कथं ग्रस्यते तेन भानुः स्वर्भानुना मुने॥४॥
यस्य तेजोभिरखिलैः प्रकाशं क्रियते जगत्।
तदत्र परमार्थोऽयं तं समाख्यातुमर्हसि॥५॥

साम्ब कहते हैं—हे ऋषिश्रेष्ठ ब्राह्मण (नारद)! सूर्यलोक में आपने अनेक विचित्र आश्चर्य देखा है। मनुष्य के लिये जन्म की विस्मयता अत्यन्त दुर्विज्ञेय है। मेरे मन में दीर्घकाल से एक सन्देह है। उसे यदि आप सुनने योग्य मानें तब कहिये। सूर्य-ग्रहण देखकर मेरा मन अत्यन्त व्याकुल है। हे महामुने! राहु एक तमोराशि मात्र है; जबकि दिवाकर तेजोराशि हैं। हे महामुने! जिस सूर्य के तेज से निखिल जगत् प्रकाशित होता है, वह सूर्य कैसे राहु से ग्रस्त हो जाते हैं? अतएव इस विषय का यथार्थ तत्त्व मुझसे कहिये।।१-५।।

नारद उवाच

अविज्ञेयमनालक्ष्यं ज्ञानगम्यं महात्मनाम्।
रवेर्ग्रहणसंयोगे कथ्यमानं निबोध मे॥६॥

नारद कहते हैं—जो अविज्ञेय तथा अदृश्य है, केवल महात्मागण द्वारा ज्ञानगम्य है, उस सूर्य के ग्रहण-संयोग के सम्बन्ध में मुझसे सुनो।।६।।

राहुणा ग्रस्यते नार्को व्येतु ते हृदयव्यथा।
कस्य शक्तिर्गृहीतुं वै तेजोराशिं दिवाकरम्॥७॥

राहु कभी भी सूर्य का ग्रास नहीं करता। अपने हृदय की व्यथा दूर करो। तेजोराशि दिवाकर को ग्रास करने की शक्ति किसमें है?।।७।।

सर्वस्थोऽयमसंग्राह्यो ह्यबुधस्य जनस्य तु।
इदं त्वदर्शनं साम्ब शृणु यत्ते वदाम्यहम्।।८।।

यह सूर्य सर्वत्र स्थित तथा अग्राह्य है। अज्ञजन के लिये तो अदृश्य-सा है। हे साम्ब! जो तुमसे कहता हूँ, सुनो।।८।।

यज्ज्ञात्वा तु महाज्ञानं न करिष्यति संशयम्।
यदि सत्यमयं ग्रस्तस्तेजोराशिर्दिवाकरः।।९।।
तत् कथं नोदरस्थेन राहुर्भस्मीकृतः क्षणात्।
तथापि राहुणाक्रम्य भानुर्वक्त्रप्रवेशितः।।१०।।
तत्कथं दर्शनैस्तीक्ष्णैः शतधा न विखण्डितः।
निर्मुक्तश्च पुनर्दृष्टस्तथैवाखण्डमण्डलः।।११।।

इस ज्ञान को प्राप्त करके तुम कोई संशय न करो। यदि यह तेजोराशि दिवाकर वास्तव में ग्रस्त होता, तब उदरस्थित सूर्य द्वारा राहु तत्क्षण भस्म क्यों नहीं हो जाता। तथापि यदि राहु सूर्य पर आक्रमण करता है तब मुख में रखकर उनका दाँतों से खण्ड-खण्ड क्यों नहीं कर देता; अपितु राहु द्वारा (ग्रहण से) निर्मुक्त होकर सूर्य पुनः परिपूर्ण रूप ही लक्षित होता है।।९-११।।

न वास्यापहृतं तेजो न स्थानादवरोपितः।
यदि चाप्येष निष्पीतः कथं दीप्ततरो भवेत्।।१२।।

इसके अतिरिक्त सूर्य का कोई तेज भी अपहृत नहीं होता। वह स्थान से विच्युत भी नहीं होता। यदि राहू ने सूर्य का निःशेष पान किया होता, तब सूर्य कैसे अधिक प्रकाशमान हो पाता।।१२।।

तस्मान्न तेजसोराशि राहोर्वक्त्रं गमिष्यति।
भक्षार्थं सर्वभूतानां सोमः सृष्टः स्वयम्भुवा।।१३।।
तत्रस्थममृतं चापि सम्भृतं सूर्यतेजसा।
पिबन्त्यम्बुमयं देवाः पितरश्च स्वधामयम्।।१४।।

अतएव तेजोराशि सूर्य कभी भी राहु के मुख में नहीं जाते। स्वयम्भू ब्रह्मा ने सभी प्राणियों के भक्षणार्थ सोम की सृष्टि की है। चन्द्र (सोम) स्थित अमृत भी सूर्यतेज से वर्द्धित होता है। देवगण उसी का जलमय (अमृत रूप में) तथा पितृगण स्वधामय पान करते हैं।।१३-१४।।

त्रयस्त्रिंशत्त्रयश्चैव त्रयस्त्रिंशत्तथैव च।
त्रयस्त्रिंशत् सहस्राश्च देवाः सोमं पिबन्ति ते ।।१५।।

तैंतीस हजार देवगण उस सोम का पान करते हैं।।१५।।

राहोर्यदामृताद्भागः पुरा सृष्टः स्वयम्भुवा।
तस्मात्तं राहुरभ्येत्य पातुमिच्छति पर्वसु ।।१६।।

ब्रह्मा ने पूर्व में राहु के लिये अमृत भाग की सृष्टि की थी; इसीलिये राहु पर्वकाल में उसे पीना चाहता है।।१६।।

उद्धृत्य पार्थिवीं छायामल्लाकारस्तमोमयः।
पातुमिच्छंस्ततश्चन्द्रमाच्छादयति छायया ।।१७।।

अमृत-पान की इच्छा करके अन्धकारमय वाष्पाकर राहु पार्थिव छाया उद्धृत करते हैं और उस छाया से चन्द्र को आच्छन्न कर लेते हैं।।१७।।

शुक्ले स चन्द्रमभ्येति कृष्णे पर्वणि भास्करम्।
सूर्यमण्डलसंस्थं तु चन्द्रमेव जिघांसति ।।१८।।

शुक्ल पक्ष में वह चन्द्र की ओर जाता है तथा कृष्ण पक्ष के पर्वकाल में (ग्रहण काल में) सूर्य की ओर जाता है। किन्तु राहु सूर्यमण्डल-स्थित चन्द्र का ही विनाश करना चाहता है।।१८।।

तस्मात् पिबति तं राहुस्तनुमस्य विनाशयन्।
अविहिंसन् यथा पद्मं पिबते भ्रमरो मधु ।।१९।।
चन्द्रस्य वामृतं तद्वदभेदाद्राहुरश्नुते।

जैसे भ्रमर पद्म का विनाश न करके केवल उसका मधुपान करता है, उसी प्रकार राहु भी चन्द्र का विनाश नहीं करता; अपितु चन्द्रस्थ मधु का पान करता है।।१९।।

चन्द्रकान्तो मणिर्यद्वद्धीनं क्षरति तत्क्षणात् ।।२०।।
तुषारोऽपि न हीयेत तेजसा नैव मुच्यते।
यथा सूर्यमणिश्चापि सूर्यादुत्पाद्य पावकम् ।।२१।।
न भवत्यङ्गहीनो वै तेजसा नैव मुच्यते।
एवं चन्द्रश्च सूर्यश्च छादितावपि राहुणा ।।२२।।
तेजसा न विमुच्येते नाङ्गहीनौ बभूवतुः।
पर्वण्यस्य तु चन्द्रस्य माणिक्यफलसात्कृतिः ।।२३।।

चन्द्रकान्तमणि चन्द्र के तेज को प्राप्त कर लेता है, परन्तु इससे चन्द्र का कोई क्षय नहीं होता, तुषार भी समाप्त नहीं होता तथा चन्द्र अपने तेज से च्युत नहीं होता। जैसे

सूर्यकान्त मणि सूर्य से अग्नि उत्पन्न कर लेती है, परन्तु सूर्य अंगहीन नहीं होते, तेज से विच्युत नहीं होते। ऐसे ही सूर्य तथा चन्द्र राहु द्वारा आच्छन्न होने पर भी तेज से च्युत तथा अंगहीन नहीं होते। परन्तु प्रति पर्व में चन्द्र को माणिक्य फल की प्राप्ति होती है।।२०-२३।।

सोमो दैवतसंयोगाच्छायायोगाच्च पार्थिवात्।
राहोश्च वरदानाद्वै प्रस्त्रवत्यमृतं शशी।।२४।।
स्वदोहकाले सम्प्राप्ते वत्सं दृष्ट्वा यथा च गौः।
स्वाङ्गादिव क्षरेत् क्षीरं तथेन्दुः क्षरतेऽमृतम्।।२५।।

दैववशात् पृथ्वी की छाया के योग से एवं राहु को मिले वरदान के कारण चन्द्र अमृत का क्षरण करता है। दोहनकाल में गाय जैसे अपने बछड़े को देखकर अपने अंग से दुग्ध उत्पन्न करती है, वैसे ही चन्द्र भी अमृत क्षरण करता है। सूर्य देवताओं के लिये पिता तथा चन्द्र माता के समान परिगणित होते हैं।।२४-२५।।

मातृस्तनं यथा पीत्वा तृप्यन्ते सर्वजन्तवः।
पीत्वामृतं तथा सोमौ तृप्यन्ते पितृदेवताः।।२६।।

जैसे माँ के स्तनपान से सभी प्राणी तृप्त हो जाते हैं, वैसे ही पितृदेवगण चन्द्र का अमृत पीकर तृप्त हो जाते हैं।।२६।।

सम्भृतं पर्वयोगेषु तथायं क्षरते शशी।
तं क्षरन्तं यथाभागमुपयुञ्जन्ति देवताः।।२७।।

चन्द्र पर्वों पर अमृत का क्षरण करते हैं और उसका देवगण अपने भाग के अनुसार भोग करते हैं।।२७।।

तस्मिन् काले समभ्येत्य राहुरप्यपकर्षति।
सर्वमर्द्धं त्रिभागं वा पादं पादार्धमेव वा।।२८।।
आक्रम्य पार्थिवीं छायां यावतीं चन्द्रमण्डलम्।
स्मृतः स भागो राहोस्तु देवभागश्च शेषकः।।२९।।

उस समय राहु आकर (अमृत का) आकर्षण करता है। पूर्ण, आधा, तीन भाग, पाद अथवा पादार्ध पृथ्वी की छाया के अनुसार जितने चन्द्रमण्डल पर आक्रमण करता है, वह भाग राहु का तथा शेष देवगण का हो जाता है।।२८-२९।।

तृप्तिं विधाय देवानां राहोः पर्वगतस्य च।
चन्द्रो न क्षीणतां याति तेजसा नैव मुच्यते।।३०।।

देवताओं की तथा पर्वगत राहु की तृप्ति का विधान करके चन्द्रमा क्षीण नहीं होता, किंवा तेज से विच्युत भी नहीं होता।।३०।।

तिथिभागस्तु यावन्तं पुनरर्कप्रमाणतः ।
एवं छायास्थिते काले भगवानेष कीर्त्तितः ॥३१॥

सूर्य प्रमाण में जितनी तिथि का भाग है, उतनी पृथ्वी की छाया द्वारा आच्छन्नता के समय भगवान् सूर्य को राहुग्रस्त कहा जाता है।।३१।।

अधो राहुः परः सोमः सोमादूर्ध्वं दिवाकरः ।
पर्वकाले स्थितिस्त्वेवं विपरीता गतौ पुनः ॥३२॥
अतश्छादयते राहुरभ्रवच्छशिभास्करौ ।
राहुरभ्रकसंस्थानं सोममाच्छाद्य तिष्ठति ॥३३॥
उद्धृत्य पार्थिवीं छायां धूमान्मेघ इवोत्थितः ।

नीचे राहु, उसके ऊपर चन्द्र, चन्द्र के ऊपर सूर्य—पर्वकाल में इनकी यह स्थिति होती है और विपरीत गति होती है। अतएव जैसे मेघ चन्द्र-सूर्य को आच्छन्न करता है, वैसे ही राहु भी उसे ढ़क लेता है। राहु मेघमण्डल-पर्यन्त चन्द्र को आच्छन्न करके स्थित रहता है।।३२-३३।।

तेऽभ्रावखण्डितं तस्य केवलं श्यामलीकृतम् ।
कर्दमेन यथा वस्त्रं शुक्लत्वमपहन्यते ॥३४॥

मेघमण्डल के समान राहु केवल सूर्य को कलङ्कित (काले रंग की छाया से युक्त) करता है। जैसे कीचड़ से वस्त्र की शुक्लता अपगत हो जाती है, वैसे ही एक हिस्से को अथवा पूर्ण चन्द्रमण्डल को राहु आच्छन्न करता है। जैसे पुनः धो देने पर वस्त्र शुभ्र हो जाता है, वैसे ही राहुमुक्त चन्द्रमण्डल भी निर्मल हो जाता है।।३४।।

राहुणाच्छादितावापि दृष्ट्वा चन्द्रदिवाकरौ ।
विप्राः शान्तिपरा भूत्वा पुनराप्याययन्ति वै ॥३५॥

अथवा चन्द्र-सूर्य को राहु द्वारा आच्छादित देखकर ब्राह्मणगण उसकी शान्ति करने लगते हैं और पुनः उन्हें मुक्त देखकर आनन्दित होते हैं।।३५।।

एवञ्च गृह्यते सूर्यश्चन्द्रमास्तत्र गृह्यते ॥३६॥
अबुधास्तत्र पश्यन्ति मनुष्या मांसचक्षुषः ।
जगत् सम्मोहनं चैव ग्रहणं चन्द्रसूर्ययोः ॥३७॥

इस प्रकार राहु चन्द्र तथा सूर्य को जब ग्रहण करता है तब चर्मचक्षु वाले अबोध मानव उसे चन्द्र-सूर्य का ग्रहण मानते हैं तथा समस्त जगत् उस ग्रहण से सम्मोहित हो जाता है।।३६-३७।।

पुण्यं महापवित्रं तु स्नाने दाने तथा जपे।
विदित्वा चास्य माहात्म्यं सर्वदेवसमागमम्।
ध्यात्वा श्रुत्वा पठित्वा च सर्वपापैः प्रमुच्यते।।३८।।

इति श्रीसाम्बपुराणे राहुग्रहणविचारो नाम त्रयोविंशतितमोऽध्यायः

●

स्नान, दान तथा जपविशेष के लिये ग्रहणकाल अत्यन्त महापुण्यमय तथा पवित्र समय होता है। सभी देवता इस समय एकत्र होते हैं और इसका माहात्म्य जानकर ध्यान करते हैं, श्रवण करते हैं तथा पाठ करते हैं और समस्त पापों से मुक्त हो जाते हैं।।३८।।

श्रीसाम्बपुराण में राहुग्रहणविचार नामक त्रयोविंश अध्याय समाप्त

●

चतुर्विंशोऽध्यायः

वशिष्ठ उवाच

एवं सूर्यस्य माहात्म्यं वर्णितं हर्षवर्द्धनम्।
प्रीतित्वमाप्तवानेव ततः संश्रुत्य नारदात्॥१॥
विनयादुपसङ्गम्य देवस्य पुरतस्तदा।
निपत्य दीनया वाचा साम्बः पितरमब्रवीत्॥२॥

वशिष्ठ कहते हैं—देवर्षि नारद से सूर्य के हर्षवर्द्धक माहात्म्य को सुनकर साम्ब ने प्रीतिलाभ किया। तदनन्तर सविनय पूर्वक पिता श्रीकृष्ण के पास जाकर उन्हें प्रणाम करके दीन वाणी से इस प्रकार कहने लगे।।१-२।।

साम्ब उवाच

कश्मलेनाभिभूतोऽस्मि मलेनाङ्गावसेविना।
वैद्यैर्नौषधिभिर्वापि न शान्तिर्विद्यते मम॥३॥
वनं यास्यामि गोविन्द अनुज्ञां दातुमर्हसि।
शिवेन पुण्डरीकाक्ष ध्यायस्व पुरुषोत्तम॥४॥

साम्ब कहते हैं—मैं मालिन्य से अभिभूत हो गया हूँ। स्वेदादि मल (कुष्ठरोग-जनित) से मेरी देह अवसन्न है। किसी वैद्य अथवा औषधि से शान्ति नहीं मिल रही है। हे गोविन्द! हे पुण्डरीकाक्ष! आपकी अनुमति लेकर वन में जाना चाहता हूँ।।३-४।।

अनुज्ञातः स कृष्णेन सिन्धोरुत्तरकूलतः।
ज्ञात्वा संतारयामास चन्द्रभागां महानदीम्॥५॥

कृष्ण द्वारा सुख से ध्यान करने की अनुज्ञा प्राप्त करके साम्ब सिन्धु के उत्तरी किनारे पर स्थित महानदी चन्द्रभागा को पार कर गये।।५।।

तत्र मित्रवनं गत्वा तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम्।
उपवासकृशः साम्ब शुद्धो धमनितस्ततः॥६॥
आराधनार्थं सूर्यस्य गुह्यं स्तोत्रमिदं जगौ।
चतुर्भिः सस्मितं वेदैः पुराणाशयबृंहितम्॥७॥

तदनन्तर त्रिभुवन-विख्यात महातीर्थ मित्रवन में जाकर उपवास द्वारा कृश, शुद्ध धमनी वाले साम्ब ने आराधनार्थ चतुर्वेद-तुल्य पुराण के आशय से युक्त सूर्य के परम रहस्यमय स्तोत्र का पाठ करना प्रारम्भ किया।।६-७।।

यदेतन्मण्डलं शुक्लं दिव्यं ह्यजरमव्ययम्।
युक्तं मनोजवैरश्वैर्हरितैर्ब्रह्मवादिभिः ॥८॥
आदिरेव हि भूतानामादित्य इति संज्ञितः।
त्रैलोक्यश्चक्षुरेषोऽत्र परमात्मा प्रजापतिः ॥९॥

सूर्यमण्डल शुक्ल, दिव्य, अजर तथा अव्यय है। यह ब्रह्मवादी मन से भी द्रुतगामी हरितवर्ण अश्वों से युक्त है। सभी प्राणियों के आदि होने के कारण इसे आदित्य कहा जाता है। ये त्रैलोक्य के नेत्र (चक्षुस्वरूप) परमात्मा तथा प्रजापति हैं।।८-९।।

य एष मण्डले ह्यस्मिन् पुरुषो दीप्यते महान्।
एष विष्णुरचिन्त्यात्मा ब्रह्मा चैव प्रजापतिः ॥१०॥
रुद्रो महेन्द्रो वरुणः आकाशः पृथिवी जलम्।
वायुः शशाङ्कः पर्जन्यो धनाध्यक्षस्तथैव च ॥११॥

इस मण्डल में जो महान् पुरुष दीप्त हो रहे हैं, वे अचिन्त्य आत्मस्वरूप विष्णु, ब्रह्मा तथा प्रजापति हैं। यहीं रुद्र, वरुण, आकाश, पृथिवी, जल, वायु, चन्द्र, मेघ तथा धनाध्यक्ष के रूप में कुबेर विराजित हैं।।१०-११।।

स एष मण्डले ह्यस्मिन्नग्निवर्चाः प्रकाशते।
सहस्त्ररश्मिरेषोऽत्र द्वादशात्मा दिवाकरः ॥१२॥
स एष मण्डले ह्यस्मिन् पुरुषो दीप्यते महान्।
एष साक्षान्महादेवो वृत्तकुम्भनिभः शुभः ॥१३॥

इस मण्डल में अग्नितेज से जो प्रकाशित हैं, वे ही हैं—सहस्त्ररश्मि द्वादशात्मा दिवाकर। इस मण्डल में जो महान् पुरुष दीप्त हैं, वे गोलाकार कुम्भ के समान मंगलदायक साक्षात् महादेव हैं।।१२-१३।।

कालो ह्येष महायोगी संहारोत्पत्तिलक्षणः।
य एष मण्डले ह्यस्मिंस्तेजोभिः पूरयन्महीम् ॥१४॥
भ्रमते ह्यव्यवच्छिन्नो धातैषोऽमृतलक्षणः।
नातः परतरो देवस्तेजसा विद्यते क्वचित् ॥१५॥

ये कालस्वरूप महायोगी तथा संहार एवं उत्पत्ति के कारण हैं। वे इस मण्डल के तेज द्वारा पृथ्वी को पूर्ण करके निरन्तार भ्रमण करते रहते हैं। ये अमृतस्वरूप धाता हैं। इनकी अपेक्षा कोई भी तेजस्वी देवता कहीं भी नहीं है।।१४-१५।।

पुष्णाति सर्वभूतानि ह्येष एव स्वधामृतैः।
अन्तःस्थो म्लेच्छजातीयांस्तिर्यग्योनिगतानपि ॥१६॥

ये स्वधारूप अमृत से सभी प्राणियों का पोषण करते हैं। ये सबके अन्त: में, यहाँ तक कि म्लेच्छ जाति तथा तिर्यक् योनिगत प्राणियों के अन्त: में भी स्थित रहते हैं।।१६।।

कारुण्यात् सर्वभूतानि पासि देव विभावसो।
आपत्सु च विमोक्षार्थं त्वं भक्तानभिरक्षसि ।।१७।।
चित्रकुण्ठान्धबधिरान् खञ्जान्पङ्गूञ्जड़ांस्तथा।
प्रपन्नवत्सलो देव नीरुजः कुरुषे नरान् ।।१८।।

हे देव विभावसु! आप कल्पनावशात् सभी प्राणियों का पालन करते हैं। विपत्-समूह में उनके मोचनार्थ आप भक्तों की रक्षा करते हैं। हे प्रपन्नवत्सल देव! चित्रकुष्ठ, अन्ध, वधिर, खञ्ज, पङ्गु तथा जड लोगों को आप ही रोगमुक्त करते हैं।।१७-१८।।

दद्रुगण्डनिमग्नांश्च निर्ब्रणान्पुरुषांस्तथा।
प्रत्यक्षदर्शी त्वं देव समुद्धरसि लीलया ।।१९।।

दद्रु, गण्ड (विस्फोटकादि) प्रभृति रोग में निमग्न पुरुषों को आप नीरोग कर देते हैं। हे देव! आप प्रत्यक्षदर्शी देवता हैं और अपनी लीला से (अनायास ही) सबका उद्धार कर देते हैं।।१९।।

का मे शक्तिस्तव स्तोतुमार्त्तोऽहं रोगपीड़ितः।
स्तूयसे त्वं सदा देव ब्रह्मविष्णुशिवादिभिः ।।२०।।

मैं आर्त्त तथा रोगपीड़ित हूँ। आपकी स्तुति करने की शक्ति मुझमें कहाँ है? हे देव! आप सर्वदा ब्रह्मा-विष्णु-शिवादि से स्तुत होते हैं।।२०।।

महेन्द्रसिद्धगन्धर्वैरप्सरोभिः सगुह्यकैः।
स्तुतिभिः किं पवित्रैर्वा तव देव समीरितैः ।।२१।।

हे देव! इन्द्र, सिद्ध, गन्धर्व, गुह्यगण के साथ अप्सरागण पवित्र स्तुति द्वारा आपका स्तवन करते हैं।।२१।।

यस्य ते ऋग्यजुःसाम्नां त्रितयं मण्डले स्थितम्।
ध्यानिनां तु परं धाम मोक्षद्वारं च मोक्षिणाम् ।।२२।।

आपके मण्डल में ऋक्-यजु: तथा साम (यह त्रयी) मूर्त्तिमान होकर अवस्थान करते हैं। आप योगीगण के परम धाम तथा मोक्षाभिलाषियों के लिये मोक्षद्वार हैं।।२२।।

अनन्तं तेजसां तेजो ह्यचिन्त्याव्यक्तनिर्मलम्।
यदप्यपाहृतं किञ्चिद् स्तोत्रेऽस्मिन् जगतःपते।
आर्त्तभक्तिं च विज्ञाय तत् सर्वं क्षन्तुमर्हसि ।।२३।।

तेजों में आपका तेज अनन्त, अचिन्त्य, अव्यक्त तथा निर्मल है। हे जगत्पति! यदि मेरे इस स्तव में कुछ वैगुण्य हुआ है, तो उसे आप आर्त्तजनों की भक्ति समझकर क्षमा करने में समर्थ हैं।।२३।।

तमुवाच नरः प्रीतः सूर्यो जाम्बवतीसुतम्।
प्रीतोऽस्मि तपसा वत्स वरं ब्रूहि यमिच्छसि।।२४।।

परमात्मस्वरूप सूर्य प्रसन्न होकर जाम्बवती-नन्दन साम्ब से बोले—हे साम्ब! वत्स! मैं तुम्हारी तपस्या से प्रसन्न हो गया। जो इच्छा हो, उस वर की प्रार्थना करो।।२४।।

साम्ब उवाच

यदि प्रसन्नो भगवानेष एव वरो मम।
भक्तिर्भवतु मे नित्यं त्वयि देवे सनातने।।२५।।

साम्ब कहते हैं—हे भगवन्! यदि आप प्रसन्न हैं तब हमें यही वर दीजिये कि आप सनातन देव के प्रति मेरी नित्य भक्ति बनी रहे।।२५।।

सूर्य उवाच

भूयस्तुष्टोऽस्मि भद्रं ते वरं वरय सुव्रत।
स द्वितीयं वरं वव्रे तं देवं वरदं शुभम्।।२६।।
मलं शरीरस्थमिदं त्वत्प्रसादात् प्रणश्यतु।
तथास्त्वित्युक्तमात्रोऽसौ भास्करेण महात्मना।।२७।।
तन्मुमोच मलं साम्बो देहात्त्वचमिवोरगः।
ततो लब्धवरः साम्बो रूपवांश्चाभवत् पुनः।।२८।।

सूर्यदेव कहते हैं—इससे मैं अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ हूँ। तुम्हारा मंगल हो। हे सुव्रत! वर माँगो। साम्ब ने कल्याणप्रद वरद सूर्यदेव से द्वितीय वर इस प्रकार माँगा—मेरे शरीर का यह मल (कुष्ठरोग) आपकी कृपा से नष्ट हो जाय। महात्मा भास्कर के 'तथास्तु' कहते ही साम्ब के देह से वह कुष्ठरोग उसी प्रकार समाप्त हो गया, जैसे कि सर्प अपनी केंचुल त्याग देता है। यह वर पा जाने से साम्ब पुनः रूपवान हो गये।।२६-२८।।

सूर्य उवाच

भूयश्च शृणु मे साम्ब तुष्टोऽहं यद् ब्रवीमि ते।
अद्य प्रभृति त्वन्नाम्ना मम स्थानानि सुव्रत!।।२९।।
क्षितौ ये स्थापयिष्यन्ति तेषां लोकः सनातनः।।३०।।
स्थापयस्व च मामस्मिंश्चन्द्रभागातटे शुभे।
त्वत्समानमिदं चापि पुरं साम्ब भतिष्यति।।३१।।

सूर्यदेव कहते हैं—हे साम्ब! तुमसे सन्तुष्ट होकर जो कहता हूँ, उसे सुनो! हे सुव्रत! आज से तुम्हारे नाम से पृथ्वी पर जो मेरा स्थान स्थापित करेगा, उसे सनातन लोक की प्राप्ति होगी। हे साम्ब! शुभ चन्द्रभागा के तट पर मुझे स्थापित करो। तुम्हारे नाम से ही यह नगर प्रसिद्ध होगा।।२९-३१।।

कीर्त्तिस्तवाक्षया लोके यावद् भूमिर्भविष्यति ।
भूयश्च ते प्रदास्यामि प्रत्यहं स्वप्नदर्शनम् ।।३२।।

जब तक पृथ्वी रहेगी, जगत् में तुम्हारी अक्षय कीर्त्ति बनी रहेगी और प्रतिदिन तुम्हें स्वप्न में मेरा दर्शन प्राप्त होगा।।३२।।

एवं दत्त्वा वरं तस्मै वृष्णिसिंहाय भास्करः ।
प्रत्यक्षदर्शनं दत्त्वा तत्रैवान्तरधीयत ।।३३।।

सूर्यदेव वृष्णिसिंह साम्ब को इस प्रकार का वर तथा प्रत्यक्ष दर्शन देकर वहाँ से अन्तर्हित हो गये।।३३।।

पठेद् द्विज इदं स्तोत्रं त्रिकालं भक्तिमान्नरः ।
नारी वा दुःखशोकार्त्ता मुच्यते शोकसागरात् ।।३४।।

हे ब्राह्मण! जो भक्तिमान व्यक्ति अथवा दुःख-शोक से कातर नारी त्रिकाल में इस स्तोत्र का पाठ करेंगे, वे शोकसागर से मुक्त हो जायेंगे।।३४।।

चक्षुःपीड़ा मनःपीड़ा ग्रहपीड़ाभ्य एव च ।
बन्धने निगडे घोरे काष्ठागारगृहेषु या ।।३५।।

नेत्र की पीड़ा, मन की पीड़ा, ग्रहपीड़ा, घोर शृङ्खला-बन्धन तथा काष्ठागार गृह के बन्धन से वे मुक्त हो जायेंगे।।३५।।

अधस्तादन्तरिक्षे वा क्षमते भक्तिवत्सलः ।
त्रिसप्तशतमावर्त्तैर्होमैस्त्वां सप्तरात्रिकम् ।।३६।।
राज्यकामो लभेद्राज्यं धनकामो लभेद्धनम् ।
रोगार्त्तो मुच्यते रोगाद् यथा साम्बस्तथैव सः ।।३७।।

इति श्रीसाम्बपुराणे रोगोपनयनो नाम चतुर्विंशतितमोऽध्यायः

●

अधोलोक में अथवा अन्तरिक्ष में भक्तवत्सल सूर्यदेव सभी को क्षमा करते हैं। सात रात्रि २१०० आवर्त्त होम करने से राज्याभिलाषी राज्य प्राप्त करते हैं, धनकामी धनलाभ करते हैं एवं जैसे साम्ब रोग से मुक्त हो गये थे, वैसे ही रोगार्त्त व्यक्ति रोगमुक्त हो जाते हैं।।३६-३७।।

श्रीसाम्ब पुराण का रोगोपनयन नामक चतुर्विंश अध्याय समाप्त

●

पञ्चविंशोऽध्यायः

(श्रीसूर्यस्तवराजवर्णनम्)

वशिष्ठ उवाच

स्तुवंस्तत्र ततः साम्बः कृशो धमनिसन्ततः।
राजन्नामसहस्रेण सहस्रांशुं दिवाकरम्॥१॥
खिद्यमानं तु तं दृष्ट्वा सूर्यः कृष्णात्मजं तदा।
स्वप्ने तु दर्शनं दत्त्वा पुनर्वचनमब्रवीत्॥२॥

वशिष्ठ कहते हैं—महाराज साम्ब सहस्रांशु दिवाकर के सहस्र नाम के द्वारा स्तव करते-करते जब कृश एवं धमनीशिरा-मात्र हो गये तब खिद्यमान कृष्णपुत्र साम्ब को देखकर सूर्य ने उनको स्वप्न में दर्शन देकर इस प्रकार कहा।।१-२।।

सूर्य उवाच

साम्ब साम्ब महाबाहो शृणु जाम्बवतीसुत।
अलं नामसहस्रेण पठस्वेमं स्तवं शुभम्॥३॥
यानि नामानि गुह्यानि पवित्राणि शुभानि च।
तानि ते कीर्त्तयिष्यामि श्रुत्वा त्वमवधारय॥४॥

सूर्य कहते हैं—साम्ब-साम्ब! महाबाहो! जाम्बवतीनन्दन! सहस्र नामों का प्रयोजन नहीं है। तुम इस शुभ स्तव का पाठ करो। ये नाम अत्यन्त गुप्त हैं, पवित्र तथा शुभप्रद हैं। उन्हें मैं कहता हूँ। तुम स्थिर होकर धारण करो।।३-४।।

ॐ विकर्त्तनो विवस्वांश्च मार्त्तण्डो भास्करो रविः।
लोकप्रकाशकः श्रीमाँल्लोकचक्षुर्ग्रहेश्वरः॥५॥
लोकसाक्षी त्रिलोकेशः कर्त्ता हर्त्ता तमिस्रहा।
तपनस्तापनश्चैव शुचिः सप्ताश्ववाहनः॥६॥
गभस्तिहस्तो ब्रह्मा च सर्वदेवनमस्कृतः।
एकविंशतिरित्येष स्तव इष्टः सदा मम॥७॥

ॐ, विकर्तन, विवस्वान्, मार्तण्ड, भास्कर, रवि, लोकप्रकाशक, श्रीमान्, लोकचक्षु, ग्रहेश्वर, लोकसाक्षी, त्रिलोकेश, कर्त्ता, हर्त्ता, तमिस्रहा, तपन, तापन, शुचि, सप्ताश्ववाहन, गभस्तिहस्त, ब्रह्मा एवं सर्वदेवनमस्कृत—इन इक्कीस नामों से स्तुति मुझे सदा प्रिय है।।५-७।।

शरीरारोग्यदश्चैव धनवृद्धियशस्करः ।
स्तवराज इति ख्यातस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ॥८॥

यह शरीर के लिये आरोग्यप्रद, धनवर्धक तथा यशप्रद स्तवराज तीनों लोकों में प्रसिद्ध है।।८।।

य एतेन महाबाहो द्वे सन्ध्येऽस्तमनोदये ।
स्तौति मां प्रणतो भूत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥९॥
कायिकं वाचिकं चापि मानसं यच्च दुष्कृतम् ।
तत् सर्वमेकजाप्येन प्रणश्यति ममाग्रतः ॥१०॥
एष जाप्यश्च होमश्च सन्ध्योपासनमेव च ।
बलिमन्त्रोऽर्घ्यमन्त्रश्च धूपमन्त्रस्तथैव च ॥११॥

हे महाबाहो! जो व्यक्ति दोनों सन्ध्या के समय (सूर्योदय तथा सूर्यास्त के समय) इस स्तव के द्वारा प्रणत होकर मेरी स्तुति करेगा, वह समस्त पापों से मुक्त हो जायेगा। समस्त कायिक, वाचिक तथा मानसिक दुष्कृत मेरे समक्ष इस स्तुति के मात्र एक जप से ही समाप्त हो जाते हैं। यह मन्त्र जाप्य (जपयोग्य) है। इससे होम, सन्ध्या, उपासना, बलि (उपहार प्रदान) किया जा सकता है। यही अर्घ्य का तथा धूप-प्रदान का भी मन्त्र है।।९-११।।

अन्नप्रदाने स्नाने च प्रणिपाते प्रदक्षिणे ।
पूजितोऽयं महामन्त्रः सर्वव्याधिहरः शुभः ॥१२॥

इस मन्त्र से अन्नदान, स्नान, प्रणाम तथा प्रदक्षिणा भी की जा सकती है। यह महामन्त्र पूजित होने पर व्याधिविनाशक तथा शुभप्रद होता है।।१२।।

एवमुक्त्वा तु भगवान् भास्करो जगदीश्वरः ।
आमन्त्र्य कृष्णतनय तत्रैवान्तरधीयत ॥१३॥
साम्बोऽपि स्तवराजेन स्तुत्वा सप्ताश्ववाहनम् ।
पूजात्मा नीरुजः श्रीमाँस्तस्माद्रोगाद्विमुक्तवान् ॥१४॥

इति श्रीसाम्बपुराणे रोगापनयने श्रीसूर्यवक्त्रविनिःसृतस्तवराजवर्णनं नाम पञ्चविंशतितमोऽध्यायः

●

यह कहकर जगत् के नियामक भगवान् भास्कर कृष्णपुत्र साम्ब से विदा लेकर वहाँ से अन्तर्हित हो गये। साम्ब भी इस स्तवराज से सप्त अश्ववाहन सूर्य की स्तुति करके पवित्रात्मा होकर, नीरोग, शोभायुक्त (श्रीमान्) हो कुष्ठ रोग से मुक्त हो गये।।१३-१४।।

श्री साम्बपुराण में सूर्यकृत स्तवराजवर्णन नामक पञ्चविंश अध्याय समाप्त

●

षड्विंशोऽध्यायः

(मगानयजम्)

अथ लब्धवरः साम्बः प्राप्तं रूपं पुरातनम्।
मन्यमानस्तदाश्चर्यं प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥१॥
पूर्वाभ्यासेन तेनैव सार्धमन्यैस्तपस्विभिः।
स्नानार्थं नातिदूरस्थां चन्द्रभागां नदीं ययौ ॥२॥

तदनन्तर वर-लाभ करके साम्ब ने पुरातन रूप प्राप्त किया। इसे अत्यन्त आश्चर्य मानकर वे मन ही मन आनन्दित हो गये। पुरानी आदत के कारण वे अन्य तपस्वीगण के साथ स्नान के लिये पास की चन्द्रभागा नदी में गये।।१-२।।

स स्नात्वा सहसैवाथ पश्यतिस्म प्रभावतीम्।
ऊह्यमानां जलौघेन प्रतिमामुन्मुखीं रवेः ॥३॥

उन्होंने स्नान करके हठात् देखा कि जल के स्रोत में सूर्य की प्रभा से युक्त एक उज्ज्वल प्रतिमा प्रतिच्छवित हो रही है।।३।।

स तामुत्तीर्य सलिलादानयित्वा स्वमाश्रमम्।
तस्मिन्मित्रवनोद्देशे स्थापयित्वा विधानतः ॥४॥

वे उस प्रतिमा को जल से निकाल कर अपने आश्रम में लाये और मित्रवन के एक स्थान पर उसे विधानपूर्वक स्थापित किया।।४।।

ततस्तामेव पप्रच्छ प्रणम्य प्रतिमां रवेः।
केनेयं निर्मिता नाथ भवतो ह्याकृतिः शुभा ॥५॥

तदनन्तर उस सूर्यप्रतिमा को प्रणाम करके साम्ब ने पूछा—हे नाथ! आपकी इस शुभ आकृति का निर्माण किसने किया है?।।५।।

प्रतिमा तमुवाचाथ शृणु साम्ब यतस्त्वियम्।
निर्मिता येन चाप्येषा पुरुषेण ममाकृतिः ॥६॥

प्रतिमा ने उत्तर किया—साम्ब! सुनो, जैसे उस प्रतिमा का निर्माण हुआ है और जिस पुरुष ने उसका निर्माण किया है।।६।।

ममातितेजसाविष्टं रूपमासीत् पुरातनम्।
असह्यं सर्वभूतानां ततोऽहं प्रार्थितः सुरैः ॥७॥

सह्यं भवतु ते रूपं सर्वप्राणभृतामिह।
ततो मया समादिष्टो विश्वकर्मा महातपाः ॥८॥

पहले मेरा रूप अत्यन्त तेजयुक्त था, जो समस्त प्राणिगण के लिये असह्य था। इसलिये देवताओं ने मुझसे प्रार्थना किया कि सभी प्राणियों के लिये आपका रूप सह्य हो जाय। इसलिये मैंने महातेजस्वी देवशिल्पी विश्वकर्मा को आदेश दिया।।७-८।।

तेजसः शातनं कुर्वन् रूपं निर्वर्त्तयस्व मे।
ततस्तु मत्समादेशात्तेनैव निपुणं तदा ॥९॥
शाकद्वीपे भ्रमिं कृत्वा रूपं निर्वर्त्तितं मम।
प्रीत्या ते साम्प्रतं चैव समयाकारितं पुनः ॥१०॥

(मैंने आदेश दिया कि) 'मेरे तेज का खण्डन करके मेरा रूप तैयार करो'। तदनन्तर मेरे आदेश के अनुसार उन्होंने शाकद्वीप में भ्रमि (घूर्णिचक्र यन्त्र) पर (काट-छाँट कर) मेरे रूप का निर्माण किया। यहाँ मैंने तुम्हारी प्रसन्नता के लिये उनको बुलाया है।।९-१०।।

तेनेयं कल्पवृक्षात्तु निर्मिता प्रतिमा मम।
कृत्वा हिमवतः पृष्ठे पुण्यसिद्धनिषेविते ॥११॥
त्वदर्थं चन्द्रभागायां ततस्तेनावतारिता।
भवतस्तारणार्थं हि जातं स्थानमिदं मम ॥१२॥

विश्वकर्मा ने पुण्यशाली सिद्धों की आवासभूमि हिमालय के पृष्ठ पर कल्पवृक्ष से मेरी प्रतिमा का निर्माण किया था और तुम्हारे लिये उसे इस चन्द्रभागा नदी पर रख दिया था। तुम्हारी मुक्ति के लिये ही मेरा यह स्थान प्रकट हुआ है।।११-१२।।

रुचिरं सर्वदा चात्र सान्निध्यं मे भविष्यति ॥१३॥
सान्निध्यं मम पूर्वाह्णे उदिते रञ्जयते जनः।
कालात्यये च मध्याह्ने सायाह्ने चात्र नित्यशः ॥१४॥

इस स्थान पर सर्वदा मेरा मनोहर सान्निध्य रहेगा। पूर्वाह्न में उदित होने पर लोग मेरा सान्निध्य पाकर आनन्दित होंगे। तदनन्तर मध्याह्न तथा सायाह्न में भी नित्य मेरा सान्निध्य प्राप्त करेंगे।।१३-१४।।

वशिष्ठ उवाच

श्रुत्वा देवस्य तद्वाक्यं दृष्ट्वा प्रत्यक्षदर्शिनम्।
कृत्वा देवगृहं साम्बस्ततः प्रोवाच नारदम् ॥१५॥

वशिष्ठदेव कहते हैं—सूर्यदेव की बात सुनकर और प्रत्यक्ष उनका दर्शन पाकर साम्ब ने देवगृह का निर्माण करके नारद से इस प्रकार कहा।।१५।।

साम्ब उवाच

त्वत्प्रसादान्मया प्राप्तं रूपमेतत् सनातनम्।
प्रत्यक्षदर्शनं चापि भास्करस्य महात्मनः ॥१६॥
सर्वमेतच्च सम्प्राप्य पुनश्चिन्ताकुलं मनः।
देवस्य परिचर्यायाः पालनं कः करिष्यति ॥१७॥
गुणयुक्तो द्विजो यो हि समर्थः परिपालने।
ममैवानुग्रहाद् ब्रह्मन् विचिन्त्याख्यातुमर्हसि ॥१८॥
एवमुक्तस्तु साम्बेन नारदः प्रत्युवाच तम् ॥१९॥

साम्ब कहते हैं—आपकी कृपा से मैंने यह सनातन दिव्य रूप प्राप्त कर लिया एवं महात्मा भास्कर का प्रत्यक्ष दर्शन भी प्राप्त किया। यह सब पाकर भी मेरा मन चिन्तायुक्त ही है कि सूर्यदेव की (प्रतिमा की) पूजा—परिचर्या कौन करेगा? हे ब्रह्मन्! गुणयुक्त कौन ब्राह्मण है, जो इस कार्य में समर्थ है? मुझ पर अनुग्रह करके यह बतायें। साम्ब से यह सुनकर नारद उनसे कहने लगे।।१६-१९।।

नारद उवाच

न द्विजः परिगृह्णन्ति देवस्यात्मीकृतं धनम्।
विद्यते च धनं ह्यत्र गुरुश्चायं प्रतिग्रहः ॥२०॥
देवचर्यागतैर्द्रव्यैः क्रिया ब्राह्मी न विद्यते।
अविज्ञाय च कुर्वन्ति ये क्रिया लोभमोहिताः ॥२१॥
अपांक्तेया भवन्तीह ते वै देवलका द्विजाः।
अविज्ञाय विधानं ये ब्राह्मणा लोभमोहिताः ॥२२॥
देवस्वमुपभोक्ष्यन्ति पतितास्ते भवन्ति हि।
गर्हितं मानवं शास्त्रं न प्रशंसन्ति ते द्विजाः ॥२३॥

नारद कहते हैं कि देवता का धन ब्राह्मण नहीं लेते। यह धन तो है; लेकिन उसका प्रतिग्रह अत्यन्त कठिन है। देवता की परिचर्या में प्राप्त द्रव्य द्वारा ब्राह्मण का कोई काम नहीं होता। यह तत्त्व जाने बिना जो लोभ से मुग्ध होकर इसे प्रतिगृहीत करते हैं, ऐसे पुरोहित गण सद् ब्राह्मणों के साथ एक पंक्ति में भोजन ग्रहण करने योग्य नहीं होते। अज्ञानवशात् लोभ से विमुग्ध जो ब्राह्मण देवस्व (देवमूर्त्ति-पूजन से प्राप्त धन) का भोग करते हैं, वे पतित हो जाते हैं। ऐसे निन्दित ब्राह्मणगण की मानवशास्त्र में प्रशंसा नहीं की गई है।।२०-२३।।

देवस्वं ब्राह्मणस्वं च यो लोभादुपजीवति।
स पापात्मा परे लोके गृध्रोच्छिष्टेन जीवति ॥२४॥

देवता तथा ब्राह्मण के उद्देश्य से उत्सर्गीकृत वस्तु तथा द्रव्य से जो व्यक्ति लोभवशात् जीविका का निर्वाह करता है, वह पापात्मा परलोक में गृद्धों द्वारा छोड़ी गई जूठन से जीवन धारण करता है।।२४।।

विधिज्ञो ज्ञानवन्तश्च परिचर्याक्षमं तथा।
समाख्यास्यति ते देवस्तस्मात्तं शरणं व्रज।।२५।।

अतएव अन्य कोई ब्राह्मण परिचर्या करे, जो अधिक ज्ञानी तथा सेवा के उपयुक्त हों। इसे देव (सूर्य) तुमसे बतलायेंगे; अत: उनकी शरण में जाओ।।२५।।

नारदेनैवमुक्तस्तु प्रणम्य शिरसा रविम्।
संशयं परिपप्रच्छ कस्ते पूजां करिष्यति।।२६।।

नारद से यह जानकर साम्ब ने रविदेव को मस्तक से प्रणाम करके अपने संशय को व्यक्त किया! कि आपकी पूजा कौन करेगा?।।२६।।

विज्ञप्ते त्वथ साम्बेन प्रतिमा तमुवाच ह।
न योग्यः परिचर्यायां जम्बूद्वीपे ममानघ।।२७।।
मम पूजापरा कृत्वा शाकद्वीपादिहानय।
लवणोदात् परे पारे क्षीरोदेन समावृतम्।।२८।।
जम्बूद्वीपात् परं तस्माच्छाकद्वीप इति श्रुतः।
तत्र पुण्या जनपदाश्चातुर्वर्ण्यसमाश्रिताः।।२९।।

साम्ब के ऐसा पूछने पर प्रतिमा (सूर्यप्रतिमा) ने कहा—हे नि:ष्पाप! जम्बू द्वीप में मेरी परिचर्या करने वाला कोई नहीं है। शाकद्वीप से मेरी पूजा में परायण ब्राह्मण को ले आओ। वह शाकद्वीप लवण समुद्र के पार क्षीरोदक से घिरा है। जम्बूद्वीप के पार शाकद्वीप है, यह सर्वविदित है। वह पवित्र जनपद चातुर्वण्य मनुष्यों द्वारा समावृत है।।२७-२९।।

मगाश्च मामगाश्चैव मानसा मन्दगास्तथा।
मगा ब्राह्मणभूयिष्ठा मामगाः क्षत्रियास्तथा।।३०।।
वैश्यास्तु मानसा ज्ञेयाः शूद्रास्तेषां तु मन्दगाः।
न तेषां संकरः कश्चित् वर्णाश्रमकृतः क्वचित्।।३१।।

वहाँ चार प्रकार के लोग हैं—मग, मामग, मानस तथा मन्दग। मगगण प्राय: ब्राह्मण हैं। मानग क्षत्रिय होते हैं। मानस वैश्य हैं तथा शूद्रगण मन्दग हैं। उनमें वर्णाश्रम-कृत कोई साङ्कर्य नहीं है।।३०-३१।।

धर्मस्याव्यभिचारित्वादेकान्ते सुखिताः प्रजाः।
तेजसश्चास्मदीयस्य निर्मिता वै पुरा मया।।३२।।

धर्म से अविचलित होने के कारण वहाँ समस्त प्रजाजन सुखी रहते हैं। अपने तेज से मैंने वहाँ पुरी का निर्माण किया है।।३२।।

तेभ्यां वेदाश्च चत्वारः सरहस्या मयेरिताः।
वेदोक्तैर्विविधैः स्तोत्रैः परैर्गुह्यैर्मया कृतैः ।।३३।।
मामेव ते च ध्यायन्ति मां जपन्ते च नित्यशः।
मद्भावना मम परा मद्भक्ता मत्परायणाः ।।३४।।

उनको मैंने सरहस्य चारो वेदों को बतलाया है। मेरे द्वारा कथित वेदोक्त परम गुह्य विविध स्तोत्रों द्वारा वे मेरा ही ध्यान करते हैं और नित्य मेरा ही जप करते हैं। वे मेरी भावना करते हैं, मेरा पूजन करते हैं। वे सभी मेरे भक्त तथा मुझमें परायण (आश्रित) हैं।।३३-३४।।

मम शुश्रूषकाश्चैव ममैव व्रतचारिणः।
अव्यङ्गधारिणः सर्वे विधिदृष्टेन कर्मणा ।।३५।।
कुर्वन्ति ते सदा तत्र मम पूजां मनोऽनुगाम्।
तत्र देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च सह चारिणैः ।।३६।।

वे वहाँ मन की अभिलाषा के अनुसार मेरा पूजन करते हैं। वहाँ गन्धर्वों के साथ देवता एवं चारणों के साथ सिद्धगण विहार करते हैं, रमण करते हैं।।३५-३६।।

विहरन्ते रमन्ते च दृश्यमानाश्च तैः सह।
श्वेतद्वीपे त्वहं विष्णुः कुशद्वीपे महेश्वरः ।।३७।।

वहाँ विहार करते तथा रमण करते उनके साथ मैं दृश्यमान होता हूँ। मैं श्वेत द्वीप में विष्णुरूपेण तथा कुशद्वीप में महेश्वररूपेण रहता हूँ।।३७।।

पुष्करे च स्मृतो ब्रह्मा शाकद्वीपे च भास्करः।
तन्मगान् मम पूजार्थं शाकद्वीपादिहानय ।।३८।।
आरूढो गरुड़ं साम्ब शीघ्रं गच्छ विचारय ।।३९।।

पुष्कर में मैं ब्रह्मारूप से तथा शाकद्वीप में भास्कररूप से ख्यात हूँ। अतएव मेरी पूजा-हेतु शाकद्वीप से मग ब्राह्मण को यहाँ लाओ। हे साम्ब! विचार करके गरुड़ पर आरुढ़ होकर शीघ्र वहाँ जाओ।।३८-३९।।

वशिष्ठ उवाच

तथेति प्रतिगृह्याज्ञां रवेर्जाम्बवतीसुतः।
पुनर्द्वारवतीं गत्वा कान्त्यातीव समावृतः ।।४०।।
आख्यातवान् पितुः सर्वं स्वकीयं देवदर्शनम्।
तस्माच्च गरुड़ं लब्ध्वा ययौ साम्बोऽधिरुह्य तम् ।।४१।।

'ऐसा ही हो' कहकर सूर्य का आदेश ग्रहण करके साम्ब रमणीय कान्तियुक्त होकर द्वारका जाकर कृष्ण से अपनी सूर्यदर्शन की बातें बताई और उनसे गरुड़ को प्राप्त करके उसपर आरोहण कर साम्ब चल दिये।।४०-४१।।

शाकद्वीपमनुप्राप्य सम्प्रहृष्टतनूरुहः ।
तत्रापश्यद् यथोद्दिष्टान् साम्बस्तेजस्विनो मगान् ।।४२।।

शाकद्वीप में पहुँचकर प्रहृष्ट एवं रोमाञ्चित कलेवर वाले साम्ब ने यथाकथित मग (ब्राह्मणों) को देखा।।४२।।

विवस्वन्तं पूजयतो धूपगन्धादिभिः शुभैः ।
अभिवाद्य तु तान् सर्वान् कृत्वा चैव प्रदक्षिणाम् ।।४३।।
पृष्ट्वा ह्यनामयं तेषां श्लाघयामास तांस्ततः ।
यूयं हि पुण्यकर्माणो द्रष्टव्याश्च शुभार्थिभिः ।।४४।।

वे मंगलमय धूप तथा गन्धादि से सूर्य का पूजन कर रहे थे। उन सबका अभिवादन तथा प्रदक्षिणा करके साम्ब ने उनकी कुशलता पूछकर उनकी प्रशंसा करते हुये कहा कि आप पुण्यकर्मा एवं शुभाकांक्षी प्रतीत हो रहे हैं।।४३-४४।।

यो रतोऽर्कस्य पूजायां तस्य चैव वरप्रदः ।
तनयं विद्धि मां विष्णोर्नाम्ना साम्ब इति श्रुतः ।।४५।।

जो सूर्य को पूजा करते हैं, उनके लिये आप वर देने वाले हैं। आप लोग मुझे विष्णु (कृष्ण)-पुत्र साम्ब जानें।।४५।।

चन्द्रभागातटे चापि मया सूर्यो निवेशितः ।
तेनाहं प्रेषितश्चात्र उत्तिष्ठध्वं व्रजामहे ।।४६।।

मैंने चन्द्रभागा के तट पर सूर्य की प्रतिमा स्थापित की है। उन्होंने ही मुझे यहाँ भेजा है। आप उठिये, हम वहाँ जायँ।।४६।।

ते तमूचुस्ततः साम्बमेवमेतन्न संशयः ।
अस्माकमपि देवेन व्याख्यातं पूर्वमेव हि ।।४७।।

तब उन्होंने साम्ब से कहा कि ऐसा ही सूर्यदेव ने हमसे भी पहले कहा था, इसमें कोई संशय नहीं है।।४७।।

अष्टादशकुलानीह मगानां वेदवादिनाम् ।
यास्यन्ति च त्वया सार्धं यत्र सन्निहितो रविः ।।४८।।

यहाँ से वेदज्ञ मग ब्राह्मणों के अट्ठारह परिवार आपके साथ वहाँ जायेंगे, जहाँ सूर्यदेव की प्रतिमा सन्निहित है।।४८।।

स तु गृह्य ततस्तानि दश चाष्टौ कुलानि च।
आरोप्य गरुड़े साम्बस्त्वरितं पुनरभ्यगात् ।।४९।।

तदनन्तर साम्ब ने उनके अट्ठारह वंश ब्राह्मणाकुल को गरुड़ पर बैठाया और शीघ्र लौट आये।।४९।।

सपुत्रदारसंयुक्तो पूजा यज्ञाय चागतः।
सोल्पेऽनैव तु कालेन प्राप्तो मित्रवनं पुनः ।।५०।।

वे स्त्री-पुत्रादि के साथ पूजा तथा यज्ञार्थ आये। उनके साथ साम्ब अत्यल्प काल में ही मित्रवन लौट आये।।५०।।

कृत्वाज्ञां तां रवेः साम्बो यत्कृतं तन्न्यवेदयेत्।
रविः शोभनमित्युक्त्वा प्रसन्नः साम्बमब्रवीत् ।।५१।।
मम पूजाकरा ह्येते प्रजानां शान्तिकारकाः।
मम पूजां विधानोक्तां करिष्यन्ति मनोऽनुगाम्।
मत्कृते च पुनश्चिन्ता न ते काचिद्भविष्यति ।।५२।।

इति श्रीसाम्बपुराणे मगानयनं नाम षड्विंशोध्यायः

●

साम्ब ने सूर्य की आज्ञा का पालन कर लिया—यह उन्होंने सूर्य को बताया। सूर्यदेव ने कहा—'ठीक है' और प्रसन्नता-पूर्वक साम्ब से कहा—ये मेरे पूजक हैं। प्रजा के लिये शान्तिकारक हैं। ये यथाविधान साभिलाष होकर मेरा पूजन करेंगे। मेरे पूजनार्थ तुमको कोई चिन्तन नहीं करना होगा।।५१-५२।।

श्री साम्बपुराण में मगानयन नामक षड्विंश अध्याय समाप्त

●

सप्तविंशोऽध्यायः

(मगानां सूर्यपूजा)

बृहद्बल उवाच

अहो सभाग्याः श्लाघ्याश्च कृतपुण्याश्च ते सदा।
पूजायां ये रताः सूर्यो येषां चैव वरप्रदः ॥१॥

बृहद्बल कहते हैं—अहो! जो सूर्यपूजा में रत हैं, वे भाग्यवान हैं, प्रशंसनीय हैं तथा सर्वदा कृतपुण्य हैं। सूर्यदेव उनके लिये वरप्रद हैं।।१।।

पर्याप्तं सर्वमेवैषामिह चामुत्र किं फलम्।
अनित्ये सति मानुष्ये देवपूजारता हि ये ॥२॥

अनित्य मनुष्यदेह से जो देवपूजा में सदा रत हैं, उनको इहलोक तथा परलोक में क्या पर्याप्त फल मिलता है।।२।।

किन्तु चिन्तयतः सूर्यं चिन्तयित्वा सुभोजकान्।
ज्ञानं प्रति तथा चैषां हृदये मम संशयः ॥३॥

किन्तु सूर्य चिन्तनकारी को सुखभोग की इच्छा के कारण ज्ञान के प्रति कितनी रुचि (तथा यत्न) है, इस विषय में मुझे सन्देह है।।३।।

कथं पूजाकरा ह्येते किं मगाः किञ्च याजकाः।
ज्ञानं च किं परं तेषां ज्ञेयस्तेषां क एव हि ॥४॥
एतत् सर्वं यथान्यायं तन्ममाख्यातुमर्हसि ॥५॥

ये लोग किसलिये पूजापरायण होते हैं? मगगण किसके याजक हैं? क्या उनके लिये ज्ञान ही श्रेष्ठ है? उनके लिये ज्ञेय वस्तु क्या है? यह सब यथायथ रूप से मुझसे कहिये।।४-५।।

वशिष्ठ उवाच

मोक्षवादिन एवैते कर्मयोगे समाश्रिताः।
यष्टव्यो भगवान्सूर्यः फलपुष्पैर्मनोरमैः ॥६॥
तथैवान्नौषधीभिश्च ह्याज्यहोमैस्तथैव च।
होमं ये मन्त्रतः कृत्वा परं होमं पिबन्ति ते ॥७॥
परं होमस्य पानाच्च पूतात्मानो ह्यकल्मषाः।
विंशतिं परमां दिव्यां भास्करीं तेजसीं कलाम् ॥८॥

वशिष्ठ देव कहते हैं—ये मोक्षवादी ही हैं और कर्मयोग का आश्रय ग्रहण किये हैं। मनोरम फल-पुष्प से भगवान् सूर्य का ये पूजन करते हैं। इसी प्रकार अन्न, औषधि द्वारा भी पूजन करते हैं और घृत से होम करते हैं। मन्त्रों द्वारा होम करते हैं तथा होमद्रव्य का पान करते हैं। होमपान के फल से ये निष्पाप हो गये हैं। सूर्य में दिव्य तेज की बीस कलायें हैं।।६-८।।

कर्मणः साधने चैका तनुरग्नौ स्थिता तु या।
वायुमार्गे स्थिता व्योम्नि द्वितीया च प्रकाशिका।।९।।
ततः परं तृतीया तत् स्मृतं सूर्यस्य मण्डलम्।
ऋङ्मयं मण्डलं तच्च दिव्यं ह्यमरमव्ययम्।।१०।।

जो अंश अग्नि में स्थित है, कर्म-साधन में वह एक तनु है। आकाश में वायुमार्गस्थ द्वितीय तनु प्रकाशिका है। तदनन्तर तृतीय तनु को सूर्य का मण्डल कहा गया है। वह ऋक्मय मण्डल अथवा दिव्य मण्डल है, जो अमर तथा अव्यय है।।९-१०।।

स तस्य पुरुषो मध्ये योऽसौ सदसदात्मकः।
क्षराक्षरश्च विज्ञेयो महासूक्ष्मं तथैव च।।११।।
निष्कलः सकलश्चैव द्वैविध्यं तस्य कल्पितम्।
द्रष्टव्यः सकलश्चैव सर्वभूतव्यवस्थितः।।१२।।

उस मण्डल में जो पुरुष अवस्थित हैं, वे सत्-असत् स्वरूप हैं, वे क्षर-अक्षररूप से ज्ञेय हैं। उनको महासूक्ष्म स्वरूप भी कहा गया है। निष्कल (कलारहित) तथा सकल (कलायुक्त)—इन दो रूपों से उनकी कल्पना की जाती है। सकलरूप ही दृष्टिगोचर, द्रष्टव्य है। वह समस्त प्राणियों में स्थित है।।११-१२।।

तृण-गुल्म-लता-वृक्ष-मृग-सिंह-गज-द्विजान्।
सुर-द्विज-मनुष्यांश्च स्थलजाञ्जलजांस्तथा।।१३।।
व्याप्य स्थितं स सर्वत्र सर्वेषामन्तरात्मनि।
यदा कालात्मनश्चैव द्वितीयां तनुमाश्रितः।।१४।।

तृण-गुल्म-लता-वृक्ष-हिरण-सिंह-हाथी तथा पक्षीगण, देवता, ब्राह्मण तथा मनुष्यगण, स्थलज तथा जलज समस्त प्राणीगण में तथा सबकी अन्तरात्मा में वे ही सदा व्याप्त रहते हैं।।१३-१४।।

निष्कलस्तु तदा ज्ञेयः संस्थितस्तैजसीं कलाम्।
हिमं घर्मं च वर्षं च त्रैलोक्यं कुरुते सदा।।१५।।

जब वे कलात्मक हैं, तब द्वितीय तनु का आश्रय ग्रहण करते हैं। जब निष्कल हैं, तब तैजसी कला का आश्रय ग्रहण करते हैं। इस प्रकार शीत-ग्रीष्म तथा वर्षारूप त्रिकाल की वे सृष्टि करते हैं।।१५।।

तृतीयायां तनौ तस्य संरक्षंस्तत्परं पदम्।
देवयानं च पन्थानं कर्मयोगेन संस्थितम्॥१६॥
आदित्यसिद्धान्तविदः सांख्ययोगविदश्च ये।
तेऽपि गच्छन्ति तत्स्थानं स मोक्षः प्रकीर्त्तितः॥१७॥

उनका तृतीय तनु परमपद में संरक्षित है। कर्मयोग में देवयान पथ संस्थित है। आदित्य सिद्धान्तविद लोग तथा सांख्ययोगज्ञ जिस स्थान में जाते हैं, वह मोक्ष के नाम से कहा गया है।।१६-१७।।

निर्द्वन्द्वो निर्मलश्चैव तत्र गत्वा न शोचति।
वेदेषु च वदन्तीमं त्रयीधर्मस्तु संस्थितः॥१८॥

निर्द्वन्द्व तथा निर्मल होकर वहाँ जाकर कोई शोक नहीं करता। वेद में भी यही कहा गया है। उसमें ऋक्-यजुः-साम वेदत्रयी में वर्णित कर्मकाण्ड संस्थित है।।१८।।

गायत्र्याश्च चतुर्विंशत्यक्षरं परिकीर्त्तितम्।
पञ्चविंशतितत्त्वस्थं ध्यायन्तस्तत्त्ववेदिभिः॥१९॥
ॐकारस्थं ततश्चापि ध्यायन्ति वेदवादिनः।
अक्षरं चैव ओङ्कारं सार्द्धमात्राद्वये स्थितम्॥२०॥

गायत्री २४ अक्षरों की कही गयी हैं। सूर्य का ध्यान तत्त्ववेत्ता २५ तत्त्वस्थ करते हैं। वेदवादीगण उनका ध्यान ओंकार रूप में करते हैं। ओंकार अ + उ + म तथा सार्द्धमात्राद्वय में स्थित है।।१९-२०।।

वदन्ति चार्द्धमात्रस्थमकारं व्यञ्जनात्मकम्।
ध्यायन्ति च मकारं ये ज्ञानं तेषां मदात्मकम्॥२१॥
मकारध्यानयोगाच्च मया ह्येते प्रकीर्त्तिताः॥२२॥

अर्धमात्रस्थ मकार व्यञ्जनात्मक है। जो मकार का ध्यान करता है, उसे आत्मविषयक ज्ञान होता है। मकार ध्यानयोग में मैंने यह सब कहा है।।२१-२२।।

धूपमाल्यैर्जपैश्चापि ह्युपहारैस्तथैव च।
ये यजन्ति सहस्रांशुं तेन ते याजकाः स्मृताः॥२३॥

इति श्रीसाम्बपुराणे मगानां सूर्यपूजानाम सप्तविंशोऽध्यायः

●

जो धूप, माला, जप तथा उपहार (पूजादि द्रव्य) द्वारा सहस्रांशु सूर्य का यजन करते हैं, उन्हें याजक कहा गया है।।२३।।

श्रीसाम्बपुराण में मग द्वारा सूर्यपूजा नामक सप्तविंश अध्याय समाप्त

●

अष्टाविंशोऽध्याय:

(मोक्षज्ञानम्)

वशिष्ठ उवाच

इमां ज्ञानोपलब्धिञ्च कथ्यमानां निबोध मे।
अस्थिस्थूणं स्नायुयुतं मांस-शोणितलेपनम् ।।१।।
चर्मावनद्धं दुर्गन्धिपूर्णं मूत्र-पुरीषयोः ।
जराशोकसमाविष्टं रोगायतनमातुरम् ।।२।।
रजस्वलमनित्यं च भूतावासमिमं त्यजेत् ।

वशिष्ठ देव कहते हैं—मैं तुमसे ज्ञानोपलब्धि की बातें कहता हूँ, सुनो। प्राणियों का निवास स्थल है—यह देह। इस देह की आसक्ति का त्याग करो। यह देह अस्थिस्थूण, स्नायुयुक्त है। मांस तथा रक्त से लिप्त है। चर्म द्वारा आवृत, मूत्र तथा पुरीषरूपी दुर्गन्ध-युक्त, जरा-शोक से युक्त, रोगगृह है। यह आतुर तथा रजयुक्त एवं अनित्य है।।१-२।।

कृपालुत्वं क्षमासत्यार्जवत्वमथ शौचता ।।३।।
क्षमता सर्वभूतेषु एतन्मुक्तस्य लक्षणम् ।
तिले तैलं दधि क्षीरे काष्ठे पावकसंहतिः ।।४।।

कृपालुत्व, क्षमा, सत्य, आर्जव, शौच और क्षमता—ये हैं मुक्त के लक्षण। जैसे तिल में तेल है, जैसे दुग्ध में दधि है, जैसे काष्ठ में अग्नि है (वैसे ही समस्त प्राणियों में ये गुण रहते हैं)।।३-४।।

उपायं चिन्तयेदस्य धिया धीरः समाहितः ।
प्रमाथिना चलेनापि मनसा संयतेन तु ।।५।।

धीर व्यक्ति समाहित चित्त से बुद्धि द्वारा प्रमाथी, चंचल मन को संयत करने के उपाय का चिन्तन करते हैं।।५।।

बुद्धीन्द्रियाणि संयम्य शकुन्तानिव पञ्जरे ।
'इन्द्रियैर्नियतैर्देही धारणाभिश्च तृप्यति ।।६।।
प्राणायामैर्दहेद्दोषं धारणाभिश्च दुष्कृतम् ।
प्रत्याहारेण विषयान् ध्यानेनानीश्वरान् गुणान् ।।७।।

प्राणायाम (पूरक, कुम्भक, रेचक) द्वारा दोषों का धारण (यमादि गुणयुक्त आत्मा में मन-समर्पण, ब्रह्मवस्तु में अन्तःकरण का अभिनिवेश) द्वारा दुष्कृत का एवं प्रत्याहार (इन्द्रिय-निवर्त्तन) द्वारा विषयों का परित्याग करके, ध्यान द्वारा ईश्वरीय गुणों का लाभ प्राप्त करना चाहिये।।६-७।।

यथा पर्वतधातूनां दोषा दह्यन्ति धाम्यताम्।
तथेन्द्रियकृता दोषा दह्यन्ते चित्तनिग्रहात् ।।८।।

जैसे पर्वतस्थ धातुओं का समस्त दोष अग्नि में दग्ध हो जाता है, उसी प्रकार इन्द्रियकृत दोष चित्तनिग्रह से दग्ध होता है।।८।।

चित्तं चित्तेन संशोध्य मनस्तु मनसैव तु।
भावान् भावेन संशोध्य बुद्ध्या बुद्धिं विशोधयेत् ।।९।।

चित्त द्वारा चित्त का, मन द्वारा मन का, भाव के द्वारा भाव का एवं बुद्धि के द्वारा बुद्धि का शोधन करना चाहिये।।९।।

चित्तस्य हि प्रसादेन हन्ति कर्म शुभाशुभम्।
शुभाशुभविनिर्मुक्ता निर्द्वन्द्वो निष्परिग्रहः ।।१०।।
निर्ममो निरहङ्कारस्ततो याति परां गतिम्।

चित्त की प्रसन्नता से शुभ और अशुभ कर्म विनष्ट हो जाता है। शुभ तथा अशुभ से विनिर्मुक्त, निर्द्वन्द्व (शीत-ग्रीष्म, लाभ-अलाभ, मान-अपमान प्रभृति विरुद्ध धर्म से निष्कृत लाभ करता है), निष्परिग्रह (कहीं भी लिप्त न होना), निर्मम (ममताशून्य) तथा निरहंकार (मैं-मेरा इत्यादि अहंकार-शून्यता) के होने के उपरान्त परम गति का लाभ प्राप्त करता है।।१०।।

पूर्वाह्णे लोहितं रूपमृङ्मयं प्रथमं स्मृतम् ।।११।।
यजुर्मयं द्वितीयन्तु शुक्लं माध्यह्निकं स्मृतम् ।।१२।।
कृष्णं तृतीयं सायाह्ने साम्नो रूपं ततः स्मृतम्।
प्रथमं राजसं रूपं द्वितीयं सत्त्वसंज्ञितम् ।।१३।।

पूर्वाह्ण में सूर्य के लोहितरूप को प्रथम ऋक् मय रूप कहा गया है। द्वितीय रूप मध्याह्नकालीन शुक्लरूप यजुर्मय रूप है। तृतीय सायाह्न कालीन साममय रूप कहा गया है। प्रथम रूप राजस एवं द्वितीय रूप सात्त्विक है।।११-१३।।

तृतीयं तामसं रूपं त्रैगुण्यं तच्च संज्ञितम्।
त्रयाणां व्यतिरेकेण चतुर्थं सूर्यमण्डलम् ।।१४।।

तृतीय रूप तामसिक है। इस प्रकार से यह त्रिगुण विशिष्ट कहा जाता है। इन तीनों के संस्पर्श से रहित चतुर्थ है—सूर्यमण्डल।।१४।।

ज्योति:प्रकाशकं सूक्ष्मं प्रोक्तं तच्च निरञ्जनम्।
त्रैविद्यसिद्धान्तरता: सूर्यसिद्धान्तवेदिन: ॥१५॥
ॐकारप्रणवैर्युक्ता ध्याननिर्धूतकल्मषा:।
स्थिता: पद्मासने धीरा नाभिसंन्यस्तपाणय: ॥१६॥

उस सूर्यमण्डल को ज्योति:प्रकाशक, सूक्ष्म एवं निरञ्जन कहते हैं। जो त्रैविद्य सिद्धान्त (वेदार्थज्ञ) में रत हैं, जो सूर्य-सिद्धान्त को जानने वाले हैं, निरन्तर प्रणव मन्त्र के ध्यान से जिनकी पापराशि धुल गई है, वे धीरगण नाभि पर हाथ रखकर पद्मासनस्थ होते हैं।।१५-१६।।

सुषुम्नानाभिमार्गं च कुम्भरेचकपूरकै:।
त्रिभि: संशोध्य तान् पञ्च मरुतो देहमध्यगान् ॥१७॥
पादाङ्गुष्ठेन सञ्चिन्त्यमूर्ध्वमुन्नमयक्रमात्।
नाभिप्रदेशे दृष्ट्वा च देवमग्निमनिन्धनम् ॥१८॥

जो सुषुम्ना पथ में कुम्भक, रेचक तथा पूरक द्वारा नाभिमार्ग एवं पादांगुष्ठद्वय द्वारा देहमध्यस्थ पञ्चवायु का संशोधन करके क्रमश: मस्तक में उसे उठाकर नाभिदेश में काष्ठरहित अग्निरूप देवता सूर्य को देखते हैं।।१७-१८।।

सोमं च हृदये दृष्ट्वा मूर्ध्नि चाग्निशिखां पुन:।
वातराशिमिवासह्यं तं भित्वादित्यमण्डलम् ॥१९॥
तत: परं तु गच्छेत योगस्थ: सूर्यमण्डलम्।
तत्र गत्वा न शोचन्ति तत् सौरं परमं पदम् ॥२०॥

तदनन्तर हृदय में चन्द्र तथा मस्तक में पुन: अग्निशिखा का दर्शन करके वायु तथा रश्मि के समान असह्य आदित्यमण्डल का भेद करता है, तत्पश्चात् योगस्थ होकर परम सूर्यमण्डल में गमन करता है। वह वहाँ जाकर शोकरहित हो जाता है।।१९-२०।।

प्रथमं हृदयं स्थानं द्वितीयं चाग्निसंस्थितम्।
तृतीयं तापनं स्वस्थं चतुर्थं सूर्यमण्डलम् ॥२१॥

प्रथम स्थान हृदय, द्वितीय अग्नि, तृतीय सूर्य तथा चतुर्थ है—सूर्यमण्डल।।२१।।

स्थानं चतुर्थं परमात्मनस्तनोर्भानो: सुरेशस्य वदन्ति तज्ज्ञा:।
स्थानं द्वितीयं परमात्मनस्तनोर्भानो: सुरेशस्य वदन्ति तज्ज्ञा: ॥२२॥
ज्ञेयश्च मोक्षश्च नृणां स एव संसारविच्छिन्नकरं पदं तत्।
इदं त्वृषीणां चरितं मया ते प्रख्यापितं याजकशास्त्रसंगात् ॥२३॥

तत्वविद् इस चतुर्थ स्थान को परमात्मा देवदेव सूर्य का स्थान कहते हैं। तत्त्वज्ञ द्वितीय स्थान को भानु का द्वितीय स्थान कहते हैं। उसे मनुष्यों को मोक्ष देने वाला जानना चाहिये। वह स्थान संसार को विच्छिन्न करने वाला है। याजक शास्त्र का अवलम्बन लेकर इन ऋषियों (मग ब्राह्मणों) का चरित्र तुमसे कहा। इसे जान लेने पर मोक्षविद् होना सम्भव है और सिद्धि प्राप्त करके उस स्थान को प्राप्त करना सम्भव हो जाता है।।२२-२३।।

इदममृतसमं परस्य वेद्यं किरणसहस्रभृतो हितं जनानाम्।
ऋषिचरितं वीक्ष्य तत्त्वसारं व्यपगतमोहधियः प्रयान्ति मोक्षम्॥२४॥
महत् प्रोक्तमिदं ज्ञानं देयं श्रद्धावतां नृणाम्।
नास्तिकानामबुद्धीनां न देयं भूतिमिच्छता॥२५॥

इति साम्बपुराणे मोक्षज्ञानं नामाष्टाविंशोऽध्यायः

●

यह अमृततुल्य, सहस्र किरणधारी, परतत्त्व सूर्य का ज्ञापक, जनगण का हितकारक तत्त्वसार है। जिनकी मोह बुद्धि ऋषियों का चरित्र देखकर अपगत हो गयी है, वे इसके द्वारा मोक्ष-लाभ करते हैं। इस ज्ञान को जो महत् द्वारा उक्त है, श्रद्धालु जन को ही देना चाहिये। ऐश्वर्यकामी, नास्तिक बुद्धि तथा मूढ़ को यह ज्ञान कदापि नहीं देना चाहिये।।२४-२५।।

श्री साम्बपुराण का मोक्षज्ञान नामक अष्टाविंश अध्याय समाप्त

●

एकोनत्रिंशोऽध्यायः

(प्रतिमालक्षणम्)

वशिष्ठ उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि प्रतिमालक्षणं क्रमात्।
यथैवं नारदेनोक्तं साम्बानुग्रहकारिणा ।।१।।

वशिष्ठदेव कहते हैं—अब प्रतिमालक्षण कहूँगा, जिसे साम्ब के ऊपर अनुग्रह करके नारद ने जिस प्रकार कहा था।।१।।

न पुरा प्रतिमा ह्यासीः पूज्यते मण्डले रविः।
यथैतन्मण्डलं व्योम्नि स्थीयते सवितुस्तदा ।।२।।
एवमेव पुरा भक्तैः पूज्यते मण्डलाकृतिः।
यतः प्रभृति चाप्येषा निर्मिता विश्वकर्मणा ।।३।।
सर्वलोकहितार्थाय सूर्यस्य पुरुषाकृतिः।
प्रतिमास्थापनं चैव प्रमाणं च विधानतः ।।४।।
सर्वलोकहितं साम्ब कथ्यमानं निबोध मे।
गृहेषु प्रतिमायास्तु न तासां नियमः क्वचित्।।५।।

पहले प्रतिमा नहीं थी; रवि की पूजा मण्डल में ही होती थी। जैसे आकाश में सूर्य का मण्डल है, वैसे ही सूर्य स्थापित होते थे। पूर्वकाल में भक्त मण्डलाकृति सूर्य का ही पूजन करते थे। जबसे विश्वकर्मा ने समस्त लोक के हितार्थ सूर्य की पुरुषाकृति प्रतिमा का निर्माण किया, तब से प्रतिमास्थापन तथा यथाविधान प्रमाण चलता है। हे साम्ब! समस्त संसार के हितार्थ मैंने तुमसे इसे कहता हूँ, सुनो। गृह में प्रतिमा-निर्माण का कोई नियम नहीं है।।२-५।।

मनसैवेप्सिताः कार्याः सर्वा एव शुभप्रदाः।
देवायतनविन्यासे कार्यं मूर्त्तिपरीक्षणम्।।६।।

मन से ईप्सित कार्य सबके लिये शुभ देने वाला होता है। देवता के मन्दिर-निर्माण में मूर्त्ति की परीक्षा करना उचित है।।६।।

भूमेश्च लक्षणं यत्नात् परीक्षां तत्त्वतो बुधैः।
आदौ भूमिं परीक्षेत कुयर्द्दिवगृहं ततः ।।७।।

पण्डितों द्वारा भूमि का परीक्षण करना उचित है। पहले भूमि की परीक्षा करके तब मन्दिर का निर्माण करना चाहिये।।७।।

इष्टगन्धरसोपेता स्निग्धा भूमिः प्रशस्यते।
शर्करातुषकेशास्थिक्षाराङ्गारविवर्जिता ।।८।।

इष्ट गन्ध तथा रसयुक्त भूमि प्रशंसनीय है। शर्करा (धूल, बालू प्रभृति), तुष, केश, अस्थि, क्षार तथा अंगारयुक्त भूमि वर्जित है।।८।।

मेघदुन्दुभिनिर्घोषा सर्वबीजप्ररोहिणी।
शुक्ला रक्ता तथा पीता कृष्णाभावहिता क्षितिः ।।९।।

मेघ तथा दुन्दुभि की ध्वनियुक्त तथा समस्त बीजों के उत्पत्तियोग्य शुक्ल, रक्त, पीत, कृष्ण वर्ण वाली जमीन प्रशस्त होती है।।९।।

द्विजराजन्यवैश्यानां शूद्राणां च यथाक्रमम्।
परीक्षितायां भूम्यां तु मध्ये तस्याः प्रमाणतः ।।१०।।
उपलिप्य चतुर्हस्तं चतुरस्रं समन्ततः।
हस्तमात्रमधः खात्वा मध्ये तस्य दशाङ्गुलम् ।।११।।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रों द्वारा यथाक्रम से परीक्षित भूमि में परिमाप के अनुसार चार हाथ साफ करके चारो ओर चतुरस्र (चार कोण, चौकोर) बनाकर नीचे एक हाथ खोदना चाहिये। उसमें पुनः १० अङ्गुल का गर्त खोदे।।१०-११।।

गर्त्तमुत्कीर्त्तयेत्तं वै पांसुना परिपूरयेत्।
समे समगुणा ज्ञेया हीने हीनगुणा भवेत् ।।१२।।

उस गर्त्त को धूल से परिपूर्ण करना चाहिये। वह समान होने से समगुण तथा हीन होने से हीनगुण वाली होती है।।१२।।

वर्द्धमाने तु भूयोऽसौ भवेद्वृद्धिकरी क्षितिः।
नित्यं प्राङ्मुखमर्कस्य कदाचित् पश्चिमामुखम् ।।१३।।

वृद्धि होने से वह वृद्धिकरी भूमि होती है। नित्य सूर्य-प्रतिमा का मुख पूर्व की ओर करना चाहिये, परिस्थितिवशात् पश्चिममुख भी हो सकती है।।१३।।

स्थापनीयं गृहे सम्यक् प्राङ्मुखे स्थानकल्पना।
भवनाद्दक्षिणे पार्श्वे रवेः स्नानगृहं स्मृतम् ।।१४।।

गृह के पूर्व में सूर्यप्रतिमा स्थापित करनी चाहिये। गृह के दक्षिण पार्श्व में सूर्य का स्नानगृह बनाना चाहिये।।१४।।

अग्निहोत्रगृहं कार्यं रवेरुत्तरतः शुभम्।
उदङ्मुखं भवेच्छम्भोर्मातृणां च गृहोत्तमम्॥१५॥
ब्रह्मा पश्चिमतः स्थाप्यं विष्णुरुत्तरतस्तथा।
निक्षुभा दक्षिणे पार्श्वे रवेः राज्ञी तु वामतः॥१६॥

उत्तर में सूर्य का अग्निहोत्र गृह होना चाहिये, जो शुभप्रद होता है। उत्तर की ओर मुख किये शम्भु तथा मातृकाओं का गृह उत्तम होता है। पश्चिम में ब्रह्मा तथा उत्तर में विष्णु स्थापनीय हैं। रवि के दक्षिण पार्श्व में निक्षुभ तथा वाम पार्श्व में राज्ञी को स्थापित करना चाहिये।।१५-१६।।

पिङ्गलो दक्षिणे भानोर्वामतो दण्डनायकः।
श्रीमहाश्वेतयोः स्थानं पुरस्तादंशुमालिनः॥१७॥

सूर्य के दक्षिण में पिङ्गल तथा वाम पार्श्व में दण्डनायक की प्रतिमा स्थापित करनी चाहिये। अंशुमाली सूर्य के समक्ष श्री तथा महाश्वेता का स्थान होता है।।१७।।

तत्तथो अश्विनौ द्वारि पूजाकर्मगृहाद् बहिः।
द्वितीयायां तु कक्षायां राज्ञस्तोषौ व्यवस्थितौ॥१८॥
तृतीयायां तु कक्षायां स्थितौ कल्माषपक्षिणौ।
जान्दको माठरः स्थाप्यो दक्षिणां दिशमास्थितौ॥१९॥

पूजागृह के बाहरी द्वार में अश्विनीकुमार द्वय एवं द्वितीय कक्षा में राज्ञ एवं तोष के रहने का स्थान बनाना चाहिये। तृतीय कक्षा में कल्माष नामक पक्षिद्वय रहते हैं। दक्षिण दिशा में जान्दक तथा माठर की प्रतिमा स्थापित करनी चाहिये।।१८-१९।।

प्राप्नुयानूक्षुतायौ तु पश्चिमां दिशमास्थितौ।
उदीच्यां स्थापनीयस्तु कुबेरः सोम एव च॥२०॥

पश्चिम दिशा में प्राप्नुयान तथा ऊक्षुता को स्थापित करना चाहिये। उत्तर दिशा में कुबेर तथा चन्द्र की स्थापना करनी चाहिये।।२०।।

उत्तरेणैव ताभ्यां तु रेवन्तः सविनायकः।
यद्रवेर्विद्यते स्थानं चतुर्दिक्षु तु तत्र वा॥२१॥

उसके उत्तर में विनायक के साथ रेवन्त की स्थापना करनी चाहिये अथवा रवि के चतुर्दिक् जो स्थान है, वहाँ उनको स्थापित करना चाहिये।।२१।।

अर्घाय मण्डले द्वे वै कार्ये सव्यापसव्ययोः।
दद्यादुदयवेलायामर्घं सूर्याय दक्षिणे॥२२॥
उत्तरे मण्डले दद्यादर्घ्यमस्तंगते रवौ।
चतुरस्रं चतुःशृङ्गं व्योमदेवगृहाग्रतः॥२३॥

सूर्यमण्डल के बाँयें तथा दाहिने अर्घ्य देने का स्थान रखना होगा। उदय काल में दाहिनी ओर सूर्य को अर्घ्य देना चाहिये। अस्तकाल में बायीं ओर अर्घ्यदान करना चाहिये। देवगृह के समक्ष चतुरस्र तथा चतुःशृङ्ग बनाना चाहिये।।२२-२३।।

दिण्डिः स्थाप्यः पुरस्तस्मादादित्याभिमुखस्तथा।
एष स्थानविधिः प्रोक्तो देवानान्तु यथाक्रमम्॥२४॥

इति श्रीसाम्बपुराणे प्रतिमालक्षणं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः

●

प्रतिमापाद सूत्र द्वारा मध्य में मण्डल करे। उसके समक्ष सूर्य के अभिमुख दिण्डी की स्थापना करनी चाहिये। इस प्रकार देवगण का यथाक्रम से अवस्थान का प्रकार कहा गया।।२४।।

श्रीसाम्बपुराण में प्रतिमालक्षण नामक उनत्रिंश अध्याय समाप्त

●

त्रिंशोऽध्यायः

(प्रतिष्ठापनकल्पे दारुपरीक्षा)

वशिष्ठ उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि प्रतिमाविधिविस्तरम्।
अर्चाः सप्तविधा प्रोक्ता भक्तानां शुभवृद्धये ॥१॥
काञ्चनी राजती ताम्री पार्थिवी शैलजा तथा।
वार्क्षी वालेख्या गायन्ति मूर्त्तिस्थानानि सप्त वै ॥२॥

वशिष्ठदेव कहते हैं—अब प्रतिमा-निर्माण का विधान विस्तार से कहता हूँ। भक्तों की शुभ वृद्धि हेतु सात प्रकार की अर्चनीय प्रतिमा कही गयी है। स्वर्णमयी, रौप्यमयी, ताम्री, पार्थिवी (मृण्मयी), प्रस्तरमयी, वार्क्षी (काठ की), अथवा आलेख्य (पट पर अंकित चित्र)—ये सात मूर्त्तियाँ कही गयी हैं।।१-२।।

मधूको देवदारुश्च राजवृक्षः सचन्दनः।
बिल्वश्चाम्रातकश्चैव खदिरश्चम्पकस्तथा ॥३॥
निम्बः श्रीपर्णवृक्षश्च त्वशनः सरलोऽर्जुनः।
रक्तचन्दनपर्यन्ताः श्रेष्ठाः स्युः प्रतिमाद्रुमाः ॥४॥

मधूक, देवदारु, राजवृक्ष, चन्दन, बिल्व, आमडा, कत्था, चम्पक, निम्ब, शाल्मलीवृक्ष, अशन (पीतशालक वृक्ष), देवदारु वृक्ष, अर्जुन तथा रक्तचन्दन—ये प्रतिमानिर्माणार्थ श्रेष्ठ वृक्ष कहे गये हैं।।३-४।।

वर्णानामानुपूर्व्येण द्वौ द्वौ वृक्षौ प्रकीर्त्तितौ।
निम्बाद्याः सर्ववर्णानां वृक्षाः साधारणाः स्मृताः ॥५॥

आनुपूर्विक चार वर्णों के दो-दो वृक्ष कहे गये हैं। ब्राह्मणादि सकल वर्णों के लिये निम्ब-प्रभृति साधारण वृक्षों को कहा गया है।।५।।

क्षीरिणो वर्जिताः सर्वे दुर्बलास्ते स्वभावतः।
चतुष्पथेषु न ग्राह्या ये ये स्युस्तत्र वृक्षकाः ॥६॥

समस्त क्षीरीवृक्ष (जिसको तोड़ने पर दूध निकले) का वर्जन करना उचित है; कारण कि वे स्वभावतः दुर्बल होते हैं। चतुष्पथ पर जो वृक्ष अवस्थित हों, उनका भी ग्रहण नहीं करना चाहिये।।६।।

देवतायतनस्थाश्च ये च वल्मीकसम्भवाः।
उत्तीर्णा देवता येषु चैत्यवृक्षाश्च ये स्मृताः ॥७॥

देवता के मन्दिर के पास जो वृक्ष है, जिन वृक्षों में वल्मीक (दीपक) उत्पन्न है, जिस वृक्ष से देवता चले गये हैं एवं चैत्यवृक्ष (रथ्या अथवा श्मशान पार्श्वस्थ बौद्धों का पूजनीय वृक्ष)—इनका वर्जन करना चाहिये।।७।।

श्मशानाश्रयजाताश्च पक्षिणां निलयाश्च ते।
सकोटराश्च ये वृक्षाः शुष्काग्रा ये च पादपाः ॥८॥
अस्तानिलानलहताः कुञ्जराशनदूषिताः।
ग्रामाभासरजोद्धस्ता बाला दुर्गन्धिनस्तथा ॥९॥
अकालफलपुष्पाश्च काले ताभ्यां विवर्जिताः।
शीर्णवज्राश्च तरयो रूक्षा ध्वांक्षनिषेविताः।
एकशाखा द्विशाखाश्च त्रिशाखा अधमा द्रुमाः ॥१०॥

श्मशानसीमा में जो वृक्ष उगा है, जिस वृक्ष पर पक्षियों का वास है, जिसमें काँटा है, जिसका अग्रभाग सूख गया है, वायु अथवा अग्नि से जो वृक्ष नष्ट है, हाथी के खाने से जो नष्ट है, जो ग्राम के मुर्गे अथवा गृद्ध की बीट से जड़ित है, जो वृक्ष छोटा है, जो दुर्गन्धयुक्त है, अकाल में जिस वृक्ष के फल तथा पुष्प नष्ट हो जाते हैं, काल में जिसमें पुष्प-फल होते ही नहीं (काल में अर्थात् ऋतु में), स्नुही वृक्ष, जो वृक्ष रूक्ष है तथा जिस पर गृद्ध रहते हैं, जिस वृक्ष की एक, दो अथवा तीन शाखायें मात्र हैं, ऐसे अधम वृक्ष का त्याग करना चाहिये।।८-१०।।

शुचौ समे विविक्ते च केशाङ्गारविवर्जिते।
प्रागुदक्प्रवणे हृद्ये देशे कण्टकवर्जिते ॥११॥
विस्तीर्णस्कन्धविटपः पुष्पवानृजुरव्रणः।
अभुग्नहीनोऽविकटः स तु ग्राह्यः शुभस्तरुः ॥१२॥

पवित्र स्थान में, निर्जन में उगे, केश-अङ्गार-रहित, जलाशय के निकट उगे, रमणीय कण्टक वर्जित जो वृक्ष विस्तीर्ण तना तथा शाखा वाला हो, पुष्पयुक्त, सीधा तथा अक्षत हो, जो टेढ़ा, खण्डित अथवा विकट न हो, ऐसे मंगलप्रद वृक्ष को प्रतिमा-निर्माणार्थ ग्रहण करना उचित है।।११-१२।।

तस्याप्यष्टसु मासेषु ग्रहणं कार्त्तिकादिषु ॥१३॥
प्रशस्ते पुष्यनक्षत्रे गुणयुक्ते शुभे दिने।
शकुने च शुभे नित्यं सोपवासोऽधिवासयेत् ॥१४॥

समन्तादुपलभ्याथ तस्याधस्ताद् वसुन्धराम्।
गायत्र्या परिपूतेन परितः प्रोक्ष्य वारिणा ॥१५॥
शुक्ले चापरिभुक्ते च परिधाय च वाससी।
पूजयेद् गन्धमाल्यैश्च धूपैः स्वबलिकर्मभिः ॥१६॥

कार्त्तिकादि आठ मास में ऐसा काष्ठ संग्रह करना उचित है। प्रशस्त पुष्य नक्षत्रयुक्त शुभ दिन में शुभ नक्षत्र में नित्य उपवास रहकर अधिवास करे। चतुर्दिक लक्ष्य करके अपने नीचे की मिट्टी को गायत्री से पवित्र करके चारो ओर तथा ऊर्ध्व-अधः दिशा में जल छिड़के; तत्पश्चात् शुद्ध वस्त्रयुगल धारण करके गन्ध-माल्य, धूपदान, बलिकर्म प्रभृति से पूजन करे।।१३-१६।।

ततः कुशपरिस्तीर्णे हुत्वाग्निं च तदन्तिकम्।
देवदारुसमिद्भिश्च मन्त्रेणानेन तत्त्ववित् ॥१७॥

तत्पश्चात् तत्त्वज्ञ पूजक कुश बिछाकर देवदारु की समिधा से इस मन्त्र द्वारा अग्नि में आहुति प्रदान करे।।१७।।

ॐ प्रजापतये सत्यसन्धाय नित्यं स्त्रष्ट्रे विधात्रे च चरात्मने नमः।
सान्निध्यमस्मिन्कुरु देववृक्षे सूर्यावृतं मण्डलमाविशस्व स्वाहा ॥१८॥

'ॐ प्रजापति, नित्य सत्यप्रतिज्ञ, स्त्रष्टा, विधाता, चराचरात्मक को नमस्कार है। आप इस देवदारु वृक्ष में उपस्थित होकर (समिधा में उपस्थित होकर) सूर्यावृत मण्डल में प्रवेश करें—स्वाहा'।।१८।।

एवं सम्पूजयित्वा तु वाक्यैस्तं परिशान्तये।
वृक्षलोकस्य शान्त्यर्थं गच्छ देवालयं शुभम् ॥१९॥
देव त्वं यास्यसे तत्र छेददाहविवर्जितः।
काले धूपप्रदानेन सपुष्पैर्बलिकर्मभिः ॥२०॥
लोकास्त्वां पूजयिष्यन्ति ततो यास्यसि निर्वृतिम्।
वृक्षमूलं कुठारं च धूपैः पुष्पैश्च पूजयेत् ॥२१॥

इस प्रकार से पूजन कर शान्ति-कामना से नीचे लिखे वाक्यों को बोलकर वृक्षों की शान्ति हेतु शुभ देवालय में जाना चाहिये। 'छेदन तथा दाह-विवर्जित होकर तुम देवत्व का लाभ करो; यथाकाल धूप-पुष्प तथा बलिकर्म से लोग तुम्हारी पूजा करेंगे (अर्थात् मूर्त्ति बन जाने पर पूजन करेंगे), जिससे तुमको शान्ति मिलेगी।' यह कहकर वृक्ष की जड़ के पास वृक्ष के मूल की तथा कुठार (कुल्हाड़ी, जिससे वृक्ष काटा जायेगा) की पुष्प, धूप से पूजा करनी चाहिये।।१९-२१।।

प्रयातायां तु शर्वर्यां पुनः सम्पूज्य तं नगम्।
ब्राह्मणेभ्यस्ततो दत्वा याजकेभ्यश्च दक्षिणाम् ॥२२॥

रात्रि व्यतीत हो जाने पर पुनः उस वृक्ष का पूजन करके ब्राह्मण एवं पुरोहित गण को दक्षिण देनी चाहिये।।२२।।

छिन्द्याद्वनस्पतिं तज्ज्ञैस्तैः कृते स्वस्तिवाचने।
पूर्वस्यां दिशि पातोऽस्य ह्यैशान्यां चापि यद्भवेत् ॥२३॥
अथवा चोत्तरस्यां तु तथा छिंद्यास्तु नान्यथा।
पूर्वेशान्यामुदक्पातो दिक्षुं तिसृषु चोत्तमः ॥२४॥
नैर्ऋत्याग्नेययाम्यासु दिक्षु पातस्त्वशोभनः।
वायवीवारुणीभ्यां तु दिग्भ्यां पातस्तु मध्यमः ॥२५॥

ब्राह्मण तथा याजकगण स्वस्ति-वाचन करके निपुण लकड़हारे से वृक्ष को इस प्रकार कटवायें, जिससे कि वृक्ष पूर्व तथा उत्तर के मध्य के कोण (ईशानकोण) में गिरे अथवा उत्तर दिशा की ओर गिरे। अन्य ओर न गिरे, इस प्रकार काटना चाहिये। पूर्व, ईशान तथा उत्तर दिशा की ओर वृक्ष का गिरना उत्तम है। नैर्ऋत्य कोण, अग्नि कोण तथा दक्षिण दिशा में वृक्ष का गिरना अशुभ है। वायुकोण (उत्तर पश्चिम कोण) तथा पश्चिम दिशा में गिरना मध्यम है।।२३-२५।।

यस्य वश्या स्थिताः शाखा विनिर्दिष्टाः सुशाखिनः।
तासु पूर्वं ततश्छित्वा ततः पश्चादधोऽच्छिनत् ॥२६॥

जिस वृक्ष की शाखायें मजबूत हैं, उसकी सुशाखी (शोभन शाखा को) से पहले ऊपर की शाखाओं को काटकर तब निम्न (नीचे की ओर) तने से काटना चाहिये।।२६।।

अविलग्नमशब्दं च पतनं तु प्रशस्यते।
उत्पतेद् द्विदलं यस्य आपश्च मधुरक्तयोः ॥२७॥
सर्पिस्तैलं क्षरेद् यस्तु पादपं तं विवर्जयेत्।
छेदनं तत्क्षणे वापि मण्डलं यस्य दृश्यते ॥२८॥

वृक्ष का असंलग्न (कहीं भी युक्त न होना) तथा निःशब्द पतन (गिरना) प्रशंसनीय है। जिसका द्विदल छिन्न हो, मधु अथवा रक्त जैसा जल, सर्पि और तेल जिस वृक्ष के कटने से क्षरित हो, उस वृक्ष का वर्जन कर देना चाहिये। जिसमें मण्डल (चक्र) देखा जाय, उस वृक्ष को तत्क्षण काट देना चाहिये।।२७-२८।।

सगर्भं तं विजानीयात् चिह्नैः समुपलक्षितम्।
पीतके मण्डले गोधा कृष्णे दीर्घभुजङ्गमः ॥२९॥

गुड़वर्णस्तु पाषाणः कपिले गृहगोधिका।
अग्निवर्णे जलं ज्ञेयं मञ्जिष्ठाभे भवेत् कृमिः ॥३०॥
दोषैरेतैर्विनिर्मुक्तं दारुश्रेष्ठमुदाहरेत्।
प्रक्षाल्य पल्लवैः सम्यक् क्वचित् कालं विधारयेत् ॥३१॥

इति श्रीसाम्बपुराणे प्रतिष्ठापनकल्पे दारुपरीक्षा नाम त्रिंशत्तमोऽध्यायः

●

ऐसे चिह्न वाले वृक्ष को सगर्भ जानना चाहिये। पीतवर्ण मण्डल होने से गोधा (गोसांप), कृष्णवर्ण होने से दीर्घ सर्प, गुड़वर्ण होने से पाषाण, कपिल वर्ण होने से गृहगोधिका (छिपकिली), अग्निवर्ण होने से जल एवं रक्ताभ होने से कृमि रहते हैं। इन सब दोषों से रहित वृक्ष को ही श्रेष्ठ वृक्ष कहा गया है। पत्र के द्वारा अच्छी तरह धोकर काष्ठ को कुछ दिन रखना पड़ता है।।२९-३१।।

श्रीसाम्बपुराण में दारुपरीक्षा नामक त्रिंश अध्याय समाप्त

●

एकत्रिंशोऽध्यायः

(प्रतिमालक्षणम्)

वशिष्ठ उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि प्रतिमालक्षणं क्रमात्।
एकहस्ता द्विहस्ता च त्रिहस्ता वा प्रमाणतः ॥१॥

वशिष्ठ देव कहते हैं—अब प्रतिमालक्षण कहता हूँ। एक हाथ, दो हाथ तथा तीन हाथ अथवा जैसी इच्छा हो, उतने परिमाण की प्रतिमा का निर्माण करना चाहिये।।१।।

तथा सार्धत्रिहस्ता वा सवितुः प्रतिमा शुभा।
प्रासादाद् द्वारतो वापि यत्प्रमाणं प्रकीर्त्तितम् ॥२॥
तद्वा प्रमाणं कर्त्तव्यं सततं शुभमिच्छता।
एकहस्ता भवेत् सौम्या द्विहस्ता धनधान्यदा ॥३॥
त्रिहस्ता प्रतिमा भानोः सर्वकामप्रदा स्मृता।
सार्द्धतृतीयहस्ता तु सुभिक्षक्षेमकारिका ॥४॥

साढ़े तीन हाथ की सूर्यप्रतिमा शुभ होती है। प्रासाद से द्वार का जैसा प्रमाण कहा गया है, वैसा ही यह होगा (प्रासाद अर्थात् देवालय माप का—इसका तात्पर्य श्लोक ५ में है)। शुभाकांक्षी व्यक्ति सर्वदा उसी प्रकार के माप को ग्रहण करे। एक हाथ माप की प्रतिमा सौम्य होती है। दो हाथ की (प्रतिमा) धन-धान्य देती है। सूर्य की तीन हाथ की प्रतिमा सकल कामनापूरक कही जाती है। साढ़े तीन हाथ की प्रतिमा प्रचुर खाद्य तथा क्षेम (अप्राप्त वस्तु को देने वाली) प्रदात्री होती है।।२-४।।

अग्रे मध्ये च मूले च प्रतिमा सर्वतः शुभा।
गान्धर्वी सा तु विज्ञेया बहुधान्यधनावहा ॥५॥
देवागारस्य यद्द्वारं तस्मादष्टाङ्गमुत्सृजेत्।
तृतीये पिण्डिका कार्या द्वौ भागौ प्रतिमा भवेत् ॥६॥

देवालय का जो द्वार है, उससे आठ भाग का परित्याग करना चाहिये। तृतीय भाग द्वारा पिण्डिका करनी चाहिये एवं दो भाग द्वारा प्रतिमा तैयार करनी चाहिये। वृक्ष के अग्रभाग, मध्यभाग तथा मूल की प्रतिमा सर्वदा शुभ होती है। इसे गान्धर्वी भी कहते हैं। यह धन-धान्य देने वाली होती है।।५-६।।

अङ्गुलैः स्वैर्भवेन्मूर्त्तिरशीतिश्चतुरङ्गुला।
विस्तारायामतः कार्या वदनं द्वादशाङ्गुलम्॥७॥
मुखं त्रिभागं चिबुकं ललाटं नासिका तथा।
कर्णौ नासिकया तुल्यौ पाण्योर्वा निपतेतयोः॥८॥
नयने द्व्यङ्गुले स्यातां तत्त्रिभागे तु तारके।
तृतीयं तारकाभागं कुर्याद् दृष्टिं विचक्षणः॥९॥

अपनी अंगुलियों से ८४ अंगुल परिमाण की मूर्त्ति होनी चाहिये। चेहरे का विस्तार १२ अंगुल होगा। उसके तीन भाग में मुख, चिबुक, ललाट तथा नासिका बनाये। नासिका के बराबर कर्णद्वय अथवा हस्तद्वय के अनुपात में कान बनाये। नेत्र २ अंगुल के होंगे, उसके तीन भाग में तारका (नेत्रतारका) होगी तथा विचक्षण व्यक्ति को तारका के तृतीय भाग में दृष्टि बनानी चाहिये।।७-९।।

ललाटं मस्तकोत्सेधं कुर्यात्तत्सममेव तु।
परिणाहस्तु शिरसो भवेद् द्वात्रिंशदङ्गुलम्॥१०॥
तुल्या नासिकया ग्रीवा मुखेन हृदयान्तरम्।
मुखमात्रा भवेन्नाभिस्ततो मेढ्रमनन्तरा॥११॥

ललाट में मस्तक का वेष्टन (उष्णीष) ललाट के समान होता है। ३२ अंगुल मस्तक का परिमाण होगा। मुख तथा हृदय के मध्य नासिका के तुल्य ग्रीवा होगी। मुख के सम परिणाम में नाभि तथा मेढ्र (लिंग) का निर्माण होगा।।१०-११।।

मुखविस्तारमुरसस्ततोऽर्धं तु कटिर्भवेत्।
बाहूप्रवाहतत्तुल्यावुरूजङ्घे च तत्समे॥१२॥

मुख के विस्तार के समान वक्षःस्थल होगा। वक्ष का आधा कटिदेश होगा। उसके समान बाहुद्वय तथा प्रवाहु (केहुनी का निम्न भाग), उसके समान ऊरू तथा जंघा होगी।।१२।।

गुल्फाधस्तात्तु पादः स्यादुच्छ्रितश्चतुरङ्गुलैः।
षडङ्गुलस्तु विस्तीर्णस्तस्याङ्गुष्ठाङ्गुलत्रयम्॥१३॥
प्रदेशिनी च तत्तुल्या हीना शेषनखान्नखम्।
चतुर्दशाङ्गुलः पादस्यायामः परिकीर्त्तितः॥१४॥

गुल्फ का निम्न भाग चार अंगुल चौड़ा तथा छः अंगुल विस्तृत पैर होगा। तदनन्तर अंगुष्ठ तथा अंगुलित्रय प्रदेशिनी-व्यापी होता है, उससे कुछ छोटी कनिष्ठा अंगुलि होती है तथा शेष नख होते हैं। पाद का विस्तार चतुर्दश अंगुल कहा गया है।।१३-१४।।

एवं लक्षणयुक्ताया भवेत् पूजितलक्षणा।
अंसौ भुजौ तथैवोरू भ्रूललाटे सनासिकम्॥१५॥
गण्डं च नियतं मूर्त्तेः कुर्यात् तज्ज्ञः समुन्नतिम्।
विशालधवला ताम्रा पक्ष्मलायतलोचनः॥१६॥

ऐसी लक्षणयुक्त प्रतिमा की पूजा करनी चाहिये। स्कन्धद्वय, भुजद्वय, ऊरू, भ्रू, ललाट, नासिका तथा गण्ड:स्थल आदि की उच्चता आदि का निरूपण विज्ञ शिल्पी को स्वयं करना चाहिये। विग्रह विशाल, शुभ्र, ताम्र के समान पक्ष्म एवं विस्तृत नयन से युक्त होना चाहिये।।१५-१६।।

सस्मिताननपद्मास्यचारुबिम्बाधरः शुभः।
रत्नप्रोद्भासिमुकुटः कटकाङ्गदहारवान्॥१७॥
अव्यङ्गपदबन्धादिसमायोगोपशोभितः।
सुबाहुमण्डलश्चारुविचित्रमणिकुण्डलः॥१८॥
कराभ्यां काञ्चनी मुद्रा प्राप्तहस्तसरोरुहम्।
एवं लक्षणसंयुक्तां कारयेदीप्सितप्रदाम्॥१९॥

मृदु मन्द हास्ययुक्त मुखमण्डल तथा सुन्दर बिम्बाधर शुभ होता है। रत्न से उद्भासित मुकुट, कटक, अङ्गद तथा हार भी होना चाहिये। चरण नूपुरादि से शोभित हो, बाहुमण्डल सुन्दर हो, कर्णों में विचित्र मणिकुण्डल रहे एवं दोनों हाथ में काञ्चनी मुद्रा होनी चाहिये। ऐसे लक्षणों वाली प्रतिमा ईप्सित वर देने वाली होती है।।१७-१९।।

प्रजाभ्यश्च तदा भानुः शिवारोग्याभयप्रदः।
अत्यङ्गायां नृपभयं हीनाङ्गायामकल्पता॥२०॥
ध्यातायां चक्षुषः पीड़ा कृशायां तु दरिद्रता।
सक्षतायां भयं शस्त्रात् स्फुटिता मृत्युकारिणी॥२१॥

सूर्यदेव प्रजा का मंगल करते हैं। आरोग्य तथा अभय प्रदान करते हैं। उनके निर्मित विग्रह में अधिक अंग होने पर नृपभय एवं हीन अंग होने पर अकल्पता (विधि-बहिर्भूतता) होती है। ऐसी मूर्त्ति का ध्यान करने से नेत्रपीड़ा होती है। कृश मूर्त्ति से दरिद्रता होती है। मूर्ति के क्षतयुक्त होने से अस्त्रभय तथा टूटी-फूटी होने से वह मूर्त्ति मृत्युकारक हो जाती है।।२०-२१।।

दक्षिणावनतायां तु शश्वत् स्यादायुषः क्षयः।
उत्तरावनतायां तु वियोगो भवति ध्रुवम्॥२२॥

मूर्त्ति के दाहिनी ओर झुकी होने से आयुक्षय होता है। वाम ओर झुकी होने से निश्चित मृत्यु होती है।।२२।।

तस्माद् भास्करभक्तेन लोकद्वयहितैषिणा।
नातिलोक्या न चालोक्या ऋज्वी मूर्त्तिः प्रशस्यते ॥२३॥
ता मूर्त्तयः शुभा कार्यास्तदधीनास्तु सम्पदः।
शिरोरुगण्डवदनैः सर्वाङ्गावयवैस्तथा।
एवं लक्षणसम्पूर्णा सा शुभा प्रतिमा नृणाम् ॥२४॥

इति श्रीसाम्बपुराणे प्रतिमालक्षणं नामैकत्रिंशोऽध्यायः

●

जो अत्यन्त उज्ज्वल न हो, निष्प्रभ भी न हो, ऐसी सरल प्रतिमा प्रशंसनीय होती है। अतएव इस लोक के तथा परलोक के हिताकांक्षी सूर्यभक्त को शुभ मूर्त्ति स्थापित करनी चाहिये। उससे सम्पत्ति मिलती है। मस्तक-ऊरु-गण्ड-वदन प्रभृति सभी अवयवविशिष्ट सम्पूर्ण लक्षणयुत प्रतिमा शुभप्रद होती है।।२३-२४।।

श्रीसाम्ब पुराण का प्रतिमालक्षण नामक एकत्रिंश अध्याय समाप्त

●

द्वात्रिंशोऽध्यायः

(प्रतिमाकल्पः)

वशिष्ठ उवाच

अतोऽधिवासनं कार्यं विधिदृष्टेन कर्मणा।
सामुद्रं तोयमाहृत्य जाह्नव्यं यामुनं तथा ।।१।।
सारस्वतं जलं पुण्यं चान्द्रभागं ससैन्धवम्।
पौष्करं च जलं श्रेष्ठं गिरिप्रस्त्रवणोदकम् ।।२।।
अन्यद्वा शुचि यत्तोयं नदीनदतटाकजम्।
यथाशक्त्या तदाहृत्य कलशैः काञ्चनादिभिः ।।३।।

वशिष्ठ देव कहते हैं—तदनन्तर विधिदृष्ट कर्म द्वारा मूर्ति का अधिवास करना चाहिये। एतदर्थ समुद्र जल लाये। उसी प्रकार से चन्द्रभागा, सरस्वती, यमुना, जाह्नवी तथा सिन्धु का पुण्यजल लाना चाहिये। पुष्कर तथा प्रस्त्रवण गिरि का भी जल श्रेष्ठ होता है एवं अन्यान्य नद, नदी तथा जलाशय-जात जो पवित्र जल है, उसे भी यथाशक्ति स्वर्णादि के कलश में लाना चाहिये।।१-३।।

ततस्तु मणिरत्नानि सर्वबीजौषधींस्तथा।
सुगन्धानि च माल्यानि स्थलजान्यम्बुजानि च ।।४।।
चन्दनानि च मुख्यानि गन्धांश्च विविधान् वरान्।
ब्राह्मीं सुवर्चलां मुस्तां विष्णुक्रान्तां शतावरीम् ।।५।।
दूर्वां च शङ्खपुष्पीं च प्रियङ्गूं रजनीं वचाम्।
सम्भृत्य तांस्तु सम्भारान् नानाकर्मविधानवित् ।।६।।
वटाश्वत्थशिरीषाणां पल्लवैः कुशसंयुतैः।
कलशो परिविन्यस्तैर्देयं स्नानोदकं रवेः ।।७।।

तदनन्तर मणि, रत्न, सर्वबीजौषधि, सुगन्धि, माला, स्थलज तथा जलज पद्म, मुख्य चन्दन, विविध अष्टगन्ध, ब्राह्मी, सुवर्चला (अतसी, सूर्यमुखीपुष्प), मुस्ता (एक प्रकार का जड़विशेष), विष्णुक्रान्ता (अपराजिता मूल), शतावरी, दूर्वा, शङ्खपुष्पी, प्रियंगु (श्यामलता, फलिनीलता, पीपल), रजनी, वच—इन सब नानाविध सम्भारों का संग्रह करके नाना कर्म में विधानज्ञ व्यक्ति वट, पीपल, शिरीष प्रभृति के पल्लव तथा कुश को कलश के ऊपर स्थापित करके रवि को स्नानार्थ जल प्रदान करे।।४-७।।

काञ्चनै राजतैस्ताम्रैर्मृण्मयैः कलशैस्तथा।
साक्षतैः सहिरण्यैश्च सर्वौषधिसमन्वितैः।
गायत्रीपरिपूतैस्तैरष्टभिः स्नापयेद् रविम्॥८॥

स्वर्ण, रौप्य (चाँदी), ताम्र, मृण्मय (मिट्टी) के कलश द्वारा अक्षत, हिरण्य, सर्वौषधियुत तथा गायत्री मन्त्र से शुद्ध आठ कलशों से सूर्यदेव को स्नान कराये।।८।।

कुशोत्तरां ततः कृत्वा वेदीं पक्वेष्टकामयीम्॥९॥
तस्यां वेद्यां समारोप्य परिधाप्य च वाससी।
प्रतिमामभिषिञ्चेत सोपवासः प्रयत्नतः॥१०॥

पाँच ईटों की वेदी का निर्माण करे, उसमें कुश का संयोग करके प्रतिमा को नूतन वस्त्र पहनाकर उपवासी होकर प्रतिमा का अभिषेक यत्न से करना चाहिये।।९-१०।।

मूर्ध्नि सर्वौषधीन् दत्त्वा तथैवामलकानि च।
वाक्यमुच्चारयेदेवमुपर्यवकिरञ्जलम्॥११॥

मस्तक पर सर्वौषधि तथा आमलकी प्रदान करके मस्तक पर जल डालते हुये नीचे लिखे मन्त्र का उच्चारण करना चाहिये।।११।।

देवास्त्वामभिषिञ्चन्तु ब्रह्मविष्णुशिवादयः।
व्योमगङ्गाम्बुपूर्णेन आद्येन कलशेन तु॥१२॥

ब्रह्मा-विष्णु-शिवादि देवगण आकाशगंगा के जल से पूर्ण प्रथम कलश द्वारा आपको अभिषिक्त करें।।१२।।

मरुतश्चाभिषिञ्चन्तु भक्तिमन्तो दिवस्पते।
मेघतोयसुपूर्णेन द्वितीयकलशेन तु॥१३॥

हे दिवस्पति सूर्यदेव! भक्तिमान् मरुद्गण मेघों से परिपूर्ण द्वितीय कलश से आपका अभिषेक करें।।१३।।

सारस्वतेन तोयेन पूर्णेन सुरसत्तमाः।
विद्याधराभिषिञ्चन्तु लोकपालाः समागताः॥१४॥
सागरोदकपूर्णेन चतुर्थकलशेन तु।
वारिणा परिपूर्णेन पद्मरेणुसुगन्धिना॥१५॥
पञ्चमेनाभिषिञ्चन्तु नागाश्च कलशेन ते।
हिमवद्धेमकूटाद्या अभिषिञ्चन्तु पर्वताः॥१६॥
निर्झरोदकपूर्णेन षष्ठेन कलशेन तु।
सर्वतीर्थाम्बुपूर्णेन कलशेन दिवस्पते॥१७॥

सप्तमेनाभिषिञ्चन्तु ऋषयः सप्त खेचराः ।
वसवश्चाभिषिञ्चन्तु कलशेनाष्टमेन ते ॥१८॥
अष्टमङ्गलयुक्तेन देवदेव नमोऽस्तु ते ।
स्नापयित्वा क्रमेणैनं स्नानकर्मविधानवित् ॥१९॥

देवश्रेष्ठ विद्याधरगण सरस्वती के जल से पूर्ण तृतीय कलश से आपका अभिषेक करें। समागत लोकपालगण सागर जल से पूर्ण चतुर्थ कलश द्वारा आपका अभिषेक करें। नागगण पद्मरेणु द्वारा सुगन्धित जल से पूर्ण पञ्चम कलश से आपका अभिषेक करें। हिमवत् हेमकूट प्रभृति पर्वतगण (तदभिमानी देवगण) निर्झर के जल से पूर्ण कलश से आपका अभिषेक करें। हे दिवाकर! आकाशचारी सप्त ऋषिगण (मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु तथा वशिष्ठ) सकल जलपूर्ण सप्तम कलश द्वारा आपका अभिषेक करें। अष्ट वसुगण (गंगा से उत्पन्न भव-ध्रुव-सोम-विष्णु-अनिल-अनल-प्रत्यूष तथा प्रभव) अष्टमंगलयुक्त अष्टम कलश द्वारा आपका अभिषेक करें। हे देवदेव! आपको नमस्कार है। स्नानकर्म के विधान को जानने वाले व्यक्ति को इस प्रकार क्रमानुसार स्नान कराना चाहिये (यहाँ मूल संस्कृत के १२वें श्लोक से लेकर १८वें श्लोक-पर्यन्त अभिषेक का मन्त्र दिया गया है)।।१४-१९।।

ततो वर्धनिकां गृह्य वारिधारां समुत्सृजेत् ।
त्रिंशत्तु पुरतोऽर्कस्य आचमस्वेति च ब्रुवन् ॥२०॥

तदनन्तर वर्धानिका (क्षुद्र जलपात्र) लेकर ३० बार जल प्रदान करे तथा सूर्य से कहे कि आप आचमन करिये।।२०।।

ततोऽन्यत्र शुचौ देशे सुसंस्पृष्ट्यापलेपने ।
तण्डुलैः पञ्चरागैश्च आलिखेच्चतुरन्तिकम् ॥२१॥

तदनन्तर अन्यत्र पवित्र देश में (भूमि को) लेपन से साफ करके तण्डुल (चावल) तथा पञ्चराग द्वारा चारो ओर अंकित करे।।२१।।

पताकातोरणच्छत्रध्वजमालाद्यलङ्कृतम् ।
विचित्रस्त्रग्वितानाढ्यं प्रकीर्णकुसुमोत्करम् ॥२२॥
तस्य मध्ये कुशोस्तीर्णे मूर्त्तिं स्थाप्य विवस्वतः ।
तस्य चावाहनं कृत्वा दद्यादर्घ्यं प्रयत्नतः ॥२३॥

तदनन्तर पताका, तोरण, छत्र, ध्वजा तथा माला से अलंकृत करके विचित्र वर्णों की माला तथा पुष्पादि से मण्डप को शोभित करे। वहाँ कुशासन पर सूर्यदेव की मूर्त्ति स्थापित करके आवाहन के पश्चात् यत्नपूर्वक अर्घ्यदान करना चाहिये।।२२-२३।।

सुवर्णमधुपर्कादि सुमनोदीपधूपकैः ।
देवाय स्पर्शयेद् गाञ्च सवत्सां रोहिणीं शुभाम् ॥२४॥

स्वर्ण-मधुपर्कादि, पुष्प, धूप, दीप को देवता के उद्देश्य से निकालकर शुभ सवत्सा लाल गाय का स्पर्श (देवता को) कराये। उस समय यह मन्त्र पढ़ना चाहिये।।२४।।

ॐ नमो गोपतये इत्युक्त्वा सहस्रांशो प्रसीदयेत् ।
एवम् मन्त्रेण सम्पूज्य परिधाय च वाससी ॥२५॥

हे गोपते (सूर्य)! आपको नमस्कार है। हे सहस्रांशु! मुझपर प्रसन्न हो जाईये। इस मन्त्र से पूजा करके उनको वस्त्रद्वय पहनाये।।२५।।

यज्ञोपवीतमावेष्ट्य बद्धोत्सङ्गस्तथैव च ।
सर्वगन्धैः समालिप्य चन्दनागुरुकुङ्कुमैः ॥२६॥

उन्हें यज्ञोपवीत धारण कराकर (यज्ञोपवीत से आवेष्टन करके) तदनन्तर चन्दन, अगुरु, कुङ्कुम प्रभृति गन्ध का लेपन करे।।२६।।

अलङ्कारैरलङ्कृत्य कुसुमैश्च सुगन्धिभिः ।
मालाभिश्च विचित्राभिराबद्धाभिरनेकशः ॥२७॥

तत्पश्चात् विविध अलङ्कारों से अलंकृत करके सुगन्धि, कुसुम तथा अनेक विचित्र मालाओं को पहनाये।।२७।।

ततो धूपं च नैवेद्यं दद्याच्चैव प्रयत्नतः ।
तत्तोरणं समुत्थाप्य मणेः शौरादयो धिया ॥२८॥

तत्पश्चात् अनेक यत्न द्वारा धूप एवं नैवेद्य निवेदित करना चाहिये। तदनन्तर अकालोदित (अकाल में उगे) इन्द्रधनुष का (मणि का) चिन्तन करते हुये तोरण को उत्तोलित करे।।२८।।

प्रज्वाल्याग्निं विधानेन कुर्याच्छान्तिं विधानतः ।
ततः स्वलङ्कृतां स्नातां मणिरत्नविभूषिताम् ॥२९॥
कृत्वा प्रतिष्ठितां रक्षां प्रतिमामधिवासयेत् ॥३०॥

विधान के अनुसार अग्नि प्रज्वलित करके यथाविधि शान्तिदान करे। तदनन्तर स्नात, अलंकृत, मणिरत्नादि से विभूषित प्रतिष्ठित प्रतिमा का अधिवास कराये।।२९-३०।।

देवागारात्तथैशाने दिग्भागे दिव्यसंज्ञिते ।
कृत्वा कुशपरिस्तीर्णे वरास्तरणसंवृते ।
पूर्वशीर्षां शुभां शय्यां शुक्लां शुक्लाम्बरोत्तमाम् ॥३१॥

तस्यां संवेशयेत् सम्यङ् महाश्वेतामुदीरिताम्।
निक्षुभां दक्षिणे पार्श्वे वामे राज्ञीं च स्थापयेत् ॥३२॥

तदनन्तर देवमन्दिर में ईशान कोण में दिव्यनाम स्थान में कुश बिछाकर सुन्दर आस्तरण पर पूर्व की ओर मस्तक (मुख) करके (ताकि पैर पश्चिम की ओर रहे) शुभ्र वस्त्रों की उत्तम शय्या बनानी चाहिये। इस शय्या पर प्रसिद्ध महाश्वेता की स्थापना करनी चाहिये एवं उसके दाहिनी ओर निक्षुभा तथा बाँयीं ओर राज्ञी की स्थापना करनी चाहिये।।३१-३२।।

दण्डपिङ्गलकौ चास्य स्थाप्यौ पादप्रवेशितौ।
तस्यां शङ्खसितायां तु शय्यायां प्रतिमां रवेः ॥३३॥

पाद-प्रदान (पैर रखने के) स्थान पर दण्ड तथा पिङ्गल को स्थापित करना चाहिये। उस शङ्ख के समान शुभ्र शय्या पर सूर्यप्रतिमा की स्थापना करनी चाहिये।।३३।।

वसेच्च रजनीं तत्र स्तूयमानं चतुर्दिशम्।
ब्राह्मणैर्वन्दिभिश्चापि गीतज्ञैर्वरणैस्तथा।
कुर्याज्जागरणं तत्र सूर्यभक्तिसमन्वितैः ॥३४॥

वहाँ पूजक को रात में रहना चाहिये। चारो ओर से ब्राह्मण, बन्दीगण, वृत गीतज्ञ स्तव करते रहें तथा सब सूर्य के प्रति भक्तियुक्त होकर रात्रि-जागरण भी करें।।३४।।

प्रभातायां तु शर्वर्यां बोधयेद् दिग्विधानतः।
हविष्यं भोजयित्वा तु ब्राह्मणान् याजकांस्तथा ॥३५॥
दक्षिणाभिश्च सम्पूज्य कृते वै स्वस्तिवाचने।
दीनान्धकृपणादींश्च सर्वानन्नेन तोषयेत् ॥३६॥

तत्पश्चात् प्रभात होने पर विधिपूर्वक प्रतिमा को जगाये। ब्राह्मण तथा याजकों को हविष्य भोजन कराकर स्वस्तिवाचन के साथ दक्षिणादि द्वारा उनकी पूजा करे। तदनन्तर दीन-अन्ध-कृपण प्रभृति सबको अन्न से परितुष्ट करना चाहिये।।३५-३६।।

ततो गर्भगृहस्थानमध्ये कृत्वा तु पिण्डिकाम्।
अवटे चास्य सौवर्णं न्यस्य सप्तहयं रथम्॥३७॥
सर्वबीजौषधींश्चैव तत्र दत्त्वा विधानवित्।
दत्तार्घ्यं स्थापयेत्तत्र यजमानं सहायवान् ॥३८॥
गौरांश्च सर्षपान् दत्त्वा अर्चां संस्थापयेत्ततः।
शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषैर्हस्ताधारासहाक्षतैः ॥३९॥

तदनन्तर गर्भगृह में पिण्डिका को प्रस्तुत (रख) करके उस गर्भ गृह में स्वर्ण तथा सप्ताश्व रथ स्थापित करे। तत्पश्चात् विधान को जानने वाला यजमान अन्य की सहायता

से वहाँ सर्व बीजौषधि से युक्त अर्घ्य प्रदान करके उसे स्थापित करे। तदनन्तर श्वेत सरसों अर्पित करके (नीचे रखकर) वहाँ प्रतिमा स्थापित करनी चाहिये। तदनन्तर शङ्ख-दुन्दुभि आदि के शब्द के साथ हाथों से चावल छिड़कना चाहिये।।३७-३९।।

कृत्वा पुण्याहशब्देन स्वालयस्य प्रदक्षिणाम्।
शुभे लग्ने दिने ऋक्षे पूर्वाह्णे भानवेक्षणे।
मुहूर्त्ते च शुभे भानोः प्रतिमां स्थापयेद् बुधः ।।४०।।

तदनन्तर पुण्याह शब्दों द्वारा देवगृह की प्रदक्षिणा करे। शुभ लग्न में शुभ दिन तथा नक्षत्र में पूर्वाह्ण काल में, सूर्यालोक (सूर्य के प्रकाश) में शुभ मुहूर्त्त में ज्ञानी व्यक्ति को सूर्य प्रतिमा का स्थापना कार्य करना चाहिये।।४०।।

नाधोमुखीं नोदूर्ध्वमुखीं न पार्श्वाननतां तथा।
समामभिमुखीं चेमां प्रतिमां च निवेशयेत् ।।४१।।

प्रतिमा निम्नमुखी अथवा ऊर्ध्वमुखी नहीं होनी चाहिये। सामने की ओर प्रतिमा का मुख हो, ऐसी स्थापना करनी चाहिये।।४१।।

पत्न्यौ चास्य ततः सम्यक् पार्श्वयोर्विनिवेशयेत्।
निक्षुभां दक्षिणे पार्श्वे रवे राज्ञीं तु वामतः ।।४२।।

तत्पश्चात् सूर्य की दोनों पत्नियों को विधान के अनुसार सूर्य के पार्श्व में स्थापित करना चाहिये अर्थात् दाहिनी ओर निक्षुभा तथा बाँयीं ओर राज्ञी की स्थापना करे।।४२।।

पिङ्गलो दक्षिणे भानोर्वामतो दण्डनायकः।
स्थाप्य चैव ततो वह्निं संस्थाप्य विधिवत् पुनः ।।४३।।

सूर्य के दाहिनी ओर पिङ्गल तथा बाँयीं ओर दण्डनायक की स्थापना करनी चाहिये। तदनन्तर पुनः विधिपूर्वक वह्नि-स्थापना करनी चाहिये।।४३।।

यजमानस्य शान्त्यर्थं शान्तिकर्म विधानवित्।
होमयेत् सर्वदेवानां स्वाहाकारैरितस्ततः ।।४४।।

यजमान की शान्ति के लिये शान्तिकर्म में निपुण पुरोहित द्वारा स्वाहायुक्त मन्त्रों से चारो ओर समस्त देवताओं का होम करना चाहिये।।४४।।

ततस्तदुपहारार्थं सम्भारैः प्राक्समाहृतैः।
मोदकोल्लापिकापूपशष्कुलीभूतशीर्षकैः ।।४५।।
कृशरैः पायसोन्मिश्रैः सर्वदिक्षु क्षिपेद् बलिम्।
तर्पयेत् क्षीरमध्वाज्यैः स्तूयात् स्तोत्रैश्च भास्करम् ।।४६।।

तत्पश्चात् होम की आहुति-हेतु पूर्व से संगृहीत मोदक, उल्लापिका, अपूप, शष्कुली शीर्ष, कृशर, पायस मिश्रित करके सभी दिशाओं में उपहार प्रदान करना चाहिये तथा दुग्ध, मधु एवं घी से तर्पण करना चाहिये। इसके अनन्तर नाना स्तोत्रों से सूर्य की स्तुति करनी चाहिये।।४५-४६।।

विप्रेभ्यो याजकेभ्यश्च ततो दद्याच्च दक्षिणाम्।
सूर्यक्रतौ महापुण्ये तेन कुर्यांश्च दक्षिणाम्।।४७।।

तदनन्तर ब्राह्मण तथा याजकगण को दक्षिणा प्रदान करनी चाहिये। तत्पश्चात् महापुण्यकारी सूर्य यज्ञ की दक्षिणा भी प्रदान करनी चाहिये।।४७।।

स्थाप्यतेऽनेन विधिना मद्भक्तैः प्रतिमा तु या।
सा तु वृद्धिकरी नित्यं सान्निध्यं च सदा भवेत्।।४८।।

मेरे भक्त द्वारा इस विधान से जो प्रतिमा स्थापित की जाती है, वह नित्य वृद्धिकारक होती है और मेरा सान्निध्य प्रदान करती है।।४८।।

चतुर्णामपि वर्णानां स्थापयेद् यस्तु भास्करम्।
सोत्तीर्णः सर्वसंसारात् सूर्यलोके महीयते।।४९।।
पश्यन्ति मानवा ये तु आदित्यस्याधिवासनम्।
सप्तजन्म सु ते जाता नीरोगाः सम्भवन्ति हि।।५०।।

ब्राह्मणादि चार वर्णों में से जो कोई भी सूर्य की प्रतिमा स्थापित करता है, वह संसार से उत्तीर्ण होकर सूर्य लोक में निवास करता है। जो लोग सूर्य का मन्दिर देखते हैं, वे सात जन्मों तक नीरोग होकर स्थित रहते हैं।।४९-५०।।

त्रिरात्रं येऽप्युपासन्ते भानोर्यात्राधिवासितम्।
गन्धमाल्योपहारैश्च ते यान्ति परमां गतिम्।।५१।।

गन्ध, माला तथा उपहार द्वारा तीन रात्रि-पर्यन्त जो सूर्य के यात्रा अधिवास की उपासना करते हैं, उनको परमगति प्राप्त होती है।।५१।।

आत्मीयं परकीयं च प्रतिमास्थापनं रवेः।
यः पश्यति पुमान् भक्त्या स पापात् परिमुच्यते।।५२।।

अपने द्वारा की जा रही अथवा अन्य द्वारा की जा रही रवि-प्रतिमा की स्थापना को जो व्यक्ति भक्तिपूर्वक देखते हैं, वे पापमुक्त हो जाते हैं।।५२।।

दशानामश्वमेधानां वाजपेयशतस्य तु।
फलं प्राप्नोति पुरुषं प्रतिष्ठाप्य दिवाकरम्।।५३।।

सूर्य-प्रतिमा की प्रतिष्ठा करने मात्र से लोग दश अश्वमेध तथा १०० वाजपेय यज्ञ का फल पा जाते हैं।।५३।।

यावत् कीर्त्तिः पुण्यकृतो भानोः स्थाननिवेशनात्।
तावत् स तु यदुश्रेष्ठ सूर्यलोके महीयते ॥५४॥

हे यदुश्रेष्ठ! सूर्य की प्रतिमा-स्थापन के फल से पुण्यवान् व्यक्ति की जब तक कीर्त्ति रहती है, तब तक वह व्यक्ति सूर्यलोक में सम्मानित होता है।।५४।।

स्थापयित्वा रविं भक्त्या विधिदृष्टेन कर्मणा।
मासे मासे क्रतुफलं लभते नात्र संशयः ॥५५॥

भक्तिपूर्वक यथाविधि कर्म द्वारा सूर्य की स्थापना करके व्यक्ति प्रतिमास यज्ञ करने का फल-लाभ करता है; यह निसंदिग्ध है।।५५।।

एकहिनापि यद् भानोः पूजया प्राप्यते फलम्।
न व्रतैरुपवासैर्वा दानैर्वा तदवाप्यते ॥५६॥

एक दिन के सूर्यपूजन से जो फल प्राप्त होता है, वह अनेक व्रत-उपवास तथा दान द्वारा भी नहीं मिल सकता।।५६।।

कृत्वा तु यन्महत् पापं यः पश्चात् सेवते रविम्।
स याति सूर्यलोके तु नरो विगतकल्मषः ॥५७॥

यदि कोई महान् पाप करके भी सूर्य की सेवा करता है, तब वह व्यक्ति निष्पाप होकर सूर्यलोक में जाता है।।५७।।

न भवेद् दुष्टकाया च चन्द्रेण भूमिसन्निभा।
स्वर्गे महीयते तावद् यावद् सूर्यस्य वेश्मनि ॥५८॥

वह व्यक्ति कभी भी दुष्ट देहधारी नहीं होता; अपितु चन्द्रमा तथा पृथ्वी के समान होकर सूर्यलोक में निवास करता है।।५८।।

इत्येवं सुख्यति तस्य यश्च भानोर्भूतानां स्थितिनिलयप्रसूतिहेतोः।
श्रीभागी भवति नरो निकेतकारी कल्पानां वसति शतं च सूर्यलोके ॥५९॥

जो प्राणिगण की स्थिति, लय तथा जन्म के कारण सूर्यदेव के लिये ऐसा (प्रतिमा-स्थापनादि) सुख विधान करते हैं अर्थात् मन्दिर बनाते हैं, वे ऐश्वर्य का भोग करके शत कल्प-पर्यन्त सूर्यलोक में निवास करते हैं।।५९।।

यः प्रासादं रचयति पुमान् देवतानां प्रयत्नात्
कीर्त्तिस्तस्य भवति विपुला वंशमार्गानुजाता।
दिव्यान् कामान् लभति च सदा कामतश्चाप्रमेयां-
स्तान् भुक्त्वासौ पुनरपि भवेच्चक्रवर्त्ती पृथिव्याम् ॥६०॥

जो प्रयत्नपूर्वक देवता के गृह का निर्माण करते हैं, उनकी वंशपरम्परा की विपुल विपुल कीर्त्ति होती है। वे दिव्य भोगों का भोग करके पुनः (अगले जन्म में) पृथ्वी पर तेजस्वी राजा होते हैं।।६०।।

ये मानवा त्रिदशमूर्त्तिनिकेतनानि कुर्वन्ति साधुजनदृष्टिमनोहराणि ।
तेषां मृतेऽप्यपरमार्थमये शरीरे लोके परिभ्रमति कीर्त्तिमयं शरीरम् ॥६१॥

जो मानवगण साधुओं की दृष्टि को मनोहर लगने वाली देवप्रतिमा के मन्दिरों का निर्माण करते हैं, उनके पार्थिव शरीर का विनाश हो जाने पर भी उनका कीर्त्तिमय शरीर पृथ्वी पर परिभ्रमण करता रहता है (अर्थात् उनकी कीर्त्ति स्थायी हो जाती है)।।६१।।

इति मुनिऋषभ सुताय विष्णोर्विधिमुपदिश्य च नारदो जगाम ।
स च सवितुरिदं चकार भक्त्या भवनवरं भुवि शाश्वतं च नाम्ना ॥६२॥

इति श्रीसाम्बपुराणे प्रतिमाकल्पो नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः

●

इस प्रकार मुनिश्रेष्ठ नारद कृष्णपुत्र साम्ब को सूर्य-पूजाविधान का उपदेश करके चले गये। साम्ब ने भी अपने नाम से शाश्वत श्रेष्ठ सूर्यमन्दिर का निर्माण कराया।।६२।।

श्री साम्बपुराणोक्त प्रतिमाकल्प नामक द्वात्रिंश अध्याय समाप्त

●

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

(ध्वजारोपणम्)

नारद उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि ध्वजारोपणमुत्तमम् ।
पुरा देवासुरे युद्धे योद्धुं देवैर्जयेप्सुभिः ॥१॥

नारद कहते हैं—अब मैं उत्तम ध्वजा-आरोहण की बातें बतलाता हूँ। पूर्वकाल में देवासुर युद्ध के आरम्भ में जयलाभ-हेतु देवगण ने इसका निर्माण किया था।।१।।

कृत्वान्युपरि चिह्नानि वाहनानि शुभानि तु ।
लक्ष्मचिह्नध्वजः केतुरितिपर्य्यायनामभिः ॥२॥

ध्वज के ऊपर उन-उन देवताओं के वाहन का चिह्न अङ्कित किया गया। लक्ष्म, चिह्न, ध्वजा, केतु—ये सभी पर्यायवाची शब्द हैं।।२।।

कीर्तितस्य च तस्येह प्रमाणं गदतः शृणु ।
ध्वजवंशस्तु कर्त्तव्यो ह्यविद्धऋजुरव्रणः ॥३॥
प्रासादेन स तुल्यस्तु ध्वजवंशप्रमाणतः ।
पताका च ध्वजे कार्या ध्वजवंशे विलम्बिनी ॥४॥

ध्वजा का प्रमाण कहता हूँ, सुनो! ध्वज के लिये बांस लाना चाहिये, जो कि अविद्ध, सीधा तथा व्रणादि से रहित हो (अक्षत) ध्वजा का प्रमाण प्रासाद के तुल्य प्रमाण से लेकर पता का निर्माण करना होगा।।३-४।।

देवागारस्य शिखरान्तिकभागमपमार्जनी ।
युक्तवस्त्रमयी चित्रा सघंटा सुमनोहरा ॥५॥

देवालय के शिखर के तीसरे भाग प्रमाण का चित्रित मनोहारी पताका बनानी चाहिये।।५।।

ध्वजाग्रे चापि कर्तव्यो देवतालिङ्गसूचकः ।
काञ्चनो वाथ रौप्यो वा मणिरत्नमयोऽपि वा ॥६॥
रङ्गका लिखिता वापि तद्वाहनसमाकृतिः ।
गरुत्मांस्तु ध्वजे विष्णोरीश्वरस्य ध्वजे वृषः ॥७॥

ध्वजा के आगे देवता-चिह्नसूचक रौप्य, स्वर्ण, मणि, रत्नमय अथवा रंग से अंकित वाहन के समान (जिस देवता का ध्वज हो, उसके वाहन की) आकृति तैयार करनी चाहिये। जैसे विष्णु की ध्वजा में गरुड़, महादेव की ध्वजा में वृष आदि की आकृति बनानी चाहिये।।६-७।।

ब्रह्मणः पङ्कजं कार्यं रवेर्व्योम स्मृतं ध्वजे।
हंसो जलाधिपस्योक्तो धनदस्य नरो ध्वजे।।८।।

ब्रह्मा की ध्वजा में पद्म, सूर्य की ध्वजा में आकाश चिह्न, वरुण की ध्वजा में हंस एवं, कुबेर की ध्वजा में मनुष्य का अंकन करना चाहिये।।८।।

मयूरः कार्तिकेयस्य हेरम्बस्य च मूषकः।
कुञ्जरो देवराजस्य यमस्य महिषो ध्वजे।।९।।

कार्त्तिकेय की ध्वजा में मयूर, गणेश की ध्वजा में मूषक, देवराज इन्द्र की ध्वजा में हाथी तथा यम की ध्वजा में भैसा अङ्कित करना चाहिये।।९।।

सिंहो ध्वजे तु दुर्गाया इत्येषा ध्वजकल्पना।
यस्य यो वाहनः प्रोक्तो ध्वजस्तस्य स एव तु।।१०।।

दुर्गा की ध्वजा में सिंह—यह है ध्वजा-कल्पना। जिसका जो वाहन निश्चित है, वही उसकी ध्वजा में अंकित होता है।।१०।।

ततः सर्वोषधीभिस्तु स्नापयित्वा प्रयत्नतः।
समालभ्य च बध्नीयान् मध्ये प्रतिसरन्ततः।।११।।

तदनन्तर सयत्न सर्वौषधि द्वारा स्नान कराकर उसे बीच से बाध देना (बाँस में) चाहिये।।११।।

कल्पयित्वा शुभां वेदीं कलशैरुपशोभिताम्।
तस्यां वेद्यां समारोप्य तां रात्रिमधिवासयेत्।।१२।।

तत्पश्चात् वेदी का निर्माण करे। उसमें शोभित कलश की स्थापना करे और उस रात्रि वहीं (जागते हुये) अधिवास करे।।१२।।

नानाकुसुमचित्रैश्च स्रजस्तस्यां च लम्बयेत्।
अभ्यर्च्य वै प्रयत्नेन धूपमस्मै निवेदनम्।।१३।।

तत्पश्चात् उसके ऊपर नानावर्ण के विचित्र पुष्पों की माला लटकाकर यत्नपूर्वक अर्चना करके धूप-निवेदन करे (अर्पण करे)।।१३।।

बलिकर्म ततः कुर्यात् कृसरा-पूपकादिभिः।
पललोल्लिपिकाभिश्च दधि-पायस-मोदकैः।।१४।।

उद्दिश्य लोकपालेभ्यो बलिं दद्यात्तु पायसम्।
ब्राह्मणान् स्वस्तिवाच्याथ कृत्वा पुण्याहमङ्गलम्॥१५॥
वादित्रकृतनिर्घोषं जयशब्देन सङ्कुलम्।
शुभे लग्ने दिने ऋक्षे ध्वजमारोपयेद् बुधः॥१६॥

तदनन्तर कृसर (खिचड़ी), अपूप (माल पूआ) प्रभृति से बलि प्रदान करे। मांस का तैयार खाद्य, दधि, पायस, मोदक आदि से लोकपालों के उद्देश्य से वायु को बलि प्रदान करना चाहिये। तदनन्तर ब्राह्मणगण स्वस्तिवाचन तथा पुण्याह मंगलाचरण करें। तब वाद्य ध्वनि तथा जयशब्द करें। शुभ लग्न, शुभ दिन तथा नक्षत्र का विचार करके विज्ञजन ध्वजारोहण करें।।१४-१६।।

एवमारोपयेद्यस्तु ध्वजं देवालयोपरि।
श्रिया संवर्धते नित्यं प्राप्नोति च शुभां गतिम्॥१७॥

इस प्रकार देवमन्दिर के ऊपर जो ध्वजारोहण करते हैं, दिनो-दिन उनका ऐश्वर्य वर्द्धित होता है और उनको शुभ गति मिलती है।।१७।।

न सुरा वस्तुमिच्छन्ति ध्वजहीने सुरालये।
मन्त्रस्तु स्थापने प्रोक्तो विधानज्ञैर्ध्वजस्य तु॥१८॥

ध्वजारहित मन्दिर में देवता निवास नहीं करते। विधानज्ञ व्यक्ति को ध्वजा-स्थापनार्थ नीचे लिखे मन्त्र को पढ़ना चाहिये।।१८।।

एह्येहि भगवन्नीश विनिर्मिता परिचरवायु सार्धानुसारिणा।
श्रीकरश्रीनिवासरिपुध्वंसकारिन् पक्षिनिलयसर्वदेवता।
सततं कुरु सान्निध्यं शान्तिं स्वस्त्ययनं च मे भवतु।
सर्वविघ्ना अपसरन्तु स्वाहा ध्वजारोपणमन्त्रोऽयम्॥१९॥

इति श्रीसाम्बपुराणे ध्वजारोपणं नाम त्रयस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः

•

हे भगवन्! ईश्वर! आईये। ध्वजारोहण हो रहा है। आप वायु के साथ विचरण करें। आप के श्रीकर में लक्ष्मी का वास है। हे शत्रुध्वंसकारिन्! पक्षिगण के आश्रय देवतागण! आप नित्य सन्निहित हों। मुझे शान्ति तथा मंगल प्राप्त हो, समस्त विघ्न दूरीभूत हो जायँ। स्वाहा! यह ध्वजारोहण मन्त्र है।।१९।।

श्रीसाम्ब पुराणान्तर्गत ध्वजारोपण नामक त्रयस्त्रिंश अध्याय समाप्त

•

चतुस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः

(देवयात्रा)

वसिष्ठ उवाच

अथ संवत्सरे पूर्णे स्थापितस्य दिवस्पतेः।
साम्बः पप्रच्छ भूयोऽपि नारदं चर्षिसत्तमम्॥१॥

वशिष्ठदेव कहते हैं—सूर्यदेव के मन्दिर-स्थापना का एक-वर्ष पूर्ण हो जाने पर साम्ब ने ऋषिश्रेष्ठ नारद से कहा।।१।।

साम्ब उवाच

स्थापितस्य सहस्रांशोः पूर्णे संवत्सरे पुनः।
कथं सांवत्सरी पूजा कर्तव्या चर्षिसत्तम!॥२॥

साम्ब कहते हैं—हे महर्षि! सहस्र किरण सूर्यदेव का वर्ष पूर्ण हो गया। अब किस प्रकार से सांवत्सरी पूजा करनी होगा, कहिये।।२।।

नारद उवाच

यथोक्तेन विधानेन प्रतिमास्थापने कृते।
संवत्सरे ततः पूर्णे स्नानकर्म विधानवित्॥३॥
तीर्थोदकमुपानीय ह्यन्यच्चापि जलं शुचिः।
पूर्वोक्तेन विधानेन प्रतिमां स्नापयेद् बुधः॥४॥

नारद कहते हैं—प्रतिमा-स्थापना काल में जैसा विधान कहा गया है, संवत्सर पूर्ण होने पर स्नानकर्म के विधानज्ञ विज्ञ व्यक्ति तीर्थजल तथा अन्य पवित्र जल लाकर पूर्वोक्त विधानानुसार प्रतिमा को स्नान करायें।।३-४।।

जपेच्च तीर्थनामानि मनसा संस्मरेत्ततः।
पुष्करं नैमिषं चैव कुरुक्षेत्रं पृथूदकम्॥५॥
गंगा सरस्वती सिन्धुश्चंद्रभागा च नर्मदा।
पयोष्णी यमुना ताम्रा क्षिप्रा वेत्रवती तथा॥६॥
सरितः सागराश्चैव सान्निध्यं कल्पयन्तु वै।
एवं स्नानविधिं कृत्वा ह्यर्चयित्वा प्रणम्य च॥७॥
धूपमर्घ्यश्च दत्वा तु प्रतिमामधिवासयेत्।

तीर्थों के नाम को लेते हुये मन ही मन स्मरण करे। पुष्कर, नैमिष, कुरुक्षेत्र, पृथूदक (कपालमोचन तीर्थ के कुछ दूर पर अवस्थित तीर्थविशेष का नाम), गंगा, सरस्वती, सिन्धु, चन्द्रभागा, नर्मदा, पयोष्णी, यमुना, ताम्रा, क्षिप्रा, वेत्रवती नदियों तथा सागरों का सम्मिलित नाम लेना चाहिये। उस जल से स्नान का विधान करके अर्चना एवं प्रणाम करके धूप एवं अर्घ्य देकर प्रतिमा का अधिवास करना होगा।।५-७।।

त्रिरात्रं सप्तरात्रं वा मासार्द्धं मासमेव च ।।८।।
अतोऽस्य कारयेद् यात्रां शन्तिहेतोर्जनस्य च।
रथेन दर्शनीयेन किङ्किणी-जालमालिना ।।९।।

जनगण की शान्ति हेतु तीन रात्रि, सात रात्रि अथवा आधा मास अथवा एक मास व्यापिनी किङ्किणी जालसमूह में दर्शनीय रथ से सूर्यदेव की यात्रा कराये।।८-९।।

प्रीणयित्वा द्विजान् सर्वान् दज्ञिणाभोजनादिभिः ।
रथस्थां प्रतिमां कृत्वा कुर्यात् स्थान-प्रदक्षिणम् ।।१०।।

दक्षिणा, भोजन प्रभृति द्वारा ब्राह्मणों का सन्तोष विधान करके प्रतिमा को रथ पर स्थापित करके स्थान-प्रदक्षिणा करानी चाहिये।।१०।।

एवं वै क्रियमाणायां यात्रायां प्रतिवत्सरम्।
प्रजाश्च सुखमेधन्ते राजा जयति चाहितान् ।।११।।

इस प्रकार से प्रत्येक वत्सर में यात्रा करना चाहिये। इससे प्रजा सुखी रहती है और राजा शत्रुजित् हो जाता है।।११।।

नीरुजश्च जनः सर्वो गवां शान्तिर्भवेत्तथा।
कर्त्तारश्चापि यात्रायाः स्वर्गभाजो भवन्ति वै ।।१२।।

सभी लोग नीरोगी होते हैं। गौ समूह को शान्ति मिलती है तथा यात्रा का विधान करने वाले भी स्वर्ग प्राप्त करते हैं।।१२।।

साम्ब उवाच

कथं सञ्चालयेद् भूयः स्थापितां प्रतिमां सकृत्।
एतत्तु वद विप्रर्षे सुमहान् संशयो हि मे ।।१३।।

साम्ब कहते हैं—एक बार स्थापित की गयी प्रतिमा को कैसे चालित किया जाय? हे विप्रर्षि! यह कहिये। इस सम्बन्ध में मुझे महान् संशय है।।१३।।

नारद उवाच

पूर्वमेव सहस्रांशोर्यानहेतोर्महात्मनः ।
संवत्सरस्यावयवैर्ब्रह्मणैः कल्पितो रथः ।।१४।।

सर्वेषां तु रथानां वै श्रेष्ठः स च रथः स्मृतः ।
तं दृष्ट्वा तु ततस्त्वन्ये स्यन्दना विश्वकर्मणा ॥१५॥
कल्पिताः सर्वदेवानां सोमादीनामनेकशः ।
वैवस्वतेन च ततो मनुनेक्ष्वाकवे पुनः ॥१६॥
रथो दत्तस्तु तेनापि मानुषेष्ववतारितः ।
अतस्तु रथयानेन चालनं तु हितं रवेः ॥१७॥

नारद कहते हैं—महात्मा सूर्यदेव की सांवत्सरिक यात्रा के निमित्त ब्रह्मा ने पूर्व में रथ तैयार किया था। समस्त रथों में उसे श्रेष्ठ रथ कहा गया है। उसे देखकर विश्वकर्मा, चन्द्रमा प्रभृति ने अनेक रथ का निर्माण किया। उसके अनन्तर वैवस्वत मनु ने इक्ष्वाकु को रथ दिया। उससे मनुष्य लोक में रथ का प्रचलन हुआ। अत: रथयान से सूर्यदेव का चालन हितकर है।।१४-१७।।

तस्मान्न दुष्यते तेषां सवितुश्चालनं च यत् ।
तस्माद्रथेन पर्येति भास्करः पृथिवीमिमाम् ॥१८॥
गच्छन्न दृश्यते चैव मण्डलं सवितुः सदा ।
अदृश्यं चञ्चलं दृष्टं यस्माज्जाम्बवतीसुत ॥१९॥
तदेतां रथयात्रां तु दृष्ट्वा भानोर्मनीषिभिः ।
अन्येषां चालनं नास्ति देवानां यदुनन्दन ॥२०॥

हे साम्ब! अतएव सूर्यप्रतिमा को (स्थापित स्थान से हटाकर) रथ पर बैठाकर यात्रा कराना दोषपूर्ण नहीं है। इसीलिये सूर्यदेव भी रथ पर बैठकर पृथ्वी का पर्यटन करते हैं। उनके गमन काल में (आकाश में) सर्वदा सूर्यमण्डल देखा जाता है। हे जाम्बवतीपुत्र साम्ब! जो अदृश्य अथवा चञ्चल है, वह दृष्ट होता है। इसी कारण मनीषीगण सूर्यदेव की रथयात्रा का विधान कहते हैं। हे यदुनन्दन! अन्य देवगण का चालन नहीं होता।।१८-२०।।

ब्रह्मविष्णुशिवादीनां स्थापितानां विधानतः ।
तस्माद्रथेन देवस्य रवेर्यात्रा विधीयते ॥२१॥
प्रजानामिह शान्त्यर्थं प्रतिसंवत्सरं तथा ।
काञ्चनो वाथ रौप्यो वा दृढदारुमयोऽपि वा ॥२२॥
दृढाक्षरथचक्रश्च रथः कार्यः सुयन्त्रितः ।
तस्मिन् रथवरे श्रेष्ठे कल्पिते सुमनोहरे ॥२३॥

विधानपूर्वक स्थापित विष्णु, ब्रह्मा, शिवादि का चालन (यात्रा) विहित नहीं है। अतएव रथ पर सूर्यदेव की यात्रा का ही विधान है। प्रजागण की शान्ति के लिये प्रतिवर्ष स्वर्ण, रौप्य (चाँदी) अथवा मजबूत काष्ठ-निर्मित दृढ़ अक्ष तथा रथचक्रयुक्त रथ का निर्माण उचित है।।२१-२३।।

आरोप्य प्रतिमां यत्नाद्यो जयेद्वाजिनः शुभान्।
हरिल्लक्षणसम्पन्नान् सुमुखा वशवर्त्तिनः॥२४॥
कुङ्कुमेन समालब्धांश्चामरैश्च विभूषितान्।
सदश्वान् योजयित्वा तु रथाचार्यं प्रदापयेत्॥२५॥

मनोहर श्रेष्ठ रथ निर्मित हो जाने पर उस पर यत्नपूर्वक (मन्दिर में स्थापित) सूर्य की प्रतिमा रक्खे। शुभ अश्वगण को उसमें जोते। हरित् वर्ण सुलक्षणयुत सुमुख तथा वशवर्त्ती अश्वों को नियुक्त करे। कुङ्कुम द्वारा लिप्त, चँवर से विभूषित सत् अश्वगण से युक्त रथ को रथचालक चलाये।।२४-२५।।

विधिवत् पूजयित्वा तु धूपमाल्यानुलेपनैः।
आहारैर्विविधैश्चापि भोजयित्वा द्विजोत्तमान्॥२६॥
सूर्यक्रतौ तु वितते एवमाहुर्मनीषिणः।
यच्चिन्तयति भग्नाशः क्षुधया च प्रपीडितः॥२७॥
अदाता हि पितॄंस्तेन स्वर्गस्थानपि पातयेत्।
यज्ञश्च दक्षिणाहीनः सवितुर्न प्रशस्यते॥२८॥

उनका पूजन धूप-माला तथा अनुलेपन से यथाविधि करे तथा द्विजश्रेष्ठ गण को धूप-माल्यादि से सन्तुष्ट करके विविध आहार प्रदान करे। सूर्ययज्ञ आरम्भ करने पर मनीषी-गण यह कहते हैं कि यदि (द्विजगण की) आशा भङ्ग हो, यदि क्षुधा से पीड़ित हों, तब इसके दुष्फल से (पूजक के) पितरगण निम्नगामी होते हैं। सूर्य का दक्षिणारहित यज्ञ कभी भी प्रशंसित नहीं है।।२६-२८।।

तस्मान्नानाविधैः कामैर्भक्ष्यभोज्यान्नविस्तरैः।
प्रीणयित्वा जनं सर्वमिममुच्चारयेद्विधिम्॥२९॥

अतएव नानाविध अभिलषित भक्ष्य, भोज्य तथा प्रचुर अन्न से जनगण का प्रीतिविधान करके निम्नांकित मन्त्र का उच्चारण करना चाहिये।।२९।।

बलिं गृह्णन्तु मे देवा आदित्या वसवस्तथा।
मरुतश्चाश्विनौ रुद्राः सुपर्णाः पन्नगा ग्रहाः॥३०॥
असुरा यातुधानाश्च रथस्था देवताश्रयाः।
दिक्पाला लोकपालाश्च ये च विघ्नविनायकाः॥३१॥
जगतः स्वस्तिकुर्वाणास्तथा दिव्या महर्षयः।
मा विघ्नो मा च मे पापं मा च मे परिपन्थिनः॥३२॥
सौम्या भवन्तु तृप्ताश्च देवा भूतगणास्तथा॥३३॥

हे देवगण! मेरा प्रदत्त उपहार-बलि-ग्रहण करिये। हे आदित्यगण! वसुगण, मरुद्गण, अश्विनीकुमारद्वय, रुद्रगण, (गरुड़ प्रभृति) पक्षीगण, सर्पगण, ग्रहगण, असुरगण, यातुधान गण, जो रथ में देवता का आश्रय लिये हैं, दिक्पाल गण, लोकपालगण, जो यात्रा के विघ्ननाशक हैं, इसी प्रकार जगत् के मंगलविधायक दिव्य ऋषिगण! मुझे कोई विघ्न न हो, कोई पाप न हो, हमारे परिपन्थी लोग सौम्य हों, देवगण तथा भूतगण तृप्त हों।।३०-३३।।

वामदेवैः पवित्रैश्च मानस्तोकरथन्तरैः ।
आकृष्टेन रजसेति ऋच एतामुदाहरेत् ।।३४।।
तत पुण्याहशब्देन कृतवादित्रनिस्वनः ।
रथापक्रमणं कुर्याद्वर्त्मना सुखमेधते ।।३५।।

तत्पश्चात् वामदेव पवित्र मानस्तोक तथा रथन्तर एवं 'आ कृष्णेन रजसा' इत्यादि ऋक् मन्त्रों का उच्चारण करना चाहिये। तत्पश्चात् पुण्याहशब्दों से वाद्य बजाकर रास्ते में रथयात्रा करे। इससे सुख बढते हैं।।३४-३५।।

पुरुषैश्चापि वोढ़व्यः सूर्यभक्तिसमन्वितैः ।
सुकृता ग्रहदानैश्च बलीवर्दैरथापि वा ।।३६।।
यथापर्वमुदानस्याद् विजने पथि गच्छतः ।
युगाक्ष-चक्रभङ्गो वा तथा नेयः शनैः शनैः ।।३७।।

रथ को सूर्य के प्रति भक्तिवान् लोगों द्वारा अथवा सांड़ द्वारा भी चालित किया जा सकता है। निर्जन पथ पर भी रथ निर्विघ्न चले, जिससे युगाक्ष तथा रथ की पहिया न टूटे, ऐसे धीरे-धीरे रथ को चालित करे।।३६-३७।।

रथभङ्गे द्विजभयं भग्नेऽक्षे क्षत्रियस्य च ।
तुलाभङ्गे तु वैश्यानां शम्याः शूद्रभयं भवेत् ।।३८।।

रथ भङ्ग होने पर ब्राह्मणों को भय, अक्ष (चक्का) टूटनें पर क्षत्रियों को भय, तुला (ऊपर की लकड़ी) टूटने पर वैश्यों को भय तथा शम्या (युगकीलक) टूटने पर शूद्रों को भय होता है।।३८।।

युगभङ्गे त्वनावृष्टिः पीठभङ्गे प्रजाभयम् ।
परचक्रागमं विद्याच्चक्रभङ्गे रथस्य तु ।।३९।।
ध्वजस्य पतने चापि भयं नृणां विनिर्दिशेत् ।
प्रतिमां व्यङ्गतायान्तु राज्ञीमरणमादिशेत् ।।४०।।

रथ का युगभंग होने पर अनावृष्टि, पीठ-भंग होने पर प्रजागण को भय तथा चक्का टूटने पर शत्रुपक्ष के आने की सूचना समझनी चाहिये। ध्वजा गिरने पर जनता को भय तथा प्रतिमा का अंग-भंग होने पर रानी का मरण होता है।।३९-४०।।

पर्यस्ते सुरथे वापि सर्वजानपदे भयम्।
उत्पन्नेष्वेवमाद्येषु ह्युत्पातेष्वशुभेषु च ।।४१।।
बलिकर्म ततः कुर्याच्छान्तिहोमं तथैव च।
ब्राह्मणान् भोजयेद्यस्तु भूयो दद्याच्च दक्षिणाम् ।।४२।।

रथ के खण्डित होने से समस्त जनपद के लिये भय की सूचना होती है। ऐसा अशुभ उत्पात होने पर बलिकर्म एवं शान्तिहोम करना कर्त्तव्य है। इसमें ब्राह्मणों को भोजनोपरान्त दक्षिणा भी देनी चाहिये।।४१-४२।।

पूर्वोत्तरे दिशोभागे रथस्याग्निं प्रकल्पयेत्।
समिद्भिस्तु घृताक्ताभिर्होमयेज्जातवेदसम् ।।४३।।

रथ के पूर्व तथा उत्तर दिशा में अग्नि को स्थापित करके घृत से लिप्त समिधा द्वारा जातवेदा अग्नि में हवन करना चाहिये।।४३।।

स्वाहाकारं वदन् सम्यग् देवताभ्यस्त्वनुक्रमात्।
ग्रहेभ्यश्च प्रजाभ्यश्च नामान्युद्दिश्य होमयेत् ।।४४।।
प्रथमं चाग्नये स्वाहा स्वाहा सोमाय चैव हि।
स्वाहा प्रजापतये चैव दद्यादाहुतयः क्रमात् ।।४५।।

'स्वाहा' शब्द का उच्चारण करके सम्यक्‌रूपेण यथाक्रम से देवताओं का, ग्रहगण का तथा प्रजा का नामोल्लेख करके होम करना चाहिये। प्रथमतः अग्नि के लिये (अग्नये स्वाहा) स्वाहा लगाकर होम करे। तदनन्तर चन्द्र तथा प्रजापति के लिये उनके नाम के साथ स्वाहा लगाकर आहुति देनी चाहिये (जैसे सोमाय स्वाहा, प्रजापतये स्वाहा)।।४४-४५।।

स्वस्त्यस्त्विह च विप्रेभ्यः स्वस्ति राज्ञे तथैव च।
गोभ्यः स्वस्ति प्रजाभ्यश्च जगतः शान्तिरस्तु वै ।।४६।।
शन्नोऽस्तु द्विपदे नित्यं शन्नश्चास्तु चतुष्पदे।
शं प्रजाभ्यस्तथैवास्तु शं सदात्मनि चास्तु मे ।।४७।।

ब्राह्मणों का मंगल हो, राजा का मंगल हो, गौ तथा प्रजा का मंगल हो, विश्व की शान्ति हो। हमारे द्विपद (दो पैर वाले मनुष्यों का) जनपद का नित्य मंगल हो, चतुष्पद प्राणियों का मंगल हो, प्रजा का मंगल हो, हमारी आत्मा का सर्वदा मंगल हो।।४६-४७।।

भूः शान्तिरस्तु देवेश भुवः शान्तिस्तथैव च।
स्वश्चैवास्तु तथा शान्तिः शान्तिः सर्वत्र वास्तुनः ।।४८।।
त्वमेव जगतः स्रष्टा पोष्टा चैव त्वमेव हि।
प्रजाः पालय देवेश शान्तिं कुरु दिवस्पते ।।४९।।

इदमन्यच्च वक्ष्यामि शान्तैः परमकारणम्।
यात्राकारणभूतस्य पुरुषस्य स्वजन्मनः ॥५०॥

हे देवेश! पृथ्वी पर शान्ति हो, भुवलोक में शान्ति हो, स्वर्गलोक में शान्ति हो, सर्वत्र सब कुछ में शान्ति हो। हे देवेश! आप जगत् के स्रष्टा-पालक हैं। आप ही प्रजा का पालन करते हैं। हे दिवाकर! आप शान्ति का विधान करिये। यह एवं और भी शान्ति का परम कारण कहूँगा। जो पुरुष सूर्ययात्रा का विधान करते हैं, उनके स्वयं का जन्म भी शान्तिकारक हो जाता है।।४८-५०।।

दुष्टान् ग्रहांश्च विज्ञाय ग्रहशान्तिं समाचरेत्।
प्रादेशमात्राः कर्त्तव्यास्समिधो वा प्रमाणतः।
अर्कमय्यस्तथाऽर्कस्य पालाश्यः शशिनस्तथा ॥५१॥
खादिर्यश्चैव भौमाय ह्यपामार्ग्यो बुधाय च।
आश्वत्थाश्चैव जीवाय ह्यौदुम्बर्यः सिताय च ॥५२॥
असिताय शमीमय्यो दूर्वाः कार्यास्तु राहवे।
केतवे तु कुशाः कार्या दक्षिणां चाप्यतः शृणु ॥५३॥

दुष्ट ग्रहादि को जानकर ग्रहशान्ति का अनुष्ठान करना चाहिये। इसमें प्रादेश (द्वादश अंगुलि, आधा हाथ) प्रमाण की समिधा (काष्ठ) छोड़े। सूर्य के लिये मदार की लकड़ी, चन्द्रमा के लिये पलाश की लड़की, मंगल के लिये खैर (कत्था) की लकड़ी, बुध के लिये अपामार्ग की लकड़ी, बृहस्पति के लिये पीपल की लकड़ी, शुक्र के लिये गूलर की लकड़ी, शनि के लिये शमी की लकड़ी, राहु के लिये दूर्वा, केतु के लिये कुश द्वारा होम करे। अब दक्षिण की बातें सुनो।।५१-५३।।

सूर्याय चोत्तमां धेनुं शंखं दद्यात्तथेन्दवे।
रक्तोर्णं चैव भौमाय काञ्चनं सोमसूनवे ॥५४॥
पीतवासांसि जीवाय शुक्रायाश्वं सितं तथा।
शनैश्चराय गां नीलां राहवे खण्डपायसम् ॥५५॥
छागं तु केतवे दद्याच्छृण्वेषां भोजनानि च।

सूर्य के लिये उत्तम गौ, चन्द्र के लिये शङ्ख, मङ्गल के लिये लाल वस्त्र, बुध के लिये स्वर्ण, बृहस्पति के लिये पीला वस्त्र, शुक्र के लिये सफेद घोड़ा, शनि के लिये नीली गौ (श्याम गौ), राहु के लिये खाण्ड पायस तथा केतु के लिये बकरा प्रदान करना चाहिये। अब इनके लिये भोजन का वर्णन सुनो।।५४-५५।।

गुडौदनं तु सूर्याय सोमाय घृतपायसम् ॥५६॥
हविष्यमन्नं भौमाय क्षीरान्नं सोमसूनवे।
दध्योदनं तु जीवाय शुक्रायाथ घृताशनम् ॥५७॥

तिलपिष्टं च माषं च सूर्यपुत्राय दापयेत्।
राहवे दापयेन्मांसं केतवे चित्रमोदनम् ॥५८॥

सूर्य-हेतु गुड़-मिश्रित अन्न, चन्द्र-हेतु घृत-पायस, मंगल के लिये हविष्यान्न, बुध-हेतु क्षीरान्न, बृहस्पति-हेतु दधियुक्त अन्न, शुक्र-हेतु घृतान्न, सूर्यपुत्र शनि-हेतु तिलपिष्ट तथा उर्द का बड़ा प्रदान करे। राहु के लिये मांस एवं केतु के लिये विचित्र अन्न प्रदान करना होगा।।५६-५८।।

यथा बाणप्रहाराणां वारणं कवचं स्मृतम्।
तथा दैवोपघातानां शान्तिर्भवति वारणम् ॥५९॥
अहिंसकस्य दान्तस्य धर्मार्जितधनस्य च।
नित्यं च नियमस्थस्य सदानुग्रहणा ग्रहाः ॥६०॥

जैसे बाण की चोट से बचने के लिये कवच पहना जाता है, वैसे ही दैव के उपघात से बचने हेतु शान्तिकर्म आवश्यक है। अहिंसा-परायण, विजितेन्द्रिय, धर्मपथ से धनोपार्जन करने वाले, नियमों का सदा पालन करने वाले के प्रति ग्रह सदैव अनुग्रह करने वाले होते हैं।।५९-६०।।

ग्रहा गावो नरेन्द्रश्च ब्राह्मणाश्च विशेषतः।
पूजिताः पूजयन्त्येते निर्दहन्त्यपमानिताः ॥६१॥
यथा समुत्थितं यन्त्रं यन्त्रेण प्रतिहन्यते।
तथा समुत्थितां पीडां ग्रहशांत्या प्रशामयेत् ॥६२॥

ग्रहगण, गौगण, राजगण तथा विशेष करके ब्राह्मणगण का पूजन करने से ये व्यक्ति की सम्मानता करते हैं, किन्तु अपमानित होने से व्यक्ति को निःशेष दग्ध कर देते हैं। जैसे समुत्थित यन्त्र को अन्य यन्त्र से बाधित किया जा सकता है, वैसे ही उत्थित पीड़ा ग्रहशान्ति से प्रशमित होती है।।६१-६२।।

यज्वनां सत्यवाक्यानां तथा नित्योपवासिनाम्।
जपहोमपराणाञ्च ग्रहपीडा प्रशाम्यति ॥६३॥
एवं कृत्वा प्रजाशान्तिं कृत्वा च स्वस्तिवाचनम्।
पुनः सूर्यरथं कृत्वा कुर्यात् प्रक्रमणं ततः ॥६४॥

जो याजक तथा सत्यवादी हैं, नित्य उपवासी हैं, जप-होम परायण हैं, उनकी ग्रहपीड़ा प्रशमित हो जाती है। ऐसे प्रजागण का शान्ति-विधान एवं स्वस्तिवाचन करके सूर्य के रथ की परिक्रमा करनी चाहिये।।६३-६४।।

मार्गशेषं ततो गत्वा नयेद् देवालयं ततः।
अवतार्य रथाच्चैनं स्थापयेन्मण्डले तथा ॥६५॥

चतुर्थेऽहनि कर्तव्यं ततो विश्रमणं रवेः ।
धूपमाल्योपहारैश्च पूजयेन्मण्डले पुनः ।।६६।।

तत्पश्चात् परिक्रमा करके देवालय में (अर्थात् रथयात्रा समाप्ति के पश्चात् का कृत्य कहा जा रहा है) जाकर देवता को रथ से उतार कर (जहाँ से उन्हें यात्रार्थ ले गये थे) उस मण्डल में उसी प्रकार स्थापित करना चाहिये। चौथे दिन सूर्यदेव को विश्राम कराना उचित है (अर्थात् तीन दिन की यात्रा समाप्ति के अनन्तर चतुर्थ दिन), तदनन्तर धूप, मालादि उपहारों से मण्डल में पूजा करनी चाहिये।।६५-६६।।

एवं विधिं तु सूर्याय कुर्याद्यः कोऽपि मानवः ।
सपरार्द्धं तु वर्षाणां सूर्यलोके महीयते ।।६७।।
न कुले जायते तस्य दरिद्रो व्याधितोऽपि वा ।।६८।।

सूर्य के लिये जो कोई भी ऐसे विधान का पालन करता है, वह परार्ध-पर्यन्त सूर्यलोक में सम्मानित किया जाता है। उसके वंश में कोई भी दरिद्र अथवा रोगी जन्म नहीं लेता।।६७-६८।।

अथ संवत्सरे पूर्णे भानोर्यात्रादिने यदि ।
रथप्रक्रमणं तत्र कथञ्चिन्न कृतं भवेत् ।।६९।।
ततो द्वादशवर्षे तु कर्त्तव्यं नान्तरा पुनः ।
शान्तिकर्माथ कृत्वा वै होतव्यं भूतिमिच्छता ।।७०।।

तदनन्तर (दूसरा) संवत्सर पूर्ण होने पर यात्रा के दिन यदि किसी प्रकार से रथ चालन न किया गया हो तो १२ वर्ष पूर्ण होने पर ही रथचालन करना चाहिये। बीच में नहीं करना चाहिये। तत्पश्चात् समृद्धि की कामना से शान्तिकर्म करके हवन करना चाहिये।।६९-७०।।

शक्रध्वजस्य चाप्येवं यदि नोत्थापनं कृतम् ।
ततो द्वादशके वर्षे कर्त्तव्यं नान्तरा पुनः ।।७१।।
इति मुनिऋषभः सुताय विष्णोर्विधिमुपदिश्य तु नारदो जगाम ।
स च दशशतदीधितेश्चकार प्रणिपतितार्त्तिहरस्य देवयात्राम् ।।७२।।

इति श्रीसाम्बपुराणे देवयात्रा नाम चतुस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ।।२१।।

●

इसी प्रकार यदि ध्वज का उत्थापन न किया गया हो तब १२ वर्ष बीतने पर ही करना होगा, पहले नहीं। ऐसा कृष्णपुत्र साम्ब को उपदेश देकर मुनिवर नारद चले गये और साम्ब ने भी सहस्र किरण प्रणतजन आर्त्तिनाशक सूर्यदेव की याज्ञा का उत्सव किया।।७१-७२।।

श्रीसाम्बपुराणात्तर्गत देवयात्रा नामक चतुस्त्रिंश अध्याय समाप्त

●

पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

(यात्राविधिः)

वशिष्ठ उवाच

पुनर्यात्राविधिं चेमं समासात् कथयामि ते।
नारदेनैव कथितं साम्बोऽनुग्रहकारणम् ।।१।।
वर्तमाने तु भावे वै रथे देवगणे स्थिते।
यस्य यश्च नियोगः स्याद् देवस्य कथितो मया ।।२।।

वशिष्ठदेव कहते हैं—पुनः संक्षेप में यात्राविधि कहता हूँ, जिसे साम्ब पर अनुग्रह करके नारद ने कहा था। समस्त कार्य ठीक से सम्पन्न होकर देवगण द्वारा रथ पर अवस्थान करने पर जिन देवता का जो अनुचर है, उसे मैं कहता हूँ।।१-२।।

स तस्मिन्नेव मनसा स्थापनीयो रथे बुधैः।
द्यौर्महीदेवमूर्तिस्थकथापूर्वं प्रकीर्तिता ।।३।।
तथैव राज्ञी द्यौर्ज्ञेया निक्षुभा पृथिवी स्मृता।
एताभ्यामपि देवीभ्यां तथैव सवितुस्तथा ।।४।।
दण्डिनं पिङ्गलादीनां पृथक् कार्यो रथक्रमः।
मनसा चिन्तयेदेवं यथास्थानेषु देवताम् ।।५।।

पण्डितगण मन ही मन उन अनुचरों की स्थापना रथ पर करें। देवमूर्त्ति के रूप में स्वर्ग तथा पृथ्वी की चर्चा पहले (इस पुराण में) की जा चुकी है। राज्ञी स्वर्गस्थानीया हैं तथा निक्षुभा पृथ्वी-स्थानीया हैं। इन दो देवियों के साथ सूर्यदेव के रथ की बातें कही गयी हैं। पिङ्गलादि के मध्य में दण्डी की पृथक् रथयात्रा कराना उचित है। ऐसे मन ही मन इन देवताओं का चिन्तन करना चाहिये।।३-५।।

दिक्पालांल्लोकपालांश्च कल्पयेन्मनसैव तु।
देवो देवमयश्चैव सर्वदेवमयस्तथा ।।६।।

मन ही मन दिक्पालगण तथा लोकपालों का (उस रथ पर) चिन्तन करे। देव, देवमय तथा सर्वदेवमय हैं, यह चिन्तन करे।।६।।

मण्डलं त्वृङ्मयं चैव छन्दांसि च तथैव च।
गायत्री चैव त्रिष्टुप् च जगत्यनुष्टुबेव च ।।७।।

पंक्तिश्च बृहती चैव उष्णिगेव च सप्तमी।
अतो वेदमयत्वाच्च छन्दसां चैव कल्पनात्॥८॥

मण्डल को ऋक् मय समझे। ऐसे ही छन्दों को भी समझे अर्थात् गायत्री, त्रिष्टुप्, जगती, अनुष्टुप्, पंक्ति, बृहती तथा अनुष्टुप्—इन्हें वेदमय मानकर छन्दों की कल्पना की गयी है।।७-८।।

रथप्रक्रमणे सूर्यो वोढ़व्यो ब्रह्मवादिभिः।
उपवासपरैर्युक्तैर्ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ॥९॥

रथ चलाते समय ब्रह्मवादी, उपवासी वेदपरायण ब्राह्मणों द्वारा सूर्यदेव का रथ चलवाये।।९।।

यथोक्तकरणाच्चैव शुभा शान्तिर्भविष्यति।
नायकश्चापि सर्वासां देवतानां दिवाकरः॥१०॥
विन्यासेषु रथानां च देवतायतनेषु च॥११॥

पूर्वकथित कारणों से (यह कार्य) शुभ तथा शान्तिकर होगा। समस्त रथ, देवमन्दिर तथा देवगण में नायक हैं—दिवाकर।।१०-११।।

ततो धूपोपहारैश्च संपूज्य प्रथमं ततः।
दिग्देवानुचरांश्चैव पूजयन् पूज्यते श्रिया॥१२॥

तत्पश्चात् धूप तथा उपहारों द्वारा प्रथमतः पूजा करें, दिग् देवता तथा उनके अनुचरों के पूजन से ऐश्वर्य मिलता है।।१२।।

अपूज्य प्रथमं सूर्यमपरान् यस्तु पूजयेत्।
तदज्ञानकृतं पापं न तद्गृह्णन्ति देवताः॥१३॥
यात्राकाले तु संप्राप्ते सवितुर्दीक्षितां तनुम्।
ये द्रक्ष्यन्ति तदा भक्त्या ते भविष्यन्त्यकल्मषाः॥१४॥

प्रथमतः सूर्यदेव का पूजन किये बिना जो अन्य देवताओं का पूजन करते हैं, वह उनका अज्ञानकृत पाप होता है। देवगण उसे (पूजा को) ग्रहण नहीं करते। यात्रा काल में सूर्यदेव के उस विग्रह को (जो रथ पर है) जो भक्तिपूर्वक देखते हैं, वे निष्पाप हो जाते हैं।।१३-१४।।

पौर्णमास्याममावस्यां दानं पुण्यतरं तथा।
आषाढी कार्तिकी माघी तिथ्यः पुण्यतमाः स्मृतः॥१५॥

पूर्णिमा तथा अमावस्या को दिया दान पुण्यतर होता है। वैसे ही आषाढ़ कार्त्तिक तथा माघ मास की पूर्णिमा एवं अमावस्या तिथि को दिया दान अधिक पुण्यतर होता है।।१५।।

महत्त्वं च तिथेः पुण्यं यथाशास्त्रेषु भाषितम्।
कार्त्तिक्यां च विशेषेण महाकीर्त्तिरुदाहृता ॥१६॥

जैसे शास्त्रों में तिथि के महत्त्व तथा पुण्य की कथा अंकित है, वह विशेष करके कार्तिक हेतु है। इसलिये कार्त्तिक मास की अमावस्या तथा पूर्णिमा को महाकार्त्तिकी कहा है।।१६।।

एवं कालसमायोगाच्चात्र काले विशिष्यते।
दर्शनाच्च महत् पुण्यं सर्वपापहरं परम् ॥१७॥
उपवासपरो यश्च तस्मिन् काले धृतव्रतः।
पूजयेद् भास्करं भक्त्या स गच्छेत् परमां गतिम् ॥१८॥
देवोऽयं यज्ञपुरुषो लोकानुग्रहकाङ्क्षया।
प्रतिमायां स्थितो भूत्वा पूज्यते मानुषैः सदा ॥१९॥

इस प्रकार के काल (तिथि आदि) तथा मास के संयोग के कारण विशिष्ट काल होता है। इस समय दर्शन के फल से महापुण्य होता है, सर्वपाप विनष्ट हो जाते हैं। इस काल में उपवासी होकर नियम परायण व्यक्ति यदि भक्तिपूर्वक सूर्यदेव का पूजन करता है, तब उसे परम गति प्राप्त होती है। इन यज्ञपुरुष सूर्यदेव ने लोकानुग्रह करने के लिये प्रतिमा में अवस्थित होकर सदा मनुष्य का पूजन ग्रहण किया है।।१७-१९।।

स्नानाद् दानाज्जपाद्धोमात् संयोगाद् देवकर्मणः।
शिरसो वपनाच्चैव दीक्षितः पुरुषो भवेत् ॥२०॥
केशानां वपनं कार्यं सूर्यभक्तैस्सदा नरैः।
सूर्यक्रतौ शुचिश्चैवं दीक्षितः पुरुषो भवेत् ॥२१॥

स्नान-दान-जप-होम तथा देवकर्म के संयोग से तथा मस्तकमुण्डन के फल से पुरुष दीक्षित होता है। सूर्यभक्त सभी समय केशवपन करते हैं। सूर्य के यात्राकाल में ऐसा पवित्र व्यक्ति दीक्षित होता है।।२०-२१।।

चतुर्णामपि वर्णानां भक्त्या सूर्यं च नित्यशः।
एवं ये तु करिष्यन्ति ते नरा नित्यदीक्षिताः।
तीर्णव्रता महात्मानः प्राप्नुवन्ति शुभां गतिम् ॥२२॥

इति श्री साम्बपुराणे यात्राविधिर्नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

●

चारो वर्ण में जिन्होंने भक्तिपूर्वक इस प्रकार से नित्य सूर्य की आराधना किया है, वे नित्य दीक्षित होते हैं। व्रतपरायण महात्मागण शुभ गति प्राप्त करते हैं।।२२।।

श्रीसाम्बपुराणान्तर्गत यात्राविधि नामक पञ्चत्रिंश अध्याय समाप्त

●

षट्त्रिंशत्तमोऽध्यायः

(अग्निधूपविधिः)

बृहद्बल उवाच

श्रुतं मयेदं विप्रेन्द्र यात्रायाः करणं शुभम्।
अग्ने र्धूपस्य च तथा विधिमाचक्ष्व सुव्रत।।१।।

महाराज बृहद्बल कहते हैं—हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! मैंने शुभ यात्रा का विधान सुना। हे सुव्रत! अब अगिन तथा धूप-विधान कहें।।१।।

वशिष्ट उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि ह्यग्निधूपविधिक्रियाम्।
स्नानमाचमनं चाथोऽर्घ्यदानं तथैव च।।२।।
अथ मृद्धिस्त्रिभिः स्नात्वा वाससी निर्मले शुभे।
परिधाय च सवित्र्या ह्याचमेच्च प्रयत्नतः।।३।।

वशिष्ठ देव कहते हैं—इसके अनन्तर मैं अग्नि तथा धूपविधि की क्रिया कहूँगा और वैसे ही स्नान, आचमन तथा अर्घ्यदान की विधि भी कहूँगा। तीन बार मृत्तिका से स्नान करके निर्मल वस्त्रयुगल पहनकर सयत्न सावित्री द्वारा आचमन करना चाहिये।।२-३।।

जलस्थो नाचमेद्विद्वाञ्जलादुत्तीर्य नित्यशः।
आचमेत्तु प्रयत्नेन सावित्र्या सुसमाहितः।।४।।
अप्सु सूर्यस्तथाग्निश्च नागदेवी सरस्वती।
तस्मादुत्तीर्य चाचामेन्नोपहन्याज्जलाशयम्।।५।।

विद्वान् व्यक्ति जल के मध्य में आचमन नहीं करना चाहिये। सर्वदा जल से बाहर आकर (थल पर) यत्नूपर्वक सावित्री से आचमन करना चाहिये। जल के भीतर सूर्य, अग्नि तथा सरस्वती का वास होता है। अतएव जल से ऊपर आकर आचमन करना ही उचित है; ताकि जलाशय आहत न हो।।४-५।।

उपविश्य शुचौ देशे प्रयतः प्रागुदङ्मुखः।
पादौ प्रक्षाल्य हस्तौ च अन्तर्जानुस्तथाचमेत्।।६।।
प्रसन्नस्त्रिः पिबेदापः प्रयतः सुसमाहितः।
द्विधापमार्जनं कृत्वा त्रिभिरभ्युक्षणं पुनः।।७।।

पवित्र स्थान में संयतभाव से पूर्व अथवा उत्तरमुख बैठकर पादद्वय, हस्तद्वय तथा जानुदेश को धोकर आचमन करना चाहिये। प्रसन्न तथा संयत्त चित्त से सुसमाहित होकर तीन बार आचमनार्थ जलपान करना चाहिये। दो बार अपमार्जन करना चाहिये एवं तीन बार अभ्युक्षण करना (मस्तक पर जल छिड़कना) चाहिये।।६-७।।

मूर्द्धानखानि चात्मानमुपस्पृश्यानुपूर्वशः ।
आचान्तोऽर्कं नमस्कृत्य शौचेच्छुः शुचितामियात् ।।८।।
क्रियां यः कुरुते मोहादनाचम्येह नास्तिकः ।
भवति ता वृथा तस्य क्रियाः सर्वा न संशयः ।।९।।
शुचिष्कामा हि वै देवा वेदे च समुदाहृताः ।
नास्तिकं चाशुचिं चैव वर्जयन्ति सदा सुराः ।।१०।।

मस्तक, सभी नख तथा हृदय का आनुपूर्विक स्पर्श करके आचमनोपरान्त सूर्य को नमस्कार करके शुचिताकामी लोग पवित्र हो जाते हैं। जो नास्तिक व्यक्ति मोहवशात् आचमन किये बिना कार्य (पूजनादि कार्य) करता है, उसके सभी कर्म व्यर्थ हो जाते हैं; इस सम्बन्ध में कोई संशय नहीं है। देवगण पवित्रता चाहते हैं—ऐसा वेद का वचन है। नास्तिक तथा अशुचि व्यक्ति का देवगण सर्वदा त्याग कर देते हैं।।८-१०।।

ऋषयः पितरश्चापि ये चान्येऽपि शुचिव्रताः ।
शौचमेवं प्रशंसन्ति शौचाज्ज्ञानं विधीयते ।।११।।
आचान्तो मौनमास्थाय देवागारं विशेषतः ।
श्वासान्तर्हि निमित्तं हि प्राणमाच्छाद्य वाससा ।।१२।।

ऋषिगण, पितृपुरुष गण तथा और अन्य जो शुचिपरायण हैं, उन्होंने ऐसे शौच की प्रशंसा की है। शौच से ज्ञान प्राप्त होता है। आचमन के पश्चात् विशेषतः देवालय में मौन रहना चाहिये। वस्त्र द्वारा प्राणवायु का आच्छादन करके अन्तःश्वास लेना चाहिये।।११-१२।।

शिरः प्रावृत्य चैवाथ केशोदविनिवृत्तये ।
ततः पूजां रवेः कुर्यात् पुष्पैर्नानाविधैः शुभैः ।।१३।।

तदनन्तर केश का जल सुखाने के लिये मस्तक को ढ़क कर नानाविध शुभ पुष्पों से सूर्य की पूजा करनी चाहिये।।१३।।

जपेन वर्त्तमानेन संहितायां कराज्जपन् ।
धूपं ततोऽग्नये दत्वा प्रथमं गुग्गुलाहुतिम् ।।१४।।
पुष्पाञ्जलिं ततो गृह्य तच्छिलायां प्रधूप्य च ।
रवेर्मूर्द्धनि तं दत्वा वाचमेतामुदाहरेत् ।।१५।।

अंगुलियों को एकत्र करके जप करना चाहिये। तत्पश्चात् अग्नि के लिये धूपदान करना चाहिये। प्रथमतः गुग्गुलु की आहुति प्रदान करनी चाहिये। तदनन्तर पुष्पाञ्जलि लेकर उस शिला को प्रधूमित करके सूर्यदेव के मस्तक पर उस पुष्पाञ्जलि को देते समय नीचे लिखे मन्त्र का पाठ करना चाहिये।।१४-१५।।

ॐ व्रतनयं व्रतिनो वर्द्धयन्ति देवा मनुष्या पितरश्च सर्वे।
तस्यादित्यस्य प्रसवामनामहे यस्तेजसः प्रथममजो विभाति ।।१६।।

देवता, मनुष्य तथा पितृपुरुषगण व्रतपरायण होकर जिस व्रत के नायक का वर्धन करते हैं, उन आदित्य के प्रकाश में हम प्राण धारण करते हैं, जो तेज के प्रथम रूप में प्रकाशित होते हैं।।१६।।

धूपवेलाः स्मृताः पञ्च जपेष्वेवं च पञ्चसु।
महाविद्यासु याः पञ्च वक्ष्येऽहं ताः पुनः क्रमात् ।।१७।।

पाँच बार धूप देने की बात कही गयी है, उसी प्रकार से पाँच बार जप का भी विधान बताया गया है। महाविद्या की जो पाँच वेला है, उसे मैं क्रमानुसार कहता हूँ।।१७।।

दण्डनायकवेला तु प्रदोषे ऋक्षदर्शनात्।
राज्ञीवेला तु प्रत्यूषे तद्वत् कार्या विजानता ।।१८।।
त्रिकालं तु रवेः पूजा कर्तव्या सूर्यदर्शनात्।
अर्द्धोदिते खमध्यस्थे भानोर्वास्तंगते तथा ।।१९।।

प्रदोषकाल में नक्षत्रदर्शन होने तक दण्डनायक वेला होती है। प्रत्यूष काल में राज्ञी वेला होती है। सूर्योदय के उपरान्त तीन वेला में रवि का पूजन किया जाता है—सूर्य के अर्धोदय काल में, सूर्य के मध्यगमन में रहते समय, सूर्य के अस्तगमन के समय (ये पाँच वेलायें होती हैं)।।१८-१९।।

मिहिराय च पूर्वाह्णे मध्याह्ने ज्वलनाय च।
अर्धोद्यन्मण्डले देया नीचाह्ने वरुणाय च ।।२०।।

पूर्वाह्ण में सूर्य की, मध्याह्न में अग्नि की, अर्धोदित काल में मण्डल की तथा अपराह्ण में वरुण की पूजा करनी चाहिये।।२०।।

रक्तचन्दनमिश्राणि गन्धोदकयुतानि च।
पद्मानि करवीराणि तथा रक्तोत्पलानि च ।।२१।।
कुङ्कुमोदकमिश्राणि तथा कुरूण्टकानि च।
गन्धाद्यान्यथवान्यानि कृत्वा ताम्रस्य भाजने ।।२२।।
भूयो धूपं ततो दद्यात् समन्त्रां गुग्गुलाहुतिम्।
अर्घ्यपात्रं ततो गृह्य कुर्यादावाहनं रवेः ।।२३।।

रक्तचन्दन-मिश्रित, गंगाजलयुक्त, पद्म, कनेर, रक्तपद्म, कुङ्कुम जल-मिश्रित, कुरुंटक (झिन्टीवृक्ष) एवं अन्यान्य गन्धादि द्रव्य को ताम्रपात्र में रखकर अर्घ्य देना चाहिये। धूप देकर मन्त्र के साथ गुग्गुलु की आहुति प्रदान करनी चाहिये। तदनन्तर अर्घ्यपात्र लेकर नीचे लिखे मन्त्र द्वारा सूर्य का आवाहन किया जाता है।।२१-२३।।

एहि सूर्य! सहस्रांशो तेजोराशे जगत्पते।
अनुकम्पय मां भक्त्या गृहाणार्घ्यं दिवाकर ॥२४॥

हे सूर्य! आप आईये! सहस्रकिरण, तेजोराशि, जगत्पति! मेरी भक्ति से मेरे प्रति कृपा करिये। हे दिवाकर! मेरा अर्घ्य ग्रहण करिये।।२४।।

अनेनावाहनं कृत्वा जानुभ्यां संस्थितः क्षितौ।
रवेर्निवेदयेदर्घमादित्यहृदयं जपेत् ॥२५॥

इस मन्त्र से सूर्यदेव का आवाहन करके भूमि पर अपने जंघाओं को स्थापित करके सूर्य को अर्घ्यदान करके आदित्यदेव का जप करना चाहिये।।२५।।

ॐ नमो भगवते आदित्याय वरिष्ठाय वरेण्याय ब्रह्मलोकैककर्त्रे।
ॐ ईशानाय पुराणाय पुराणपुरुषाय च ॥२६॥
ॐ सोमाय च ऋग्यजुःसामाथर्वणे नमः ॥२७॥
ॐ भूः ॐ भुवः स्वः ॐ महः ॐ जनः ॐ तपः ॐ सत्यम्।
ब्रह्मणे मध्यपरत आदित्यायेति स्वाहा ॥२८॥

'ॐ नमो भगवते' इत्यादि २६ से २८ श्लोक-पर्यन्त लिखे मन्त्र से धूप निवेदित करना चाहिये। मन्त्रार्थ है—श्रेष्ठ, वरेण्य, ब्रह्मलोक के एकमात्र कर्त्ता आदित्यदेव को नमस्कार है। ईशान, पुराण तथा पुराणपुरुष को नमस्कार है। सोम तथा ऋक्, यजुः, साम तथा अथर्व को नमस्कार है। महाव्याहृति मन्त्र—भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्य तथा ब्रह्मरूप आदित्य के लिये स्वाहा मन्त्र से निवेदन करता हूँ।।२६-२८।।

सावित्र्या परिपूतेन वारिणा तु ततः परम्।
परितः परिमृज्याथ धूपभाजनमुच्छ्रियेत् ॥२९॥
ऊं भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो
देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ॥३०॥
ततो निवेदयेद् धूपं त्वृचमेतामुदाहरन् ॥३१॥

तदनन्तर गायत्री मन्त्र से परिपूत जल द्वारा धूपपात्र का मार्जन करके उसे उत्तोलित करना चाहये। तदनन्तर गायत्री मन्त्र से धूप निवेदित करना चाहिये। परिपूत मन्त्र श्लोक २९ में है। गायत्री मन्त्र श्लोक ३० में है।।२९-३१।।

त्वमेको रुद्राणां वसूनां पुरातनो
देवानां गीर्भिरभिष्टुतः शाश्वतो दिवि ॥३२॥

हे सूर्यदेव! एकमात्र आप रुद्रगण तथा वसुओं में पुरातन हैं। आप द्युलोक में नित्य देवगण द्वारा स्तुत हैं। यह धूपदान मन्त्र है।।३२।।

पूर्वाह्णेऽनेन मन्त्रेण मध्याह्ने चाप्यनेन तु ।।३३।।

ॐ नमो ज्वालामालाय

तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः ।
दिवीव चक्षुराततं सायाह्ने चाप्यनेन तु ।।३४।।

पूर्वाह्ण तथा मध्याह्न में पूर्वोक्त मन्त्र से पूजन करे; किन्तु सायाह्न काल में 'ॐ नमो ज्वालामालाय तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः दिवीव चक्षुराततं' मन्त्र से पूजा करनी चाहिये। मन्त्रार्थ है—जो अग्निज्वाला के समान किरणों का विस्तार करते हैं, उन सूर्यदेव को नमस्कार है। उन विष्णु के परमपद का सूरीगण नित्य दर्शन करते हैं। आकाश में उनके चक्षु विस्तृत रहते हैं।।३३-३४।।

ॐ नमो वरुणाय

ॐ आकृष्णेन रजसा वर्त्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च ।
हिरण्मयेन सविता रथेन देवो याति भुवनानि पश्यन् ।।३५।।
अनेन विधिना दत्वा धूपं सूर्याय याजकः ।
उत्क्षिप्तेनैव धूपेन विशेद् गर्भगृहं ततः ।।३६।।

तदनन्तर 'ॐ नमो वरुणाय' से लेकर 'भुवनानि पश्यन्' तक के मन्त्र से सूर्य को धूपदान करके (सूर्य के लिये) गर्भगृह में प्रवेश करना चाहिये।।३५-३६।।

ततः प्रविश्य धूपं तु प्रतिमायै निवेदयेत्।
मन्त्रेण मिहिरायेति धूपं दत्वेति नित्यशः ।।३७।।

प्रवेश करके प्रतिमा को धूप निवेदन करना चाहिये। 'मिहिराय' इत्यादि मन्त्र से नित्य धूप देना चाहिये।।३७।।

ततो राज्ञीं नमस्कृत्य निक्षुभायै नमो नमः ।
दण्डनायकसंज्ञाय पिङ्गलाय च वै नमः ।।३८।।

तदनन्तर सूर्यपत्नी राज्ञी को नमस्कार करे। सूर्यपत्नी निक्षुभा को भी नमस्कार करे। तत्पश्चात् दण्डनायक तथा पिङ्गला को भी नमस्कार करना चाहिये।।३८।।

ततो राज्ञे च तोषाय कल्माषाय गरुत्मते ।
ततः प्रदक्षिणां कुर्वन् दिग्देवेभ्यो निवेदयेत् ।।३९।।

तत्पश्चात् राजा, तोष, कल्माष तथा गरुड़ को नमस्कार करना चाहिये। तदनन्तर प्रदक्षिणा करके उसे दिक् देवगण को निवेदन करना चाहिये।।३९।।

दण्डिने च ततो दद्याद्रैवन्तानुचराय च।
पूर्वेण नम इन्द्राय दक्षिणेन यमाय च॥४०॥
पश्चिमेन जलेशाय कुबेरायोत्तरेण च।
उत्तरेणैव सोमाय दद्याद्धूपं विचक्षणः॥४१॥

तदनन्तर दण्डी तथा रैवन्त के अनुचर गण को निवेदन करना चाहिये। 'नमः इन्द्राय' मन्त्र से पूर्व की ओर इन्द्र को, दक्षिण में यम को, पश्चिम में वरुण को, उत्तर में कुबेर को तथा विचक्षण व्यक्ति को उत्तर दिशा में चन्द्र को भी धूप प्रदान करना चाहिये।।४०-४१।।

शृङ्गे सौमनसे धूपमीशानाय निवेदयेत्।
ज्योतिषं त्वग्नये दत्वा पितृभ्यश्चित्रसंज्ञके॥४२॥

शृङ्ग में सुमना ईशान को धूप निवेदन करना चाहिये। अग्नि में धूप देकर चित्र-संज्ञक पितृपुरुषों को धूप प्रदान करना चाहिये।।४२।।

चन्द्रमासे ततः शृङ्गे धूपं दत्त्वा तु वायवे।
मध्ये नारायणाख्याय सूर्याय परमात्मने॥४३॥

तदनन्तर चन्द्रमास में शृङ्ग में वायु को धूप प्रदान करना चाहिये। मध्य में नारायण नामक सूर्य परमात्मा को धूप प्रदान करना चाहिये।।४३।।

आदित्येभ्योऽथ रुद्रेभ्यो मरुद्भ्यश्चाश्विनोस्तथा।
याह्यस्मिन् देवता व्योम्नि नमस्ताभ्योऽपि नित्यशः॥४४॥

आदित्यगण, रुद्रगण, मरुद्गण, अश्विनी कुमारद्वय के लिये धूप निवेदित करना चाहिये। मन्त्र है—हे देवगण! इस आकाश में गमन करिये। उन देवगण को नित्य नमस्कार करता हूँ।।४४।।

एवमुद्दिश्य नामानि धूपं दत्वा ततः स्तवैः।
उत्क्षिप्तो यत्र वै धूपो मुक्त्वा तत्रैव तं पुनः॥४५॥

इस प्रकार से देवताओं का नामोल्लेख करके धूप देने के अनन्तर उनके स्तव से स्तुति करनी चाहिये। जहाँ धूप उत्क्षिप्त होती है, पुनः वहीं जाना चाहिये।।४५।।

सूर्यं गुह्यैरभिष्टुत्य ह्येवं विज्ञापयेत्ततः।
अर्चितो हि यथाशक्त्या मया शक्त्या विभावसोः॥४६॥
ऐहिकामुष्मिकीं नाथ कार्यसिद्धिं कुरुष्व मे।

गुह्य मन्त्र से सूर्य का स्तव करके तदनन्तर उनसे प्रार्थना करनी चाहिये—'हे विभावसु! मैं यथाशक्ति भक्तिमान् चित्त से आपकी अर्चना करता हूँ। हे नाथ! मेरी ऐहिक तथा पारलौकिक कार्यसिद्धि करिये।।४६।।

एवं त्रिषवणस्नातो योऽर्चयेत् प्रयतः सदा।
विधिना तु यथोक्तेन सोऽश्वमेधफलं लभेत्॥४७॥

इस प्रकार से जो प्रातः, मध्याह्न एवं सायंकाल (तीन बार) स्नान करके संयत होकर सर्वदा यथोक्त विधानानुसार सूर्यदेव की अर्चना करते हैं, वे अश्वमेध यज्ञ का फललाभ करते हैं।।४७।।

यश्चैवं कुरुते नित्यं यथोक्तं धूपविस्तरम्।
स पुत्रवानरोगी च मृतः संलीयते रवौ॥४८॥
विधिना तु यथोक्तेन क्रियमाणानि यत्नतः।
सर्वकर्माणि सिध्यन्ति सफलानि भवन्ति च॥४९॥

जो नित्य इस प्रकार से विधान के अनुसार धूपदान करते हैं, वे पुत्रवान तथा आरोग्यवान होकर मृत्यु के पश्चात् सूर्य में लीन हो जाते हैं। यथोक्त विधानानुसार सयत्न क्रियमाण सभी कार्य सिद्ध तथा सफल होते हैं।।४८-४९।।

पुष्पश्रेष्ठं च दानं स्यात् पत्रं समुपहारयेत्।
पत्रं न स्यात्ततो धूपं धूपो न स्यात्ततो जलम्॥५०॥
सर्वं न स्यात्तदा चैव प्रणिपातेन पूजयेत्।
अशक्तः प्रणिपातेऽपि मनसा पूजयेत्ततः॥५१॥

पुष्प ही श्रेष्ठ दान है। उसके अभाव में पत्र प्रदान करे। (पत्र) पत्ता न मिलने पर धूप प्रदान करे। धूप भी न मिले, तब जल प्रदान करे। यदि जल भी न मिले, तब प्रणाम करके पूजन करे। यदि प्रणाम करने में भी असमर्थता हो, तब मन ही मन पूजा करनी चाहिये।।५०-५१।।

असम्भवे तु द्रव्याणां विधिरेष प्रकीर्तितः।
द्रव्याणां सम्भवे चैव सर्वमेवोपहारयेत्॥५२॥
मन्त्राद्याः कथिता ये तु पुष्पधूपनिवेदने।
व्याहारात् स्मरणाच्चैव तेषां प्रीतो भवेद्रविः॥५३॥

इति श्रीसाम्बपुराणे अग्निधूपविधिर्नाम षट्त्रिंशतितमोऽध्यायः

●

यदि कोई द्रव्यहीन हो, तब यह विधि है। यदि द्रव्यों का संग्रह सम्भव हो, तब सबका संग्रह करना चाहिये। पुष्प तथा धूप-निवेदनार्थ जिन मन्त्रों को कहा गया है, उनके कहने से तथा स्मरण करने से भी सूर्य के प्रति प्रीति उत्पन्न होती है।।५२-५३।।

श्रीसाम्बपुराणान्तर्गत अग्निधूपदानविधि नामक छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त

●

सप्तत्रिंशत्तमोऽध्यायः

(अग्निविधानम्)

वसिष्ठ उवाच

अतोऽग्रे संप्रवक्ष्यामि विधानमनुपूर्वशः ।
धूपो निवेद्यते येन आदित्यस्याग्निना सदा ।।१।।

वशिष्ठदेव कहते हैं—इसके पश्चात् मैं तुमसे पहले आनुपूर्विक विधान का वर्णन करता हूँ, जिसमें अग्नि के साथ सूर्यदेव को धूप निवेदन करना होगा।।१।।

शुचिरग्निः स्मृतः सूर्यो वायुस्तस्य सुतः स्मृतः ।
अस्यान्तःस्थः स वै यस्मात्ततोऽसौ वायु नान्तरः ।।२।।
अतोऽस्य तेज उत्थाप्य रवेर्धूपं निवेदयेत् ।
तमुत्थाप्य विधानेन शुचौ देशे निवेश्य च ।।३।।
मन्त्रेण तु रविं देवं नित्यमेवं प्रसादयेत् ।
अरण्यां तु शमीमय्यां पिप्पल्यां पुत्रकं रवेः ।।४।।
निर्मथ्य तं समुत्थाप्य धमयेत् व्यजनेन तु ।
मूर्तिमुल्लिख्य दर्भेण ह्यग्निं संस्थाप्य यत्नतः ।।५।।

पवित्र अग्नि को सूर्य कहा गया है। वायु को उनका पुत्र कहा जाता है। यद्यपि अग्नि के अन्तर में सूर्य रहते हैं, इसीलिये उसे वायु से पृथक् कहा गया है। इसीलिये अग्नि के तेज का उत्पादन करके (अग्नि प्रज्वलित करके) सूर्य को धूप दिया जाता है। विधानपूर्वक पवित्र देश में अग्नि उत्पन्न करके मन्त्रों द्वारा नित्य सूर्यदेव की प्रसन्नता प्राप्त करनी चाहिये। अरणि काष्ठ में, शमीवृक्ष में, रवि के पुत्र पिप्पली वृक्ष में मन्थन करके व्यजन (पंखा) द्वारा हवा देनी चाहिये। कुश से मूर्त्ति का निर्माण करके यत्नपूर्वक अग्नि में स्थापित करना चाहिये।।२-५।।

ततः स्रुचं स्रुवं चैव प्रणीतामाज्यभाजनम् ।
प्रमृज्य स्पर्शयेदग्निं कुशेनाग्निं च संस्पृशेत् ।।६।।
कुशं गृह्य तु हस्ताभ्यामाज्यं प्रथममुत्सृजेत् ।
नाग्निं मुखेनोपधमेन्न च पादौ प्रतापयेत् ।।७।।
अधस्तान्नोपध्मायाच्च न चैनमभिलङ्घयेत् ।
सुसमिद्धं ततः कृत्वा होमयेज्जातवेदसम् ।।८।।

तदनन्तर स्रुच, स्रुवा, प्रणीता, घृतपात्र की मार्जना करके अग्नि का स्पर्श कराये। इसके पश्चात् कुश के द्वारा अग्नि का स्पर्श कराना चाहिये। दोनों हाथों में कुश लेकर प्रथमतः घृत-दान करना चाहिये। अग्नि को मुँह से नहीं फूँकना चाहिये। पैर आगे करके अग्नि का ताप नहीं लेना चाहिये। अग्नि का कभी लङ्घन नहीं करना चाहिये। अग्नि को सम्यक् रूप से प्रज्ज्वलित करके ही अग्नि में होम करना चाहिये।।६-८।।

प्रादेशमात्राः कर्तव्याः समिधोऽथ प्रमाणतः ।
पृथुप्रमाणा कर्त्तव्या देवदारुमयी तथा ।।९।।
अतिमात्रा तथेध्माश्च कर्तव्याः स्वप्रमाणतः ।
पालाशोऽर्कस्त्वपामार्गः शम्यश्वत्था विकङ्कतः ।।१०।।
ऊदुम्बरस्तथा बिल्वश्चन्दनो यज्ञियाश्च ये ।
सरलो देवदारुश्च शालश्च खदिरस्तथा ।।११।।
समिदर्थे प्रशस्तास्तु वृक्षा ह्येते प्रकीर्तिताः ।

समिधा (यज्ञ काष्ठ) को प्रादेश (आधा हाथ) प्रमाण का होना चाहिये। देवदारु काष्ठ स्थूल प्रमाण का होता है। पलाश, मदार, अपामार्ग, शमी, पीपल, विकङ्कत, ऊदुम्बर, बेल, चन्दन एवं यज्ञीय सरल, देवदारु, शाल तथा खदिर को समिधा के लिये प्रशस्त माना गया है।।९-११।।

श्लेष्मातको नक्तमालः कपित्थः शाल्मली तथा ।।१२।।
बिल्वजः कोविदारश्च करञ्जः शल्लकी द्रुमः ।
चिरबिल्वस्तथाक्रोन्टस्तिक्तकाम्रातकौ तथा ।।१३।।
निम्बो विभीतकश्चैते होमकर्मणि गर्हिताः ।।१४।।

श्लेष्मातक, नक्तमाल (कञ्जक वृक्ष), कपित्थ (काक्षी नामक सुगन्ध काष्ठ), शाल्मली (सेमल), बिल्वज, कोविदार (मन्दार), करञ्ज, शल्लली, चिरबिल्व, कोण्ट, चिरा-यता, आमडा, नीम, बहेड़ा का काष्ठ होमकार्य हेतु निन्दित कहा गया है।।१२-१४।।

एवं समेधितस्याग्नेः समन्तात् कुशविष्टरम् ।
दत्वा प्रागुत्तमं तत्तु ततस्तं परिमार्जयेत् ।
सावित्रीमन्त्रपूतेन वारिणा त्रिः समन्ततः ।।१५।।

समिधा के चतुर्दिक कुश बिछाकर पूर्व की ओर उत्तम कुश से सावित्री मन्त्र के द्वारा पवित्र जल छिड़कते हुये तीन बार परिमार्जन करना चाहिये।।१५।।

ततः कुशमयं कृत्वा ह्यात्मनोऽथाङ्गुलीयकम् ।
ततोऽग्नेर्दक्षिणे पार्श्वे कल्पयेद् ब्रह्मणस्तनुम् ।।१६।।
ततः स्रुचं स्रुवं चैव प्रणीतामाज्यभाजनम् ।
प्रक्षाल्य स्पर्शयेदग्निं स्रुवं चाज्येन संस्पृशेत् ।।१७।।

ततो भूमौ निषण्णेन जानुना सुसमाहितः।
पाणी तु पुटकौ कृत्वा प्रणमेज्जातवेदसम् ॥१८॥
आह्वानं तु ततः कृत्वा रवेस्तत्र समाहितः।
पुराणोक्तेन मन्त्रेण ह्यनेनाथ कृताञ्जलिः ॥१९॥

तदनन्तर कुश की अंगूठी तैयार करके (पवित्री तैयार करके) अग्नि के दक्षिण पार्श्व में (कुश द्वारा) ब्रह्मा के शरीर की कल्पना करनी चाहिये। स्रुच, स्रुवा, प्रणीता, घृतपात्र का प्रक्षालन करके अग्नि का स्पर्श कराये तथा स्रुव का घृत से स्पर्श कराये। तदनन्तर भूमि पर जानु रखकर बैठकर समाहित होकर हाथ जोड़कर अग्नि को प्रणाम करना चाहिये। तत्पश्चात् समाहित होकर सूर्यदेव का आह्वान करके कृताञ्जलि होकर नीचे लिखा मन्त्र पढ़ना चाहिये।।१६-१९।।

नमो नमो यो भवतीह शश्वदुत्तिष्ठमानो जगतो हिताय।
आवाहयाम्यद्य तमीशमाद्यं करोतु सोऽग्नाविह सन्निधानम् ॥२०॥
एह्येहि सूर्याक्षयविश्वमूर्ते अविन्धनोऽग्नेः शुचिनामधेयः।
इमां स्वकीयां तनुमाविशस्व हविर्हुतं देवमथा समीक्ष्य ॥२१॥

जो निरन्तर जगत के हितार्थ सन्नद्ध हैं, उन्हें नमस्कार है, नमस्कार है। उन आद्य ईश्वर का मैं आज आह्वान करता हूँ। वे इस अग्नि में सन्निहित हो जायँ। हे सूर्य! आप अक्षय, विश्वमूर्त्ति हैं, आईये। आप शुचि नामक अग्नि की प्रतिमूर्त्ति हैं। हे देव! मैं अग्नि में आहुति दे रहा हूँ। यह देखकर आप अपने इस निज शरीर में प्रविष्ट हो जाईये।।२०-२१।।

एवं कृत्वाग्निसंस्कारं साह्वानं च दिवाकरम्।
ततो विज्ञापयेदग्निमृचमेतामुदाहरेत् ॥२२॥

इस प्रकार से अग्नि का संस्कार करके तथा सूर्यदेव का आवाहन करके अग्नि की प्रर्थना करे तथा नीचे लिखे ऋक् मन्त्र का उच्चारण करे।।२२।।

ममाग्ने वर्चो विहवेष्वस्तु वयं त्वेन्धानास्तन्वं पुषेम।
मह्यं नमस्तां प्रदिशश्चतस्रस्त्वयाध्यक्षेण पृतना जयेम ॥२३॥
उत्तिष्ठ पुरुषर्षभहरिपिंगलदीप्तजिह्व
लोहिताक्ष देहि मे ददामि ते स्वाहा ॥२४॥

हे अग्नि! हमारा तेज·······प्रसरित हो। यज्ञकारी हम आपके तनु का पोषण करेंगे। आपके अध्यक्षरूप से होने पर चारो ओर के लोग हमसे अवनत होंगे और हमारी जय शत्रुसेना पर होगी। हे पुरुषश्रेष्ठ! हरित एवं पिङ्गल वर्ण दीप्त जिह्वा वाले! आप उठिये। हे लोहिताक्ष! हमें दीजिये। हम आपको स्वाहा मन्त्र से आहुति दे रहे हैं।।२३-२४।।

ततः परमग्निहोत्रमन्त्रेण मार्गमुच्चरन् परमाहुतिं दद्यादादाय स्वाहा ।।२५।।

तत्पश्चात् अग्निहोत्र मन्त्र का उच्चारण करके स्वाहा शब्द लगाकर पुण्याहुति प्रदान करनी चाहिये।।२५।।

तथैव च यत्र आत्मीये म त्विषासहिताय च।
ततः प्रादेशमात्राभिः पलाशीभिर्यथाविधि ।।२६।।
देवदारुमयीभिश्च शमीमयीभिरेव च।
समिद्भिश्च घृताक्ताभिर्होमयेज्जातवेदसम् ।।२७।।
रत्निमात्रं स्रुवं गृह्य घृतेनैव तु होमयेत्।
ततः क्षीरेण गव्येन ततोऽन्नेन च होमयेत् ।।२८।।

इस प्रकार से यज्ञ में त्विषा के साथ आधा हाथ माप के पलाश, देवदारु, शमी काष्ठ से घृत से अग्नि में होम करे।।२६-२८।।

नवाभिरोषधीभिश्च तिल-व्रीहि-यवैस्तथा।
शालीफलकश्यामाकैर्गोधूमैश्चैव होमयेत् ।।२९।।

नव औषधि, तिल, ब्रीहि, जौ, शालीफलक, श्यामाक तथा गोधूम द्वारा होम करे।।२९।।

पौर्णमास्याममायां वा होमयेच्च विशेषतः।
चैत्र्यां तथाऽश्वयुज्यां च कुर्यादग्निं तथा क्रियाम् ।।३०।।

पूर्णिमा तथा अमावस्या को विशेष रूप से होम करे। विशेषतः चैत्र तथा अश्विन मास की पूर्णिमा एवं अमावस्या को होम करे।।३०।।

बहुहव्येन्धनैश्चाग्नौ सुसमिद्धे विशेषतः।
विधूमे लेलिहाने च होमये कर्मसिद्धये ।।३१।।

अनेक द्रव्य तथा काष्ठ से अग्नि प्रदीप्त हो, उससे धुआँ न उठे। लोहित वर्ण प्रज्वलित अग्निशिखा में कर्मसिद्धि के लिये होम करना चाहिये।।३१।।

अप्रबुद्धे सधूमे वा जुहुयान्न हुताशने।
यजमानो भवेदन्धो ह्यपुत्र इति च श्रुतिः ।।३२।।

जब तक अग्नि सम्यक् रूप से प्रज्वलित न हो अथवा धूम्र से रहित न हो तब तक आहुति नहीं देनी चाहिये। ऐसा करने पर यजमान अन्धा तथा पुत्रहीन हो जाता है। यह श्रुतिवाक्य है।।३२।।

अर्चिष्मान् पीडितशिखस्तप्तकाञ्चनसन्निभः।
स्निग्धः प्रदक्षिणावर्त्तो वह्निः स्यात्कार्यसिद्धये ।।३३।।

नैवाकल्याणी युवतिर्न्नाल्पविद्यो न बालिशः ।
होता स्यादग्निहोत्रस्य नार्त्तो नासंस्कृतस्तथा ।।३४।।
नरकन्तु पतन्त्येते जुह्वतश्च धनक्षयः ।
तस्माद्विज्ञानकुशलो होता स्याद्वेदपारगः ।।३५।।

प्रदीप्त उज्वल शिखायुक्त काञ्चन तुल्य स्निग्ध दक्षिणावर्त्त अग्नि से कार्यसिद्धि होती है। अग्निहोत्र का होता कभी भी अकल्याणी युवती, अल्पविद्य, मूर्ख, आर्त्त अथवा असंस्कृत न हो। होता व्यक्ति के पूर्वोक्त प्रकार की अग्नि से अतिरिक्त अग्नि में आहुति देने से नरकगामी हो जाता है। यजमान का धनक्षय होता है। अतः ज्ञानकुशल, वेदवित् होता होना चाहिये।।३३-३५।।

यत्फलं कर्मणस्तस्य ततो निगदितं श्रृणु ।
अध्यक्षः सर्वकामोऽयं सोऽश्वमेधफलं लभेत् ।।३६।।

इति श्रीसाम्बपुराणे अग्निविधानं नाम सप्तत्रिंशत्तमोऽध्यायः

●

यज्ञादि कर्म का जो फल है, उसे सुनो। समस्त कामना के अध्यक्ष (यज्ञकर्त्ता) अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करते हैं।।३६।।

श्री साम्बपुराणोक्त अग्निविधान नामक सैंतीसवाँ अध्याय समाप्त

●

अष्टत्रिंशत्तमोऽध्याय:

(देवपूजादिफलम्)

वसिष्ठ उवाच

तत्तेहं वर्णयिष्यामि साम्बेन च यथा पुनः।
नारदः परमोदारः पृष्टोऽभूत् संशयो महान् ।।१।।

वशिष्ठ ऋषि कहते हैं—अब मैं तुमसे जो वर्णन करूँगा, उसे साम्ब ने उदार प्रकृति वाले नारद से पूछा था।।१।।

साम्ब उवाच

श्रुता दारुपरीक्षा मे प्रतिमालक्षणं तथा।
देवयात्राविधानं च ह्यग्निकार्यविधिं तथा ।।२।।
अतः परं तु विप्रेन्द्र! प्रब्रूहि मम पृच्छतः।
देवपूजाफलं यच्च यच्च दानफलं भवेत् ।।३।।
प्रणिपाते नमस्कारे तथा चैव प्रदक्षिणे।
धूपदीपप्रदाने च सम्मार्जनविधौ च यत् ।।४।।
उपवासे च यत्प्रोक्तं तत्फलं नक्तभोजनम्।
अर्घ्यश्च कीदृशः प्रोक्तः कुत्र वा सम्प्रदीयते।
कथं च क्रियते भक्तिः कथं देवः प्रसीदति ।।५।।
भक्तिं श्रद्धां समाधिं च कथ्यमानां निबोध मे ।।६।।

साम्ब नारद से पूछते हैं—मैंने आपसे दारुपरीक्षा, प्रतिमालक्षण, देवयात्रा विधान तथा अग्निकार्य की बातें सुनी। हे विप्रश्रेष्ठ! अब मेरी जिज्ञासा है कि देवपूजा का फल तथा दानकार्य का फल, प्रणिपात, नमस्कार, प्रदक्षिणा, धूप-दीप दान, मन्दिर में मार्जन विधि का फल, उपवास, रात्रिभोजन (दिन में केवल एक बार भोजन) का जो फल है, उसे कहिये। अर्घ्य किसे कहते हैं, कहाँ वस्त्र चढ़ाना पड़ता है, भक्ति कैसे की जाती है तथा देवता कैसे प्रसन्न होते हैं? साथ ही भक्ति-श्रद्धा तथा समाधि के भी सम्बन्ध में कहने की कृपा कीजिये।।२-६।।

नारद उवाच

मनसो भावना भक्तिरिच्छा श्रद्धा च कथ्यते।
ध्यानं समाधिरित्युक्तं शृणु भक्तिविकल्पनाम् ।।७।।

तत् कथायां रमेद्यस्तु स वै भक्तः सनातनः।
नित्यं तु तन्मनाश्चैव देवपूजारतः सदा ॥८॥
तत्कर्मकृद् भवेद्यस्तु स वै भक्तः सनातनः।
देवार्थं क्रियमाणानि यः कर्माण्यनुमन्यते ॥९॥
कीर्त्तनाद्वाष्परोमाञ्ची: स वै भक्ततरो नरः।
नाभ्यसूयेच्च तद्भक्तं न वन्द्या चान्यदेवता ॥१०॥

नारद कहते हैं—भक्ति, श्रद्धा तथा समाधि का प्रसङ्ग कहता हूँ, सुनो। मन की भावना ही भक्ति है, इच्छा ही श्रद्धा है तथा ध्यान को समाधि कहते हैं। अब भक्त की बात कहता हूँ। सूर्यदेव भगवान् की बात से जो आनन्द लाभ करते हैं, वे ही सत्य भक्त हैं। वे नित्य भगवान् को मन अर्पित करते हैं तथा सर्वदा देवपूजा में रत रहते हैं। जो निरन्तर भगवान् का कर्म करते हैं, वे हैं सनातन भक्त। वे देवता के निमित्त क्रियमाण कर्मों का अनुमोदन करते हैं। भगवान् का कीर्त्तन करने में जिन्हें रोमाञ्च होता है तथा शरीर से वाष्प-जैसा निकलने लगता है, वे है भक्ततर व्यक्ति। वे अन्य भक्तों से कोई असूया नहीं करते। अन्य देवों की आराधना भी नहीं करते।।७-१०।।

आदित्यव्रतधारी च स वै भक्ततरो नरः।
एवंविधा क्रिया भक्तिः सदा कार्या विजानता ॥११॥
गच्छंस्तिष्ठन् स्वपन् जिघ्रन्नश्नंश्च निमिषंस्तथा।
यः स्मरेद् भास्करं नित्यं स वै भक्ततरो नरः ॥१२॥
भक्त्या समाधिना चैव शुद्धेन मनसा तथा।
क्रियते नियमो यस्तु दानं वा यत्प्रदीयते ॥१३॥
प्रतिगृह्णन्ति तद्देवा मनुष्याः पितरस्तथा।
पत्रं पुष्पं फलं तोयं भक्त्या यत्समुपाहृतम् ॥१४॥

जो आदित्य का व्रतधारण करते हैं, वे ही हैं भक्तश्रेष्ठ! ऐसा जानकर भक्ति-विधान करना उचित है। चलते-फिरते, बैठे हुये, निद्रा के समय, निःश्वास लेते हुये, भोजन करते-करते, पलके झपकाते जो नित्य भास्कर का स्मरण करते हैं, वे हैं श्रेष्ठ भक्त। भक्ति से, समाधि से, शुद्ध मन से जो नियमपालन तथा दान करते हैं, उसे देवगण-मनुष्यगण तथा पितृगण ग्रहण करते हैं। पत्र-पुष्प-फल-जल जो कुछ भी श्रद्धा से दिया जाय, वे उसे स्वीकार करते हैं।।११-१४।।

प्रतिगृह्णन्ति तद्देवा नास्तिकान् वर्ज्जयन्ति च।
भावशुद्धिः प्रयोक्तव्या नियमाचारसंयुता ॥१५॥
भावशुद्ध्या कृतं यच्च तत्सर्वं सफलं भवेत्।
स्तुतिजाप्योपहारेण पूजया च विवस्वतः ॥१६॥

देवगण भक्त द्वारा प्रदत्त सब कुछ स्वीकार कर लेते हैं; परन्तु नास्तिक द्वारा प्रदत्त वस्तु स्वीकार नहीं करते। नियम तथा आचारयुक्त भावशुद्धि प्रयोजनीय है। शुद्ध भावपूर्वक जो कुछ किया जाता है, वह स्तुति, जप, उपहार तथा पूजा सफल होती है।।१५-१६।।

उपवासेन षष्ठ्यां च सर्वपापैः प्रमुच्यते।
प्रणिधाय शिरो भूम्यां नमस्कारं करोति यः ।।१७।।
तत्क्षणात् सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः।

सूर्यषष्ठी को उपवास करने से सभी पाप से मुक्ति मिलती है। जो भूमि पर मस्तक झुकाकर नमस्कार करते हैं, वे तत्क्षण सभी पापों से मुक्त हो जाते हैं; इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये।।१७।।

भक्तियुक्तो नरो यस्तु रवेः कुर्यात् प्रदक्षिणाम् ।।१८।।
प्रदक्षिणीकृता तेन सप्तद्वीपा वसुन्धरा।
सूर्यं मनसि यः कृत्वा कुर्याद्वा च प्रदक्षिणाम् ।।१९।।
प्रदक्षिणीकृतास्तेन सर्वे देवा भवन्ति हि।

जो भक्तिपूर्वक सूर्यप्रदक्षिणा करता है, मानों उसने सप्तद्वीपा पृथिवी की परिक्रमा कर ली है अथवा जो उनकी मन ही मन प्रदक्षिण करता है, उसने तो सभी देवों की प्रदक्षिण कर ली है।।१८-१९।।

एकहारपरो भूत्वा षष्ठ्यां योऽर्चयते रविम् ।।२०।।
नियमव्रतधारी च रवेर्भक्तसमन्वितः।
सप्तम्यां च महाप्राज्ञः सोऽश्वमेधफलं भवेत् ।।२१।।
अहोरात्रोपवासेन पूजयेद्यस्तु भास्करम्।
सप्तम्यामथ षष्ठ्यां च सूर्यलोकं स गच्छति ।।२२।।

जो षष्ठी के दिन मात्र १ बार आहार ग्रहण करके सूर्यार्चन करते हैं, साथ ही सप्तमी को भक्तियुक्त होकर नियम एवं व्रतपालन करते हैं, उन्हें अश्वमेध का फल प्राप्त होता है। जो सप्तमी अथवा षष्ठी को अहोरात्र उपवास करके सूर्योपासना करते हैं, वे मृत्यु के पश्चात् सूर्यलोक प्राप्त करते हैं।।२०-२२।।

शुक्लपक्षस्य सप्तम्यामुपवासपरो नरः।
सर्वरक्तोपहारेण पूजयेद्यस्तु भास्करम् ।।२३।।
सर्वपापविनिर्मुक्तः सूर्यलोकं स गच्छति।

जो शुक्लपक्ष की सप्तमी तिथि को उपवास द्वारा सूर्यपूजन करते है तथा रक्तवर्ण के समस्त उपहार से सूर्य की पूजा करते हैं, वे समस्त पापों से रहित होकर सूर्यलोक गमन करते हैं।।२३।।

अर्कसंपुटं संयोज्य मुदकप्रसृतिं पिवेत् ॥२४॥
क्रमवृद्ध्या चतुर्विंशदेकैकं जपयेत् पुनः ।
द्वाभ्यां संवत्सराभ्यां तु समाप्तनियमो भवेत् ॥२५॥
सर्वकामप्रदा ह्येषा प्रसिद्धार्कस्य सप्तमी ।

जो अर्क सम्पुट करके जल पीते हैं तथा एक-एक करके क्रमशः बढ़ाते हुये २४ बार तक पान करते हैं, उनकी सभी कामना सूर्यसप्तमी को पूर्ण हो जाती है।।२४-२५।।

माघशुक्लस्य सप्तम्यां सदाऽऽदित्यदिनं भवेत् ॥२६॥
सप्तमी विजया नाम तत्र दत्तं महत् फलम् ।
स्नानं दानं जपो होम उपवासस्तथैव च ॥२७॥
सर्व-विजय-सप्तम्यां महापातकनाशनम् ॥२८॥

माघ मास की शुक्लपक्ष की सप्तमी तिथि को सूर्य का दिन कहा जाता है। इसका नाम है—विजया। इस दिन स्नान, दान, जप, होम तथा उपासना का महान् फल मिलता है। यह सप्तमी सभी पापों का नाश करने वाली होती है।।२६-२८।।

ये त्वादित्यदिने प्राप्ते श्राद्धं कुर्वन्ति मानवाः ।
जपन्ति च महाश्वेतां ते लभन्ते यथेप्सितम् ॥२९॥
येषां धर्मक्रियाः सर्वाः सदैवोद्दिश्य भास्करम् ।
न कुले जायते तेषां दरिद्रो व्याधितोऽपि वा ॥३०॥

आदित्य के दिन (रविवार को) जो मानव श्राद्ध करता है तथा महाश्वेता का जप करता है, वह अभिलषित वस्तु का लाभ करता है। सूर्य के उद्देश्य से (सूर्य के लिये) जो सर्वदा धर्मक्रिया करता है, उसके वंश में कोई दरिद्र अथवा रोगी होकर जन्म नहीं लेता।।२९-३०।।

श्वेतया रक्तया वापि पिबन्ति मृत्तिकयापि वा ।
उपलेपनकर्त्ता च चिन्तितं लभते फलम् ॥३१॥

श्वेत-रक्त अथवा पीली मिट्टी का शरीर में लेप करते हैं, वे वांछित फल प्राप्त करते हैं।।३१।।

चित्रभानुर्विचित्रैश्च कुसुमैस्तु सुगन्धिभिः ।
पूजयेत् सोपवासो यः स कामानीप्सितांल्लभेत् ॥३२॥

उपवास रखकर विचित्र सुगन्धि पुष्प द्वारा जो सूर्य का पूजन करते हैं, वे ईप्सित कामना प्राप्त करते हैं।।३२।।

घृतेन दीपं प्रज्वाल्य तिलतैलेन वा पुनः ।
दीर्घायुर्वपुषा युक्तश्चक्षुषा न च हीयते ।

दीपदानान्नरो नित्यं ज्ञानदीपेन दीप्यते।
स च बुद्धीन्द्रियैश्चापि न कदाचिद्विमुह्यति ॥३३॥

जो घृत द्वारा अथवा तिलतैल से प्रदीप (सूर्य हेतु) जलाते हैं, वे दीर्घायु होते हैं। एवं सुन्दर शरीर तथा चक्षु प्राप्त करते हैं। इस दीपदान के फलस्वरूप वे इस लोक में ज्ञानालोक से दीप्त हो जाते हैं। वे कभी भी बुद्धि इन्द्रिय से वियुक्त नहीं होते।।३३।।

तिलाः पवित्रं परमं तिलदानमनुत्तमम् ॥३४॥
अग्निकार्ये च दीपे च महापातकनाशनम्।
दीपं ददाति यो नित्यं देवस्यायतनेषु च ॥३५॥
चतुष्पथेषु रथ्यासु रूपवान् सुभगो भवेत्।

तिल पवित्र वस्तु है। तिलदान उत्तम दान है। अग्नि कार्य तथा दीपदान से महापातक नष्ट हो जाता है। जो नित्य देवालय में दीप प्रदान करते है अथवा चतुष्पथ या चत्वर पर दीपदान करते हैं, वे रूपयुक्त तथा सौभाग्य-युक्त होते हैं।।३४-३५।।

हविषा प्रथमो कल्पो द्वितीयस्त्वौषधीरसः ॥३६॥
वसामेदोऽस्थिनिर्यासैर्न तु देयः कथञ्चन।
भवत्यूदर्ध्वगतिर्दीपो न कदाचिदधोगतिः ॥३७॥

घृत द्वारा दीप प्रदान करना उत्तम कल्प है। दूसरा है—तिल-तैलादि से दीप प्रदान करना। लेकिन कभी भी वसा-मेद तथा अस्थि का प्रदीप नहीं जलाना चाहिये। दीप की ज्वाला ऊर्ध्व होनी चाहिये, कभी भी अधोमुखी नहीं होनी चाहिये।।३६-३७।।

दानं दीपस्य चाप्येवं न तिर्यग्गतिमाप्नुयात्।
ज्वलन्तं तु सदा दीपं न हरेन्नापि नाशयेत् ॥३८॥

ऐसे दीपदान से कभी भी तिर्यक् गति का लाभ नहीं होता। कभी भी प्रज्वलित दीप का हरण नहीं करना चाहिये, न ही उसे बुझाना चाहिये।।३८।।

दीपहर्त्ता भवेदन्धस्तमोगतिरसुप्रभः।
दीपदाता स्वर्गलोके दीपमालेव राजते ॥३९॥

दीपहरणकर्त्ता अन्धा होता है और तमोगति प्राप्त करके अनुज्वल हो जाता है। दीप-दाता स्वर्गलोक में दीपमाला के समान विराजित हो जाता है।।३९।।

यः सदाऽर्चयते सूर्यं चन्दनागुरुकुङ्कुमैः।
स पूज्यते नरो नित्यं धनेन यशसा श्रिया ॥४०॥

चन्दन, अगुरु एवं कुमकुम से जो सदा सूर्य का पूजन करता है, वह पुरुष प्रतिदिन धन, यश एवं लक्ष्मी से पूजित होता है।।४०।।

रक्तचन्दनमिश्रैस्तु रक्तपुष्पैः शुचिर्नरः।
उदयेऽर्घ्यं सदा दत्वा सिद्धिं संवत्सराल्लभेत्॥४१॥

जो नर पवित्र होकर रक्त-चन्दन मिले रक्तपुष्प से सूर्योदय काल में अर्घ्य देते हैं, उन्हें १ वर्ष में सिद्धि मिल जाती है।।४१।।

उदयात् परिवर्त्तस्तु यावदस्तमनस्थितः।
जपन्नभिमुखः किंचिन्मन्त्रं स्तोत्रमथापि वा।
आदित्यस्य व्रतं यत्तन्महापातकनाशनम्॥४२॥

सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त अथवा पर्यन्त सूर्य की ओर मुख करके जो मन्त्र-जप करते हैं अथवा किसी स्तोत्र का पाठ करते हैं अथवा इसी प्रकार आदित्य व्रत भी करते हैं, उनका महापातक नष्ट हो जाता है।।४२।।

अर्घेण सहितां चैव सवत्सां गां प्रदापयेत्।
उदये श्रद्धया युक्तः सर्वपापैः प्रमुच्यते॥४३॥
सुवर्णधेन्वनड्वाहं वसुधां वस्त्रसंयुताम्।
अर्घ्यं प्रदाय लभते सदा जन्मानुगं फलम्॥४४॥

उदयकाल में श्रद्धायुक्त होकर जो अर्घ्य के साथ सवत्सा गौ दान करता है, वह सभी पाप से मुक्त हो जाता है। स्वर्ण, धेनु, वृष, भूमि तथा वस्त्र के साथ अर्घ्य देकर इनका दान करने से व्यक्ति सर्वपापविनिर्मुक्त हो जाता है।।४३-४४।।

अग्नौ तोये चान्तरिक्षे शुचौ भूम्यां तथैव च।
प्रतिमायां तथा पिण्ड्यां दद्यादर्घ्यं प्रयत्नतः॥४५॥

अग्नि में, जल में, अन्तरिक्ष अथवा पवित्र भूमि में किंवा प्रतिमा तथा पिण्डी में सयत्न अर्घ्यदान दिया जाय।।४५।।

नापसव्यं न वा सव्यं दद्यादभिमुखः सदा।
तत्क्षणात् सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः।
सघृतं गुग्गुलं दग्ध्वा रवेर्भक्तिसमन्वितः॥४६॥

बाँयीं ओर अथवा दाँयीं ओर नहीं, अपितु सर्वदा सूर्य के सम्मुख मुख करके घृत के साथ गुग्गुलु जलाये। यह कार्य भक्ति के साथ करना चाहिये। इससे वह सभी पापों से तत्क्षण मुक्त हो जाता है; इसमें सन्देह नहीं है।।४६।।

श्रीवासकतुरुष्काणां देवदारोस्तथैव च।
कर्पूरागुरुधूपानां दातारः स्वर्गगामिनः॥४७॥

बिल्व (वासक) अडूसा, तुरुष्क तथा देवदारु, कपूर, अगरु तथा धूप जो देव को प्रदान करते हैं, वे स्वर्गगामी होते है।।४७।।

अयने ह्युत्तरे सूर्यमथवा दक्षिणायने।
पूजयित्वा विशेषेण सर्वपापैः प्रमुच्यते॥४८॥

उत्तरायण अथवा दक्षिणायन में सूर्य की विशेष पूजा करने से समस्त पापों से मुक्ति मिल जाती है।।४८।।

विषुवेषूपरागेषु षडशीतिमुखेषु च।
पूजयित्वा रविं भक्त्या नात्मानं शोचयेत् पुनः॥४९॥
एवं वेलासु सर्वासु त्ववेलासु च मानवः।
भक्त्या पूजयते योऽर्कं सोऽर्कलोके महीयते॥५०॥

विषुव के समय, सूर्य-चन्द्र ग्रहण में तथा षड़शीतिमुख संक्रान्ति में मिथुन, कन्या, धनु तथा मीन राशि में सूर्य के संक्रमण काल में भक्तियुक्त हो पूजा करने पर आत्मा को शोक नहीं होता। ऐसी सभी वेला में अथवा वेला न होने पर भी जो भक्ति से सूर्यदेव का पूजन करता है, वह सूर्यलोक में पूजित होता है॥४९-५०॥

कृसरैः पायसापूपैः पललोन्मिश्रितौदनैः।
बलिं दत्वा तु सूर्याय सर्वकाममवाप्नुयात्॥५१॥

कृसर (तिलमिश्रित अन्न अथवा द्विदलान्न, खिचड़ी), पायस, अपूप, मांसमिश्रित अन्न सूर्य को प्रदान करने से सभी कामनायें सिद्ध हो जाती हैं।।५१।।

घृतेन तर्पणं कृत्वा कार्यसिद्धिं लभेन्नरः।
क्षीरेण तर्पणं कृत्वा मनस्तापैर्न युज्यते॥५२॥

सूर्य को घृतदान देने पर लोक में कार्यसिद्धि होती है। क्षीर से तर्पण करने पर व्यक्ति मन:संताप से पीड़ित नहीं होता।।५२।।

दध्ना तु तर्पणं कृत्वा कार्यसिद्धिं लभेन्नरः।
मधुना तर्पणं कृत्वा सिद्धिं संवत्सराल्लभेत्॥५३॥

दही से तर्पण करने पर कार्यसिद्धि होती है। मधु से तर्पण द्वारा एक वत्सर में सिद्धि प्राप्त होती है।।५३।।

स्नानार्थमाहरेद्यस्तु जलं भानोः समाहितः।
तीर्थाद्वा शुचि वार्यन्यत् स याति परमां गतिम्॥५४॥

सूर्य के स्नानार्थ जो समाहित चित्त से तीर्थ से अथवा अन्य स्थान से पवित्र जल लाता है, वह परम गति प्राप्त करता है।।५४।।

छत्रं ध्वजां वितानं च पताकां चाम्बराणि च।
श्रद्धया भानवे दत्वा गतिमिष्टामवाप्नुयात्॥५५॥

छत्र, ध्वजा, वितान, पताका, चामर सूर्य को श्रद्धापूर्वक प्रदान करने से अभीष्ट गति प्राप्त होती है।।५५।।

यच्च द्रव्यं नरो भक्त्या आदित्याय प्रयच्छति।
तत्तस्माच्छतसाहस्त्रमुत्पादयति भास्करः ।।५६।।

जो व्यक्ति भक्ति के साथ सूर्य के निमित्त दान करता है, सूर्यदेव उसका शत सहस्त्र गुणा प्रदान करते हैं।।५६।।

मानसं वाचिकं चापि कायिकं यच्च दुष्कृतम्।
सर्वं सूर्यप्रणामेन तत्क्षणादेव नश्यति ।।५७।।

मानसिक, वाचिक तथा कायिक जो कुछ दुष्कृत्य है, वह सूर्यकृपा से, सूर्य को प्रणाम करने से तत्क्षण नष्ट हो जाता है।।५७।।

एकाहेनापि यद् भानोः पूजया प्राप्यते फलम्।
यथोक्तदक्षिणैरिष्टैर्न तु क्रतुशतैरपि ।।५८।।

इति श्रीसाम्बपुराणे देवपूजादिफलवर्णनं नाम अष्टत्रिंशत्तमोऽध्यायः

●

यथोक्त दक्षिणा तथा यज्ञ के साथ एक दिन की ही सूर्यपूजा से जो फल मिलता है, शत-शत यज्ञ से भी वह नहीं मिलता।।५८।।

श्री साम्बपुराणोक्त देवपूजादि-फलवर्णन नामक अष्टत्रिंश अध्याय समाप्त

●

एकोनचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

(दीक्षामण्डलम्)

बृहद्बल उवाच

समासव्यासयोगेन पुराणमिदमव्ययम्।
श्रावितोऽहं त्वया ब्रह्मन् गुरो निःश्रेयसं परम्॥१॥
तथापि संशयोऽस्माकं नाद्यापि विगतः प्रभो।
साम्बं प्रति महाभाग तन्मे ब्रूहि महात्मनम्॥२॥
कथं स दीक्षितस्तेन भास्करेण महात्मना।
साम्बः परमधर्मात्मा तन्ममाख्यातुमर्हसि॥३॥

महाराज बृहद्व्रज पूछते हैं—हे ब्रह्मन्! गुरुदेव! संक्षेप में तथा विस्तृत रूप से अव्यय, परम निःश्रेयसकर इस पुराण को आपने मुझे सुनाया। हे प्रभो! तब भी अब तक मेरा संशय उच्छिन्न नहीं हो सका है। हे महाभाग्यवान् महामुनि! महात्मा सूर्यदेव ने परम धार्मिक साम्ब को कैसे दीक्षित किया, इसे कृपया कहिये॥१-३॥

वशिष्ठ उवाच

एकाग्रं मानसं कृत्वा वृत्तिं सम्यग् व्यवस्थिताम्।
श्रद्धया परया युक्तः श्रृणु यत्तु समीहितम्॥४॥
पुराणस्योत्तरं राजन् यदुक्तं भास्करेण तु।
तत्तेऽहं संप्रवक्ष्यामि दीक्षामण्डलमुत्तमम्॥५॥

वशिष्ठदेव कहते हैं—एकाग्र मन से चित्तवृत्ति को संयत करके परम श्रद्धायुक्त होकर सुनो, जो युक्तियुक्त है। हे राजन्! सूर्यदेव ने इस पुराण के उत्तर भाग में जो उत्तम दीक्षामण्डल कहा है, वह मैं तुमसे कहता हूँ॥४-५॥

साम्बं प्रति महाबाहो यदुक्तं भास्करेण तु।
तन्महामण्डलं नाम तत्त्वं मन्त्रविभूषितम्॥६॥

हे महाबाहो! सूर्यदेव ने साम्ब से जिस महामण्डल का वर्णन किया था, वह मन्त्रयुक्त तत्त्वविशेष है॥६॥

यथाव्यवस्थितात् स्थानाद् भूमिं निष्क्रम्य शोधयेत्।
याम्यं माहेन्द्रं वारुण्यं कौबेरं च यथाक्रमम्॥७॥

यथानिर्दिष्ट स्थान से मृत्तिका लाकर शोधन करे। यथाक्रमेण याम्य (दक्षिण), माहेन्द्र (पूर्व), वारुण्य (पश्चिम) तथा कौवेर (उत्तर) दिशा की मिट्टी लाई जाती है।।७।।

माहेन्द्रं विजयो नित्यमर्थप्राप्तिश्च निश्चला।
शत्रूणां निधने चैव मित्रलाभश्च दक्षिणे ।।८।।
प्रतिपक्षोन्नतिर्व्याधिर्नियमेन जलाधिपे।
सम्यक् शान्तिः सुतावाप्तिः प्रजा मोदति विज्वरा ।।९।।

पूर्व दिशा की मिट्टी से सर्वदा विजय एवं निश्चल अर्थ मिलता है। दक्षिण की मिट्टी से शत्रु का विनाश तथा मित्रप्राप्ति कही गयी है। पश्चिम की मृत्तिका से प्रतिपक्ष की उन्नति तथा नियत व्याधि होती है। उत्तर की लाई मिट्टी शान्ति एवं पुत्रलाभ प्रदान करती है तथा प्रजा नीरोग होती है।।८-९।।

आग्नेयः शोषकः प्रोक्तो नैर्ऋत्यः पापसंकरः।
मारुतश्चाप्यवस्थानमैशान्यं ज्ञानलम्भकम् ।।१०।।
तेषां निरूपितं स्थानं यथाकामं समाहिताः।
दृष्टदोषपरिक्रान्तां भूमिं कुर्वन्ति साधकाः ।।११।।

आग्नेय (पूर्व-दक्षिण कोण) की मिट्टी को शोषक कहते हैं। नैर्ऋत्य (दक्षिण-पश्चिम) की मिट्टी पापयुक्त, मारुत्त (वायुकोण—पश्चिम-उत्तर) की मिट्टी अवस्थिति-कारक तथा ईशान कोण (उत्तर-पूर्व) की मिट्टी प्राणों का नाश करती है। समाहित साधक इनका दोष जानकर यथाभिलषित स्थान का निरूपण करते हैं।।१०-११।।

रत्निमालमधः खातं समन्तात् पञ्चविंशकम्।
कृत्वा तु सुसमं देशं प्रागुदक्प्लवनं शुभम् ।।१२।।
प्राग्वंशं तत्र कुर्वीत ब्रह्मवृक्षमयं शुभम्।
परितः कारयेद् भूमिं सुसमां शोभनां तथा ।।१३।।

नीचे रत्निमात्र गढ़ा करे। चारो ओर २५ हाथ विस्तृत भूमि को समतल करे। पूर्व की ओर जल की निम्न गति होना अर्थात् पूर्व की ओर कुछ ढाल होना शुभ होता है। वहाँ पर ब्रह्मवृक्ष का शुभ प्राग्वंश-स्थापन करे। चारो ओर से भूमि को शोभन तथा समान बनाये।।१२-१३।।

उदुम्बरमयं कृत्वा लाङ्गलं सुसमाहितः।
सौवर्णमुखसंयुक्तं तेन भूमिं तु वाहयेत् ।।१४।।
ततः समतलां कृत्वा सुधालेपेन लेपयेत्।
सेचयेत् पञ्चगव्येन रक्तचन्दनवारिणा ।।१५।।

गूलर की लकड़ी में स्वर्ण का फाल लगाकर उससे भूमि को खोदना एवं समतल बनाना चाहिये। तदनन्तर तलदेश को समान करके भूमि को सुधालेप से लिप्त करे तथा पञ्चगव्य एवं रक्त चन्दन तथा जल से उस स्थान को सिञ्चित करे।।१४-१५।।

चन्दनेन पुनर्लेपो रक्तेन तु विधीयते।
यथा न स्फुटते भूमिस्तथा कुर्यात् प्रयत्नतः ।।१६।।
स्फुटिता दूषिता भूमिः क्वचिन्निम्ना दरिद्रता।
उच्छृता छिद्रिता चैव सर्वापदभिशंसिनी ।।१७।।
एवं समाहितां कृत्वा मनोह्लादकरीं शुभाम्।
आप्तैः शुद्धैश्च शुचिभी रक्षां कुर्वीत यत्नतः ।।१८।।

रक्तचन्दन से पुनः लेपन करना चाहिये, जिससे भूमि स्फुटित न हो अर्थात् मिट्टी दिखलाई न पड़े; क्योंकि भूमि स्फुटित होना दोष है। भूमि का कहीं-कहीं नीची होना दरिद्रता-प्रदायक होता है। ऊँची तथा छिद्रयुक्त होने से अनेक आपत्तियाँ आती हैं। इस प्रकार मन को आनन्दप्रदायक शुभ भूमि का निर्माण करे और शुद्ध-पवित्र आप्त जन उसकी रक्षा करें।।१६-१८।।

तस्याश्चोत्तरपार्श्वेन कुर्याद् गुरुगृहं महत्।
सम्भारसम्भृतः शिष्यो गुरोरात्मानमर्पयेत् ।।१९।।
विशुद्धकुलसम्भूतं वेदवेदाङ्गपारगम्।
आत्मविद्यारतं दान्तं देवद्विजपरायणम् ।।२०।।
अप्रव्रजितधर्माणं त्रयीमार्गव्यवस्थितम्।
मानवं धर्मवेत्तारमग्रजन्मा त्रिकालिकम्।
गुरुमेवंविधं विद्याच्छिष्यं वक्ष्याम्यतः परम् ।।२१।।

तदनन्तर उत्तर की ओर गुरु के लिये बृहद् गृह निर्मित कराये। समस्त सम्भार के साथ गुरु के निकट शिष्य स्वयं को अर्पित करे। विशुद्ध वंश वाले, वेद-वेदाङ्ग में पारङ्गत, आत्मविद्यारत, विजितेन्द्रिय, देव-ब्राह्मण की सेवा में तत्पर, गृहस्थ, वेदविहित पथ से धर्मानुष्ठान करने वाले, धर्मवेत्ता, त्रिकालज्ञ ब्राह्मण को गुरु बनाना चाहिये। अब शिष्य का वर्णन करता हूँ।।१९-२१।।

गुरोर्गुणसमः शिष्यस्तस्य कार्ये व्यवस्थितः।
चोदितो भक्तितत्त्वेन धर्मप्राप्तिफलं प्रति ।।२२।।
वर्जयेद्धीनजातींश्च नास्तिकानशुचीन्नरान्।
देवद्विजं गुरूं वापि यश्च निन्दति सर्वदा ।।२३।।
सगुणा निर्गुणा वापि यस्य भक्तिः प्रतिष्ठिता।
अनुग्राह्यः स गुरुणा नित्यभूतार्थकारिणा ।।२४।।

महामण्डलवेत्ता तु ह्याचार्यो यत्र तिष्ठति ।
तत्र तिष्ठति देवोऽसौ लोकनाथो जगत्पतिः ॥२५॥

शिष्य को भी गुरु के समान ही गुणयुक्त होना चाहिये। वह गुरु के कार्य में सर्वदा नियुक्त हो तथा धर्म-प्राप्तिरूप फल-लाभार्थ भक्ति से प्रेरित हो। हीन जाति, नास्तिक, अशुचि व्यक्ति का (गुरु को) त्याग कर देना चाहिये। साथ ही उनका भी त्याग कर देना चाहिये, जो सर्वदा देवता, द्विज एवं गुरुदेव की निन्दा में लगे रहते हैं। जिनकी सगुण अथवा निर्गुण में भक्ति है, जो प्राणियों का हित चाहने वाला है, उसी का ग्रहण गुरु को शिष्यरूप में करना चाहिये। महामण्डलों को जानने वाला आचार्य जहाँ पर रहता है, वहाँ पर संसार के स्वामी भगवान् सूर्य का वास होता है।।२२-२५।।

तत्र पुण्या जनपदाः प्रजाश्च निरुपद्रवाः ।
नारायणाधिपस्तत्र कृतकृत्यो महीपतिः ॥२६॥

जो पुण्यदेश हो, जहाँ की प्रजा उपद्रवशून्य हो तथा जनगण के पालक शासक (जहाँ के) कृतज्ञ हों, वहाँ स्वयं नारायण का वास होता है।।२६।।

ज्ञात्वा तु परमं ज्ञानं सर्वदीक्षासमन्वितः ।
सर्ववेदपवित्रश्च गृह्यशास्त्रात्मकः सदा ॥२७॥
अविकल्पं विकल्पं च योगं सर्वार्थसाधकम् ।
कन्याकर्तितसूत्रेण अर्कतूलमयेन वा ॥२८॥
वर्त्तयेत् त्रिवृतं सूत्रं ग्रन्थिकेशविवर्जितम् ।
देवस्य त्वेतिमन्त्रेण त्रिरादित्यं न वा पुनः ।
प्रोक्षयेत् त्रिवृतं सूत्रं ततः कर्म समाचरेत् ॥२९॥

परमज्ञान लाभ करके, सभी दीक्षा से युक्त होकर गृह्यशास्त्रानुसार (समस्त प्रयोजन-निष्पादक) अविकल्प अथवा विकल्प योगानुष्ठान करे। कन्या द्वारा काते गये सूत्र अथवा मदार की रुई के सूत्र से, गांठ तथा केशरहित त्रिवृत (तीन दण्डी—नौ गुण) सूत्र का यज्ञोपवीत धारण कराये। 'देवस्य त्वा' इत्यादि मन्त्र से अथवा 'त्रिरादित्यं न वा' इत्यादि मन्त्र से त्रिवृत सूत्र (यज्ञोपवीत) का प्रोक्षण करके तब कर्मारम्भ करे।।२७-२९।।

हेमपात्रं प्रगृह्यादौ रौप्यमौदुम्बरं क्रमात् ।
अर्घ्यं दत्वा दिगीशेभ्यो यथापूर्वं क्रमेण तु ॥३०॥
मध्ये नारायणाख्याय सूर्याय परमात्मने ।
तेजोबुद्बुदरूपाय अर्घ्यपात्रं निवेदयेत् ॥३१॥

पहले स्वर्णपात्र ग्रहण करे। तदनन्तर चाँदी तथा गूलर की लकड़ी से निर्मित पात्र लेकर क्रमशः (यथापूर्व क्रमेण) दिग्देवतागण को अर्घ्य देना चाहिये। मध्य में नारायण नामक तेज:प्रकाशरूप सूर्य के लिये अर्घ्यपात्र निवेदित करे।।३०-३१।।

धूपमेवं क्रमेणैव बलिं चापि सुसंस्कृतम्।
तिलांस्त्रिमधुरोपेतान् जुहुयात् कर्मसिद्धये ॥३२॥

इसी प्रकार से धूप तथा सुसंस्कृत बलि भी प्रदान करे। तदनन्तर घृत-मधु तथा शर्करायुक्त तिल की कर्मसिद्धि हेतु आहुति प्रदान करे।।३२।।

ॐ इन्द्राय परमात्मने स्वाहा। ॐ अग्नये शुचिष्मते ठः ठः। ॐ यमाय धर्मात्मने ठः ठः। ॐ निर्ऋतये कालात्मने ठः ठः। ॐ वरुणाय सलिलात्मने ठः ठः। ॐ वायवे स्पर्शात्मने ठः ठः। ॐ सोमायामृतात्मने ठः ठः। ॐ ईशानाय ज्ञानात्मने ठः ठः। ॐ पराय विद्महे तेजोरूपाय धीमहि तन्नस्तेजः प्रचोदयात् ॥३३॥

महामन्त्रमिमं पुण्यं महामण्डलसम्भवम्।
स्मरन्ति ये सदा राजंस्ते भवन्ति हितद्विजाः ॥३४॥

आहुति का मन्त्र मूल में दिया गया है। परमात्मा इन्द्र-हेतु, शुचिष्मान अग्नि-हेतु, धर्मरूप यम-हेतु, कालात्मा निर्ऋति-हेतु, जलस्वरूप वरुण-हेतु, स्पर्शात्मक वायु, अमृतात्मा सोम तथा ज्ञानस्वरूप ईशान के हेतु आहुति प्रदान करनी चाहिये। तदनन्तर मन्त्र कहे 'हम परतत्त्व को जानते हैं, तेजोरूप का ध्यान करते हैं, वह परमात्मा तेजस्वरूप सूर्यदेव हमारी शक्ति (तेज) का प्रेरण करे'। राजन्! महामण्डल से उद्भूत एवं अतिशय पवित्र यह महा-मन्त्र सदा स्मरण करना चाहिये। यह ब्राह्मणों के लिये हितकारक होता है।।३३-३४।।

शरीरमण्डलस्येदं महामन्त्रं प्रकीर्तितम्।
तस्मान्महत्त्वमेवोक्तं मण्डलस्य पुरातनैः ॥३५॥
कर्णिकाऽष्टाङ्गुला प्रोक्ता केसरं तत्समं स्मृतम्।
कर्णिका केशरैस्तुल्या यमस्य परिकीर्तिता ॥३६॥

शरीरमण्डल का यह महामन्त्र कहा गया है। इसीलिये प्राचीन लोग इसे मण्डल में महत्तम (सर्व बृहन्मण्डल) कहते हैं। मण्डल का मध्यभाग (कर्णिका) आठ अंगुल का हो। केशर भी उसी के समान हो। पद्म की कर्णिका केशर के माप की ही होगी। ऐसा कहा गया है।।३५-३६।।

पद्मतुल्यः स्मृतो द्वारः प्रकोष्ठो द्वारतुल्यकः।
वीथिः प्रकोष्ठकैस्तुल्या स्थितिरेषा प्रकीर्तिता ॥३७॥
सितं रक्तं तथा पीतं हरितं कृष्णमेव च।
आलिखेन्मण्डलं मन्त्री गायत्र्या परिमन्त्रितम् ॥३८॥
अष्टहस्तं समन्तात्तु बाह्यतो मण्डलाकृतिः।
तदर्द्धेन पुनर्मध्यं वापीतुल्यं पुरं लिखेत् ॥३९॥

पद्म के ही तुल्य द्वार होगा। प्रकोष्ठ भी द्वार के तुल्य माप का होगा। पथ (वीथी) भी प्रकोष्ठ के समान होगा। यह स्थिति कही गयी है। मन्त्र जपने वाला साधक शुभ्र, रक्त, पीत तथा हरित कृष्ण वर्ण मण्डल को गायत्री से शोधित करके अंकित करे। यह मण्डल चारो ओर से आठ हाथ होगा। बाहर मण्डलाकृति होगी। उसमें उससे आधे माप की वापी (पुष्करिणी) के समान पुर का अंकन करे।।३७-३९।।

तन्मध्ये तु लिखेत्पद्मं पत्रद्वादशभूषितम्।
मूर्तिद्वादशकं तेषु निविशेत्तु विधानवित्।।४०।।
चतुरस्रं पुनः कृत्वा बाह्यतो स्रगमालिखेत्।
वज्रं शक्तिं च दण्डं च खड्गं पाशं तथैव च।।
ध्वजं गदां त्रिशूलं च यथारूपं व्यवस्थितम्।।४१।।

उसमें (मध्य में) द्वादश पत्रभूषित पद्म का अङ्कन करना चाहिये। विज्ञानज्ञ व्यक्ति उसमें (द्वादश पद्म में) द्वादश मूर्त्ति स्थापित करे। अब चतुरस्र बनाकर बाहर स्रक् (माला) का अङ्कन करे। वज्र, शक्ति, दण्ड, खड्ग, पाश, ध्वजा, गदा तथा त्रिशूल को यथायथ रूप से स्थापित करे।।४०-४१।।

परो विश्वात्मकः शम्भुर्नमस्कारो वषट्कृतः।
सम्बुद्धो विश्वकर्त्ता च निष्कलो ज्ञानसम्भवः।।४२।।
मानोन्मानो महासत्त्वो द्वादशैते प्रकीर्तिताः।
आधारभूताः सर्वस्य जगन्नाथो व्यवस्थितः।।४३।।

पर, विश्वात्मक, शम्भु, नमस्कार, वषट्कृत, सम्बुद्ध, विश्वकर्त्ता, निष्कल, ज्ञानसम्भव, मान, उन्मान, महासत्त्व—ये बारह समस्त जगत् के आधाररूप तथा जगत् के पालकरूप से कीर्त्तित हैं।।४२-४३।।

अभीषवे इदं विष्णुधामच्छन्दोमनोज्योतिश्चत्वारि शृंगास्ते प्राणाय अग्निमीड़े ईषे त्वोर्ज्जे अग्न आयाहि शन्नो देवी कृत्तिवासा ब्रह्मयज्ञानामिति यद्देवा द्वादश-मूर्तयः।।४४।।

मध्ये मूर्त्तिर्महाकाली कल्पिका च प्रबोधिनी।
नीलाम्बरा घनान्तस्था अमृता च प्रकीर्तिता।।४५।।

'अभीषवे इदं विष्णुधाम' इत्यादि (मूल में अङ्कित) मन्त्रात्मक द्वादश मूर्त्ति देवता हैं। मध्य में महाकाली, कल्पिका, प्रबोधिनी, नीलाम्बरा, घनान्तस्था तथा अमृता का स्थान कहा गया है।।४४-४५।।

शुक्लो जयन्तो विजयो नैकवर्णो हुताशनः।
हुतार्चिर्व्यापकश्चैव अश्वाः सप्त प्रकीर्तिताः।।४६।।

शुक्ल, जयन्त, विजय, नैककर्ण, हुताशन, हुतार्चि एवं व्यापक—ये सात अश्व कहे गये हैं।।४६।।

ॐ हारिण्यै स्वाहा इडा। ॐ विहारिण्यै स्वाहा सुषुम्ना। ॐ आनन्दायै स्वाहा विदुः। ॐ भाविन्यै स्वाहा संज्ञा। ॐ मोहिन्यै स्वाहा प्रमर्दिनी। ॐ ज्वालिन्यै स्वाहा प्रकर्षिणी। ॐ तापिन्यै स्वाहा महाकाली। ॐ कल्पायै स्वाहा कल्पिका। ॐ क्रुद्धायै स्वाहा प्रबोधिनी। ॐ मृत्यवे स्वाहा नीलाम्बरा। ॐ हरात्यै स्वाहा घना। ॐ द्रुमाय स्वाहा शुक्ला। ॐ शुद्धाय स्वाहा जयन्तः। ॐ महाघोरणाय स्वाहा विजयः। ॐ चित्राय स्वाहा अनेकवर्णः। ॐ रुद्राय स्वाहा हुताशनः। ॐ संवलिताय स्वाहा हुतार्चिः। ॐ महाशिखाय स्वाहा व्यापकः। ॐ ज्वलित-चण्डलोचनाय स्वाहा अरुणोरथस्थाने।

एवमालिख्य विधिवन्मण्डलं शास्त्रपूर्वकम्।
पूर्वप्रतिष्ठिते वह्नौ संस्कारं कारयेत्पुनः ।।४७।।

शास्त्र के अनुसार विधिपूर्वक मण्डल बनाकर 'ॐ हारिण्यै स्वाहा' इत्यादि मन्त्रों से आहुति देकर पूर्व में प्रतिष्ठित की गई अग्नि का पुनः संस्कार करे।।४७।।

परिसमूहनं तत्र गायत्र्या चोपलेपनम्।
शन्नो भवन्तु वनस्पदित्युल्लेखनविन्दुना ।।४८।।
अभ्युक्षणं विन्दुना।
आद्याक्षरसंयुक्तेन अग्नेः स्थापनमुत्तमम्।
तत्त्वमध्ये प्रणवो भवेत्।
कृत्वा वह्निक्रियामेतां यथावदनुपूर्वशः।
सुयजेत् क्षीरसंयुक्तं चरूद्वादशसंज्ञितम्।
संवृत्यार्घ्यं तु गायत्र्या होमयेज्जातवेदसम् ।।४९।।

वहाँ परिसमूहन एवं गायत्री द्वारा उपलेपन करे। 'शन्नो भवन्तु वनस्पद्' इत्यादि मन्त्र से बिन्दु-लेखन करना चाहिये। बिन्दु द्वारा अभ्युक्षण करना चाहिये। आद्य अक्षर संयुक्त करके अग्नि का स्थापन करना चाहिये। तत्त्व में प्रणवयुक्त करे। यथायथ आनुपूर्विक वह्निक्रिया इस प्रकार से करके १२ क्षीर संयुक्त चरु से यज्ञ करना चाहिये। अर्घ्य संस्कृत करके गायत्री द्वारा अग्नि में हवन करना चाहिये।।४८-४९।।

यथोद्दिष्टेन मन्त्रेण सूत्रान्प्रति जुहुयात्।
होमान्ते प्राशनं कृत्वा गुरुदेवं प्रपूजयेत्।
पूजयित्वा विशेषेण विधानोक्तेन कर्मणा ।।५०।।

निर्दिष्ट मन्त्र द्वारा सूत्रों की आहुति देनी चाहिये। होम के अन्त में आचमन करके गुरु तथा देवताओं का विशेष विधान से पूजन करना चाहिये।।५०।।

सह तेनैव विधिना प्राग्वंशे प्राग्समाहिते।
प्रभाते कृतपुण्याहौ द्वौ तौ व्रतपरायणौ।।५१।।
मण्डलालिखनं कुर्याद्यत्पूर्वमभिचोदितम्।
वितानध्वजमालाभिः कलशैश्च विभूषितम्।।५२।।

प्रभात काल में दो व्रतपरायण व्यक्ति पूर्व में कथित विधि के अनुसार पूजन करें। पूर्वोक्त नियम के अनुसार मण्डल बनाकर वितान (चंदोवा), ध्वजा, माला तथा कलशों से उसे भूषित करे।।५१-५२।।

दर्पणैर्विमलैश्चैव छत्रैर्वस्त्रावगुण्ठितैः।
योगैर्नानाविधैर्मध्यैर्महाबल्युपहारकैः ।।५३।।
पूजां कुर्वीत नियतो गुरु-मन्त्र-परायणः।
कृत्वा कुशोत्तरां वेदीं चतुरङ्गुलमुच्छ्रिताम्।।५४।।

निर्मल दर्पण, छत्र, वस्त्र द्वारा अवगुण्ठित एवं नाना योग द्वारा मध्य में महाबलि का उपहार प्रदान करके गुरुमन्त्र-परायण व्यक्ति को नित्य पूजन करना चाहिये।।५३-५४।।

पश्चिमे मण्डलद्वारे शिष्यं तत्राधिवासयेत्।
द्रुपदा प्रथमं प्रोक्तमिदमापो द्वितीयकम्।।५४।।
कर्तृभिर्द्देवताभ्यश्च भास्करार्चिस्त्रिभिः परैः।
कृत्वाऽभिषेकं मन्त्री तु पुनः कृत्वा प्रदक्षिणाम्।।५६।।
प्रविष्टे मण्डलं शिष्ये तत्त्वन्यासं प्रकल्पयेत्।।५७।।

चार अंगुल ऊँची कुशोत्तरा वेदी तैयार करके पश्चिम मण्डल द्वार पर शिष्य को बैठाकर प्रथमतः 'द्रुपदा' इत्यादि मन्त्र से, द्वितीयतः 'इदमापः' इत्यादि मन्त्र से तथा 'कर्तृभिः देवताभ्यश्च भास्करार्चि' मन्त्र से (तृतीय मन्त्र से) अभिषेक करना चाहिये। तदनन्तर पूर्वोक्त मन्त्र से पुनः प्रदक्षिणा करके शिष्यमण्डल में प्रवेश करके नीचे लिखे मन्त्र से तत्त्वन्यास करना चाहिये।।५५-५७।।

ॐ अं शिरः, ॐ आं हृदयम्, ॐ इं नाभ्याम्, ॐ ईं ॐ चक्षुषि, ॐ ईं ॐ नासिकायाम्, ॐ फट् ॐ कर्णयोः, ॐ हुं ॐ आस्ये, ॐ क्षैं ॐ जिह्वायाम्, ॐ क्षां ॐ शिखायाम्, ॐ क्षं ॐ सर्वगात्रेषु।

न्यासमेवं विधिं कृत्वा दापयेदष्टपुष्पिकाम्।

'ॐ भूतात्मने गोपतये स्वाहा पद्ममध्ये ॐ खद्योताय स्वाहा पूर्वतः, ॐ ससत्याय स्वाहा दक्षिणतः, ॐ अमृताय स्वाहा पश्चिमतः, ॐ वक्षस्तमाय

स्वाहा उत्तरतः, ॐ अव्यक्ताय स्वाहा आग्नेय्याम्, ॐ क्षयाय स्वाहा नैर्ऋत्याम्, ॐ अक्षयाय स्वाहा वायव्याम्, ॐ संघातिने स्वाहा ऐशान्याम्, अष्टमूर्त्तीनां चोदितैर्मन्त्रै रश्मिभिस्समुदाहृतम्। एवं कृतमन्त्रन्यासमभिषिक्तं दीक्षायोगेन योजयेत्, ॐ पावकाय शुचये स्वाहा यज्ञोपवीतम्, ॐ धर्मराजाय स्वाहा दण्डकाष्टम्, ॐ दुरुक्तदुरितपरिघानि स्वाहा मेखलायज्ञोपवीतम्'। काल्यमाविकत्वचोद्भवम् दण्डकाष्ठं पालाशमौदुम्बरं खादिरं च दण्डम्। मेखला दर्भमौञ्जी मौर्वी विल्वजा। 'ॐ सरस्वत्यै स्वाहा, ॐ वेदवत्यै स्वाहा, ॐ चर्यावत्यै स्वाहा, ॐ सत्यवत्यै स्वाहा, ॐ ध्रुवावत्यै स्वाहा, ॐ स्वभावत्यै स्वाहा, ॐ प्रतिष्ठावत्यै स्वाहा—एभिर्मन्त्रैः समिद्धेऽग्नौ उपविश्य घृताहुतयः पाकयज्ञपात्रेण सप्ताहुतयः पूर्वोक्तमन्त्रेण जुहुयात्। एवं कृत्वा विधानं तु शिष्यं गुरुरग्निकुण्डाद्भस्मादाय पञ्चभिः स्थानैर्मूर्ध्ना- लभेत्। 'ॐ चित्राय स्वाहा पूर्वमध्ये, ॐ खमविष्णवे स्वाहा पूर्वतः, ॐ हिंसाय ठः ठः' दक्षिणतः। ॐ विदिताय ठः ठः पश्चिमतः। 'ॐ लिखने ठः ठः उत्तरतः। 'ॐ सम्भूतिने' सर्वगात्रेषु भस्मावकिरेत्। ॐ सोमवत्यै स्वाहा, ॐ सुभगे ठः ठः, ॐ प्रेतवति ठः ठः, ॐ वाजिनवति ठः ठः। कृतदीक्षाविधानस्य एता आहुतयो दिग्विदितासु होतव्याः होमान्ते गुरवे गृहसमेतं सर्वोपकरणं दद्यात् तथा प्रार्थितं चेति॥५८॥

इति साम्बपुराणे दीक्षामण्डलवर्णनं नामैकोनचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

●

मस्तक पर—ॐ अं शिरः। हृदय में—आं हृदयम्। नाभि में—ॐ ईं नाभ्याम्। चक्षु में—ॐ ईं ॐ चक्षुषि। नासिकाद्वय में—ॐ ईं ॐ नासिकाभ्याम्। कर्णयुगल में—ॐ फट् ॐ कर्णयोः। मुख में—ॐ हूं ॐ आस्ये। जिह्वा पर—ॐ क्षं ॐ जिह्वायाम्। शिखा पर—ॐ क्षां ॐ शिखायाम्। समस्त शरीर में—ॐ क्षं ॐ सर्वगात्रेषु—

इस प्रकार से न्यास करके निम्न मन्त्र से आठ पुष्प प्रदान करे—

पद्ममध्य में—ॐ भूतात्मने गोपतये स्वाहा। पूर्व में—ॐ खद्योताय स्वाहा। दक्षिण में—ॐ ससत्याय स्वाहा। पश्चिम में—ॐ अमृताय स्वाहा। उत्तर में—ॐ वक्षस्तमाय स्वाहा। आग्नेय कोण में—ॐ अव्यक्ताय स्वाहा। नैर्ऋत्य कोण में—ॐ क्षयाय स्वाहा। वायुकोण में—ॐ अक्षयाय स्वाहा। ईशान कोण में—ॐ सङ्घातिने स्वाहा।

उक्त मन्त्ररूप रश्मि द्वारा अष्टमूर्त्ति का वर्णन किया गया। इस प्रकार से मन्त्रन्यास करके अभिषिक्त शिष्य को नीचे अंकित मन्त्र द्वारा दीक्षा से युक्त करे।

यज्ञोपवीत—ॐ पावकाय स्वाहा।

दण्डकाष्ठ—ॐ धर्मराजाय स्वाहा।

मेखला यज्ञोपवीत—ॐ दुरुक्तदुरितपरिघानि स्वाहा।

काल्य आविक् त्वक् से बनाया गया दण्डकाष्ठ होगा। पलाश, गूलर तथा खदिर से बना दण्ड होगा। मेखला होगी दूब एवं मूँज से निर्मित तथा मौर्वी होगी बिल्व काष्ठ-निर्मित। अग्नि प्रज्वलित करके घृताहुति देकर पाकयज्ञपात्र द्वारा नीचे लिखे मन्त्र से सात आहुति से होम करे—

ॐ सरस्वत्यै स्वाहा, ॐ वेदवत्यै स्वाहा, ॐ चर्यावत्यै स्वाहा, ॐ सत्यवत्यै स्वाहा, ॐ ध्रुवावत्यै स्वाहा, ॐ स्वभावत्यै स्वाहा, ॐ प्रतिष्ठावत्यै स्वाहा।

इस प्रकार विधान करके गुरु अग्निकुण्ड से भस्म लेकर उसे शिष्य के मस्तक पर नीचे लिखे मन्त्र से पाँच बार लगाये—

पूर्वमध्य में—ॐ चित्राय स्वाहा।

पूर्व में—ॐ खमविष्णवे स्वाहा।

दक्षिण में—ॐ हिंसाय ठः ठः।

पश्चिम में—ॐ विदिताय ठः ठः।

उत्तर दिशा में—ॐ लिखने ठः ठः।

'ॐ सम्भूतिने' इत्यादि मन्त्र से समस्त शरीर में (सभी अंगों में) भस्म लगाये।

दीक्षाविधान के अनन्तर इन मन्त्रों से आहुति देनी चाहिये—ॐ सोमवत्यै स्वाहा, ॐ सुभगे ठः ठः, ॐ प्रेतवति ठः ठः, ॐ वाजिनवति ठः ठः (सबके अन्त में स्वाहा लगाये)। होम के अन्त में गृह के साथ समस्त उपकरण श्रीगुरुदेव को प्रदान करे तथा ऐसी ही प्रार्थना करे।।५८।।

श्रीसाम्बपुराणोक्त दीक्षाविधान नामक उनचालीसवाँ अध्याय समाप्त

●

चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

(यज्ञस्थानविधिः)

अतः परं प्रवक्ष्यामि यज्ञस्थानविधिं शुभम्।
अधियज्ञोऽस्ति यज्ञानां यज्ञाङ्गो यज्ञसम्भवः ।।१।।
यज्ञमूर्तिं नमस्कृत्य त्वां यज्ञेन यजामहे।

अब शुद्ध यज्ञस्थान-विधि का वर्णन किया जाता है। हे सूर्यदेव! आप यज्ञों में अधियज्ञ हैं। आप यज्ञ के अंगस्वरूप हैं। यज्ञ से उद्भूत हैं। आप यज्ञमूर्त्ति को नमस्कार करके यज्ञ द्वारा ही आपका पूजन करता हूँ।।१।।

ज्वालामालाकुलप्रख्ये सर्वकारणसम्भवे ।।२।।
विग्रहे देवदेवस्य वर्णस्थानं निबोध मे।
हृदये सिद्धिराद्यस्तु रवेः सकलनिष्कला ।।३।।
कर्मनिर्वाणगावेतावाकारौ परिकीर्तितौ।
इईविद्येशयोगीशौ नाभेस्तस्य बभूवतुः ।।४।।

ज्वालामाला द्वारा विस्तृत, समस्त कारणों के उत्पत्तिस्वरूप देवदेव सूर्य के विग्रह का वर्ण एवं स्थान कहता हूँ, सुनो। रवि हृदय में आद्य अक्षर (अ) सकल तथा निष्कल सिद्धियों का कारण तथा सिद्धिस्वरूप है। 'आ' कर्म का निर्वाण प्रापक कहा गया है। सूर्य की नाभि में 'इ ई' वर्णद्वय अवस्थान करते हैं। ये विद्या तथा योग के ईश्वर हैं।।२-४।।

उ ऊ भावादिबीजे तु ऊरूभ्यां चास्य धीमतः।
ऋ ॠ ऋतं च सत्यं च पद्भ्यां तस्य बभूवतुः ।।५।।
धर्मादिवर्गविपुलं लृकारं ग्रहणार्णवम्।
ए ऐ देवस्य मातरौ श्लोके अं अः मद्व्योममूर्त्ति द्वौ ।।६।।

धीमान् सूर्य के ऊरूद्वय में समस्त प्राणियों के आदि बीजरूप 'उ ऊ' वर्णद्वय अवस्थान करते हैं। उनके चरणयुगल में रहते हैं—ऋ तथा ॠ, जो ऋत तथा सत्य के प्रतीक हैं। 'ऌ'कार है—धर्मादि वर्णसकल तथा 'ओ' है—समुद्रस्वरूप (ग्रहणार्णव समुद्ररूप)। 'ए ऐ' सूर्य के प्रसिद्ध मातृद्वय हैं। 'अं तथा अः' ये दोनों महत् आकाश मूर्त्तिरूप हैं।।५-६।।

कखौ स्यन्दनमित्युक्तं गघौ मण्डलकीर्त्तितौ।
ङकारः सारथिः साक्षाद् देवदेवस्य धीमतः ।।७।।

चकारे पितरो नित्यं छकारे देवदानवाः।
जकारे च जगत् सर्वं झकारे बन्धनक्रिया ॥८॥

'क' तथा 'ख' वर्ण को रवि का प्रसिद्ध रथ कहा गया है। 'ग' तथा 'घ' को उनका मण्डल कहते हैं। धीमान् देवदेव सूर्य का साक्षात् सारथी है—'ङ'। 'च'कार में नित्यपितृगण तथा 'छ'कार में देवता तथा दानवगण अवस्थान करते हैं। 'ज'कार में समस्त जगत् है तथा 'झ'कार में बन्धन क्रिया अवस्थित है।।७-८।।

अस्य पातनसम्भूतिर्ञकारः परिहासयेत्।
टकारस्त्रोटयेत्पाशाट्ठकारस्तिर्यगो भवेत् ॥९॥
डकारोऽनुग्रहस्थानं ढ़कारः क्रोध उच्यते।
णकारा बालखिल्याद्या भृग्वाद्याश्च महातपाः ॥१०॥

इनके पातन तथा ऐश्वर्य को लेकर 'ञ'कार परिहास करता है। 'ट'कार पाप-बन्धन को छिन्न करता है और 'ठ'कार वक्रगामी है। 'ड'कार है—अनुग्रह-स्थान तथा 'ढ़'कार को क्रोध कहते हैं। 'ण'कार हैं—बालखिल्य तथा भृगु-प्रभृति महातपा मुनिगण।।९-१०।।

तकारे सिद्ध-गन्धर्वास्थकारे पुण्यसम्भवः।
दमः प्रोक्तो दकारेण धकारो ब्रह्मगोचरः ॥११॥
नकारे सर्वतोऽनन्तः पकारोऽक्षरसम्भवः।
फकारस्त्वशुभं हन्ति बकारेण शुभं स्मृतम् ॥१२॥

'त'कार में सिद्ध तथा गन्धर्वगण वास करते हैं। 'थ'कार पुण्यस्थान है। 'द'कार द्वारा दम को कहा गया है और 'ध'कार ब्रह्मप्रापक है। 'न'कार अनन्तस्वरूप है। 'प'कार अक्षर- उत्पत्ति का स्थान है। 'फ'कार अशुभ को नष्ट करता है एवं 'ब'कार को शुभदायक कहते हैं।।११-१२।।

भकारो भेदकः प्रोक्तो मकारः सरितांपतिः।
यकारो ग्रहनक्षत्रा रेफः प्रोक्तः प्रदाहकः ॥१३॥
लकारो विषयास्वादी वकारस्तु भवोद्भवः।
शकारः शोषयेद् दोषान् षकारो बीजमुच्यते ॥१४॥

'भ'कार को भेदक कहते हैं तथा 'म'कार को नदियों का पति 'सागर' कहा गया है। 'य'कार ग्रह-नक्षत्र है तथा 'र' को प्रदाहक कहते हैं। 'ल'कार विषय का आस्वादनकारी है। 'व'कार उत्पत्ति का कारणरूप है। 'श'कार सब दोषों का शोषण करता है और 'ष'कार बीजरूप कहा गया है।।१३-१४।।

सकारे छन्दसां जन्म हकारे ब्रह्मशाश्वतम्।
क्षत्रं परमनिर्वाणमभयं कामदं प्रभुम् ॥१५॥

यत्तदेकाक्षरं ज्ञानं शान्तं सम्यक् प्रतिष्ठितम्।
क्षकारेण क्षयं याति जगत्स्थावरजंगमम्॥१६॥
अक्षयश्चाव्ययश्चैव क्षकारः परिपठ्यते।
शुभा ह्येते तव प्रोक्ता बीजाः सूर्यस्य नित्यशः॥१७॥

'स'कार को छन्दों का जन्मस्थल तथा 'ह'कार को शाश्वत ब्रह्म का अवस्थान कहा गया है। उसे क्षत्र अर्थात् विपद से उद्धारकारक, परमनिर्वाण स्थान, अभय, कामप्रद तथा प्रभु कहा गया है। उनका एकाक्षर ज्ञान शान्त तथा सम्यक् प्रतिष्ठित है। 'क्ष' द्वारा समस्त स्थावर-जंगम जगत् विनष्ट हो जाता है। सूर्य के इन समस्त बीजसमूहों को तुमसे कहा।।१५-१७।।

यथाकर्मणि योगेन वर्णा ह्येते प्रकीर्तिताः।
तथा फलप्रदाः सर्वे भवन्ति पर्युपासिताः॥१८॥

जिस प्रकार के कर्म के योग से इन वर्णों को कहा गया (अर्थात् जिस वर्ण का जो कर्म बताया गया), उसी प्रकार यथायथ रूप से उपासित होने पर ये सभी फलदायक हो जाते हैं।।१८।।

बृहद्बल उवाच

यदुक्तं वर्णजातीनां फलं कर्मसमुद्भवम्।
तन्न शक्यं समाख्यातुं चित्तेनास्थिरवृत्तिना॥१९॥
दीक्षावसाने साम्बस्य यदुक्तं भास्करेण तु।
तन्मे ब्रूहि महामन्त्रं सर्वकामार्थसाधनम्॥२०॥

महाराज बृहद्बल जिज्ञासा करते हैं—वर्णसमूह के कर्मसमुद्भूत जिस फल की बात आपने कही, उसे मैं अस्थिर वृत्ति चित्त के द्वारा धारण नहीं कर पा रहा हूँ। दीक्षा के अन्त में सूर्यदेव ने साम्ब से जो कहा था, उस सर्वकामार्थसाधक महामन्त्र का वर्णन कृपा करके मुझसे करें।।१९-२०।।

वशिष्ठ उवाच

शृणु राजन् महामन्त्रं भूतसंहारकारकम्।
उत्पत्तिव्यञ्जकं चैव जगतश्च पराभवम्॥२१॥
भास्करं कर्णिकाभूतं व्यापकं पूर्वपश्चिमे।
याम्ये सौम्ये तदा विष्णुर्ब्रह्मा ऐशान नैर्ऋते॥२२॥

वशिष्ठदेव कहते हैं—महाराज! महामन्त्र की बात सुनिये। यह प्राणियों का संहार-कारक, उत्पत्ति, प्रकाशक तथा जगत् के पराभवरूप है। पद्म की कर्णिका के स्थल में भास्कर पूर्व तथा पश्चिम में व्याप्त रहते हैं। दक्षिण तथा उत्तर में विष्णु रहते हैं। ऐसे ही ईशान तथा नैर्ऋत्य कोण में ब्रह्मा रहते हैं।।२१-२२।।

रुद्रमाग्नेयवायव्ये पद्म एतत् प्रकीर्तितम्।
चमत्कारकरं मन्त्रमुद्धतं साम्बकारणम्॥२३॥
'ॐ अं ॐ हूं जूं दुं दूं ओं ॐ'।
एतत्तु परमं गुह्यमेतत्तु परमं पदम्।
एतत्तु परमं ज्ञानमेतत्तु परमं पदम्॥२४॥

अग्नि तथा वायुकोण में रुद्र रहते हैं। इस प्रकार पद्म का वर्णन किया गया। साम्ब के लिये कहा गया चमत्कारी महामन्त्र है—'ॐ अं ॐ हूं जूं दुं दूं ओं ॐ'। यह परम गोपनीय, परम स्थान, परम ज्ञानस्वरूप तथा श्रेष्ठ ज्ञानप्रापक है।।२३-२४।।

व्यापकाभयसंयुक्तो यदा ह्यायुःप्रदो रविः।
रुद्रयुक्तो व्याधिहरो धनदो विष्णुयोजितः॥२५॥

जब सूर्य व्यापक तथा अभययुक्त रहते हैं तब वे आयुप्रद होते हैं। जब रुद्रयुक्त होते हैं, तब व्याधि हर लेते हैं। जब विष्णु से युक्त होते हैं, तब धन प्रदान करते हैं।।२५।।

सर्वान् संसाधयेदर्थान् योजितः परमेष्ठिना।
आकाशमध्यपातालमञ्जनं रोचनादिकम्॥२६॥
रुद्रेणात्यन्तसंरुद्धः शत्रूणां भयवर्द्धनः।
विष्णुना स्तम्भयेत्क्षिप्रं वाचं वाचस्पतेरपि॥२७॥

ब्रह्मा के साथ जब युक्त हो जाते हैं, तब लोगों का समस्त प्रयोजन सिद्ध हो जाता है। आकाश, अन्तरिक्ष, पाताल, तल, सब ज्ञान उनकी किरणों से युक्त हैं। रुद्र के साथ अत्यन्त युक्त होने पर वे शत्रुओं के लिये भयकारक हो जाते हैं। विष्णु से युक्त हो जाने पर बृहस्पति तक के वाक्य का स्तम्भन कर देते हैं।।२६-२७।।

नव वर्णाः शरीरस्य भास्करास्त्रं च दुर्धरम्।
षडङ्गं सम्प्रवक्ष्यामि तन्निबोध यथाक्रमम्॥२८॥

शरीर के नौ वर्ण भास्कर के दुर्धर अस्त्र-स्वरूप हैं। अब षड़ङ्ग कहता हूँ, उसे यथाक्रमेण सुनो।।२८।।

ॐ डूं हूं हृदयाय नमः। ॐ डूं क्षूं ॐ आं शिरसि। ॐ ऊं हूं आं क्षूं हूं डं ॐ शिखायाम्। ॐ ओं क्षूं ॐ कवचाय हुम्। ॐ हूं ॐ क्षूं नेत्रे।

ॐ क्षुं नेत्रं ब्रह्मरुद्रौ विष्णुरुद्रस्तथैव च।
हृदयं देवदेवस्य भास्करस्य जगत्पतेः॥२९॥

षड़ङ्ग मन्त्र इस प्रकार है। हृदय—ॐ डूं हूं हृदयाय नमः। मस्तक—ॐ डूं क्षूं ॐ आं शिरसि। शिखा—ॐ ऊं हूं आं क्षूं हूं डं ॐ शिखायां। कवच—ॐ ओं क्षूं ॐ

कवचाय हुम्। नेत्र—ॐ हूं ॐ क्षूं नेत्रे। इसे ब्रह्मरुद्र तथा विष्णुरुद्र कहा गया है। यह देवाधिदेव भास्कर का हृदय है।।२९।।

स्वयम्भूर्व्यापको देवश्चान्ते चैव व्यवस्थितः।
त्रैलोक्यस्य सदा पूज्यं शिरो देवस्य कीर्तितम्॥३०॥

'आ' में स्थित स्वयम्भु व्यापक देव त्रैलोक्य में सदा पूज्य हैं और यह सूर्यदेव का मस्तक कहा गया है।।३०।।

रुद्रो विष्णुस्तथा ब्रह्मा रवेराद्यन्तसंस्थितः।
दुःसहां दाहनीमेतां शिखामाहुर्दिवस्पतेः॥३१॥
व्यापको विष्णुसहित आदित्यान्ते व्यवस्थितः।
कवचं सर्वविघ्नानां नाशनं देवनिर्मितम्॥३२॥
आद्यन्तेऽवस्थितः सूर्यो ब्रह्मा व्यापकमध्यतः।
सृष्टि-संहार-कर्त्ता च ह्यस्त्रमेतदुदाहृतम्॥३३॥

रुद्र, विष्णु तथा ब्रह्मा सूर्यदेव के आदि-अन्त में संस्थित हैं। दुःसह दाहनी (दग्ध करने की शक्ति) को दिवस्पति सूर्यदेव की शिखा कहा जाता है। व्यापक विष्णु के साथ आदित्य अन्त में रहते हैं। यह देवनिर्मित कवच समस्त विघ्नों का नाशक है। सूर्य आदि तथा अन्त में अवस्थित हैं। ब्रह्मा व्यापक हैं, अतः मध्य में रहते हैं। सृष्टि तथा संहार के कर्त्ता को अस्त्र कहा गया है।।३१-३३।।

नेत्रमेकं समुद्दिष्टमेतदक्षरमव्ययम्।
युगान्तानलवर्णाभमनेकादित्यवर्चसम्॥३४॥
एवं तद्भास्करं ज्ञेयं षड्विधं संप्रकीर्त्तितम्।
पूर्वं द्वादशधा प्रोक्तमेतत् सूर्येण भाषितम्॥३५॥

इन्हें एकनेत्र कहा गया है, जो अव्यय अथवा अक्षर है तथा युगान्त काल में अग्नि के वर्ण के समान, अनेक सूर्यरश्मि के समान होते हैं। यह छः प्रकार के सूर्य की बातें कहीं गयीं। पहले द्वादश प्रकार के कहे गये थे। यह सब सूर्यदेव ने साम्ब से कहा था।।३४-३५।।

लक्षमेकैकमावर्त्य न चागस्त्यानुपूर्वशः।
तथैव मन्त्रे देवस्य पुनर्लक्षं समाहितः॥३६॥
तिलांस्त्रिमधुरोपेतान् होमयेज्जातवेदसम्।
भास्करास्त्रेण जुहुयात् सायं सहविषा समम्॥३७॥

सूर्य एक-एक लाख आवर्त्तन करते हैं; किन्तु अगस्त्य का अतिक्रमण नहीं करते। ऐसे समाहित होकर सूर्यदेव का एक लाख मन्त्र उच्चारण करके तिल-घृत-मधु-शर्करा

युक्त करके अग्नि में होम करना चाहिये। सन्ध्या के समय भास्कर अस्त्र के द्वारा होम करना चाहिये।।३६-३७।।

होमावसाने च पुनर्होमभागो विधीयते।
ततः कृतार्थतामेति साधको देवदर्शनात्॥३८॥

होम के अन्त में होम का भाग करे। तदनन्तर साधक देवदर्शन के फल से कृतार्थता प्राप्त करता है।।३८।।

त्रिकालवेदी तत्त्वज्ञो गुणत्रय-विवर्जितः।
प्राप्नुयात् परमं स्थानमनिलानलवर्जितम्॥३९॥

जो प्रकाश के ज्ञाता (भूत-भविष्य तथा वर्त्तमान को जानने वाले), तत्त्वज्ञ एवं गुणत्रय-वर्जित हैं, वे अग्नि तथा वायुरहित परम स्थान को प्राप्त करते हैं।।३९।।

स एवं पूज्यते मन्त्री देववद् भुवि मानवैः।
त्राता स एव लोकानां व्याधिदुःखविनाशनः॥४०॥
अप्रमेयमिदं शास्त्रं पुराणं पूर्वचोदितम्।
द्वापरे नारदेनैव पुनः साम्बाय भाषितम्॥४१॥
ततः प्रभृति लोकेषु प्रवृत्तं भास्करध्वजम्।
सर्वपापहरं पुण्यं सर्वकाम-प्रदायकम्॥४२॥

इति श्रीसाम्बपुराणे यज्ञस्थानविधिनिरूपणं नाम चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

●

वह मन्त्रसाधक पृथ्वी पर जनगण द्वारा देवता के समान पूजित होता है। वह समस्त लोक का त्राणकर्त्ता एवं व्याधि तथा दुःख का विनाशक हो जाता है। तुलनारहित यह पुराण पूर्व में भी प्रकट था, जिसे द्वापर में नारद ने पुनः साम्ब को सुनाया। तभी से संसार में भास्कर ध्वजा प्रवृत्त होती है, जो समस्त पापहारी है। साथ ही परम पवित्र एवं समस्त कामनाओं को देने वाला है।।४०-४२।।

श्री साम्बपुराणोक्त यज्ञस्थानविधि नामक चालीसवाँ अध्याय समाप्त

●

एकचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

(दीक्षाविधानम्)

वसिष्ठ उवाच

अतः परं तु दिक्पालान् पूर्वान् प्रभृति पूजयेत्।

ॐ विकटाय ठः ठः। ॐ वामनाय ठः ठः। ॐ लम्बोदराय ठः ठः। ॐ हेमगर्भाय ठः ठः। ॐ भीमवेगाय ठः ठः। ॐ सौम्यरूपाय ठः ठः। ॐ पञ्चात्मकाराय ठः ठः। ॐ विदेहाय ठः ठः। ॐ धर्मविग्रहाय ठः ठः। ॐ अहिर्बुध्न्याय ठः ठः। ॐ कालाय ठः ठः। ॐ उपकालाय ठः ठः। पूर्वस्यां दिशि चैतान् पूजयित्वा पञ्चरूपकैः खण्डाद्यैः प्रत्येकं पात्रेण बलिर्दातव्यः।

दक्षिणस्यां दिशि—अघोराय ठः ठः। ॐ बटुकाय ठः ठः। ॐ ऊर्ध्वरोमाय ठः ठः। ॐ मृत्युहस्ताय ठः ठः। ॐ मेघनादाय ठः ठः। ॐ कौस्तुभाय ठः ठः। ॐ धूमकालाय ठः ठः। ॐ उग्रजिह्वाय ठः ठः। ॐ मासमूर्तये ठः ठः। ॐ वल्कलिने ठः ठः। ॐ दण्डिने ठः ठः। ॐ कर्मसाक्षिणे ठः ठः। एतेषां मत्स्यमांसधूलिकादिभिर्बलिर्दातव्यः।

पश्चिमायां दिशि—ॐ सूर्यमूर्त्तये ठः ठः। ॐ गुहाशयाय ठः ठः। ॐ टङ्कपाणाय ठः ठः। ॐ महाबलाय ठः ठः। ॐ वायुभक्षाय ठः ठः। ॐ पञ्चमूर्त्तये ठः ठः। ॐ अग्निपाशाय ठः ठः। ॐ पशुपतये ठः ठः। ॐ महाआशाय ठः ठः। ॐ कृष्णदेहाय ठः ठः। ॐ अमोघाय ठः ठः। ॐ अच्युताय ठः ठः। एतेषां क्षारघृतपूर्णपात्रेण बलिर्दातव्यः।

उत्तरतः—ॐ शिखिलिङ्गिने ठः ठः। ॐ योगेश्वराय ठः ठः। ॐ त्रिशिखाय ठः ठः। ॐ शतक्रतवे ठः ठः। ॐ पञ्चशिखाय ठः ठः। ॐ सहस्रकिरणाय ठः ठः। ॐ सुवर्णकितवे ठः ठः। ॐ पद्मकेतवे ठः ठः। ॐ यज्ञरूपाय ठः ठः। ॐ भुवनाधिपतये ठः ठः। ॐ पद्मनाभाय ठः ठः। एतेषां सुवर्णरजतवस्त्रैर्बलिदानम्।

वशिष्ठ देव कहते हैं—तदनन्तर पूर्वादि दिक् में दिक्पालों की पूजा करनी चाहिये। ॐ विकटाय ठः ठः इत्यादि मन्त्रों से पूजन करे (ठः ठः का अर्थ है—स्वाहा)।

ॐ विकटाय स्वाहा, ॐ वामनाय स्वाहा, ॐ लम्बोदराय स्वाहा, ॐ हेमगर्भाय स्वाहा, ॐ भीमवेगाय स्वाहा, ॐ सौम्यरूपाय स्वाहा, ॐ पञ्चात्मकाय स्वाहा, ॐ विदेहाय स्वाहा, ॐ धर्मविग्रहाय स्वाहा, ॐ अहिर्बुध्न्याय स्वाहा, ॐ कालाय स्वाहा,

ॐ उपकालाय स्वाहा ॐ—पूर्व दिशा में इन मन्त्रों से तत्तद् देवताओं की पूजा करके खाण्ड आदि पञ्च रूपकों द्वारा प्रत्येक को पात्र में बलि (उपहार) प्रदान करे।

अब दक्षिण में मूल में लिखित मन्त्रों से अघोर आदि का पूजन करना चाहिये—ॐ अघोराय स्वाहा, ॐ बटुकाय स्वाहा, ॐ ऊर्ध्वरोमाय स्वाहा, ॐ मृत्युहस्ताय स्वाहा, ॐ मेघनादाय स्वाहा, ॐ कौस्तुभाय स्वाहा, ॐ धूमकालाय स्वाहा, ॐ उग्रजिह्वाय स्वाहा, ॐ मासमूर्त्तये स्वाहा, ॐ वल्कलिने स्वाहा, ॐ दण्डिने स्वाहा, ॐ कर्मसाक्षिणे स्वाहा। इनको मत्स्त्य, मांस, धूलिकादि की बलि देनी चाहिये।

अब पश्चिम दिशा में सूर्यमूर्त्तियों का पूजन करे—ॐ सूर्यमूर्त्तये स्वाहा, ॐ गुहाशयाय स्वाहा, ॐ टङ्कपाणाय स्वाहा, ॐ महाबलाय स्वाहा, ॐ वायुभक्षाय स्वाहा, ॐ पञ्चमूर्त्तये स्वाहा, ॐ अग्निपाशाय स्वाहा, ॐ पशुपतये स्वाहा, ॐ महा आशाय स्वाहा, ॐ कृष्णदेहाय स्वाहा, ॐ अमोघाय स्वाहा, ॐ अच्युताय स्वाहा। इनको घृतपूर्ण क्षीरपूर्ण पात्र में बलि प्रदान करे।

उत्तर दिशा में शिखिलिङ्गी आदि का पूजन करे। यथा—ॐ शिखिलिङ्गिने स्वाहा, ॐ योगेश्वराय स्वाहा, ॐ त्रिशिखाय स्वाहा, ॐ शतक्रतवे स्वाहा, ॐ पञ्चशिखाय स्वाहा, ॐ सहस्रकिरणाय स्वाहा, ॐ सुवर्णकेतवे स्वाहा, ॐ पद्मकेतवे स्वाहा, ॐ यज्ञरूपाय स्वाहा, ॐ भुवनाधिपतये स्वाहा, ॐ पद्मनाभाय स्वाहा। इनको स्वर्ण, चाँदी तथा वस्त्र की बलि (उपहार) देनी चाहिये।

एवं यः कुरुते राजन्! पूजां शास्त्रप्रचोदिताम्।
तस्य सर्वे क्रियारम्भाः सकला प्रेत्य चेह च॥
नान्यच्छास्त्रं समुद्दिष्टं भानोः पूजानिवेदनम्।
पुराणोक्तामिमां राजन् सर्ववेदोपबृंहिताम्॥

महाराज! जो इस प्रकार से शास्त्रविहित पूजन करते हैं, उनकी इस लोक में तथा परलोक में सभी क्रिया सफल होती है। सूर्य के पूजादि में अन्य किसी शास्त्र का उल्लेख नहीं है। यहाँ जो कुछ बताया जा रहा है, वह वेद का संग्रहरूप तथा पुराणोक्त विधान है।

ये केचिदन्यतन्त्रज्ञाः पूजां कुर्वन्ति मोहिताः।
भक्तिश्रद्धां फलं तेषां न तु मन्त्रकृतं भवेत्॥

जो अन्य मन्त्रों एवं तन्त्रों से मोहित (आकर्षित) होकर पूजा करता है, वह अपनी श्रद्धा तथा भक्ति का ही फल पाता है, किन्तु उसे मन्त्र का फल नहीं मिलता।

अध्येतव्यमिदशास्त्रं सततं पापनाशनम्।
आयुरारोग्यविजयं यशः कीर्तिकरं शुभम्॥

इस शास्त्र का पाठ सर्वदा करना उचित है। यह पापनाशक है। आयु-आरोग्य, विजय, यश तथा शुभ कीर्त्तिदायक है।

एतेषां दिक्पालानां पूजां कृत्वा पुनर्वक्ष्यमाणकैर्मन्त्रैः पञ्चपञ्चाहुतयः आज्येनैकैकं पायसेन वा।

ॐ शितिने ठः ठः विकटाय। ॐ अशितिने ठः ठः वामनः। ॐ व्यवहिताय ठः ठः लम्बोदराय। ॐ संहताय ठः ठः हेमगर्भः। ॐ सर्वगाय ठः ठः विदेहाय। ॐ स्थिराय ठः ठः घामवेगाय। ॐ शान्ताय ठः ठः सौम्यरूपाय। ॐ सर्वहराय ठः ठः पञ्चात्मकाय। ॐ अजरूपाय ठः ठः धर्मविग्रहाय। ॐ निरभ्राय ठः ठः अहिर्बुध्न्याय। ॐ मनवे ठः ठः कालाय। ॐ किन्नराय ठः ठः उपकालाय। पूर्वदिशि योगिनः।

ॐ संस्तुताय ठः ठः अघोराय। ॐ अनन्ताय ठः ठः वडवामुखाय। ॐ क्रुद्धाय ठः ठः ऊर्ध्वरोमाय। ॐ समाय ठः ठः मृत्युहस्ताय। ॐ अनन्तजिह्वाय ठः ठः मेघनादाय। ॐ स्फुरिताय ठः ठः कौस्तुभाय। ॐ क्रूराय ठः ठः धूमकालाय। ॐ समोनवाढाय ठः ठः उग्रजिह्वाय। ॐ करभाय ठः ठः मासमूर्त्तये। ॐ आग्नेयाय ठः ठः वल्वली। ॐ रक्तवर्णाय ठः ठः दिणि। ॐ सुरक्ताय ठः ठः कर्मसाक्षी। दक्षिणदिग्भागिनः।

ॐ सरस्वत्यै ठः ठः वायुभक्षः। ॐ कारवे ठः ठः पञ्चमूर्त्तिः। ॐ क्रीडते ठः ठः अग्निपाशः। ॐ विक्रीडते ठः ठः पशुपतिः। ॐ हन्ताय ठः ठः महापाशः। ॐ विहन्ताय ठः ठः कृष्णदेहः। ॐ ध्रुवाय ठः ठः अमोघः। ॐ विशिखाय ठः ठः अच्युतः। पश्चिमदिग्भागिनः।

ॐ सवित्रे ठः ठः शिखिलिङ्गः। ॐ मध्यगताय ठः ठः ग्रन्थिवासः। ॐ युक्ताय ठः ठः योगवासः। ॐ खड्गिने ठः ठः त्रिशिखः। ॐ ज्येष्ठाय ठः ठः शतक्रतुः। ॐ मध्यगताय ठः ठः पञ्चशिखः। ॐ कनिष्ठाय ठः ठः सहस्रकिरणः। ॐ सर्वैरोग्याय ठःठः पद्मकेतुः। ॐ कातराय ठः ठः यज्ञरूपः। ॐ युगाय ठः ठः भुवनाधिपः। ॐ अनन्तशक्तये ठः ठः पद्मनाभः। उत्तरतः॥१॥

इन सभी दिक्पालों का पूजन करके पुनः नीचे लिखे मन्त्रों द्वारा प्रत्येक मन्त्र से ५-५ घृताहुति प्रदान करनी चाहिये अथवा पायस की एक-एक आहुति प्रदान करनी चाहिये।

ॐ शितिने स्वाहा विकटः, ॐ अशीतिने स्वाहा वामनः, ॐ व्यवहिताय स्वाहा लम्बोदरः, ॐ संहताय स्वाहा हेमगर्भः, ॐ सर्वगाय स्वाहा विदेहः, ॐ स्थिराय स्वाहा भीमवेगः, ॐ शान्ताय स्वाहा सौम्यरूपः, ॐ सर्वहराय स्वाहा पञ्चात्मकः, ॐ अजरूपाय स्वाहा धर्मविग्रहः, ॐ निरभ्राय स्वाहा अहिर्बुध्न्यः, ॐ मनवे स्वाहा कालः, ॐ किन्नराय स्वाहा उपकालः। ये पूर्व के योगी हैं।

अब दक्षिण में स्थित योगियों की पूजा करे—ॐ संस्तुताय स्वाहा अघोरः, ॐ अनन्ताय स्वाहा बड़वामुखः, ॐ क्रुद्धाय स्वाहा ऊर्ध्वरोमा, ॐ समाय स्वाहा मृत्युहस्तः, ॐ अनन्तविजयाय स्वाहा मेघनादः, ॐ स्फुरिताय स्वाहा कौस्तुभः, ॐ क्रूराय स्वाहा धूमकालः, ॐ समोनवाढ़ाय स्वाहा उग्रजिह्वः, ॐ करभाय स्वाहा मासमूर्त्तिः, ॐ अग्नये स्वाहा वल्कली, ॐ रक्तवर्णाय स्वाहा दिनी, ॐ सुरक्ताय स्वाहा कर्मसाक्षी। ये दक्षिण दिशा के योगी हैं।

अब पश्चिम के योगियों का पूजन करे—ॐ सरस्वत्यै स्वाहा वायुभक्षः, ॐ कारवे स्वाहा पञ्चमूर्त्तिः, ॐ क्रीड़ते स्वाहा अग्निपाशः, ॐ विक्रीड़ते स्वाहा पशुपतिः, ॐ हस्ताय स्वाहा महापाशः, ॐ विहन्ताय स्वाहा कृष्णदेहः, ॐ ध्रुवाय स्वाहा अमोघः, ॐ विशिखाय स्वाहा अच्युतः। ये पश्चिम के योगी हैं।

अब उत्तर स्थित योगिगण का पूजन करे—ॐ सवित्रे स्वाहा शिखिलिङ्गः, ॐ मध्यमाय स्वाहा ग्रन्थिवासः, ॐ युक्ताय स्वाहा योगवासः, ॐ खड्गिने स्वाहा त्रिशिखः, ॐ ज्येष्ठाय स्वाहा शतक्रतुः, ॐ मध्यगताय स्वाहा पञ्चशिखः, ॐ कनिष्ठाय स्वाहा सहस्रकिरणः, ॐ सवैराग्याय स्वाहा पद्मकेतुः, ॐ कातराय स्वाहा यज्ञरूपः, ॐ युगाय स्वाहा भुवनाधिपः, ॐ अनन्तशक्तये स्वाहा पद्मनाभः। ये उत्तर दिशा में अवस्थित हैं।

वेदोद्धृतमिदं राजन्मन्त्राकाशं पुरातनम्।
यजंस्त्रिकालमव्यग्रः सर्वान् कामानवाप्नुयात्॥१॥

हे महाराज! वेद से उद्धृत तथा पुरातन मन्त्रों से सुबह, दोपहर तथा सायंकाल यजन करने से समस्त कामना पूर्ण हो जाती है।।१।।

इदमेव परं ज्ञानं कर्मयोगं च निष्कलम्।
इदं दत्तं मया तुभ्यं यथा साम्बाय भास्वते॥२॥

यह परम ज्ञान तथा निष्कल कर्मयोग है। सूर्य ने साम्ब से जो कहा था, वह मैंने तुमसे कहा।।२।।

कृत्वा दिशां बलिं सम्यक् दिक्पालानां समाहितः।
होमं कृत्वा च तेनैव ततो ध्यानं विवस्वतः॥३॥

समाहित होकर सब दिशाओं के दिक्पाल गण को बलि देनी चाहिये तथा पूर्वोक्त प्रकार से होम करके नीचे लिखे मन्त्रों से सूर्य का आह्वान करना चाहिये।।३।।

एह्येहि देवाकृतशब्दमूर्त्ते सर्वैर्वृतो यागमिमं प्रपश्य।
त्वमेव पूज्योऽसि सुरासुराणां धर्मादिवर्गस्य समीहकानाम्॥४॥

हे देव! आप आईये-आईये। आप शब्दमूर्त्ति को आवृत्त करके स्थित हैं। सबके द्वारा वरणीय होकर इस यज्ञ को देखिये। देवता, असुर तथा धर्मादि चतुर्वर्ग जिसका पालन करते हैं, उन सबके आप ही पूजनीय हैं।।४।।

ज्ञानं मन्त्रार्चितो भूयः कुसुमैश्च विधानतः।
गच्छ देव यथाकामं पुनरागमनाय च ।।५।।

ज्ञानमन्त्रों द्वारा आप अर्चित हैं और यथाविधि पुष्पों से पूजित हैं। हे देव! आप पुनः आने के लिये यथेच्छा से गमन करिये।।५।।

इदमेव परं सत्यमिदमेव परं तपः।
इदमेव परो देवः सुरासुरनमस्कृतः ।।६।।

यही परम सत्य है, परम तपस्या है। ये ही देवता तथा असुरों द्वारा नमस्कृत परम देव हैं।।६।।

पुराणोक्तमिदं शास्त्रं यः पठेत् प्रयतः शुचिः।
स सहस्रार्चिषं देवं प्रविशेन्नात्र संशयः ।।७।।

पुराणोक्त इस शास्त्र का साग्रह पवित्र मन से जो पाठ करते हैं, वे सूर्यलोक में गमन करते हैं, इसमें कोई संदेह नहीं है।।७।।

तीर्थानां परमं तीर्थं मङ्गलानां च मङ्गलम्।
पवित्राणां पवित्रं च श्रोतव्यं परमं पदम् ।।८।।

इति श्रीसाम्बपुराणे दीक्षाविधानो नाम एकचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

●

तीर्थों में यह परम तीर्थ है। मंगलों में परम मंगल है। पवित्रों में परम पवित्र है तथा यह परम वस्तु श्रोतव्य है।।८।।

श्री साम्बपुराणोक्त दीक्षाविधान नामक इकतालीसवाँ अध्याय समाप्त

●

द्विचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

(यात्रानियमः)

वशिष्ठ उवाच

कृत्वा देवगृहं साम्ब ह्यानयित्वा तु याजकान्।
आजगामाथ धर्मात्मा यत्र सन्निहितो रविः ॥१॥
एते मित्रवनं श्रुत्वा देवमानुषपन्नगाः।
ऋषयः सिद्धविद्याद्या गन्धर्वोरगगुह्यकाः ॥२॥
दिक्पाला लोकपालाश्च गुह्याक्षाश्च धार्मिकाः।
सप्रजापतयः सर्वे गन्तुं प्रत्युपचक्रमुः ॥३॥

वशिष्ठदेव कहते हैं—धर्मात्मा साम्ब ने देवमन्दिर तैयार करवाकर तथा याजकों को लाकर वहाँ आये, जहाँ सूर्यदेव (प्रतिमारूपी) सन्निहित थे। मित्रवन की बात सुनकर देवता, मनुष्य, सर्पगण, ऋषिगण, सिद्ध-विद्याधरगण, गन्धर्व, उरग, गुह्यक, प्रजापति के साथ सभी धार्मिक लोग भी वहाँ आने लगे।।१-३।।

उपवासपराः केचित् केचिदात्मनि तत्पराः।
त्रिवृताध्वराः केचित् केचिज्जाप्यसमन्विताः ॥४॥
दारुपाकधराः केचित् केचित्सर्वार्थगामिनः।
अपरे नियताहारा निराहारास्तथा परेः ॥५॥
त्यक्त्वा देहगतां चिन्तां रविध्यानपरायणाः।
मासपक्षोपवासेन केचिल्लङ्घनमात्मनि ॥६॥

उनमें से कोई-कोई उपवासी, कोई-कोई आत्मचिन्तन में विभोर, कोई वेदपथगामी तथा कोई-कोई जप-निरत थे। कोई काष्ठ धनुषधारी थे, कोई सर्वाभिलाषी थे, कोई-कोई संयत आहार करने वाले थे, कोई-कोई निराहारी थे। उन्होंने अपनी-अपनी देहगत चिन्ता का त्याग करके सूर्य के ध्यान में स्वयं को मग्न कर लिया था। किसी ने मास अथवा पञ्चकाल उपवास के फल से आत्मा का भी लङ्घन कर लिया था।।४-६।।

अचिरेणैव कालेन संप्राप्य लवणोदधिम्।
दृष्ट्वा तपोवनं रम्यं लवणोदधिमाश्रितम् ॥७॥
नानापुष्पफलोपेतं देवगन्धर्वसेवितम्।
ऋषयः पर्युपासन्ते क्रमं हित्वा ततः सदा ॥८॥

उन सबने अल्प काल में ही लवण समुद्र में पहुँचकर लवणोदधि पर आश्रित रम्य तपोवन को देखा। वह नाना पुष्प तथा फलों से शोभित एवं देव-गन्धर्वादि से सेवित था। वहाँ ऋषिगण सब समय क्रम का त्याग करके सेवारत थे।।७-८।।

अपरो रविलोकस्तु सादृश्यात् कीर्तितो भुवि।
सर्वे ते हर्षमापन्ना दृष्ट्वा रम्यं तपोवनम्।।९।।
रमणं सर्वकार्येषु सर्वभूतोपकारकम्।
सर्वप्राणिसुखावासं निर्मितं विश्वकर्मणा।।१०।।

सादृश्य के कारण वह पृथ्वी का अपर सूर्यलोक कहलाता था। सभी उस रम्य तपोवन को देखकर प्रसन्न हो गये। वह तपोवन समस्त कार्य के लिये रमणीय था। समस्त प्राणियों का उपकारक तथा सुख की आवासभूमि था। इसका निर्माण विश्वकर्मा ने किया था।।९-१०।।

वशिष्ठ उवाच

नारदोऽप्यथ शास्त्रं तत् सदा पठति बुद्धिमान्।
साधु साम्ब महाभाग भक्तिमानसि यादव।।११।।
येनेयमीदृशी या तु कृता त्वर्चा सनातनी।
त्वत्प्रसादेन सावित्र्यं यत्पश्यामस्तपोवनम्।।१२।।

वशिष्ठदेव कहते हैं—बुद्धिमान नारद भी इस शास्त्र को सर्वदा कहते रहते हैं। महाभाग यादव साम्ब! साधु, तुम भक्तिमान् हो। तुमने ऐसी सनातन प्रतिमा स्थापित की है। तुम्हारी कृपा से ही मैंने सूर्य का तपोवन देखा।।११-१२।।

श्रुत्वा तं निर्मलं वाक्यं साम्बः परमधर्मवान्।
प्रणिधाय शिरो भूमौ देवं विज्ञापयत्ततः।।१३।।

परम धार्मिक साम्ब ने इस निर्मल बात को सुनकर भूमि पर मस्तक अवनत करके देव से इस प्रकार प्रार्थना किया।।१३।।

यत्त्वयोदाहृतं पूर्वं सान्निध्यं स्थानमुत्तमम्।
ममैवानुग्रहाद्देव पूजानुग्रहकारिणा।।१४।।
अस्ति मे कृपया किञ्चिद् वद सौम्य विभावसो।
क्षीणगात्रेन्द्रियप्राणो गिरा चाप्यतिमन्दया।।१५।।

हे सौम्य! मेरे प्रति कृपा करके देवपूजा के अनुग्रहकारी आपने जिस उत्तम स्थान की बात बतलायी थी, मेरे प्रति करुणा करके हे विभावसु (सूर्य)! कुछ कृपा करिये तथा उपदेश दीजिये। मेरे शरीर-प्राण-इन्द्रियादि अत्यन्त क्षीण हैं एवं वाणी भी अत्यन्त मन्द है।।१४-१५।।

ज्ञात्वा भक्त्यान्वितं साम्ब देवो वचनमब्रवीत्।
त्यज कीर्त्तिकृतां चिन्तां मत्स्थाने यदुनन्दन॥१६॥
पूर्वदत्तं मया वाचा प्रसादं शृणु यादव।
अस्मिंल्लवणोदधेस्तीरे तापसाः पूर्वमानवाः॥१७॥
मत्प्रसादं च काङ्क्षन्तः क्लिष्टान् वर्षशतान्बहून्।
तान् दृष्ट्वा तापसांस्तत्र कृपा मे विकृतां हृदि॥१८॥

साम्ब की भक्ति देखकर देव (सूर्यदेव) कहते हैं—हे यदुनन्दन! मेरे पास आकर चिन्ताओं का परित्याग कर दो। हे यादव! मेरी पूर्वप्रदत्त प्रसन्नता की बात सुनो। लवण समुद्र के तीर पर प्राचीन अनेक तपस्वी मेरे अनुग्रह की आकांक्षा करके सैकड़ों-सैकड़ों वर्ष तक क्लेश का भोग करते हैं। उन तपस्वियों को देखकर मेरे मन में कृपा का उदय होता है।।१६-१८।।

ब्रूत वत्सा यथान्यायं पयो वर्चो बलं वनम्।
सत्यधर्म्मार्थयुक्तार्थान् प्रार्थयध्वमनुत्तमम्॥१९॥
श्रुत्वा ते निर्मलं वाक्यं देववक्त्राद्विनिःसृतम्।
मानवा हर्षमापन्नाः संप्रहृष्टात्ममानसाः॥२०॥
यदि प्रसन्नो भगवान् वरं दातुं समुद्यतः।
अविघ्नमस्तु नश्चैव त्वयि भक्तिर्विभावसौ॥२१॥

हे वत्सगण! बोलो, न्यायपूर्ण दुग्ध, वर्च, बल, वन, सत्यधर्म के लिये प्रयोजनीय अतुलनीय वस्तु की प्रार्थना करो। सूर्यदेव के मुख से निकले निर्मल वाक्य सुनकर हर्षित चित्त से तापसगण आनन्दित होकर बोले—भगवन्! यदि प्रसन्न होकर वर देने के लिये आप उद्यत हो गये हैं, तो यह वर दें कि हमलोगों को कोई विघ्न न हो तथा आप सूर्यदेव में हमारी भक्ति बराबर बनी रहे।।१९-२१।।

एवमस्त्विति सोऽप्युक्त्वा भगवान्दिनकृद्विभुः।
अपरं प्रार्थयध्वं वै वरं वदत मानवाः॥२२॥
भूयस्तुष्टास्तु ते साम्ब सर्वधर्मपरायणाः।
प्रार्थयन्ते परं श्रेष्ठं प्रहृष्टोत्फुल्ललोचनाः॥२३॥

'वही हो' कहकर भगवान् विभु सूर्यदेव ने यह भी कहा—हे मानवगण! अन्य वर माँगो। हे साम्ब! समस्त धर्मपरायण लोगों ने तुष्ट होकर पुनः परम श्रेष्ठ वर की प्रार्थना की।।२२-२३।।

मुनय ऊचुः

यदि तुष्टो महातेजा वरं दातुं समुद्यतः।
त्वत्प्रसादेन देवेश स्रष्टारोऽस्य भवामहे॥२४॥

मुनिगण कहते हैं—हे महातेजस्वी! यदि आप प्रसन्न हैं और वर देना चाहते हैं तब हे देवेश! आपकी कृपा से हम इस जगत् के सृष्टिकर्त्ता हो जायँ।।२४।।

वशिष्ठ उवाच

तत्प्रसन्नो महातेजाः पुनर्वचनमब्रवीत्।
एवं भवतु भूयोऽपि प्रजासर्गं प्रकल्प्यथ ॥२५॥
अन्यच्छृणुत वक्ष्यामि कीर्त्तिकारणहेतुना।
इदं तपोवनं रम्यं यदा स्थानमनुत्तमम् ॥२६॥

वशिष्ठदेव कहते हैं—उनके प्रति सन्तुष्ट होकर महातेजस्वी सूर्यदेव पुनः कहते हैं—ऐसा ही हो। तुम प्रजासृष्टि करो। और भी सुनो, यह कीर्त्ति का हेतु होगा। यह स्थान अतुलनीय रम्य तपोवन होगा।।२५-२६।।

श्रुत्वा तु निर्मलं वाक्यं ते वै प्राहुर्दिवाकरम्।
त्वत्प्रसादेन चास्माकं देव यत्प्रीतिकारकम् ॥२७॥
कीर्त्यर्थं प्रतिलप्स्यामो रोचयस्व दिवाकर।
इदं स्थानं समासाद्य वयं तीर्णाः सुरप्रभो ॥२८॥
प्रजानां च हितार्थाय ममैवानुग्रहाय च।
अत्र कीर्तिं करिष्यामः प्रसादात्तव भास्करः ॥२९॥

यह सुनिर्मल बात सुनकर मुनिगण पुनः दिवाकर देव से कहते हैं—हे देव! आपकी कृपा से हमारे लिये जो कीर्त्तिकर है, उसे हमने प्राप्त किया। हे दिवाकर! आप प्रकाशित हो जायँ। हे देवताओं के स्वामी! इस स्थान को प्राप्त करके हम उत्तीर्ण होंगे। प्रजागण के कल्याण के लिये यह हम पर अनुग्रह का निमित्त है। हे भास्कर! आपकी कृपा से हम कीर्त्ति प्राप्त करेंगे।।२७-२९।।

देव उवाच

दत्वा यूयं मम स्थानं सप्तद्वीपेषु दुर्लभम्।
मन्वन्तरमथैकं च कीर्त्तिमन्तो भविष्यथ ॥३०॥
मन्त्रसिद्धास्तु ये चान्ये मुनयश्च सुरोत्तमाः।
मम स्थानरताः सर्वे तेनोर्ध्वं नैव भाषितम् ॥३१॥

सूर्यदेव कहते हैं—सप्त द्वीपों के मध्य मेरे इस दुर्लभ स्थान को दान करके तुम एक मन्वन्तर-पर्यन्त कीर्त्तिमान रहोगे। अन्य जो मन्त्रसिद्ध मुनिगण तथा देवश्रेष्ठ लोग हैं, वे मेरे इस स्थान की सेवा करके ऊर्ध्वलोकों में गमन करेंगे। इस विषय में और कुछ नहीं कहना है।।३०-३१।।

नारद उवाच

एकोनविंशतिः शून्यै रूपैरेकावसानकैः ।
एतैः प्रमाणैर्वषाणां गण्डको ब्रह्मणः स्मृतः ॥३२॥
गण्डानां शतसाहस्रैर्मनुरेकः प्रकीर्त्तितः ।
याम्येन च पुरा कुर्यात्ततः स्वारोचिषेण च ॥३३॥
तृतीये मन्वन्तरे देवश्चतुर्थे कीर्त्तितो मनुः ।
पञ्चमे मन्वन्तरे सत्यः षष्ठे ऋतुश्च कीर्त्तिमान् ॥३४॥
सप्तमे सनत्कुमारस्तु कीर्त्तितं भुवनं रवेः ।
वैवस्वतेन मनुना वर्त्तमानेन कीर्त्तितम् ॥३५॥
अत उद्ध्र्वं भवेच्छम्भुः शम्भोरुर्ध्वं महानसः ।
महानसाद्वशिष्ठश्च ततः कल्पः समाप्यते ॥३६॥

इति श्रीशाम्बपुराणे यात्रानियमो नाम द्विचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

●

नारद कहते हैं—उन्नीस शून्य रूप १९ प्रमाण वर्ष को ब्रह्मा का गण्डक कहते हैं। शतसहस्त्र गण्डक को एक मनु का काल कहते हैं। प्रथम है—याम्य मन्वतर एवं द्वितीय है—स्वारोचिष। इसी प्रकार तृतीय है—सूर्यदेव एवं चतुर्थ मन्वन्तर है—मनु। पञ्चम मन्वन्तर है—सत्य एवं षष्ठ है—कीर्तिमान केतु। सनत्कुमार को रवि का भुवन कहा गया है। वर्त्तमान में वैवस्वत मनु का काल है। इसके पश्चात् होगा शम्भु, तदनन्तर महानस, तत्पश्चात् होगा वशिष्ठ। तदनन्तर कल्प समाप्त हो जाता है।।३२-३६।।

श्री साम्बपुराणोक्त यात्रानियम नामक बयालीसवाँ अध्याय समाप्त

●

त्रिचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः
(सूर्यस्तुतिः भक्तमाहात्म्यञ्च)

वसिष्ठ उवाच

तस्मिंस्तपोवने देशे तीरे तु लवणोदधेः ।
तिष्ठन्ति ये च सम्प्राप्ता देवदर्शनकाङ्क्षिणः ।।१।।
केचिद् ध्यायन्ति पूतात्मा केचित्तद्गतमानसाः ।
यजन्ति हव्यसम्पन्नाश्चिन्तयन्त्यात्मतत्पराः ।।२।।
गायन्ति सिद्धगन्धर्वा नृत्यन्त्यप्सरसांवराः ।
वीणाहस्ताश्च ये केचिदर्घहस्तास्तथापरे ।।३।।

वशिष्ठदेव कहते हैं—लवणसमुद्र के तीर पर तपोवन देश में देवदर्शन की इच्छा से जो स्थित थे, उनमें पूतचित्त होकर कोई ध्यान कर रहा था, कोई तद्गत चित्त होकर स्थित था, कोई हव्यादि यज्ञ में रत था तो कोई आत्मनिष्ठा-चिन्तन में लीन था। सिद्ध तथा देवगण गायन कर रहे थे, श्रेष्ठ अप्सरायें नृत्यरत थीं। उनमें किसी के हाथों में वीणा थी तो कोई अर्घ्य हस्त (अर्घ्य प्रदान) था।।१-३।।

कृताञ्जलिपुटाः केचित् केचिदानतमस्तकाः ।
योगिनो योगचित्ताश्च मुनयो यतमानसाः ।।४।।
ऋषयः क्षान्तिसंयुक्ता देवाः स्तुन्वन्ति भास्करम् ।
यातुधानास्तथा यक्षाः सिद्धाश्चैव महोरगाः ।।५।।
दिक्पाला लोकपालाश्च ये च विघ्नविनायकाः ।
सर्वे भक्तिपरा भूत्वा तिष्ठन्ति सूर्यकानने ।।६।।

कोई अञ्जलियुक्त था, किसी ने मस्तक झुका रखा था। योगचित्त योगीगण, यतमानस मुनिगण, क्षमान्वित ऋषिगण तथा देवगण भास्कर की स्तुति कर रहे थे। ऐसे ही यातुधान, यक्ष, सिद्ध, महासर्पगण, दिक्पालगण तथा विघ्ननाशक लोकपालगण भक्तितत्पर होकर सूर्यवन में स्थित थे।।४-६।।

क्षीणगात्रेन्द्रियप्राणा देवाराधनतत्पराः ।
जागरार्त्तिपराः क्लिष्टा अध्वभिः परिपीडिताः ।।७।।
स्तूयमानाः स्थिताः सर्वे भास्करोदयकाङ्क्षिणः ।

उनके शरीर, इन्द्रियाँ तथा प्राण शीर्ण हो गये थे। वे देवता (सूर्य) की आराधना में लगे थे। जागरण से थके, क्लान्त, आर्त्त तथा पथ चलने से प्रपीड़ित थे। सूर्यदेव की कृपाकांक्षार्थ वहाँ सभी स्तवन कर रहे थे।।७।।

ततः प्रभातसमये पद्मरागारुणप्रभे ।।८।।
विमला भूर्दिशः सर्वाः किरणोद्योतने रवेः ।
स्तूयमानाः स्थिताः सर्वे भास्करोदयकाङ्क्षिणः ।।९।।

तदनन्तर पद्मराग के समान अरुणवर्ण प्रभात में पृथ्वी तथा समस्त दिशायें उदीयमान सूर्य-किरणों से निर्मल हो गयीं और सूर्यदेव के उदय की अपेक्षा में सभी स्तव करने लगे।।८-९।।

रविरागारुणीभूतसागराकाशभूतलम् ।
तत्क्षणेनैव सर्वासामैकज्वालात्वमागताः ।।१०।।
तस्यामुदयवेलायां विवस्वद्द्व्यैकमास्पदम् ।
वीक्ष्यमाणाद्भुतं रूपं विराजन्तं दिवाकरम् ।।११।।
दिविस्थं सागरस्थं च द्विविधं मण्डलोद्यतम् ।
अपरा भगवन्मूर्तिर्जलमध्ये विराजते ।।१२।।

पूर्वोदित रविकिरणों के अरुण वर्ण से सागर-आकाश-भूतल में मानो सूर्यरश्मि की ज्वाला आ पड़ी। उस उदयकाल में सूर्य ही एकमात्र अवलम्बन थे। अपूर्व रूप में विराजित सूर्यदेव की मूर्त्ति (आकृति) परिलक्षित होने लगी। आकाश तथा सागर में दो मण्डल देखे गये और एक अन्य भगवद् मूर्त्ति (सूर्यदेव की मूर्त्ति) जल में भी विराजित दिखाई देने लगी।।१०-१२।।

सर्वे विस्मयमापन्ना दृष्ट्वा चाद्भुतदर्शनम् ।
मनवो बाहुसंवाहैरवतीर्णा महोदधिम् ।।१३।।

इस अलौकिक दर्शन को देखकर सभी विस्मित हो गये। तभी मनुगण बाँहें फैलाये महासमुद्र में अवतीर्ण हो गये।।१३।।

बाहुभिः संगृहीत्वा तु ह्यानयित्वा तपोवनम् ।
स्थापयित्वा विधानेन मनवे हृष्टमानसाः ।।१४।।
स्तोत्रैः स्तुवन्ति ते चित्रैः साङ्गोपाङ्गैः सुसम्मितैः ।
त्वं देव प्रलयः कालः क्षयः क्षान्तः क्षपानलः ।।१५।।
उद्भवः स्थितिसम्पत्तिः प्रजास्ते चाङ्गसम्भवाः ।
सोषवर्षहिमं घर्मप्रह्लादं सुखशीतलम् ।।१६।।
त्वं देव ऋषिकर्त्ता च प्रकृतिः पुरुषः प्रभुः ।
छाया संज्ञा प्रतिष्ठापि निरालम्बो निराश्रयः ।।१७।।

हृष्टचित्त मनुगण उन्हें बाहुओं में उठाकर तपोवन में लाये एवं यथाविधान से उन्हें स्थापित करके सुसम्मत साङ्गोपाङ्ग विधि के साथ विचित्र स्तवन करने लगे। हे देव! आप प्रलय हैं। कालस्वरूप हैं। क्षमागुणान्वित है। रात्रि में अनल के समान हैं। आप सृष्टि-स्थितिकारक हैं। प्रजागण आपके अंगों से उत्पन्न हैं। आप शोषण (जलशोषण), वर्षण (शोषण के द्वारा वर्षण), हिम, घर्म, आनन्द, सुख तथा शीतलताकारक भी हैं। हे देव! आप ऋषियों के स्रष्टा हैं। आप ही पुरुष-प्रकृति तथा प्रभु हैं। आप ही छाया तथा संज्ञा (सूर्यपत्नीद्वय) की प्रतिष्ठा हैं। आप निरालम्ब तथा निराश्रय हैं।।१४-१७।।

आश्रयः सर्वभूतानां नमस्तेऽस्तु सदा मम।
त्वं देव सर्वतश्चक्षुः सर्वतः सर्वदा गतिः ।।१८।।
सर्वदः सर्वदा सर्वः सर्वसेव्यस्त्वमार्त्तिहा।
त्वं देव ध्यानिनां ध्यानं योगिनां योग उत्तमः ।।१९।।
त्वं भासा फलदः सर्वः सद्यः पापहरो विभुः।
सर्वार्त्तिनाशं नोऽनाशीकरणं करुणाप्रभुः ।।२०।।

आप ही समस्त प्राणीगण के आश्रय हैं। आपके प्रति सर्वदा हम प्रणत रहें। हे देव! आप सर्वत्र देखते हैं। सर्वदा सभी ओर आपकी (अव्याहत) गति है। आप सर्वदा सबको सब कुछ देते हैं। आप सर्वस्वरूप हैं। सबके सेव्य तथा आर्तिनाशक हैं। हे देव! आप ध्यानीगण के ध्यान तथा योगीगण के उत्तम योग भी हैं। आप प्रकाशक, फल देने वाले, सर्वरूप तथा तत्क्षण पापहर्त्ता हैं। आप विभु हैं। सबकी आर्त्ति के नाशक, स्थितिकारक तथा करुणा करने में समर्थ हैं।।१८-२०।।

दयाशक्तिः क्षमावासः सघृणिर्घृणिमूर्त्तिमान्।
त्वं देव सृष्टिसंहारस्थितिरूपः सुराधिपः ।।२१।।
बकः शोषो वृको दाहस्तुषारो दहनात्मकः।
प्रणतार्त्तिहरो योगी योगमूर्ते नमोऽस्तु ते ।।२२।।
त्वं देव हृदयानन्द शिरोरत्नप्रभामणिः।
बोधकः पाठको ध्यायी ग्राहको ग्रहणात्मकः ।।२३।।
त्वं देव नियमो न्यायी न्यायको न्यायवर्द्धनः।
अनित्यो नियतो नित्यो न्यायमूर्ते नमोऽस्तु ते ।।२४।।
त्वं देव त्रायसे प्राप्तान् पालयस्यर्णवस्थितान्।
ऊर्ध्वं त्राणार्दितांल्लोकांल्लोकचक्षुर्नमोऽस्तु ते ।।२५।।

आप दया, शक्ति तथा क्षमा के आश्रय हैं। कृपा तथा करुणा की मूर्त्ति हैं। हे देव! आप सृष्टि-संहार तथा स्थितिरूप हैं। आप समस्त देवताओं के अधिपति हैं। आप बकरूप हैं, पोषक हैं, वृकस्वरूप, दाहक, तुषार तथा दहनात्मक हैं। प्रणतजनों की आर्ति का

हरण करने वाले आप योगी हैं। हे योगमूर्त्तिरूप! आपको नमस्कार है। हे देव! आप हृदयानन्द-दायक हैं, मस्तक के रत्नरूप प्रभामणि हैं। आप ही बुद्धि देने वाले, पाठक, ध्यानकारक, ग्राहक तथा ग्रहणरूप भी हैं।

हे देव! आप नियम, न्यायनिष्ठ, न्यायप्रवर्त्तक तथा न्यायवर्द्धक हैं। अनित्य होते हुये भी सदा नित्यरूप, न्यायमूर्त्ति हैं। आपको नमस्कार है। हे देव! आप प्रपन्न का त्राण करते रहते हैं। समुद्रस्थित जनों का पालन करते हैं और उन्हें कष्टदायक लोकों से उठाकर ऊर्ध्व में ले जाते हैं। आप लोकचक्षु हैं, आपको नमस्कार है।।२१-२५।।

दमनोऽसि त्वं दुर्दान्तः साध्यानां चैव साधकः।
बन्धुस्त्वं बन्धुहीनानां नमस्ते बन्धुरूपिणे ।।२६।।
कुरु शान्तिं दयावास! प्रसीद जगतः पते।
यदास्माभिर्हितं वाक्यमभीष्टं कीर्त्तितं प्रभो ।।२७।।

आप दमनकारी तथा दुर्दान्त हैं। साध्य के साधक एवं बन्धुहीन के बन्धुस्वरूप हैं। आपको नमस्कार है। हे दयाश्रय! आप शान्तिविधान करें। हे जगत् के पालक! प्रसन्न हो जाईये। हे प्रभु! हमने हितकारी अभीष्ट वाक्य कहा है।।२६-२७।।

एवं श्रुत्वा ततः सर्वे पप्रच्छुः प्रतिमां रवेः।
केनेयं निर्मिता मूर्त्तिः केन त्वं प्रतिपादितः।
कस्मादिहागतो देव संशयोऽत्र नियच्छ नः ।।२८।।

इस प्रकार सुनकर सबने तब सूर्यप्रतिमा से जिज्ञासा किया—किसने इस मूर्त्ति का निर्माण किया? किसने आपको प्रतिपन्न किया? किसलिये आप यहाँ आये? हे देव! हमारा सन्देह दूर करिये।।२८।।

देव उवाच

तस्मिन् काले समादेशान्निर्मिता विश्वकर्मणा।
सर्वलोकहितार्थाय ससुरैरर्चिता पुरा ।।२९।।
तस्मिन् हिमवतः पृष्ठे कल्पवृक्षे निधापिता।
तस्मात्तु चन्द्रभागायां प्रविष्टा स्थानकारणात् ।।३०।।
चन्द्रभागात्तु वैपाशं वैपाशाच्च शतद्रवम्।
शतद्रवाच्च विज्ञेया प्रविष्टा यमुनां नदीम् ।।३१।।
यमुनातो जाह्नवीं च तयानीता शनैः शनैः।
भागीरथीतो विज्ञेया मोदगङ्गा महानदी ।।३२।।
ममैवानुग्रहेणासौ तीर्थानां प्रवरः स्मृतः।
तस्माद्वै मोदगङ्गायाः प्रविष्टा लवणोदधिम् ।।३३।।
साम्प्रतं च प्रवर्त्तध्वं स्थापनं मे मनूत्तमाः।

सूर्यदेव कहते हैं—एक बार समस्त लोकों के हितार्थ आदेश पाकर विश्वकर्मा ने इस मूर्त्ति का निर्माण किया है। पूर्वकाल में देवताओं के साथ विश्वकर्मा ने इस मूर्त्ति का अर्चन किया था। तब हिमालय के पृष्ठदेश में कल्पवृक्ष की स्थापना की थी। वहाँ से स्थान के लिये चन्द्रभागा में प्रविष्ट हुये थे (मूर्त्ति प्रविष्ट हुई थी)। चन्द्रभागा से वैपाश में, वैपाश से शतद्रु में एवं वहाँ से यमुना नदी में प्रविष्ट जानना चाहिये। यमुना से धीरे-धीरे जाह्नवी में आयी। वहाँ से महानदी मोदगंगा में, तदनन्तर मोदगंगा से लवणसमुद्र में मूर्त्ति प्रविष्ट हो गयी। हे मनुष्यश्रेष्ठ! अब मुझे स्थापित करने का कार्य करो।।२९-३३।।

श्रुत्वा देवास्तु तद्वाक्यं निर्मलं प्रीतिवर्द्धनम् ।।३४।।
प्राञ्जलिप्रणता भूताः स्तूयमाना रविस्थिता ।
ततो वैवस्वतः प्राज्ञः सर्वधर्मप्रणोदितः ।।३५।।
कारयामास विप्रात्तु विदुर्देवालयं शुभम् ।
स्थापयित्वा रविं भक्त्या त्रिःस्थानेषु सुरोत्तमाः ।।३६।।
निवृत्तिं याति सुकृतो देवकार्यार्थतत्पराः ।
सर्वे दीक्षापरा भूत्वा भास्कराद् विधिकाङ्क्षिणः ।।३७।।

देवगण उनकी निर्मल प्रीतिवर्द्धक वाणी सुनकर अञ्जलिबद्ध मुद्रा में प्रणत होकर भगवान् सूर्य की स्तुति करने लगे। तब समस्त धर्मों के प्रेरक वैवस्वत ने ब्राह्मणों द्वारा सूर्य का शुभ देवालय प्रस्तुत कराया। उत्तम देवगणों ने तीन स्थानों पर (सूर्य की तीन मूर्त्ति थी) भक्तिपूर्वक सूर्य को स्थापित करके निवृत्ति प्राप्त की। तदनन्तर देवकार्य में तत्पर उन लोगों ने दीक्षा ग्रहण करके सूर्यदेव से विधि एवं नियम जानने की इच्छा व्यक्त की।।३४-३७।।

यतोऽधिमण्डलं कुर्युस्तद्गतैरन्तरात्मभिः ।
लिखितं मण्डलं दिव्यं यथोक्तं भास्करेण तु ।।३८।।
यथाविधि समुद्दिष्टां क्रियां सौरिसमाश्रिताम् ।
विश्वकर्माभ्यनुज्ञाय सवर्णां मूर्द्धजाः प्रजाः ।।३९।।
ततो नाम प्रकुर्वन्ति सम्प्रहृष्टतनुरूहाः ।
अनेन मुण्डिताः सर्वे तेन मुण्डित उच्यते ।।४०।।

उन्होंने अन्तःकरण के तद्गत भाव से अधिमण्डल की भावना किया (बनाया)। तदनन्तर भास्कर द्वारा कथित दिव्य मण्डल अंकित किया। विश्वकर्मा की अनुमति से सूर्य से सम्बन्धित यथाविधि क्रिया सम्पन्न की। सबके ऊपर प्रजा थी अर्थात् सबसे पहले प्रजा (उपस्थित लोग) का प्रसङ्ग लिया गया। तत्पश्चात् हृष्ट तथा रोमाञ्चित होकर प्रजागण का नामकरण किया गया। सबने मुण्डन कराया था, इसलिये उन्हें 'मुण्डित' कहा गया।।३८-४०।।

अथ कृतार्थसंज्ञाश्च निगमज्ञैरुदाहृताः ।
मुडि प्रमर्दने धातुः संज्ञायां च विधीयते ।
प्रकर्षाद्दर्दयेद्येन तेन मुण्डीर उच्यते ॥४१॥

शास्त्रज्ञों द्वारा इनका नाम यथार्थ संज्ञा वाला हो गया। प्रदर्शन अर्थ में 'मुडि' धातु का संज्ञार्थ में प्रयोग होता है। जहाँ सम्यक् रूप से अर्दन किया गया हो, वह 'मुण्डित' होता है।।४१।।

वशिष्ठ उवाच

एवमाद्यमिदं स्थानं कीर्त्यते च युगे युगे ।
सर्वपापहरं पुण्यं सर्वतीर्थमयं शुभम् ॥४२॥
ये तु केचिन्नराः लोके भक्तियुक्तार्तिवेदकाः ।
तस्मिन् यन्त्रे समापन्नाः सद्यो मुञ्चन्ति वर्तिताः ॥४३॥
केचित्तत्र महामोहादस्मिंस्तीर्थे विबुद्धयः ।
न तेषां सम्पदां स्थैर्यं यदि प्राप्तुं सुदुष्करम् ॥४४॥

वशिष्ठ देव कहते हैं—इस प्रकार से इस आदि स्थान का युग-युग में वर्णन किया गया है। यह समस्त पापों का हरण करने वाला है। पुण्यप्रद, शुभ तथा समस्त तीर्थमय है। जो कोई भी पृथ्वी का व्यक्ति भक्तियुक्त तथा आर्त्त स्थिति में इस सूर्ययन्त्र के पास आयेगा, वह सदा मुक्त हो जायेगा। यदि कोई ज्ञानी इस तीर्थ के सम्बन्ध में मोहग्रस्त हो जाता है, तब सुदुष्कर सम्पत्तिवान होने पर भी उसकी (सम्पत्ति में) स्थिरता नहीं रहती।।४२-४४।।

यावत् प्रतपते भानुर्यावच्च लवणोदधिः ।
यावद् भूमिधरा देवास्तावत् कीर्त्तिर्विभावसोः ॥४५॥
ये च पापसमायुक्ता जायन्ते भुवि मानवाः ।
तेषामेव रविस्त्राता ये तत्क्षेत्रसमाश्रिताः ॥४६॥
एवंविधो ह्ययं सूर्यः सदा कार्यो विजानता ।
देवः कीर्त्तिधनाकाङ्क्षी किं पुनर्भुवि मानवाः ॥४७॥

जब तक सूर्य अपनी किरणें प्रसारित करते रहेंगे, जब तक यह लवण समुद्र रहेगा। जब तक पर्वत तथा देवगण रहेंगे, तब तक सूर्य की कीर्ति स्थायी रहेगी। इस पृथ्वी पर जो समस्त मनुष्य पापयुक्त होकर जन्म लेते हैं, उनके सूर्य ही त्राणकर्त्ता हैं। यदि वे मनुष्य उनके स्थान का आश्रय लेते हैं, तब सूर्य उनका त्राण करते हैं। ऐसे प्रभाव से युक्त ये सूर्य हैं। यह सब जानकर सदैव उनकी सेवा करना ही उचित है। उनसे ही देवता भी कीर्त्ति तथा धन की आकांक्षा करते हैं, पृथ्वी के मनुष्य की तो बात ही क्या है।।४५-४७।।

एतत्स्थानं सुरेशस्य सर्वैर्देवैरधिष्ठितम् ।
शान्तिं पुष्टिं सुखं कामं सर्वभूतार्त्तिनाशनम् ।।४८।।

यह स्थान देवेश सूर्यदेव का है। यहाँ सभी देवता अधिष्ठित हैं। शान्ति, पुष्टि, सुख, कामप्रदायक तथा समस्त प्राणियों की आर्त्ति का नाशक यह स्थान है।।४८।।

एतदेव हि सा कीर्त्तिः कीर्त्तिता मुनिभिः पुरा ।
अत्र पश्यन्ति ये भानुमुद्यन्तं मूर्त्तिसंस्थितम् ।।४९।।
तारयन्ति नराः पूता आत्मानं गोलवर्द्धनम् ।
यां यां क्रियां समारेभे सूर्यक्षेत्रेषु मानवः ।।५०।।
तां तां सिद्धिमवाप्नोति इह लोके परत्र च ।
जम्बूद्वीपो महाद्वीपः कर्मभूमिरनुत्तमः ।।५१।।
यत्रेयमीदृशी कीर्त्तिर्देवेनैव प्रकीर्तिता ।
यत्र पश्येत् सहस्रांशुमित्यसौ शोध्यते जनैः ।।५२।।

सूर्य की इस प्रकार की कीर्त्ति की बात का मुनिगण पुराकाल से कीर्त्तन करते हैं। यहाँ मूर्त्तिस्थित उदीयमान सूर्य को जो देखते हैं, वे पवित्र लोग अपने वंश का तथा लोक का उद्धार करते हैं। लोग सूर्यक्षेत्र में जिस-जिस कार्य को प्रारम्भ करते हैं, इहलोक तथा परलोक में उनको वही-वही सिद्धि प्राप्त होती है। जम्बूद्वीप महाद्वीप है। यह श्रेष्ठ कर्मभूमि है। यहाँ सूर्यदेव ने ऐसी कीर्त्ति स्थापित की है कि यहाँ जो सहस्रांशु सूर्य का दर्शन करेंगे, वे शुद्ध हो जायेंगे।।४९-५२।।

एका मूर्त्तिर्द्विधा कृत्वा भूतलेष्ववतारिता ।
प्रत्यूषे चैव मुण्डीरं ये पश्यन्ति नराः सकृत् ।।५३।।
न कदाचिद् भयं शोको रोगस्तेषां प्रपद्यते ।
कालहृत् कालप्रीत्या च मध्याह्ने ये त्ववेक्षकाः ।
तेषामेव सुखोदर्को ह्यचिरेणैव जायते ।।५४।।
साम्बकृतपुरे भानुः सायाह्ने यैरुदीक्षितः ।
सद्यः सम्पद्यते तेषां धर्मकामार्थसाधनम् ।।५५।।

एक ही मूर्त्ति पृथ्वी पर दो भाग में अवतीर्ण है। प्रत्यूष काल में जो मुण्डीर (सूर्य) को देखते हैं, उन्हें शोक तथा रोग नहीं होता। काल की प्रीति में जो मध्याह्न में कल्याणकारी सूर्य को देखते हैं, उन्हें अतिशीघ्र सुख मिलता है। साम्ब द्वारा निर्मित नगरी में जो सन्ध्याकाल में सूर्य का दर्शन करते हैं, उनको तत्क्षण धर्म, अर्थ तथा काम का साधन प्राप्त हो जाता है।।५३-५५।।

एवं युक्तिं समाधाय सर्वधर्मपरायणाः ।
कीर्त्तयित्वा रवेः कीर्त्तिर्जग्मुः सूर्यालयं प्रति ॥५६॥
प्रजापतीनामिदमालयं रवेर्विधायितं देववरानुकम्पितम् ।
विघातकास्तत्र पतन्त्यसाधवो वह्नेः शिखायां शलभा इव क्षणात् ॥५७॥

इति श्रीसाम्बपुराणे सूर्यस्तुतिर्भक्तमाहात्म्यं नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

●

ऐसा स्थिर निश्चय करके सभी धर्मपरायण लोग सूर्य की कीर्त्ति-कथा का गान करते हुये सूर्यालय में गये। प्रजापतियों द्वारा निर्धारित सूर्य का यह मन्दिर देवश्रेष्ठ सूर्यदेव से अनुकम्पित है। इसके विघ्नकारी असाधुगण अग्निशिखा में पड़ते जा रहे पतङ्गों के समान तत्क्षण नष्ट हो जाते हैं।।५६-५७।।

श्री साम्बपुराणोक्त सूर्यस्तुति तथा भक्तमाहात्म्यनामक तैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त

●

चतुश्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

(आचारलक्षणम्)

वशिष्ठ उवाच

स जयति सुरपतिनाथः करनिकरविनिहतसकलकलिः।
शाश्वतममलनयनमखिलभुवनभवनप्रदीपो रविः ॥१॥

वशिष्ठदेव कहते हैं—सुरपतिपालक सूर्यदेव की जय हो, जिनका रश्मिजाल समस्त पापों का विनाशक है। वे शाश्वत, निर्मल नयन हैं, जो निखिल भुवनरूप भवन के प्रदीपरूप हैं अर्थात् अपनी किरणों से समस्त भुवन को आलोकित करते हैं।।१।।

साम्ब उवाच

आचारः परमो धर्म इति धर्मविदोऽवदन्।
आचाराद्वर्धते ह्यायुर्ह्याचारो हन्त्यलक्षणम् ॥२॥
आचारात् सुखभागी स्यादाचाराच्छ्रियमश्नुते।
अतस्तमहमाचारं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥३॥
आदित्यभक्तः पुरुषः कीदृगाचारमाचरेत्।
देवस्य प्रियतामेति श्रियमायुश्च विन्दति ॥४॥

साम्ब कहते हैं—आचार श्रेष्ठ धर्म है, यह धर्मज्ञ लोगों का कथन है। आचार से आयु बढ़ती है, आचार ही अशुभ का नाश करता है। प्राणी आचार के फल से सुखभागी हो जाते हैं। इससे ऐश्वर्य-भोग करते हैं। इसलिये तत्त्वतः आचार को सुनने की इच्छा है। आदित्यभक्त किस प्रकार के आचार का अनुष्ठान करके सूर्यदेव को प्रिय होकर ऐश्वर्य तथा आयु प्राप्त करते हैं?।।२-४।।

नारद उवाच

अत्र ते संप्रवक्ष्यामि यन्मां त्वं परिपृच्छसि।
आयुर्लक्ष्मीर्यशो हेतुः सूत्रमाचरणस्य यत् ॥५॥

नारद कहते हैं—तुम मुझसे जो पूछ रहे हो, मैं उसे तुमको सम्यक् रूप से बतलाता हूँ। जो आयु, धन-सम्पत्ति तथा यश का कारण है, उस आचरण के सूत्र (लक्षण) को कहता हूँ।।५।।

नास्तिकेनाश्रद्दधानेन गुरुणा शास्त्रलङ्घिना।
भिन्नमर्यादसङ्कीर्णं मैथुने न भवितव्यम् ॥६॥

नास्तिक, अश्रद्धाशील होना, गुरु तथा शास्त्रवाक्य का लङ्घन करने का कार्य करना, अवैध मैथुन में प्रवृत्त होना उचित नहीं है।।६।।

अतः अक्रोधेन सत्यवादिना भूतानामहिंसकेनानसूयुनाशुचिनाऽजिह्मेनानालस्येन भवितव्यम्। अतोऽष्टमर्दिना तृणच्छेदिना नखशोधिना नित्योच्छिष्टेनाऽशङ्कमनसा सुकेशेनाभाव्यम्।

ब्राह्मे मुहूर्त्त उत्थाय धर्मार्थसाधुचिन्तकः।
आचम्य सन्ध्यां वन्देत पूर्वां च पश्चिमां तथा॥

आदित्यमुद्यन्तमस्तं यान्तं वारिस्थमहर्मध्यमुपसृष्टं च नेक्षेत। परदारा न गन्तव्याः। केशप्रसाधनदन्तधावनान्यदेवतापूजनानि मध्याह्ने न कुर्वीत। मूत्रपुरीषे नाधितिष्ठेन्न पश्येच्च उदक्यया न प्रभाषेत। ग्रामसमीपे कृष्टक्षेत्रे न च पुरीषयेत्। विण्मूत्रे नाप्सु कुर्यात्। न भस्मनि मग्नो व्रजेन्न वास्थिनि। न प्राङ्मुखो न च कुत्सितमन्नमश्नीयात्। भुक्त्वाग्निमालम्भयेन्न सर्वप्राणान् स्पृशेत्। तुषकेशभस्मकार्पासास्थिउद्वर्तनावरक्ता स्वेदादीनाधितिष्ठेत।

शान्तिहोमादीनि पवित्राणि कारयेत्। न सुप्तं गच्छन्तं स्थविरं प्रत्युत्थापयेत् न सुप्तं गच्छन्तं वा उपस्थापयेत्। आर्द्रानार्द्रपादो भोजनशयने। न वाग्निब्राह्मणोच्छिष्टमालभेत्। न पश्येच्च सूर्याचन्द्रमसौ, नक्षत्राणि च न पश्येत्। आगच्छन्तं स्थविरं प्रत्युत्थायाभिवाद्यासनं दद्यात्। गच्छन्तं पृष्ठतोऽनुयायात्। भिन्नकांस्यासनं वर्जयेत्। नैकवस्त्रो भुञ्जीत न नग्नः स्नायाच्छयीत। नोच्छिष्टः स्पृशेच्छिरः। शिरसि केशप्रहरणं परिहरेत्। न पाणिद्वयेन शिरः कण्डूयेत्। नाभीक्ष्णं शिरसा स्नायात्। न द्विः स्नायाच्च। शिरः स्नातस्तैलेनाङ्गं न किञ्चित्स्पृशेत्। घृतं मधुसमं विषम्। मुद्गतिलान् भ्रष्टान्नाश्नीयात्। उच्छिष्टो नाधीयात्। न वाध्यापयेत्, पूतिगन्धवातेन च।

अत्र गाथा यमेन गीता—

आयुरस्य निकृन्तति प्रजा नास्या भवेत्तथा।
य उच्छिष्टः प्रपठति स्वाध्यायं चाधिगच्छति॥

सूर्यानिलानलसोमोदकगोद्विजनक्षत्राभिमुखः पथि च न मेहेत्। दिवा संध्यासूदङ्मुखो दक्षिणामुखो रात्रौ तृणान्तर्हितभूमौ अवगुण्ठ्य नीवीविण्मूत्रे कुर्यात्। सामिषं श्राद्धं भुक्त्वा च न संध्यां वदेत्। ब्राह्मणक्षत्रियसर्पान्नावमन्येत। मिथ्यासत्याभ्यां गुरुणानुबन्धः कार्यो, गुरुं नापवादयेत्। गुर्वपवादे कर्णौ पिधातव्यौ, गन्तव्यमन्यत्र वा दूरादावसथात्। मूत्रपादावसेचने स्पृष्ट्वा मार्जनानि कर्त्तव्यानि। नाति प्रातर्मध्याह्ने सायाह्नेषु गच्छेत्, नैकोनाज्ञातैर्वृषलैः। गो-ब्राह्मण-क्षत्रिय-वृद्ध-भारतप्त-गर्भिणी-दुर्बलेभ्यः पन्था देयः। धृतं न धारयेद् वस्त्रं पादेनाक्रमते।

अष्टमी-चतुर्दशी-पूर्णिमामावास्यासु ब्रह्मचारी भवेत्। वृथा मांसं भ्रष्टमांसं च न खादेत्। आक्रोशपरिवादपैशुन्यनृशंसाभिधानहीनो नारुन्तुदः स्यात्, हीनादुत्कृष्टमपि नाददीत। परमर्मदोषान्न वदेत्। हीनातिरिक्ताङ्गरूपद्रविणज्ञातिसत्यहीननिन्दितविगर्हिता-न्नाधिक्षिपेत्। नास्तिक्यवेदनिन्दाद्वेषदम्भाभिमानतैक्ष्ण्यानि वर्जयेत्।

परस्मिन्दण्डने न इच्छेत्। क्रुद्धोऽपि न हन्यात्। अन्यत्र भार्यापुत्रदासदासीशिष्य-भ्रातृभ्यः। न ब्राह्मणपरिवादी, न तिथिनक्षत्रदेशिकः स्यात्। कृत्वा मूत्रपुरीषेऽशुचौ रथ्यामाक्रम्य वा पुनः पादौ प्रक्षालयेत्। यावककृसरमांसशष्कुलीपायसमात्मार्थं न कल्पयेत्।

अग्निपरिचारी नित्यं भिक्षां दद्यात्। वाग्यतः प्राङ्मुखोदन्तकाष्ठं प्रशस्तमद्यात्। नाभ्युदितः स्यात्। प्रातरुत्थाय पितरमाचार्यमभिवादयेत्। अकृत्वा दन्तधावनं देव-पूजाकार्यगमनसमागमान्नाचरेत्। अन्यत्र गुरुवृद्धधार्मिकेभ्यः समलो दिशोऽनावलोक्य उदकश्चाच्छिरा न शयीत। अवाक्शिर ऊर्ध्वशिखश्च भग्नावशीर्णान्तर्धानसंयुक्तशयने न तिर्यक् पदाकृष्यासनं प्रमृज्य न विशेत्। सूर्यस्य पूजां कथां भक्तिं कारयेत्, तत्सर्वयमस्य प्राप्नोति धर्मम्।

नित्यं ब्राह्मणं भोजयेत्, कथाकारिणं विशेषतः। अन्यदेते यदखादेत्सर्वमपि। निशायां न स्नायात्, स्नात्वा गात्रं न मार्जयेत्। स्नात्वा नानुलिम्पेत्। न स्नात्वार्द्रवासा तिष्ठेत्। वासो न विधिनुयात्। स्रजो नावकृष्टव्याः। न बहिर्धार्याश्च। रक्तमाल्यं न धार्यं, शुक्लं धार्यं तु अन्यत्र कमलकुवलयाम्लानासनेभ्यः।

स्नातस्य वर्णमांदद्यात्, श्वासविपर्ययं न कुर्यात्। नान्यद्धृतं धारयेत्। न च जीर्णमलिनं, सति सम्भवे अन्यशय्यायामन्यद्रव्याणामन्यदेवतार्चायाम्। कीटकेशाव-पन्नमुद्धृतसारं नाश्नीयादन्यदैवावसनपिदालशाकमुदुम्बरान्नादेत्। अजागव्यमायूर-शुष्कपर्युषितमांसं च। न पाणौ लवणमादद्यात्। श्वादव्यापदं स्पृष्ट्वाभूभ्रूणहेक्षिय तत अर्चलीणाघ्रातं च।

न रात्रौ भुञ्जीथ दधिसक्तून्। श्वोकीसं च वर्जयेत्। बालेन परपुत्रेण च। शाकं प्रातश्च भुञ्जीत नान्तरा न समाहितः। वाग्यतो नैकपात्रश्च नग्नो संविशन्न शब्दकृत्। शेषे न कस्यापि उदकपूर्वमन्नमतिथिभ्यो दत्वा समश्नीयात्। एकपंक्तौ गतानां चेद्दधिमधुसक्तुपायसपानीयं निरस्याश्नीयात्। शेषं न कस्यचिद् दद्यात्। दध्यनुपानं शुक्लाशने न कार्यम्।

अक्रोध, सत्यवादी होना चाहिये। प्राणीगण के प्रति हिंसा तथा असूया का आचरण, अशुचि, खलता तथा आलस्य का परित्याग करना चाहिये। लोष्ट्र नहीं फेंकना चाहिये,

तृण-छेदन नहीं करना चाहिये। नख को साफ रक्खे, सर्वदा जूठन ग्रहण न करे। संशयापन्न मन वाला न हो। सदा अच्छे केश धारण करे।

ब्राह्म मुहूर्त्त में उठकर धर्म के लिये सत् चिन्तन करे। तदनन्तर आचमन करके पूर्व तथा पश्चिम सन्ध्या (प्रातः तथा मध्याह्न सन्ध्या) वन्दन करे।

उदीयमान, अस्तगामी, जलस्थित, मध्याह्नकालीन सूर्य को न देखे। परस्त्री-गमन न करे। मध्याह्नकाल में केश-प्रसादन, दन्तधावन अथवा सूर्य के अतिरिक्त अन्य देवता का पूजन नहीं करे। मल-मूत्र न रोके तथा उन्हें न देखे। असच्चरित्र के साथ वार्त्ता न करे। ग्राम की कर्षण भूमि (खेती भूमि) में मलत्याग न करे। जल में विष्ठा अथवा मूत्र-त्याग न करे। भस्म अथवा अस्थि पर नग्न होकर न जाय। पूर्व की ओर मुख करके अन्नग्रहण न करे तथा कदन्न (कुत्सित या बासी अन्न) भोजन न करे। भोजन करके अग्नि स्पर्शोपरान्त समस्त प्राणों का स्पर्श करे। तुष, केश, भस्म, कपास, अस्थि का स्पर्श न करे। शरीर का मार्जन न करे तथा पसीना-युक्त अवस्था में न रहे।

शान्ति, होम आदि पवित्र कर्म कराये। सुप्त अथवा गमनकारी वृद्ध को न उठाये अर्थात् न बैठाये। भीगे तथा बिना धुले पात्र में भोजन न करे। अग्नि अथवा ब्राह्मण का जूठन-लङ्घन न करे। सूर्य तथा चन्द्र को एक साथ न देखे तथा नक्षत्र की ओर न ताके। वृद्ध को आते देखकर उठकर अभिवादन करके उसे आसन पर बैठाये। चलते समय वृद्ध के पीछे-पीछे चलना चाहिये। टूटे काँसे के पात्र में भोजन नहीं करना चाहिये। नग्न होकर स्नान न करे, नग्न होकर शयन भी न करे। जूठे हाथों से मस्तक का स्पर्श नहीं करना चाहिये। सर के बाल नहीं खींचना चाहिये। दोनों हाथों से माथा नहीं खुजलाना चाहिये। बार-बार डुबकी लगाकर स्नान न करे तथा दो बार स्नान न करे। माथा डुबोकर स्नान करने पर तैल से अंग का स्पर्श न कराये। घृत तथा मधु एक साथ विषतुल्य है। मूँग तथा तिल मिलाकर न खाये (एक साथ न खाये)। उच्छिष्ट अवस्था में अध्ययन तथा अध्यापन न करे। सड़ी गन्धयुक्त वायु में भी अध्ययन तथा अध्यापन नहीं करना चाहिये।

इस प्रसङ्ग में यम द्वारा एक गाथा कही गयी है—जो व्यक्ति उच्छिष्ट अवस्था में पाठ करता है अथवा स्वाध्याय करता है, उसकी आयु नष्ट होती है, उसके पुत्रादि नाक से बोलने वाले होते हैं।

सूर्य, वायु, अग्नि, चन्द्र, जल, गौ, ब्राह्मण तथा नक्षत्र की ओर मूत्रत्याग न करे। दिन तथा सन्ध्या काल में उत्तर की ओर मुख करके, रात्रि में दक्षिण की ओर मुख करके तृणाच्छादित भूमि में कमर ढ़ककर मल-मूत्र का त्याग करे।

आमिष भोजन तथा श्राद्ध का भोजन करके सन्ध्या नहीं करे। ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा सर्पों की अवज्ञा न करे। मिथ्या तथा सत्य द्वारा गुरु को अनुबद्ध करे। गुरु की निन्दा

कदापि न करे। जहाँ गुरुनिन्दा हो रही हो, वहाँ दोनों कान बन्द कर ले अथवा वहाँ से दूर चला जाय। मूत्र-त्यागोपरान्त पैर धोकर जल द्वारा हाथों की भी मार्जना करनी चाहिये। अत्यन्त प्रात:, मध्याह्न में तथा सन्ध्या काल में शूद्रादि के साथ न जाय। गौ, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वृद्ध, भार से दबे, गर्भिणी तथा दुर्बल के लिये मार्ग से बगल होकर उन्हें मार्ग देना चाहिये। बिना धुले वस्त्र न पहने। पैरों से किसी पर आक्रमण न करे। अष्टमी, चतुर्दशी, पूर्णिमा तथा अमावस्या को ब्रह्मचारी रहना चाहिये। वृथा मांस (जिसे देवताओं को अर्पित न किया हो), भ्रष्ट मांस (जीवादि पड़े, कीटाणु पड़े, जीवों द्वारा मारे गये तथा अग्नि पर सेंका गया मांस) कभी न खाये। आक्रोश, निन्दा, चुगली, नृशंसता का त्याग करे। किसी के दिल को चोट न पहुँचाये। हीन लोगों से उत्कृष्ट वस्तु भी ग्रहण न करे। अन्य का गोपन दोष लोगों के समक्ष प्रकट न करे। हीन अंग वाले (अंधे, लंगड़े, अंगरहित) तथा अतिरिक्त अंग जिनका है, उनसे घृणा न करे। जो रूपवान, धनवान, ज्ञाति, झूठे तथा निन्दित एवं विगर्हित हैं, उनसे घृणा न करे। नास्तिक, वेदनिन्दक, द्वेष, दम्भ, अभिमान तथा कठोरता का परित्याग कर देना चाहिये।

अन्य को दण्ड देने की इच्छा न करे। क्रुद्ध होने पर भी आघात न करे। तब भी भार्या, पुत्र, दास-दासी, शिष्य तथा भाईयों पर शासन तो करना ही चाहिये (अनुशासन हेतु)। कभी भी ब्राह्मण की निन्दा न करे। तिथि नक्षत्र गणना कार्य न करे। मल-मूत्र त्याग करके अथवा सड़क से वापस आकर पैर धोना चाहिये। तिल, आधा पका जौ, खिचड़ी, मांस, तण्डुलादि मिश्रित यवागू अथवा पायस अपने लिये तैयार न करे (अर्थात् केवल अकेले न खाये, बाँट कर खाये)।

जो नित्य अग्नि का होम करते हैं, उनको नित्य भिक्षा दे। वाक् संयम करके (मौनी रहकर) पूर्वमुख होकर प्रशस्त दतुअन चबाये। सूर्योदय के पश्चात् सोना नहीं चाहिये। प्रात: उठकर पिता तथा आचार्य को प्रणाम करे। दाँत साफ किये बिना देवपूजा तथा गमनागमन न करे।

गुरु-वृद्ध तथा धार्मिक की ओर एवं सब ओर न देखकर केवल उत्तर पश्चिम की ओर शिर रखकर न सोये अर्थात् गुरु, वृद्ध, धार्मिक की ओर पैर न करे तथा उत्तर एवं पश्चिम की ओर सिर करके न सोये। सर नीचा करके अथवा शिखा ऊपर रखकर, टूटी जीर्ण शय्या पर, पैरों से खींच कर बिना साफ किये आसन पर न बैठे। सूर्य की पूजा-कथा, भक्तिकार्य (सेवाकार्य) कराये। यह सब धर्म यम से प्राप्त होता है (अर्थात् धर्मराज फल देते हैं)।

नित्य ब्राह्मण-भोजन कराये; विशेषत: जो भगवान् की कथा कहते हैं, उनको भोजन कराये। अस्पृश्य द्रव्य को छोड़कर सब कुछ खा सकते हैं। रात्रि में स्नान करना उचित नहीं है। स्नान करके शरीर-मार्जन न करे, स्नानोपरान्त तैलादि न लगाये। स्नान करके

गीले कपड़ों में न रहे। वस्त्रों को उड़ाये (फहराये) नहीं। माला को मसलना, तोड़ना उचित नहीं है। उसे बाहर धारण न करे। रक्तमाला धारण न करे। कमल, नीलपद्म, अम्लान असन पुष्प की माला के अतिरिक्त शुभ्र माला धारण करे।

(यहाँ 'स्नातस्य वर्णमां दद्यात्' का अर्थ स्पष्ट नहीं है)। श्वास का विपर्यय न करे। अन्य का पहना वस्त्र न पहने तथा जीर्ण एवं मलिन वस्त्र का व्यवहार न करे। सम्भव होने पर भी अन्य की शय्या, द्रव्य तथा अन्य के देवता-विग्रह को ग्रहण न करे। कीट-केशादि युक्त तथा सत् निकाले द्रव्य का भक्षण करना उचित नहीं है। अन्य देवता को अर्पित पिदाल शाक, गूलर-प्रभृति तथा बकरा-भेंड़ा-गौ-मयूर का शुष्क तथा बासी मांस न खाये। खाली हाथ पर नमक ग्रहण न करे। (यहाँ 'श्वादव्यापदं स्पृष्ट्वा भूभ्रूणहेक्षिय तत अर्चलीढ़ाघ्रातं च' का अर्थ संदिग्ध तथा अस्पष्ट होने के कारण नहीं दिया जा रहा है)।

रात्रि में दधि एवं सत्तू न खाये। श्वोकीस (?) का भी वर्जन करे। बालक तथा अन्य के पुत्र का भी वर्जन करे। प्रात: शाक का भोजन करे। असमाहित होकर अन्य समय शाक न खाये। वाक् संयम करके एक पात्र में नग्नावस्था में बैठकर कोई शब्द न करे (? तात्पर्य समझ में नहीं आता)। अन्त में किसी अन्य का जल तथा अन्न अतिथियों देकर भक्षण न करे। एक पंक्ति में भोजन करने वालों के साथ दधि-मधु-सत्तू तथा पानीय का भोजन करे। पात्र में बची वस्तु किसी को न दे। दधि को शुभ्र भोजन के साथ मिलाकर ग्रहण करे।

आचम्य चैकहस्तेन परिश्राव्यं तथोदकम्।
अंगुष्ठे चरणस्याथ दक्षिणस्यावसेचनम्।।७।।
पाणिं मूर्ध्नि समाधाय स्पृष्ट्वाग्निं सुसमाहित:।
ज्ञातीनां श्रेष्ठतामेति प्रयोगकुशलो नर:।।८।।

एक हथेली पर जल लेकर आचमन करना चाहिये। तत्पश्चात् दाहिने पैर के अंगूठे पर जल छोड़े। तदनन्तर हाथ को मस्तक पर रखकर सावधान हो अग्नि का स्पर्श करे। इससे प्रयोगनिपुण व्यक्ति ज्ञातिगण में प्रधानता प्राप्त करता है।।७-८।।

आर्द्रपाणिना नाभिघ्राणपाणितलाभिन्न स्पृशस्तिष्ठेत्। पतितकथां दर्शनं संसर्गश्च वर्जयेत्। परापवादमप्रियवचनं न ब्रूयात्। न कस्यचिन्मन्युमुत्पादयेत्। न दिवा मैथुनं गच्छेत्। कन्याबन्धकीमज्ञातां गर्भिणीं व्यङ्गां वृद्धां प्रव्रजितां पतिव्रतीं वर्णोत्कृष्टां निकृष्टवर्णां पिङ्गलीं कुष्ठिनीं योगिनीं चित्रिणीं स्वकुलजां ज्ञातिसम्बन्धहीनामपस्मारिणीं च वर्जयेत्। अगम्यां न गच्छेत्। राजसखावैद्यबालवृद्धमृत्युशरणागतसम्बन्धि ब्राह्मणी तदन्येषां स्त्रियं वन्ध्यां च वर्जयेत्। निष्ठीव्य क्षुत्वा न शुचिर्भवेत्।

वृद्धो गतिरवशन्नो मित्राणि शुकसारिकाः ।
पारावताः पुण्यकृताः गेहे स्युस्तैलपायिकाः ।।९।।

गीली हथेली से पाणितल (हथेली के तल) के अतिरिक्त नाभि तथा नासिका का स्पर्श न करे (अर्थात् हथेली के तल से स्पर्श न करे)। पतितों से वार्त्ता, उनको देखना तथा उनसे संसर्ग रखना छोड़ दे। अन्य की निन्दा न करे तथा अप्रिय वचन न बोले। किसी में क्रोध उत्पन्न नहीं करना चाहिये (क्रोधित न करे)। दिन में मैथुनासक्त न हो। कन्या, पालिता, अज्ञाता, गर्भिणी, अंगहीना, वृद्धा, प्रव्रजिता (संन्यासिनी), व्रतचारिणी, अपनी अपेक्षा उच्च वर्ण वाली, हीन वर्ण वाली, पिङ्गला, कुष्ट रोगग्रस्त, योगिनी, चित्रिणी, अपने वंश में उत्पन्न, जाति-सम्बन्धरहित, अपस्मार रोग से ग्रस्त का वर्जन करे। अगम्या गमन न करे। राजा के सखा, वैद्य, बालक, वृद्ध, मरणोन्मुख—इनकी सम्बन्धान्वित तथा ब्राह्मणी एवं अन्य की स्त्री का भी वर्जन करे। वमन करने तथा नख काटने से पवित्रता नहीं होती। वृद्ध, अवसन्न, मित्र, शुक, सारिका, कबूतर, तैलपक्षी—ये सब घर के लिये मंगलकारी होते हैं।।९।।

सन्ध्यायां स्वाध्यायं भोजनं न च कुर्यात्। न नक्तं पित्राणि, न प्रसाधनं न च पण्यक्रिया कदाचित्कार्या। दैवे पित्र्ये स्वनक्षत्रे च शिरःस्नातो भवेत्। न पृष्ठपदयोरग्निं दद्यात्। प्रेतस्य सन्ध्यायां नोच्चरेत् प्रयत्नतः स्यात्। इच्छामपि कुर्वता दारा रक्ष्याः। न दिवास्वापः आयुषे पूरे निशायाश्च। अवृतो यज्ञं न गच्छेदन्यत्र दर्शनात्। नैको रात्रौ व्रजेत्। अनागतायां पश्चिमसन्ध्यायां गृहमधिवसेत्। मातृपितृवचनं हितमहितं चर्य्यमेव विचार्य्य। धनुर्वेदहस्तिहयपृष्ठरथचर्य्यासु प्रयत्नः कार्य्यः। युक्तिशब्दकलागान्धर्वशास्त्रपुराणेतिहासाख्यानमाहात्म्यचरिताभिज्ञेन भवितव्यम्। आदित्यव्रतं सप्तम्यां चरेत्। न गां पादेन स्पृशेत्। गोरज्जुं न लङ्घयेत्। न्यासविश्वासहारिमधर्म्मोयमहतोगोब्राह्मणस्त्रीषु न शूरः स्यात्, अकृतज्ञश्च। एको मिष्टं नाश्नीयात्। स्त्रीभ्यः स्त्रीबन्धुभ्यश्च वृत्तिं नाश्रयेत्। अत्र गाथाः—

आक्रोशकसमालोके सुहृदन्यो न विद्यते ।
यस्तु दुष्कृतमादाय सुकृतेनाभिशंसति ।।१०।।

सन्ध्या समय में वेदाध्ययन-अध्यापन तथा भोजन न करे। रात में पितृकार्य, प्रसाधन, वाणिज्य आदि कभी न करे। दैवकार्य, पितृकार्य में तथा अपने नक्षत्र में डुबकी लगाकर स्नान करे। पीठ घुमाकर अथवा पैर से अग्नि ग्रहण न करे। सन्ध्याकाल में (भूत) 'प्रेत' शब्द का उच्चारण नहीं करना चाहिये। इच्छापूर्वक सर्वदा स्त्री की रक्षा करना उचित है। दिन में सोना उचित नहीं है। पूर्ण परमायु के लिये रात्रि के प्रथम भाग में भी नहीं सोना चाहिये। देखने के अतिरिक्त अवृत स्थिति में यज्ञस्थल में नहीं जाना चाहिये। रात्रि में एकाकी कहीं न जाय। रात्रि समाप्त न होने पर घर में ही रहना उचित है। माता-पिता का वाक्य हित हो अथवा अहितपूर्ण, उसे विचार कर करे। धनुर्वेद शिक्षा, हाथी तथा

घोड़े की सवारी तथा रथचालन में सदा सावधान रहे। न्यायादि तर्कशास्त्र (युक्ति), शब्द (व्याकरणादि शब्दानुशासन), कला (नृत्यादि), गान्धर्वशास्त्र (गीतादि), पुराण, इतिहास (पुरावृत्त), आख्यान (गल्पादि) तथा माहात्म्य (महिमा से इनकी) चरित से अभिज्ञ रहे। इन्हें जाने।

सप्तमी को आदित्य का व्रत करे। गाय का स्पर्श पैर से न करे। गाय के बाँधने की रस्सी अथवा सिक्कड़ को भी न लाँघे। (यहाँ 'न्यासविश्वासहारिमधर्मोयमहतो' का अर्थ स्पष्ट नहीं है, अतएव अनुवाद नहीं किया गया)। गौ, ब्राह्मण तथा स्त्रीगण के प्रति बहादुरी नहीं दिखाये तथा अकृतज्ञ न हो। अकेले मिठाई न खाये। महिलाओं से तथा स्त्री के बान्धवों से (श्वसुरालय वालों से) जीविका ग्रहण न करे।

इस विषय में कहा गया है कि निन्दक के समान कोई बन्धु नहीं है। वह जिसकी निन्दा करता है, उसका पाप ग्रहण कर लेता है और अपना पुण्य उसे प्रदान कर देता है।।१०।।

कूटसाक्षी न भवेत्। शरणागतं न परित्यजेत्। दानं न कीर्त्तयेत्। बल्वजानां दानेन कांस्यदोहनेन परवत्सेन च गौर्न दोग्धव्या। पत्नीं रजस्वलां नाभिगच्छेत्। शुद्धस्नातां चतुर्थ्यां वा षोडशीं समविषमदिनेषु पुत्रैर्दुहितृकामो निर्विकारोऽधिशयीत। नाग्नाममेध्यं प्रक्षिपेत्।

न वर्षति धावेत्। न च वातेनापचत्। अनिष्ट्वा नवं सस्यं नाद्यत्। शुक्लवस्त्रधारी स्यात्। श्मश्रुकेशनखान्नदीर्घान्न बिभृयात्। नोदके स्वरूपं पश्येत्। नापः परिचक्षीत, भार्यया सह नाश्नीयात्। न तामीक्षेत् सुखासीनामश्नन्तीं क्षुवन्तीं स्पृष्टमैथुनां जृम्भमाणां च परस्त्रियं च नग्नाम्। नाग्निं मुखेन धमेत्। न पादौ प्रतापयेत्। अधस्तान्नोपदध्यात्। नैनं लङ्घयेत्। न पादतः कुर्यात्। न भूमिं प्रविलिखेत्। ष्ठीवनामेध्यलिप्तरुधिरवसास्थीनि न जले क्षिपेत्। शून्यगृहे नैकः शयीत। न चाग्निगुरुदेवद्विजपतिधेन्वध्ययनभोजनेषु दक्षिणपाणिमुद्धरेत्। न वारयेद् गां चरन्तीं परसस्यमादयन्तीं परस्मै नाचक्षीत्। दिवीन्द्रायुधं दृष्ट्वा न कस्यचिद्दर्शयेत्।

अधार्मिकदेशे न वसेत्। व्याधिबहुलो नैको वीथी प्रपद्येत्। पर्वते न चिरं वसेत्। वृथा चेष्टामञ्जलिना जलपानमुत्सङ्गेन भक्ष्याभक्षणं, कुतूहलं त्यजेत्। नृत्यगीतवादित्रास्फोटनाक्ष्वेलनानि च विरक्तोऽपि नेक्षेत। कांस्यभाजनेन न पादं प्रक्षालयेत्, पादेन च वन्दितश्चादिभिर्न व्रजेत्। बालातपप्रेतधूमसंमार्जनीरजांसि परिहरेत्। न द्यूतं क्रीडेत्। न स्वयमुपानहौ हरेत्। शयनस्थो नाश्नीयात्। न पाणिस्थाने चासनेन बाहुभ्यां नदीं प्रतरेत्। न वृक्षामारोहेत्। न सन्दिग्धां नावमारोहेत्। न कूपमवतरेत्। न देवद्विजगुरुराजस्नातकाचार्य्यमैथुनवासः, न च भुक्त्वा स्नायात्, नातुरौ न महानिशि, नाविज्ञाते जलाशये, न वासोभिरजस्त्रम्। वैरीतत्सहायाधार्मिकतस्करसेवापरिहर्त्तव्या।

सतीप्रियं सत्यं ब्रूयात्। सत्यमप्रियं प्रियमनृतं च न ब्रूयात्। शुष्कवैरवचनं वर्जयेत्। सर्वं मङ्गलाचरणयुक्तः स्यात्। सर्वगात्राणि नखानि नाभिपाणितलेन न स्पृशेदमन्त्रतः। रहस्यानि रोमाणि वर्जयेत्। देवद्विजोत्तमगुरून् सेवयेत्, ईश्वरं च रक्षार्थम्। परवशकर्म जह्यात्। आत्मवशं कुर्वीत सुखार्थी। अन्तरालपरितोषकृद्धार्मिकः स्यात्। अर्थकामौ धर्मविवर्जितौ त्याज्यौ। वाक्पाणिपादनेत्रचपलो न भवेत्। परद्रोही च ऋत्विक्पुरोहिताचार्यमातुलातिथिसाश्रितवृद्धबालातुरवैद्यज्ञातिसंबन्धिबांधव-मातृपितृभार्यादुहितृभिर्विवादं न समाचरेत्। गोहिरण्यभूम्यश्ववासोऽन्नतिलघृता-न्यविद्वान्न प्रतिगृह्णीयात्। परकीयनिखातेषु न स्नायात्। वापीं च सप्तपिण्डानुद्धृत्य। नदीदेवखातप्रसवणेषु स्नानं कुर्य्यात्।

क्रुद्धमन्दातुरप्रेष्यगणिकाविद्वज्जुगुप्सितं स्तेनतक्षकवार्धुषिकगायककदर्य-दीक्षितम्। निन्द्यबद्धाभिशस्तशठपुंश्चलीबन्दिचिकित्सकम्, पूगान्नशूद्रोच्छिष्टशुष्क-पर्युषितावक्षतुं नाद्यात्। द्विषतश्चायुष्कामः सुवर्णकारान्नं परिहरेत्। अनध्यायिनं वर्जयेत्। तृप्त्यतिशयसुखप्रजा चक्षुर्भूत्यायुरग्रवेश्मरूपचन्द्रसूर्यसालोक्येष्टभार्याशा-श्वतसर्वैश्वर्यब्रह्मलोकावाप्तिकामः सूर्यनिमित्तछत्रोपानहौ च दद्यात्। उत्तमोत्तमसम्बन्धा-वित्तकुलोन्नतिकामः शयनगृहकुशबन्ध्यपुष्पोदकमणिदधिमत्स्यपयोमांसशाका निरत्निर्नुदेत्। देवतातिथिगुरुभूत्यार्चनोद्धरणे कामः अध्यात्मज्ञाननिरतः स्यात्।

**इति ते कीर्तितः सम्यगाचारः पुण्यलक्षणः।
आयुर्लक्ष्मीयशोभूतिकारणं ब्रह्मनिर्मितम् ॥११॥**

कूटसाक्षी (जो मिथ्या प्रतारणामूलक गवाही देता है) न बने। शरण में आये का त्याग न करे। दान करके उसका बखान नहीं करना चाहिये। राहु का दान करे। काँसा के पात्र में गोदोहन न करे। अन्य गाय के बछड़े को लगाकर गाय का दोहन नहीं करे। ऋतुमती पत्नी के साथ मैथुन न करे। शुद्ध स्नाता पत्नी के साथ चतुर्थ दिन या सोलहवें दिन समान अथवा विषम दिन पुत्र अथवा कन्या की कामना से निर्विकार होकर शयन करे। नग्न स्त्री पर अमेध्य वस्तु का क्षेपण नहीं करना चाहिये।

बरसात में न दौड़े। हाथ हिलाकर हवा करके अन्न न पकाये। अनिष्टकारी पुरातन शस्य न खाये। शुभ्र वस्त्र पहने। दाढ़ी, बाल तथा नख को न बढ़ाये। जल में अपनी आकृति न देखे। जल को (पशु के समान) जीभ से न चाटे। स्त्री के साथ एक साथ भोजन न करे। सुखासीना, भोजनकारिणी, भूखी, स्पृष्ट मैथुना तथा जंभाई लेती स्त्री को एवं नग्न परस्त्री को न देखे।

सीधे मुख की हवा से अग्नि को न जलाये (बाँस की नली से फूँक मारे)। अग्नि से ऊपर पैर न सेंके। देह के नीचे की ओर अग्नि का ताप ग्रहण नहीं करना चाहिये। अग्नि को लाँघना उचित नहीं है। भूमि पर नहीं लिखे। थूक, अमेध्यलिप्त वस्तु, रक्त, वसा

तथा अस्थि को जल में न फेंके। शून्य गृह में एकाकी न सोये। अग्नि-गुरु-देवता-ब्राह्मण, पति, धेनु, अध्ययन तथा भोजन—सबसे दाहिने हाथ से व्यवहार करे। तृण खा रही गाय को हठात् रोकना नहीं चाहिये। यदि वह अन्य की फसल खा रही हो, तब भी उस व्यक्ति को न बताये। आकाश में इन्द्रधनुष देखकर अन्य को नहीं दिखलाना चाहिये कि यह देखो इन्द्रधनुष है।

अधार्मिक देश में न रहे। व्याधिग्रस्त अवस्था में एकाकी यात्रा न करे। पर्वत पर दीर्घकाल-पर्यन्त नहीं रहना चाहिये। वृथा चेष्टा, अञ्जली से जल पीना, गोद में रखकर भोजनादि करना तथा कुतूहल का परित्याग करे। नृत्य-गीत-वाद्य-वीरों का बाहुशब्द तथा कुत्सित गायन अथवा क्रीड़ा आदि को विरक्त त्यागी स्थिति हो जाने पर भी न देखे। कांस्य पात्र में पैर न धोये। पैदल स्थिति में शब्दकारी अश्वादि के साथ न चले। उदीयमान सूर्य, श्मशान की धूम, झाड़ू की धूल (हवा) का त्याग करे। लेटे हुये न खाये। हथेली पर अथवा आसन पर रखकर न खाये। हाथ से (पानी काटकर अर्थात् तैरकर) नदी पार नहीं करना चाहिये।

वृक्ष पर न चढ़े। सन्देहप्रद नौका पर न बैठे। कूयें में न उतरे। देवता-ब्राह्मण-गुरु-राजा-विद्यार्थी तथा मैथुनकारी के साथ न रहे। भोजनोपरान्त स्नान न करे। अस्वस्थावस्था में, गम्भीर रात में तथा अज्ञात जलाशय में स्नान नहीं करना चाहिये। अधिक वस्त्र पहन कर भी स्नान न करे। शत्रु, शत्रु के सहायक, अधार्मिक तथा चोर की सेवा करना छोड़ देना चाहिये।

सदा प्रिय सत्य बोले। अप्रिय सत्य तथा प्रिय झूठ कदापि नहीं बोलना चाहिये। अनर्थक शत्रुता तथा अनर्थक वाक्य का वर्जन करना चाहिये। समस्त मंगल आचरण करे। समस्त अंग, नख, नाभिदेश तथा पाणितल का मन्त्र के विना स्पर्श न करे। गोपन स्थान तथा समस्त रोमों का वर्जन करे। देवता, ब्राह्मण तथा गुरु की पूजा करनी चाहिये। अपनी रक्षा हेतु ईश्वर की सेवा करना उचित है। दूसरे के अधीन होकर कार्य करना छोड़ दे। सुखाभिलाषी अपने अधीन होकर कार्य करे। अन्तरात्मा को सन्तोष देने वाले विधान का पालन करके धार्मिक बने। धर्महीन अर्थ तथा काम का त्याग करना ही उचित है। वाणी, हाथ, पैर तथा नेत्र को बेकार न नचाये।

अन्य के साथ द्रोह का आचरण नहीं करना चाहिये। पुरोहित, आचार्य, मामा, अतिथि, आश्रित, वृद्ध, बालक, आतुर, वैद्य, ज्ञाति, सम्बन्धी, बान्धव, माता-पिता, भ्राता, विमाता, कन्या तथा भृत्य के साथ विवाद नहीं करना चाहिये। गौ, स्वर्ण, भूमि, अश्व, वस्त्रादि, अन्न, तिल तथा घृत को जाने बिना इन्हें ग्रहण न करे। दूसरे के खोदे जलाशय में स्नान नहीं करे। सप्त पिण्ड का दान किये बिना दूसरे के जलाशय में स्नान नहीं करना चाहिये। नदी, अपने-आप जो जलाशय बना है तथा प्रस्रवण में स्नान करना उचित है।

क्रुद्ध, दुष्ट जन, आतुर, दास, गणिका, विद्वान् के निन्दक, चोर, सूत्रधार, गायक तथा निन्दित का अन्न ग्रहण न करे। निन्दक, अभिशप्त, शठ, पुंश्चली (वेश्यादि), बन्दी तथा चिकित्सक का अन्न ग्रहण न करे। पूगान्न (सुपारी-मिश्रित अन्न), शूद्र का जूठा, शुष्क-बासी-सड़ा, मिट्टी में पड़ा (हिचकी के समय मिट्टी में गिरा) अन्नादि ग्रहण नहीं करना चाहिये।

आयु चाहने वाला व्यक्ति शत्रु का तथा स्वर्णकार का अन्न त्याग दे। जो अध्ययन नहीं करते, उनका साथ न करे। तृप्ति, अतिशय सुख, पुत्रादि, चक्षु, उन्नति, आयु, गृह, रूप, चन्द्र, सूर्य, सालोक्य, अभिलषित वस्तु, भार्या, नित्य ऐश्वर्य तथा ब्रह्मलोक-प्राप्ति की कामना से सूर्य को छत्र तथा पादुका देनी चाहिये। उत्तम सम्बन्ध, धन-सम्पत्ति, वंश की उन्नति-कामना, शय्या, गृह, कुशबन्ध, पुष्प, जल, मणि तथा दधि, मत्स्य, दुग्ध, मांस, शाक का दान करे। देवता, अतिथि, गुरु-सेवक की अर्चना द्वारा उद्धार की कामना से निरन्तर आत्मा के सम्बन्ध में चेष्टारत रहना चाहिये।

हे साम्ब! तुमसे यह पुण्यलक्षण आचार की वर्णना सम्यक् रूप से कहा, जो आयु, धन-सम्पत्ति, फल तथा उन्नति का कारण है तथा ब्रह्मा द्वारा निर्मित है।।११।।

आचारयुक्तः पुरुषः प्रेत्य चेह च मोदते।
आचाराद्वर्द्धते ह्यायुराचारो हन्त्यलक्षणम्।।१२।।
दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निन्दितः।
दुष्टभोगी च सततं व्याधितोऽल्पायुरेव च।।१३।।

आचारपरायण व्यक्ति परलोक तथा इहलोक में सुख प्राप्त करते हैं। आचार द्वारा आयु की वृद्धि होती है और आचार अलक्षण का विनाश करता है। दुराचारी पुरुष इस जगत् में निन्दित होता है। वह दुष्ट भोगों तथा व्याधि का सर्वदा भोग करके अल्पायु हो जाता है।।१२-१३।।

तस्माद् भवेत् सदाचारः समुदा श्रीरवेर्नरः।
देवस्य प्रियतामेति लक्ष्मीं विन्दति निश्चलाम्।।१४।।

इति श्री साम्बपुराणे आचारलक्षणं नाम चतुश्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

●

अतएव लोक आनन्द से सूर्य के सदाचार से सम्पन्न हों। इससे सूर्यदेव की अचल सम्पदा तथा प्रीति मिलती है।।१४।।

श्री साम्बपुराणान्तर्गत सदाचार कथन नामक चौवालीसवाँ अध्याय समाप्त।

●

पञ्चचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

(छत्र-पादुकयोर्दानफलम्)

साम्ब उवाच

इदमुक्तं त्वया ब्रह्म छत्रं सूर्येण निर्मितम्।
उपानहौ च यो दद्याच्छक्रलोकं स गच्छति ॥१॥
एतदाचक्ष्व भगवन् कथं सूर्यविनिर्मितम्।
छत्रपादुकयोर्दानमध्वतान्तर्हि जायते ॥२॥

साम्ब कहते हैं—आपने बतलाया है कि सूर्य ने छत्र तथा पादुका का निर्माण किया है तथा जो छत्र तथा पादुका दान करता है, वह इन्द्रलोक जाता है। हे भगवन्! अब यह कहिये कि किस प्रकार सूर्य-विनिर्मित छत्र तथा पादुका-दान के फल से द्विजत्व प्राप्त होता है।।१-२।।

नारद उवाच

एतत्ते संप्रवक्ष्यामि यथावृत्तमिदं पुरा।
जमदग्निः किल शरान् पुरा चिक्षेप भार्गवः ॥३॥
तान् क्षिप्तान् रेणुका तस्य भानोर्जाज्वल्य तेजसः।
आनीयासीददात्तस्य सा च शीघ्रमनिन्दिता ॥४॥
अव्यक्तेन सुशब्देन ज्यातिलस्य शरस्य च।
प्रहृष्टः सम्प्रचिक्षेप सा च प्रत्याजहार तम् ॥५॥

नारद कहते हैं—इस विषय में पूर्वकाल में जो घटना घटित हो चुकी है, वह तुमसे कहता हूँ। भार्गव जगदग्नि ऋषि बाण छोड़ रहे थे और उनकी पत्नी अनिन्दिता रेणुका सूर्य के जाज्वल्य तेज में भी उन तीरों को शीघ्र उनके पास लाती जा रही थीं। तदनन्तर (तीर पाकर) वे पुनः धनुष की ज्या खींचकर बाण छोड़ते और रेणुका पुनः वे तीर लाकर उन्हें देती जा रहीं थीं।।३-५।।

ततो मध्याह्नमारूढे ज्येष्ठामूले दिवाकरे।
सायकान्यान् द्विजः क्षिप्त्वा रेणुकामिदमब्रवीत् ॥६॥
गच्छानय विशालाक्षि शरानेतान्धनुश्च्युतान्।
यावदेतान्पुनः सुभ्रू क्षिपामीति मुनिर्वदन् ॥७॥
गच्छन्ती सातुरा च्छायां वार्क्षीमाश्रित्य भामिनी।
तस्यौ सूर्यांशुसन्तप्तशिरःपादाम्बुजद्वया ॥८॥

स्थित्वा तत्र मुहूर्त्तं सा भर्त्तुः शापभयाच्छुभा।
गत्वादाय शरान् भूयस्तस्मै दद्याद् यशस्विनी॥९॥

तत्पश्चात् एक समय ज्येष्ठ मास के मध्याह्न काल में ब्राह्मण जमदग्नि तीर छोड़ते हुये रेणुका से बोले—हे विशालाक्षि! धनुष से छोड़े इन तीरों को लाओ, जिससे मैं उन्हें पुनः छोड़ सकूँ। इस प्रकार दौड़ते-दौड़ते रेणुका का सूर्यकिरण से मस्तक तथा चरणद्वय सन्तप्त हो गया और वे कातर अवस्था में वृक्ष के नीचे बैठ गयीं। कल्याणी रेणुका स्वामी के शाप के भय से मुहूर्त्तमात्र में ही वहाँ से उठीं और पुनः तीर ला-लाकर स्वामी को देने लगीं।।६-९।।

स तामृषिश्च प्रस्विन्नां धिया वेदितवेदनाम्।
जगौ वचनमारुष्टः किञ्चिरेणागता ह्यसि॥१०॥

ऋषि ने ध्यान से उन्हें पसीने से लथपथ देखकर उनकी वेदना के प्रति आकृष्ट होकर कहा—क्यों विलम्ब हुआ?।।१०।।

रेणुकावाक्यमाहेदं चण्डांशुकरपीडिता।
शिरःपादम्प्रतप्तं मे सूर्यतेजोभिरुद्धतैः॥११॥
वृक्षच्छायागता तस्मात् चिरमेतन्मया कृतम्।
श्रुत्वैवं जमदग्निस्तु क्रुद्धः सूर्याय तापिने॥१२॥

रेणुका ने उत्तर दिया—'मैं प्रचण्ड सूर्यकिरणों से पीड़ित हो गयी। सूर्य के तेज से मेरा मस्तक तथा पैर प्रतप्त हो जाने के कारण वृक्ष की छाया में मैं बैठ गयी, अतएव विलम्ब हो गया'। यह सुनकर जमदग्नि तापदायक सूर्य के प्रति क्रोधित हो उठे।।११-१२।।

स विस्फूर्ज्य धनुर्धीमान् गृहीत्वा सायकान् बहून्।
अतिष्ठत् सूर्यमभितो यतो याति ततो सुखम्॥१३॥
द्विजरूपं समास्थाय सूर्योऽभ्येत्य वचोऽब्रवीत्।
किमर्थं रुषितोऽसि त्वं किं ते सूर्योऽपराध्यति॥१४॥
आदत्ते रश्मिभिः सूर्यो जलं सर्वजगत्स्थितम्।
आदाय स जलं देवो वर्षाकाले प्रवर्षति॥१५॥
ततोऽन्नं जायते विप्र मानुषाणां सुखावहम्।
अन्नं प्राण इति प्रोक्तं वेदे च परिपठ्यते॥१६॥

बुद्धिमान् जमदग्नि ने धनुष खींचकर अनेक तीर लेकर सूर्य की ओर खड़े हो गये और सूर्य जिधर-जिधर घूम रहे थे, उस-उस ओर मुख करके चलने लगे। तत्पश्चात् सूर्यदेव ब्राह्मण का रूप धारण करके आये और कहा कि आपने क्यों कष्ट किया? सूर्य का क्या अपराध है? समस्त जगत् के जल को सूर्य अपनी किरणों से ग्रहण करके उस जल

का पुनः वर्षाकाल में वर्षण करते हैं। हे ब्राह्मण! उससे मनुष्य को सुख देने वाला अन्न उत्पन्न होता है और अन्न ही प्राण कहा जाता है। वेद में भी ऐसा पाठ है।।१३-१६।।

ततो लोकहितार्थाय रश्मिभिः परिवारितः।
सप्तद्वीपानिमान् ब्रह्मन् वर्षेणाभिप्रवर्षति।।१७।।
ततस्तदौषधीनां च वीरुधां पत्रपुष्पजाम्।
सर्वं वर्षाभिनिर्वृत्तमन्नं सम्भवति द्विज।।१८।।
भवन्ति जातकर्माणि व्रतोपनयनानि च।
गोदाननिवहाश्चैव तथा वर्णसमृद्धयः।।१९।।
सत्राणि दानानि तथा संयोगाबीजसञ्चयाः।
अनन्ताः सम्प्रवर्त्तन्ते यथा त्वं वेत्सि भार्गव।।२०।।

इसीलिये जनकल्याणार्थ सूर्यदेव अपनी रश्मि द्वारा जल खींचते हैं। हे ब्राह्मण! वे सप्त द्वीपों में वर्षा ऋतु में प्रबल जल-वर्षण करते हैं। इसके पश्चात् क्रमशः औषधि तथा लता-गुल्म का पत्र-पुष्प जन्म लेता है। हे द्विज! समस्त वर्षा-जल से अन्न उत्पन्न होता है। तदनन्तर क्रमशः इसके फल से जातकर्म, व्रत, उपनयन तथा गोदानादि कार्य होते हैं। फलस्वरूप सभी वर्ण समृद्ध हो जाते हैं। यज्ञ-दान-संयोग-बीजसंचय सभी अन्न से ही सम्भव होता है। हे भार्गव! इसे आप अच्छी तरह से जानते हैं।।१७-२०।।

रमणीयानि यावन्ति वर्तन्ते यानि कानिचित्।
तावन्त्यन्नात्सम्भवन्ति विदितं कीर्तयामि ते।।२१।।
सर्वं हि वेत्सि विप्र त्वं यदेतत् कीर्तितं मया।
या चेत्त्वाहं भृगुश्रेष्ठ! किं त्वं सूर्याय रूष्यति।।२२।।
एवं तदोच्यमानो वै भास्करेण महात्मना।
जमदग्निर्महातेजा कैङ्कर्ये प्रत्यपद्यत।।२३।।

जो कुछ रमणीय है, वह सब अन्न से उत्पन्न होता है। इसे आप जानते हैं। हे ब्राह्मण! मैंने जो कुछ कहा है, वह सब आप जान लीजिये। हे भृगुश्रेष्ठ! मैं आपसे पूछता हूँ कि आप सूर्य से क्यों क्रोधित हैं? महात्मा भास्कर (ब्राह्मणरूपी) के यह कहने पर महातेजस्वी जमदग्नि भृत्यभाव से अवनत हो गये।।२१-२३।।

ततः स भगवान् देवो मुनिमग्निसमन्वितम्।
सूर्यो मधुरया वाचा तमिदं पुनरब्रवीत्।।२४।।
चलं निमित्तं विप्रर्षे सदा सूर्यस्य गच्छतः।
कथं चलं वेत्स्यसि त्वं सदा यान्तं दिवाकरम्।।२५।।

तदनन्तर भगवान् सूर्यदेव अग्नितुल्य मुनि से मधुर वाक्य में फिर बोले—हे विप्रर्षि! सर्वदा गमनकारी सूर्य की कार्यवशात् चलमान अवस्था है। सदा गम्यमान सूर्य को आप कैसे जानते हैं।।२४-२५।।

एवं ब्रुवाणं देवं तं सूर्यं ब्राह्मणरूपिणम्।
विज्ञाय ज्ञानयुक्तात्मा इदं वचनमब्रवीत्।।२६।।
स्थिरं रविं चलं वापि जानामि ज्ञानचक्षुषा।
अवश्यं विनयाध्यानं कार्यमद्य त्वयाऽनघ।।२७।।
अपराह्णे निमेषं हि तिष्ठसि त्वं दिवाकर।
तत्र वेत्स्यामि सूर्यं त्वां नास्ति मेऽत्र विचारणा।।२८।।

ब्राह्मणरूपी सूर्य के ऐसा कहने पर ज्ञानयुक्तात्मा ऋषि उनसे इस प्रकार कहने लगे—रवि को स्थिर अथवा चञ्चल मैं ज्ञाननेत्रों से देखता हूँ। हे निष्पाप! आज आपसे (सूर्य के) कार्य का वर्णन सुनकर मैं अपने क्रोध को रोक रहा हूँ। हे दिवाकर! अपराह्न काल में आप निमेष मात्र के लिये स्थिर हो जाते हैं। हे सूर्य! मैं तब आपको जान पाया हूँ। इस सम्बन्ध में मेरे मन में कोई सन्देह नहीं है।।२६-२८।।

श्रीसूर्य उवाच

असंशयं मां विप्रर्षे वेत्स्यसि धन्विनां वर।
उपकारिणं हि मां विद्धि भवतो गोचरं गतम्।।२९।।
तं सर्वलोकरक्षायै प्रवृत्तं मां दुरासदम्।
दीप्तं रश्मिसहस्रेण ज्ञातवान् ज्ञानचक्षुषा।।३०।।

श्री सूर्यदेव कहते हैं—हे धनुर्धारियों में श्रेष्ठ विप्रर्षि! आपने निःसंदेह मुझे जान लिया है। आपने मुझे उपकारी माना है, मैं आपकी दृष्टि के सम्मुख विषयीभूत (प्रत्यक्ष) हो गया। मैं समस्त लोकों की रक्षा में प्रवृत्त हूँ। सहस्र रश्मि से दीप्त हूँ। मुझ दुरासद को तुमने ज्ञाननेत्रों से जाना है।।२९-३०।।

ततः प्रहस्य भगवान् जमदग्निरुवाच ह।
भास्करं प्रीतया दृष्ट्या दृष्ट्वा लोकप्रतापनम्।।३१।।

तदनन्तर सौभाग्य से लोकसमूह को ताप देने वाले सूर्य को देखकर प्रसन्न होकर भगवान् जमदग्नि हास्यपूर्ण मुद्रा में बोले।।३१।।

तापस्यास्यापगमने समाधिं तु विचिन्तय।
यथा सुखेन गमनं परमक्षय्यमेव च।।३२।।
छत्रं द्विजातये दद्यात् स प्रेत्य तु सुखी भवेत्।
न च ते हन्ति मम क्रोधो नाभिकार्यः सुरोत्तमः।।३३।।
मद्गोचरगतश्चापि सर्वलोकहितप्रदः।

ततः सूर्यो ददौ तस्मै छत्रोपानहमाशु वै ।।३४।।
उवाच स मुनिश्रेष्ठमिदं वचनमुत्तमम् ।
महर्षे शिरसस्त्राणं छत्रं मद्रश्मिवारणम् ।।३५।।
प्रतिगृह्णीहि पद्भ्यान्तु धारणार्थं च पादुके ।
अद्य प्रभृति चैवाऽस्मिंल्लोके सम्प्रचरिष्यति ।।३६।।

हे सुरोत्तम! इस ताप के चले जाने पर आप समाधि में चिन्तन करें, जिससे सुख से गमन हो सके तथा वह अक्षय हो। ब्राह्मण को छत्रदान करने से (व्यक्ति) परलोक में सुखी होता है। आपके प्रति मेरा कोई क्रोध नहीं है। मेरी दृष्टि के सम्मुख प्रकट होकर भी आप समस्त लोक का हित करने वाले हैं। तदनन्तर जमदग्नि को सूर्यदेव ने शीघ्रता से छाता तथा पादुका प्रदान किया और उन्होंने (सूर्यदेव ने) मुनिश्रेष्ठ से कहा—महर्षि! मेरे ताप से छुटकारा पाने के लिये मस्तक का रक्षण करने वाला यह छत्र (छाता) तथा दोनों पैरों में धारण करने हेतु यह पादुकायुगल धारण कीजिये। आज से यह जगत् में प्रचारित होगा।।३२-३६।।

पुण्यकेष्वपि सर्गेषु परमक्षय्यमेव च ।
छत्रं द्विजाय यो दद्यात् स प्रेत्य सुखमेधते ।।३७।।
शक्रलोके च वसति ह्यप्सरोभिः समावृतः ।।३८।।
उपानहौ च यो दद्यात् श्लक्ष्णे स्नेहसमन्विते ।
गोलोके स मुदायुक्तो वसति प्रेत्य मानवः ।।३९।।

पुण्य कार्य में यह परम अक्षय (पुण्य कार्य) है। जो ब्राह्मण को छत्रदान करेगा, उसे परलोक में सुख-वृद्धि होगी तथा इन्द्रलोक में अप्सराओं से परिवृत होकर वह निवास करेगा। सुन्दर नरम पादुका जो दान करेगा, वह परलोक में अर्थात् गोलोक में सानन्द निवास करेगा।।३७-३९।।

एवमुक्त्वा तु भगवान् भास्करो लोकपावनः ।
शान्तयित्वा द्विजश्रेष्ठं तत्रैवान्तरधीयत ।।४०।।
मयापि ते यदुश्रेष्ठ कथितं पुण्यवर्धनम् ।
छत्रपादुकयोर्दानं यथा सूर्येण भाषितम् ।।४१।।

इति श्रीसाम्बपुराणे छत्रपादुकादानफलवर्णनं नाम पञ्चचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

●

यह कहकर भगवान लोकपावन भास्कर ब्राह्मण जगदग्नि को सान्त्वना देकर वहीं अन्तर्धान हो गये। हे यदुश्रेष्ठ! इस प्रकार सूर्य ने जैसा कहा था, मैंने भी तुमसे उस पुण्यवर्धक छत्र तथा पादुकादान का वर्णन किया।।४०-४१।।

श्री साम्बपुराणान्तर्गत छत्र-पादुकादानफल नामक पैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त

●

षट्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः
(सप्तमीकल्पः)

साम्ब उवाच

भगवन् श्रोतुमिच्छामि सप्तम्यास्तु विधिक्रमम्।
सर्वांस्तामानुपूर्व्येण कथयस्व महामुने ॥१॥

साम्ब कहते हैं—भगवन्! सप्तमी सूर्यपूजन की विधि सुनने की इच्छा हो रही है। हे महामुनि! उसका आनुपूर्विक वर्णन करिये।।१।।

नारद उवाच

शृणु साम्ब महाबाहो सप्तमीनां विधिं परम्।
तमहं कीर्तयिष्यामि भक्त्या यत् परिपृच्छ्यते ॥२॥
तुभ्यं यदुकुलश्रेष्ठ यथा ख्यातं विवस्वता।
शुक्लपक्षे रविदिने प्रवृत्ते चोत्तरायणे ॥३॥
पुन्नामधेयनक्षत्रे गृह्णीयात् सप्तमीव्रतम्।
ऋषिभिर्ज्ञानसम्पन्नैः सर्वकामफलप्रदा ॥४॥
सप्तम्यः सप्त कथितास्तासां नामानि मे शृणु।
अर्कसम्पुटकैरेका द्वितीया मरिचैस्तथा ॥५॥
तृतीया निम्बपत्रैस्तु चतुर्थी फलसप्तमी।
पञ्चम्यनादिनी स्यात्तु षष्ठी विजयसप्तमी।
सप्तमी कामिका नाम विधिमासां निबोध मे ॥६॥

देवर्षि नारद कहते हैं—हे महाबाहु साम्ब! सप्तमी तिथि की श्रेष्ठ विधि को सुनो। तुमने भक्तिपूर्वक जो पूछा है, उसका वर्णन तुमसे करता हूँ। हे यदुकुलश्रेष्ठ! सूर्यदेव ने जैसा कहा था, वह तुमसे मैं कहता हूँ। उत्तरायण होने पर शुक्ल पक्ष के रविवार की पुष्य नक्षत्र वाली सप्तमी को ग्रहण करो (अर्थात् उस दिन पूजन करो)।

ज्ञानयुक्त ऋषिगण ने सात प्रकार की सप्तमी की बात कही है। उसका नाम मुझसे सुनो। अर्कसम्पुट द्वारा प्रथम, मरिच द्वारा द्वितीय, नीम के पत्ते द्वारा तृतीय, चतुर्थ है—फलसप्तमी (फल द्वारा), पञ्चम है—अनादिनी सप्तमी। षष्ठ है—विजयसप्तमी तथा सप्तम है—कामिका सप्तमी। अब इनका विधान मुझसे श्रवण करो।।२-६।।

सर्वासु ब्रह्मचारी स्याच्छौचयुक्तो जितेन्द्रियः ।
सूर्यार्चनपरो दान्तो जपहोमसमन्वितः ।।७।।
पञ्चम्यामेव पुरुषः कुर्यान्निर्यासमात्मनः ।
षष्ठ्यां न मैथुनं गच्छेन्मधुमांसानि वर्जयेत् ।।८।।

सभी सप्तमियों में ब्रह्मचारी होकर, शौचयुक्त होकर, जितेन्द्रिय रहकर सूर्य के अर्चनपरायण होकर यम, बहिरिन्द्रिय संयत (दान्त) होकर जप तथा होमपरायण हो जाय। पञ्चम सप्तमी को आत्मसंयम करे। षष्ठ सप्तमी को मैथुन-मधु तथा मांस का वर्जन करना चाहिये।।७-८।।

अर्कसम्पुटमेकैकं प्रथमायां विधानवित् ।
अन्यद्दत्तमभुञ्जानः सप्तम्यां भक्षयेन्नरः ।।९।।
एकैकवृद्धानि पुनर्मरिचानि च भक्षयेत् ।
तथैव निम्बपत्राणि परमं व्रतमास्थितः ।।१०।।

विधान का ज्ञाता व्यक्ति अर्कसम्पुट के एक-एक में (?) प्रथमतः दूसरे के द्वारा दिया भक्षण न करके (?) सप्तमी को भक्षण करे। इसका तात्पर्य यह प्रतीत होता है कि अर्कसम्पुट सप्तमी को अन्य वस्तु का भक्षण न करे। द्वितीय में एक-एक की वृद्धि करके अब (अर्कसम्पुट के अनन्तर) मरिच का भक्षण करे। तृतीय में व्रत-पालनार्थ निम्ब पत्र का भक्षण करे।।९-१०।।

फलाख्यायां फलेनैव आमे नात्र विधीयते ।
अनादिन्यामोदनेन रहितमप्यनाश्नीयात् ।।११।।

फलाख्य चतुर्थ सप्तमी में फल-भक्षण द्वारा व्रत करे। इसमें बिना पकाये द्रव्य ग्रहण का विधान है। अनादिनी सप्तमी में अन्नरहित होने पर भी यहाँ भक्षण करे (क्या भक्षण करे? स्पष्ट नहीं है)।।११।।

अहोरात्रं वायुभक्षः कुर्याद्विजयसप्तमीम् ।
अथैकैकां सप्तमीं तु प्रतिपक्षे विचक्षणः ।।१२।।

दिन-रात वायु भक्षण द्वारा विजयसप्तमी व्रतानुष्ठान होता है। विचक्षण व्यक्ति प्रत्येक पक्ष में इस प्रकार का व्रत करे।।१२।।

कृत्वा विधानकुशलस्तुतः कुर्वीत कामिकाम् ।
आसां लिखित्वा नामानि पत्रकेषु पृथक्-पृथक् ।।१३।।
तानि सर्वाणि पत्राणि प्रक्षिपेन्नवके घटे ।
तदर्थं यो न जानाति बालो वान्योऽपि वा नरः ।।१४।।
तेनैवोद्धारयेदेकं तत्कुर्यादविचारयन् ।
तेनैव विधिना कुर्यात् पक्षे पक्षे विचक्षणः ।।१५।।

विधानकुशल व्यक्ति ऐसा करके कामिका सप्तमी व्रत करे। इन सप्तमियों का नाम पृथक्-पृथक् पत्ते पर लिखकर एक नये घट में छोड़े। इसका अर्थ जो नहीं जानता, वह बालक अथवा अन्य नर है। उसमें से एक-एक को निकाले। इसमें कोई विचार नहीं करना चाहिये। विचक्षण व्यक्ति इस प्रकार के विधान से प्रत्येक पक्ष में अनुष्ठान करे।।१३-१५।।

सप्तैव यावत् संप्राप्ता विज्ञेया सा तु कामिका।
इत्येता सप्त सप्तम्यः स्वयं प्रोक्ता विवस्वता ।।१६।।

जब सातो प्राप्त हो जाती हैं, तब उसे ही कामिका सप्तमी कहते हैं। इन सातों का वर्णन स्वयं सूर्यदेव ने किया है।।१६।।

कुर्वीत यो नरः साम्ब सर्वपापैः प्रमुच्यते।
अर्कसम्पुटकैर्वित्तं मरिचैः प्रियसङ्गमम् ।।१७।।

हे साम्ब! जो व्यक्ति इन सातो सप्तमी के व्रत का अनुष्ठान करता है, वह समस्त पापों से मुक्त हो जाता है। अर्कसम्पुट सप्तगी व्रत से वित्तलाभ होता है तथा मरिच सप्तमी व्रत के अनुष्ठान से प्रियजनों का मिलन होता है।।१७।।

निम्बपत्रे रोगानाशं फलैः पुत्रान्यथेप्सितम्।
धनधान्यमनादिन्यां विजये विजयं तथा ।।१८।।

निम्ब सप्तमी में नीम के पत्तों से रोग का नाश होता है। फल वाली सप्तमी में अभीष्ट पुत्र की प्राप्ति होती है। अनादिनी सप्तमी व्रत द्वारा धन-धान्य का लाभ होता है। विजया सप्तमी व्रत विजय दिलाती है।।१८।।

सर्वान् कामान् कामिकायां प्राप्नुयान्नात्र संशयः।
नरो वा यदि वा नारी यः कुर्यात् सप्तमीव्रतम् ।।१९।।

नर अथवा नारी में से जो कोई भी सप्तमी व्रत करे, उन्हें कामिका सप्तमी व्रत से समस्त कामनाओं की पूर्त्ति का लाभ मिलता है। यह निःसंदिग्ध है।।१९।।

ये करिष्यन्ति नितरां तेषां लोको विभावसोः।
न तेषां त्रिषु लोकेषु किञ्चिदस्तीह दुर्लभम् ।।२०।।

जो निरन्तर सप्तमी व्रत करते हैं, उन्हें सूर्यलोक प्राप्त होता है। उनके लिये त्रिलोक में कुछ भी दुर्लभ नहीं रह जाता।।२०।।

ये भक्ता लोकनाथस्य व्रतिनः संयतेन्द्रियाः।
तत्फलं ते प्राप्नुवन्ति क्रतुभिर्भूरिदक्षिणैः ।।२१।।

जो भक्त संयतेन्द्रिय होकर लोकपालक सूर्य का व्रत करते हैं, वे प्रचुर दक्षिणायुक्त यज्ञों का फल प्राप्त करते हैं।।२१।।

व्रतैरेवंविधैस्त्वन्यैस्तपोभिस्तु सुदुष्करैः ।
कर्मभिः शमनैर्वापि दानहोमजपैरपि ।।२२।।
यत्फलं समवाप्नोति चरित्वा सप्तमीव्रतम् ।
सूर्यलोकेषु नियतं वासो नैवात्र संशयः ।।२३।।

इस प्रकार से अन्यान्य व्रत, सुदुष्कर तप, कर्मों का शमन, दान, होम तथा जप से जो फल प्राप्त होता है, वही फल सप्तमी व्रतानुष्ठान से भी प्राप्त हो जाता है। वह निःसंदिग्ध रूप से सूर्यलोक में वास करता है।।२२-२३।।

ब्रह्मेन्द्ररुद्रलोकेषु तस्याप्रतिहता गतिः ।
नान्धः कुष्ठी न च क्लीबो व्यङ्गो नापि च निर्धनः ।।२४।।
कुले तस्य भवेत् कश्चिद्यश्चरेत् सप्तमीव्रतम् ।
नारीहस्त्यश्वयानानां विविधानां च वाससाम् ।।२५।।

ब्रह्मलोक, इन्द्रलोक तथा रुद्रलोक में उसकी अप्रतिहत गति हो जाती है। उसके वंश में कोई भी अन्धा, कुष्ठी, क्लीब, अंगहीन अथवा निर्धन व्यक्ति जन्म नहीं लेता (जो सप्तमी व्रतानुष्ठान करता है, उसके वंश की बात कही गयी है)। सप्तमी व्रतकारी को नारी, हाथी, अश्वादि यान, विविध वस्त्र भोगार्थ प्राप्त होते हैं।।२४-२५।।

ध्रुवं स भाजनं साम्ब यश्चरेत् सप्तमीव्रतम् ।
विद्यार्थी लभते विद्यां धनार्थी धनमाप्नुयात् ।।२६।।
भार्यार्थी रूपसम्पन्नां लभेद् भार्यां कुलोद्भवाम् ।
पुत्रार्थी श्रुतसम्पन्नांल्लभेत् पुत्रांश्चिरायुषः ।।२७।।

विद्यार्थी को विद्या एवं धनार्थी को धन मिलता है। भार्यार्थी को भार्या जो रूपसम्पन्न एवं सद्वंश में उत्पन्न है, प्राप्त होती है। पुत्रार्थी दीर्घायु पुत्रों को प्राप्त करता है।।२६-२७।।

भोगार्थी लभते भोगान् व्रतेनानेन यादव ।
मोहात् प्रमादाल्लोभाद्वा व्रतभङ्गं समाचरेत् ।।२८।।
त्रिरात्रं न तु भुञ्जीत कुर्याद्वा केशमुण्डनम् ।
प्रायश्चित्तमिदं कृत्वा पुनरेव व्रती भवेत् ।।२९।।

हे यादव! इस व्रत से भोगार्थी समस्त भोगों को प्राप्त करते हैं। यदि मोह से, प्रमाद से अथवा लोभ से व्रतभंग हो जाय, तब दिन-रात भोजन न करे अथवा बाल का मुण्डन कराये। ऐसे प्रायश्चित्त को करके पुनः व्रतानुष्ठान करना चाहिये।।२८-२९।।

सप्तैव यावत् संप्राप्ताः सप्तम्यः सप्तसद्गुणाः ।
अभ्यर्च्य सूर्यं सप्तम्यां माल्यधूपादिभिर्नरः ॥३०॥
भोजयित्वा द्विजान् भक्त्या प्राप्नुयात् स्वर्गमक्षयम् ।
सप्तम्यां विप्रमुख्येभ्यो वस्तु यद्यत् प्रयच्छति ॥३१॥
तत्तदक्षयमाप्नोति सूर्यलोकं स गच्छति ।
इति ते कीर्तितः साम्ब सप्तम्या विधिरुत्तमः ॥३२॥

सात गुणान्वित सात सप्तमी व्रत जब अनुष्ठित हो जाता है, उस सप्तम सप्तमी को माला-धूप आदि से सूर्य की अर्चना करके भक्ति से ब्राह्मणों को भोजन कराने से अक्षय स्वर्ग मिलता है। सप्तमी को श्रेष्ठ ब्राह्मणों को जो-जो वस्तु दान में दिया जाता है, वह अक्षय हो जाता है (दान अक्षय हो जाता है)। वह व्यक्ति सूर्यलोक प्राप्त करता है। हे साम्ब! इस प्रकार तुमसे उत्तम तिथि सप्तमी का वर्णन किया।।३०-३२।।

भूय एवाभिधानस्य शृणुष्वैकाग्रमानसः ।
यः कुर्याद् गोमयाहारः शुक्ला द्वादशीसप्तमी ॥३३॥
अथवा यवकाहारः शीर्णपत्राशनोऽथवा ।
क्षीराशी चैकभक्तोऽथ भिक्षाहारोऽथवा पुनः ॥३४॥
जलाहारोऽपि वा विद्वान् पूजयित्वा दिवाकरम् ।
पुष्पोपहारैर्विविधैः नैवेद्यैः सुमनोहरैः ॥३५॥
नानाप्रकारैर्गन्धैश्च धूपैर्गुग्गुलचन्दनैः ।
कृसरैः पायसान्नाद्यैर्विविधैश्च विभूषणैः ॥३६॥
अर्चयित्वा द्विजाञ्छ्रेष्ठान् हिरण्यान्नादिभिर्नरः ।
स यत्फलमवाप्नोति तच्छृणुष्व समाहितः ॥३७॥

और भी कहता हूँ, एकाग्र होकर सुनो। जो गोमय का भक्षण करके शुक्ल पक्ष की द्वादशी को सप्तमी व्रत का अनुष्ठान करते हैं (?) अथवा यवक आहार, शुष्क पत्ते का आहार अथवा दुग्ध पीकर रहते हैं, अथवा मात्र एक बार भोजन अथवा भिक्षा का आहार करते हैं, अथवा केवल जल पीकर जो विद्वान् पुष्पोपहार, विविध मनोहर नैवेद्य, खिचड़ी, पायस, अन्नादि तथा विविध आभूषणों से सूर्य की पूजा करते हैं, श्रेष्ठ ब्राह्मणों की अन्नादि से अर्चना करते हैं, वे जो फल प्राप्त करते हैं, उसे समाहित होकर सुनो।।३३-३७।।

काञ्चनेन विमानेन मनो मारुतरंहसा ।
वैडूर्यमणिरत्नेन किङ्किणीजालमालिना ॥३८॥
कुण्डलाङ्गदभूषाढ्यैर्गीयमानोऽप्सरोगणैः ।
विचित्रमालाभरणैः स याति सूर्यलोकताम् ॥३९॥

मनोहर वायु की गति से स्वर्णमय विमान में वैदूर्य मणि रत्न, किङ्किणी जाल,

कुण्डल, अंगद प्रभृति भूषण से भूषित अप्सरागण द्वारा गीत सुनते हुये विचित्र माला तथा आभूषण से युक्त होकर सूर्यलोक जाते हैं।।३८-३९।।

तपसोऽन्ते पुनः साम्ब कुले महति जायते।
एवं यजेद्विवस्वन्तं प्रतिमासं समाहितः ।।४०।।
यथाक्रमं प्रयत्नेन नामानि परिकीर्तयेत्।
मधौ मासे विष्णुरिति माधवे त्वर्यमेति च ।।४१।।
शुक्रे विवस्वानिति च शुचौ मासेंऽशुमानिति।
पर्जन्यः श्रावणे मासि नभस्ये वरुणस्तथा ।।४२।।
इषे त्विन्द्र इति ज्ञेयं ऊर्जे धातेति वा पुनः।
मार्गशीर्षे मित्र इति पौषे पूषेति कीर्त्यते ।।४३।।
माघमासे भग इति त्वष्टा इत्येव फाल्गुने।
एवं क्रमेण तीक्ष्णांशुं नामभिः परिपूजयेत् ।।४४।।

हे साम्ब! जो इस प्रकार प्रतिमास समाहित होकर सूर्य का यजन करता है, वह तपस्या के अन्त में महान् वंश में जन्म लेता है। यथाक्रम से प्रतिमास सूर्य के पृथक्-पृथक् नाम का कीर्त्तन करना चाहिये। चैत्र में विष्णु का, वैशाख में अर्यमा का, ज्येष्ठ में विवस्वान् का, आषाढ़ में अंशुमान का, श्रावण में पर्जन्य का, भाद्र में वरुण का, आश्विन में इन्द्र का, कार्त्तिक में धाता का, अग्रहायण में मित्र का, पौष में पूषा का, माघ में भग का तथा फाल्गुन में त्वष्टा का कीर्तन करना चाहिये। इस प्रकार सूर्य के नामों से पूजन करना चाहिये।।४०-४४।।

पुष्पार्चनविधानेन सप्तम्यां सुसमाहितः।
नैतद्देयमशिष्याय नाभक्ताय च भास्वतः ।।४५।।
न च पापकृते साम्ब देयं नैवाभ्यसूयके।
पठेद्यश्चापि नियतो विधिना तं नरः सदा।
इह लोके सुखं प्राप्य सूर्यलोके महीयते ।।४६।।

इति श्रीसाम्बपुराणे सप्तमीकल्पे षट्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

●

सप्तमी को समाहित होकर पुष्पार्चन-विधान से पूर्वोक्त नामों द्वारा पूजन करे। हे साम्ब! पाप करने वाले अथवा असूयारत व्यक्ति को यह व्रतविधान नहीं देना चाहिये। जो व्यक्ति सर्वदा इस प्रकार से पाठ करता है, वह इस लोक में सुख पाकर (मरणोपरान्त) सूर्य लोक में सम्मानित होता है।।४५-४६।।

श्री साम्बपुराणान्तर्गत सप्तमीव्रत-विधान नामक छियालीसवाँ अध्याय समाप्त

●

सप्तचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

(जपविधिः)

नारद उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि जपयज्ञविधिक्रमम्।
यैर्यत्नैः सर्वथा चैव कर्तव्यः कथयामि ते ।।१।।
सर्वेषामेव यज्ञानां जपयज्ञो विशिष्यते।
कृतेन विधिनानेन प्रीतो भवति भास्करः ।।२।।
यदन्यत् कुरुते कर्म यदि वा न करोति च।
कृतेन जपयज्ञेन परां सिद्धिमवाप्नुयात् ।।३।।
महद्भिः पातकैर्युक्ता ये चान्ये कार्यकारिणः।
खखोल्कजाप्यान्मुच्यन्ते सर्वे तैस्तैस्तु पातकैः ।।४।।

नारद कहते हैं—इसके अनन्तर जपयज्ञ की विधि तथा क्रम कहूँगा, जिसे सयत्न सभी (नियमानुसार) करना होगा, यह सब तुमसे कहता हूँ। सभी यज्ञों में जपयज्ञ श्रेष्ठ है। उसे यथाविधि अनुष्ठित करने पर सूर्यदेव की कृपा मिलती है। अन्य कोई कर्म किया जाय अथवा नहीं किया जाय, केवल जपयज्ञ करने से ही परम सिद्धि मिल जाती है। जो महापातकयुक्त अन्य कर्म करते हैं, वे सभी खखोल्क (सूर्ययन्त्र सम्बन्धित) जप द्वारा पापों से मुक्त हो जाते हैं।।१-४।।

जप्यं जपन्तः संन्यासं कुर्वन्ति सुसमाहिताः।
असुरास्तं तु हिंसन्ति चान्यथा दुष्टचेतसः ।।५।।
प्रवालहेममुक्ताभिर्मणिरुद्राक्षपुष्करैः ।
दर्भारिष्टकजीवैश्च शङ्खेन च रविं यजेत् ।।६।।

जप्य मन्त्र का जप करके सुसमाहित होकर उसका सम्यक् न्यास करना चाहिये। अन्यथा दुष्टचित्त असुरगण (असुरवृत्ति) हिंसा (अनिष्ट) कर देते हैं। प्रवाल, स्वर्ण, मुक्ता, मणि, रुद्राक्ष, पद्म, दर्भ, अरिष्टक, जीव तथा शङ्ख की माला द्वारा रवि का जप करना चाहिये।।५-६।।

शब्दकायमनोवृत्त्या स चापि त्रिविधः स्मृतः।
शतं सहस्रमयुतं तस्यापि त्रिविधं फलम् ।।७।।
लक्षार्द्धं चैव मणिना रुद्राक्षेणायुतं स्मृतम्।
पुष्करेणाष्टसाहस्रं दर्भैश्चैव तदर्धकम् ।।८।।

वाचिक, कायिक तथा मानसिक रूप से त्रिविध जप कहा जाता है। शत-सहस्र तथा अयुत (जपसंख्या से) जप करे। उसका फल भी तीन प्रकार से कहा गया है। मणि द्वारा जप से अर्धलक्ष गुना, रुद्राक्ष से अयुत गुना (माला), पद्म द्वारा आठ हजार गुना तथा कुश आदि (दर्भ) की माला से जप करने से चार हजार गुना फल प्राप्त होता है।।७-८।।

जपे कृते प्रवालेन फलमानन्त्यमुच्यते।
हेम्ना कोटिगुणं प्रोक्तं लक्षं मुक्ताफलैः स्मृतम्।।९।।
अरिष्टाक्षाज्जपात्तस्य फलं साहस्रकं भवेत्।
शतानि जीवकैः पञ्च शङ्खे शतगुणं भवेत्।।१०।।

प्रवाल द्वारा जप करने से अनन्त गुना फल मिलता है। स्वर्ण माला से जप करने पर करोड़ों गुना फल एवं मुक्ता की माला से जप करने से लक्ष गुना फल मिलता है। अरिष्टाक्ष माला के जप से हजार गुना फल, जीवक की माला से जप करने से ५०० गुना फल तथा शङ्ख की माला से जप करने पर सौ गुणित फल मिलता है।।९-१०।।

जपं कुर्वन् यदि ष्ठीवेज्जल्पेद्विज्जृम्भतेऽपि वा।
आचमेद् भुवि विन्यस्य स्पृशेदम्भोऽथ गोमये।।११।।
अक्षसूत्रं निपतेद् भूमौ चेत्कुर्वतो जपम्।
उद्धारं तस्य कुर्वीत जापको हृदयेन तु।।१२।।
दक्षिणाङ्गुष्ठमध्याग्रे अष्टमेकैकमादृतः।
प्रत्येकमानुपूर्व्येण कर्षयन् जपमारभेत्।।१३।।

यदि जप करते-करते व्यक्ति थूकता है, अनर्थक बातें बोलता है, जंभाई लेता है, तब आचमन करके मिट्टी, जल तथा गोबर का स्पर्श करना चाहिये। जप करते-करते यदि अक्षसूत्र मिट्टी में गिर जाता है तब जपकारी हृदय से उसका उद्धार करे। दाहिने अंगूठा तथा मध्यमा उंगली के अगले भाग से एक-एक करके आठ में से सादर एक-एक को खींचते हुये (फेरते हुये) जप करे।।११-१३।।

शतमष्टाधिकं चैव चतुःपञ्चाशदेव च।
सप्तविंशतिसंख्या वा अक्षसंख्योपदिश्यते।।१४।।
जपं कुर्वन्न कुर्वीत संख्याग्रन्थिकलङ्घनम्।
कृते जपं जपः स्यात्तु कृतेऽष्टौ च शतं जपेत्।।१५।।

१०८ बार, ५४ बार अथवा २७ बार अक्षमाला की जपसंख्या कही गयी है (इसका अर्थ यह भी हो सकता है कि माला में १०८, ५४ अथवा २७ दाने हो सकते हैं)। जप करते-करते माला के सुमेरु का लङ्घन न करे। ऐसा करने से जप 'जप' होता है। १०८ बार जप करना उचित है।।१४-१५।।

विष्टरे चोपविष्टश्च जपं कुर्यादवेदनः ।
देवस्याभिमुखी भूत्वा संयतेनान्तरात्मना ।।१६।।
ग्रहोपरागे संप्राप्ते मेघाशनिसमुद्भवे ।
दुःस्वप्ने सागरोत्तारे समयालापभेदने ।।१७।।
उत्पातानिष्टसंप्राप्ते महापातकभाषिते ।
जपेन्मन्त्री च सावित्र्याः शतमष्टाधिकं शुचिः ।।१८।।

आसन पर बैठकर स्थिर मन से देवता की ओर मुँह करके अव्यग्र मन से जप करना चाहिये। सूर्य-चन्द्र के ग्रहण काल में, वज्रपात होने पर, दुष्ट स्वप्न देखने पर, सागर पार करते समय, कथा-भङ्ग होने पर, उत्पात अथवा अनिष्ट होने पर तथा महापातकी से बातें करने पर व्यक्ति को १०८ बार जप करना चाहिये।।१६-१८।।

एवं संक्षेपतः प्रोक्तः पुण्यो जपविधिर्मया ।
मुद्राणां लक्षणं तस्य इदानीं कथयामि ते ।।१९।।

इति श्रीसाम्बपुराणे जपविधिर्नाम सप्तचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

●

इस प्रकार संक्षेप में पवित्र एवं पुण्यप्रदायक पूजाविधि कही गई। अब तुमसे मुद्रासमूह का वर्णन करूँगा।।१९।।

श्री साम्बपुराणोक्त जपविधिनामक सैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त

●

अष्टचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

(मुद्रालक्षणम्)

नारद उवाच

मुद्राणां लक्षणं सम्यगिदानीं कथयामि ते ॥१॥

नारद कहते हैं—अब तुम्हें मुद्रा का लक्षण सम्यक् रूप से बतलाता हूँ।।१।।

देव उवाच

करं शिखासु विन्यस्य अरुणादीन् यथाक्रमम्।
विजयं वा मूलमन्त्रमुद्राबन्ध्यं समाचरेत् ॥२॥
लग्नस्य पृष्ठमध्यास्ये ईषद्गुप्ते तु तर्जनी।
तिर्यग् विन्यसेदङ्गुष्ठे शिरः कां ते त्वनायिके ॥३॥
कनिष्ठिके समे तुङ्गे पृष्ठलग्ने उभे अपि।
एषा विश्वात्मनो मुद्रा रथस्य परिकीर्तिताः ॥४॥

सूर्यदेव कहते हैं—कर (हथेली) तथा शिखा विन्यस्त करके अरुण प्रभृति का यथाक्रम से विजय, मूल मन्त्र तथा मुद्राबन्ध आचरण करना चाहिये। तर्जनीद्वय को तनिक भीतर छिपाकर उन्हें अंगुष्ठ में तिर्यक् रूप से विन्यास करे तथा अनामिका को ऊपर रखे। कनिष्ठ दोनों अंगुलियों को समान रूप से ऊपर करके पृष्ठ की ओर सटाये। इसे विश्वात्मा के रथ की मुद्रा कही गई है।।२-४।।

मध्यमानामिकानां च संपुष्टाङ्गुष्ठयोर्द्वयोः।
कुर्वीत शेषानुत्तुङ्गान् मुद्रेयं वाजिनां स्मृता ॥५॥

दोनों हाथों की मध्यमा तथा अनामिका को दोनों अंगूठे के साथ जोड़कर अंगुलियों को ऊर्ध्व में करने को अश्वदेव मुद्रा कहा गया है।।५।।

फणिभोगनिभाः कार्याः सव्यदक्षिणहस्ततः।
चक्रं बलात्तलांतुल्यो करयोर्भग्नमूलयोः ॥६॥
पृष्ठलग्नौ करौ कृत्वा प्रगुणे तर्जनीसमे।
कनिष्ठके क्रोडलग्ने अङ्गुष्ठौ तु समौ युतौ ॥७॥
शिखाश्चलास्तु कुटिलाः संक्रोड़ाभिमुखागताः।
इयं मुद्रा समुद्दिष्टा ह्यरुणस्य विधानतः ॥८॥

बाँयें तथा दाहिने हाथ को सर्प के देह के समान करना चाहिये। चक्र के समान दोनों हाथ भग्नमूल हो। करद्वय को पृष्ठदेश की ओर सटाकर तर्जनीद्वय को समान करे। कनिष्ठा अंगुली को क्रोड़लग्न करके दोनों अंगूठों को समान भाव से युक्त करे। चंचल तथा कुटिल शिखा क्रोड़ के अभिमुख रहेगी। इसे यथाविधान अरुण मुद्रा कहा गया है।।६-८।।

अष्टौ रणौ रवीन्द्रौ च लग्नान्यङ्गानि पूर्वगौ।
अरुणेन्द्रौ रविस्त्वष्टा एता मुद्राः पृथक्-पृथक् ॥९॥

आठ रणु (?) रवि तथा इन्द्र (?) अंगों को (?) पूर्वमुख लग्न करे। अरुण, इन्द्र रवि तथा त्वष्टा—यह पृथक्-पृथक् मुद्रा है।।९।।

नैवान्योन्यलग्नाः स्युः शेषायामक्रियाः स्मृताः।
यमसूर्यो मिथः शिलष्टावंशुमत्स्वर्णरितसा ॥१०॥
ऊर्ध्वगौरविधातारौ युताविन्दुगभस्तिनौ।
यमस्य मूललग्नौ तु तथा त्वष्टारुणावुभौ ॥११॥

कोई भी परस्परतः लग्न न हो। अवशिष्ट (बाकी को) व्योमक्रिया जाने। यम तथा सूर्य दोनों परस्पर युक्त हों। यह किरणमय स्वर्ण के समान है। रवि एवं धाता ऊर्ध्वगामी हैं, चन्द्र तथा सूर्य युक्त हैं और त्वष्टा तथा अरुण यम के मूल में लग्न हैं।।१०-११।।

अन्तस्तु सूर्यारुणयोर्लग्नस्त्वष्टा त्वधोमुखः ॥१२॥
वाममुष्टौ सदा लग्नौ शेषाः शिर उदाहृताः।
अन्योन्यं तर्जनीलग्नौ तुङ्गेष्टौ च तद्युतौ ॥१३॥

इसे अमृत कहा गया है। रथ के साथ हृदय के समान शेष भाग सूर्य तथा अरुण का है। निम्नमुख से त्वष्टा लग्न हैं। वाम मुष्टि सभी समय लग्न रहती है। शेष को मस्तक कहा गया है। परस्पर तर्जनी लग्न हो। तुङ्ग तथा ओष्ठ उसके साथ युक्त हों।।१२-१३।।

अन्योन्यं रन्त्रगाः शिलष्टाः शेषभग्नाः शिखाः स्मृताः।
अन्योन्या न च संलग्ना दिवसंघा वरुणादयः ॥१४॥
करमूलपृथग्भूता नेत्रानेत्राकृतिः स्मृताः।
उत्तानवाहमस्ते तु दृष्टं कृत्वा ह्यधोमुखम् ॥१५॥

परस्परतः रन्त्रगत होकर युक्त रहते हैं। अवशिष्ट शिखा को भग्न कहा गया है। वरुण प्रभृति द्युलोकवासी देवगण परस्परतः संलग्न रहते हैं। कर तथा करमूल को पृथक् रूप से नेत्र तथा नेत्र की आकृति कहा गया है। बाँयें हाथ को उत्तान (चित्त) कर मुख नीचा करके देखा जाता है।।१४-१५।।

अंगुष्ठे तर्जनी लग्ने प्रगुणे करमूलयोः।
अन्योन्यक्रोडसंलग्ना ह्यर्चाः शेषाः सुकुञ्चिताः॥१६॥
मुद्रा कवचसंज्ञेयं मया वः परिकीर्तिता।
रविन्दुमूलादारभ्य ऊर्ध्वं त्वष्टारुणावुभौ॥१७॥

अंगुष्ठ को तर्जनी से सटाये। करमूल में स्थापित करे। परस्पर क्रोड़ संलग्न करके अवशिष्ट को कुञ्चित करके अर्चना करे। इसका नाम है—मुद्रा कवच। यह मैंने तुमसे कहा। रवि तथा चन्द्र के मूल से प्रारम्भ करके ऊर्ध्व में त्वष्टा तथा अरुण को जानना चाहिये।।१६-१७।।

स्पृशेदग्रान्नतान्सर्वान्नितांश्चैव समाक्षिपेत्।
कुञ्चितानामिकाग्रं च ह्यङ्गुष्ठाग्रेण योजयेत्॥१८॥

अग्र तथा नत, सबका स्पर्श करे। नत को आक्षिप्त करे। अनामिका के अग्रभाग को कुञ्चित करे एवं अंगुष्ठ के अग्रभाग से लग्न करे।।१८।।

कुर्याच्छेषान् समुत्तुङ्गान् वसुमुद्रा उदीरिताः।
अधोमुखे वामकरे कृत्तोत्तानं तु दक्षिणम्॥१९॥
अरुणो रविरिन्द्रश्च चन्द्रस्त्वष्टारमाक्रमेत्।
यमांशुमत्तावुत्तुङ्गे गुल्फौ क्रोड़ेन सङ्गतौ॥२०॥

अवशिष्ट अंगुलियों को ऊर्ध्व में उत्तोलित करे। यह है—वसुमुद्रा। बाँयाँ हाथ नीचे करे। दक्षिण हाथ (दाहिना हाथ) उत्तान (चित्त) करे। अरुण, रवि, इन्द्र तथा चन्द्र, त्वष्टा पर आक्रमण करके रहें। यमांशुमत्त (?) उत्तुङ्ग में तथा दोनों गुल्फ क्रोड़ में मिलित हो।।१९-२०।।

अन्योऽन्यं रंध्रनिर्याताः शेषाः श्लिष्टाश्च कुञ्चिताः।
कृत्वा दक्षिणहस्तस्य तथाङ्गुष्ठं समुन्नतम्॥२१॥

परस्परतः कुछ फांक देकर (अलग करके) बहिर्गत होकर शेष को कुञ्चित (टेढ़ा) तथा परस्पर युक्त करके दाहिने हाथ के अंगूठे को उन्नत करे।।२१।।

योधा वै करतले चैव चत्वारो दण्ड उच्यते।
शक्त्याप्येवं प्रकुर्वीत स सूर्यं स्वणरितसम्॥२२॥

करतल को योधा तथा चारो को दण्ड कहा जाता है। शक्ति द्वारा ऐसा करने से सूर्य हैं—स्वणरिता।।२२।।

लग्नतुङ्गं समाख्याता खड्गमुद्रा विधानतः।
अरुणास्यं न संस्पृश्य सूर्यास्येन तु कुञ्चितम्॥२३॥

वामहस्तगता भुग्नं कृत्वा करतले रविम्।
वामपाणिप्रकोष्ठं च संस्पृशेत्स्वणरितसा ॥२४॥

लग्नतुङ्ग को विधानपूर्वक खड्गमुद्रा कहते हैं। अरुण के मुख का स्पर्श किये बिना सूर्यमुख द्वारा कुञ्चित करे। बाँयें हाथ के करतल को टेढ़ा करके रवि को वाम हाथ के प्रकोष्ठ में स्वणरित के द्वारा स्पर्श करे।।२३-२४।।

त्वष्टास्ये दक्षिणाशेषा नीलास्याश स उच्यते।
शक्तिं वामनतामीयात्कुर्वन्नङ्कुश उच्यते ॥२५॥
ईषत्तु कुञ्चिताग्रस्य स्वस्थौ दक्षिणहस्तगाः।
पतितौ यतधातारौ पृष्ठलग्नौ समुत्थितौ ॥२६॥

त्वष्टा के मुख में दक्षिणाशेष को नीलास्याश कहते हैं। शक्ति को बाँयीं ओर नत करके जो स्थिति होती है, वह अंकुश कहलाती है। दाहिने हाथ के अग्रभाग को तनिक कुञ्चित करने से उससे पतित धाताद्वय पृष्ठलग्न होकर उत्थित होते हैं।।२५-२६।।

क्रोडलग्नौ समुत्तुङ्गौ शेषाः षट्त्रिंश उच्यते।
त्वष्टारुणौ न चोत्तानौ रवीन्द्रौ क्रान्तमस्तकौ ॥२७॥

क्रोड़ लग्न दोनों के समुतुङ्ग जो शेष है, उसे षट्त्रिंश कहा जाता है। त्वष्टा एवं अरुण उत्तान (चित्त) नहीं होते। रवि तथा इन्द्र मस्तक का अतिक्रम करते हैं।।२७।।

यमस्तथैव सूर्येण अंशुमान्स्वणरितसा।
उभौ गभस्तिधातारौ पृष्ठलग्नौ समुच्छ्रितौ ॥२८॥
मुद्रा व्योमशिखा नाम कथितेयं विधानतः।
एतन्मया समुद्दिष्टं मुद्राणां लक्षणं शुभम् ॥२९॥
येन सम्यक् प्रयुक्तेन परां सिद्धिमवाप्नुयात् ॥३०॥

इति श्रीसाम्बपुराणे मुद्रालक्षणं नामाष्टचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

●

इसी प्रकार यम भी सूर्य के साथ स्वणरित द्वारा किरणयुक्त हो जाते हैं। दोनों ही किरण धारणकारी हैं। ये पृष्ठ देश से संलग्न होकर उत्थित होते हैं। इसे विधानपूर्वक व्योमशिखा कहा गया है। यह मैंने मुद्राओं का शुभ लक्षण कहा। सम्यक् रूप से प्रयुक्त होने पर इससे परमसिद्धि प्राप्त होती है।।२८-३०।।

श्री साम्बपुराणोक्त मुद्रा लक्षण नामक अड़तालीसवाँ अध्याय समाप्त

●

एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

(शौचादिविधानम्)

नारद उवाच

शौचं स्नानं करन्यासं रवीकरणमाह्निकम्।
योगज्ञानं विशेषेण तस्य च शृणु देवताः ॥१॥
दीक्षितायार्कभक्त्या तु श्रद्दधानाय धीमते।
कथनीयमिदं शास्त्रं सद्यः सर्वार्थसाधनम् ॥२॥
शुचौ देशे समासीनः कुर्यादाचम्यकं विधिम्।
कृत्वावगुण्ठनं मौनी कुर्वन्नभिमुखः स्थितः ॥३॥
स मृज्जलाभ्यां शौचं तु कुर्वति प्रागुदङ्मुखः।
भूताग्निदिग्वारणैश्च ह्यधःपादगुदादितः ॥४॥
करान्तरिततोयेन कार्यं पादावनेजनम्।
मृत्पूर्वकं तथा पाणिं प्रक्षाल्यन्तकोष्ठतः ॥५॥

नारद कहते हैं—शौच, स्नान, करन्यास, रवीकरण, आह्निक तथा योगस्थान के साथ-साथ विशेषतः इनके देवता का वर्णन सुनो। दीक्षित, श्रद्धाशील, बुद्धिमान सूर्यभक्त को सद्यः सर्वार्थ-साधक इस शास्त्र का वर्णन कर देना चाहिये। पवित्र स्थान में समासीन होकर आचमन विधि का अनुष्ठान करे। अवगुंठन करके मौनी होकर सामने की ओर मुख करके रहे। पूर्व तथा उत्तर-मुखीन होकर भूताग्नि एवं दिग्वारण के पैर तथा गुह्यदेशादि का मृत्तिका एवं जल के द्वारा शौच-विधान करे। हाथ में लिये जल द्वारा पाद- प्रक्षालन करे। इसी प्रकार हाथ तथा अन्तःप्रकोष्ठ का मृत्तिका तथा जल से प्रक्षालन करना चाहिये।।१-५।।

उपवीती जलं प्राश्य ब्रह्मतीर्थेन वा पिवेत्।
हृदं द्विर्वचनं मृद्य खानि सर्वाण्युपस्पृशेत् ॥६॥

उपवीतधारी व्यक्ति जल लेकर आचमन करे अथवा पुष्कर तीर्थ के जल का पान करे। हृदय का दो बार मृत्तिका से स्पर्श करे तथा आकाश के अतिरिक्त सबका स्पर्श करे।।६।।

भूयोऽर्कधर्महृदयैस्त्रिः प्राश्याथ जलं पिबेत्।
शिरश्च वदनं मृज्य शिखाग्रान् खान्युपस्पृशेत् ॥७॥

फेनबुद्बुदयुक्तेन नीरेण शुचिना सदा।
अङ्गुष्ठेनैव वामेन ऐन्द्र्या सौम्यां व्यवस्थितः ॥८॥

इति श्रीसाम्बपुराणे शौचादिविधानो नामेकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

●

पुनः सूर्य-धर्म तथा हृदय का तीन बार आचमन करके जलपान करे। मस्तक से लेकर मुख-पर्यन्त मार्जना करके शिखा के अग्रभाग तथा आकाश का स्पर्श करे। फेनयुक्त जल द्वारा सर्वदा पवित्र रहे। वाम अंगुष्ठ द्वारा ऐन्द्री (पूर्व) तथा सौम्य (उत्तर) दिशा में अवस्थान करे (?)।।७-८।।

श्री साम्बपुराणान्तर्गत शौचादि-विधान नामक उनचासवाँ अध्याय समाप्त

●

पञ्चाशत्तमोऽध्यायः
(पूजाविधानम्)

नारद उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि पूजापिण्डप्रणोदिताम्।
मन्त्रमुद्रादियोगेन वाञ्छितार्थफलप्रदाम् ॥१॥
मूलमन्त्रोद्धवान् बीजान्विन्यस्याङ्गुष्ठतः क्रमात्।
अङ्गेषु चाङ्गमन्त्रैस्तु संयोगश्चात्ममुद्रया ॥२॥

नारद कहते हैं—तदनन्तर मन्त्र तथा मुद्रा आदि द्वारा समस्त वांछित फलप्रद पूजा तथा देहादि शुद्धि की बात कहूँगा। मूल मन्त्रों से उद्धृत बीजों का अंगुष्ठ प्रभृति से क्रमशः विन्यास करे। न्यास में अंगमन्त्रों के द्वारा समस्त अंगों में आत्ममुद्रा के साथ संयोग करना चाहिये।।१-२।।

ॐ विश्वात्मने नमः रथस्य। ॐ हरिभ्यो नमः अश्वानाम्। ॐ सर्पाय नमः वासुकेः। ॐ त्रिनाभये नमः चक्रस्य। ॐ अरुणाय नमः अरुणस्य। ॐ ऋत्विग्विधात्रे नमः पद्मस्य। ॐ आदित्याय हेममिहिरागच्छागच्छस्ववर्गेहस्व ठः ठः स वाहन-मन्त्रः। उषषोल्काय ठः ठः मूलमन्त्रः। ॐ व्योमव्यापिने सर्वलोकाधिपतये तिष्ठ ठः ठः सवाहनमन्त्रः। ॐ अर्काय ठः ठः हृदयम्। ॐ प्रदीप्ताय ठः ठः शिरः। विपिटये ठः ठः शिखाम्। ॐ जगच्चक्षुषे ठः ठः नेत्रम्। ॐ प्रभाकराय ठः ठः कवचम्। ॐ महातेजसे हुं फट् अस्त्रम्। ॐ गणाधिपतये सहस्त्रकिरणाय संरोधात्मने ठः ठः संरोधनमन्त्रः। ॐ आकाशविकासिने जगच्चक्षुषे सान्निध्यं कुरु कुरु ठः ठः सन्निधानमन्त्रः। ॐ हूँ रिटिचिर्रिटये दीप्तांशवे नमः पाद्यमन्त्रः। ॐ गभस्तिने केलि किलिकालिकालिसर्वार्थसाधनं ककिककि हं नमः अर्घ्यमन्त्रः। सवित्रे वरुणाय नमः स्नानमन्त्रः। ॐ षषनेत्राय सहस्त्रस्ततनवे नमः वस्त्रमन्त्रः। ॐ पिङ्गलाय अच्छच्छले नमः गन्धम्। ॐ अहि अहि लिहि लिहि हियमालाधर तेजोधिपतये नमः पुष्पमन्त्रः। ॐ ज्वलितार्काय नमः धूपमन्त्रः। ॐ मिहिराय चित्रधरिणे नमः। ॐ अङ्गेभ्यो नमः। ॐ महाश्वेतायै नमः। दण्डपाणये नमः। ॐ अरुणादेव्यै नमः। ॐ पिङ्गलायै नमः। ॐ अरुणादिभ्यो हुं नमः। ॐ हरिकेशादिरश्मिपतिभ्यो नमः। ॐ पुंजिकस्थल्याद्यप्सरोभ्यो नमः। ॐ दीप्ता-ननादिकिरणेभ्यो नमः। ॐ क्षुपादिभूतमातृभ्यो नमः। ॐ ग्रहेभ्यो हुं नमः। ॐ दिग्देवेभ्यो नमः। ॐ तेजोऽधिपतये नमः। दीपमन्त्रः—अर्काय गृहाणामृते नमः।

नैवेद्यमन्त्रः—ॐ जलकुन्दलाय दिव्यातोद्यभिप्रियाय नमः। अतोऽर्घ्यमन्त्रः—ॐ सुषोल्काय ठः ठः। ॐ अंशुमते देवाय गोपतये ठः ठः—जपन्यासमन्त्रः।

ॐ नमस्ते दिव्यरूपाय सर्वभूतात्मने नमः।
सर्वतेजोधिपतये भानवे लोकचक्षुषे ॥
नमः स्तोत्रविधानेन तेजःपिण्डपदेदिमे ।
अग्निक्रियां प्रकुर्वीत सद्यः सर्वार्थसाधिनीम् ॥

ॐ संहर संहर विरोचन ठः ठः—संहारमन्त्रः। ॐ शान्तात्मने सर्वलोकप्रियाय ठः ठः शुद्धिमन्त्रः। खखोल्काय विद्महे सहस्रकिरणाय धीमहि, तन्नो रविः प्रचोदयात् ठः ठः—नमस्कारमन्त्रः। अर्कहृदयेन दानम्। गच्छ गच्छ स्ववर्गेण द्वादशादित्य विग्रहः। ॐ हिलिहिलि गच्छ देव यथागतं स्वाहा विसर्जनमन्त्रः। ॐ चण्डपिङ्गलाय ठः ठः। विहारमन्त्रः।

पदपिण्डविधानेन पूजा निगदिता परा ।
भुक्तिमुक्तिप्रदा पुण्या बलारोग्यप्रदा सदा ॥

द्वितीयपिण्डपूजाविधानम्—

पदेन पदपिण्डेन उक्तः पूजाविधिर्मया ।
संक्षेपेण परं देवं कथ्यमानं निबोध मे ॥

ॐ विश्वात्मने नमः। ॐ रथाङ्गेभ्यो नमः। ॐ खखोल्काय नमः—मूलमन्त्रमिदम्। ॐ अर्काय ठः ठः—हृदयम्। ॐ दीप्ताय ठः ठः—शिरः। ॐ चिपिटये ठः ठः—शीर्षम्। जगच्चक्षुषे ठः ठः—नेत्रम्। ॐ प्रभाकराय हुं ठः ठः—कवचम्। ॐ महातेजसे हुं फट्—अस्त्रम्। ॐ देवाङ्गेभ्यो नमः। ॐ महाश्वेतादिभ्यो नमः। ॐ अरुणादिभ्यो हुं नमः। ॐ हरिकेशादिभ्यो नमः। ॐ पुञ्जिकस्थल्यादिभ्यो नमः। ॐ गणाधिपेभ्यो नमः। ॐ छायादिभ्यो नमः। ॐ ग्रहेभ्यो हुं नमः। ॐ दिग्देवेभ्यो नमः।

हृदयेनैव कर्त्तव्यं सर्वमावाहनादिकम् ।
ये वासान्ये तु ये तेषां मन्त्रेणैव विधीयते ॥

इति श्रीसाम्बपुराणे पूजाविधानं नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

●

ॐ विश्वात्मने नमः, ॐ हरिभ्यो नमः, ॐ सर्पाय नमः, ॐ त्रिनाभये नमः, ॐ अरुणाय नमः, ॐ ऋत्विग्विधात्रे नमः—इन मन्त्रों से यथाक्रमेण रथ, अश्व, सर्प (वासुकि), चक्र, अरुण तथा पद्म का पूजन करना चाहिये। तदनन्तर सूर्य का आवाहन इस मन्त्र से करे—

ॐ आदित्याय हेममिहिरागच्छागच्छ स्ववर्गे ह्रस्व स्वाहा।

सूर्यदेव का मूल मन्त्र इस प्रकार है—ॐ उषषोल्काय स्वाहा। सूर्यदेव का स्थापना मन्त्र यह है—ॐ व्योमव्यापिने सर्वलोकाधिपतये तिष्ठ स्वाहा।

तदनन्तर अङ्गादिन्यास कहते हैं—ॐ अर्काय स्वाहा हृदयम्। ॐ प्रदीप्ताय स्वाहा शिरः। (इसमें प्रणव नहीं लगेगा) विपिटये स्वाहा शिखायाम्। ॐ जगच्चक्षुषे स्वाहा नेत्रम्। ॐ प्रभाकराय स्वाहा कवचम्। ॐ महातेजसे हुं फट् अस्त्रम्।

ॐ गणाधिपतये सहस्रकिरणाय संरोधात्मने स्वाहा—संरोधन मन्त्र।

ॐ आकाशविकासिने जगच्चक्षुषे सान्निध्यं कुरु कुरु स्वाहा—सन्निधानमन्त्र।

पाद्यमन्त्र—ॐ हुं रिटिचिरण्टये दीप्तांशवे नमः।

अर्घ्यदान मन्त्र—ॐ गभस्तिने केलि किलि कालि कालि सर्वार्थसाधनं करके काकि हं नमः।

स्नानमन्त्र—सवित्रे वरुणाय नमः।

वस्त्रदानमन्त्र—ॐ षषनेत्राय सहस्रहस्ततनवे नमः।

गन्धदान मन्त्र—ॐ पिङ्गलाय अच्छच्छले नमः।

पुष्पदान मन्त्र—ॐ अहि अहि लिहि लिहि हिममालाधरतेजोऽधिपतये नमः।

धूपदान मन्त्र—ॐ ज्वलितार्काय नमः।

तदनन्तर इन देवताओं को धूपदान करे—ॐ मिहिराय त्रिधारिणे नमः, ॐ अङ्गेभ्यो नमः, ॐ महाश्वेतायै नमः, ॐ दण्डपाणये नमः, ॐ अरुणादेव्यै नमः, ॐ पिङ्गलायै नमः, ॐ अरुणादिभ्यो हूं नमः, ॐ हरिकेशादिरश्मिपतिभ्यो नमः, ॐ पुञ्जिकस्थल्याद्यप्सराभ्यो नमः, ॐ दीप्ताननादिकिरणेभ्यो नमः, ॐ तेजोऽधिपतये नमः।

दीपमन्त्र—अर्काय गृहाणामृते नमः (मूल में इसमें प्रणव नहीं लगा है)।

नैवेद्यमन्त्र—ॐ जलकुन्दलाय दिव्यातोद्यभिप्रियाय नमः।

अर्घ्यमन्त्र—ॐ सुषोल्काय नमः स्वाहा।

जपोपरान्त जपन्यास मन्त्र—ॐ अंशुमते देवाय गोपतये स्वाहा।

अब इस स्तोत्र को पढ़कर सर्वार्थसाधक अग्निकार्य (होम) करना चाहिये। स्तोत्र मूल में अंकित है (ॐ नमस्ते दिव्यरूपाय इत्यादि)। उसका शब्दार्थ इस प्रकार है—दिव्यरूप समस्त प्राणिगण के आत्मस्वरूप सूर्यदेव को नमस्कार है, समस्त तेज के अधिपति लोकचक्षु सूर्यदेव को नमस्कार है।

संहार मन्त्र—ॐ संहर संहर विरोचन स्वाहा।

शुद्धिमन्त्र—ॐ शान्तात्मने सर्वलोकप्रियाय स्वाहा।

अब नमस्कार इस मन्त्र से करे—ॐ खखोल्काय विद्महे सहस्रकिरणाय धीमहि तन्नो रविः प्रचोदयात् स्वाहा।

तदनन्तर अर्कहृदय का दान करके इस मन्त्र से विसर्जन किया जाता है—गच्छ गच्छ स्ववर्गेन द्वादशादित्यविग्रह: ॐ हिलि हिलि गच्छ देव यथागतं स्वाहा।

विहार मन्त्र—ॐ चण्डपिङ्गलाय स्वाहा।

इस प्रकार पदपिण्ड विधान से यह श्रेष्ठ पूजा कही गयी है। इससे भुक्ति-मुक्ति दोनों प्राप्त होती है। यह पूजा सर्वदा आरोग्य तथा बलदायिका है।

अब द्वितीय पिण्डपूजा विधान कहते हैं। पदपिण्ड द्वारा पूजाविधि कही गया है। अब संक्षेप में परदेवता का वर्णन करता हूँ, सुनो।

ॐ विश्वात्मने नम:, ॐ रथाङ्गेभ्यो नम:—इन मन्त्रों से विश्वात्मा तथा रथाङ्ग की पूजा करनी चाहिये। मूलमन्त्र है—ॐ खं खखोल्काय नम:।

तदनन्तर हृदयादि न्यास करे—ॐ अर्काय स्वाहा—हृदयम्। ॐ दीप्ताय स्वाहा—शिर:। ॐ चिपिटये स्वाहा—शीर्षम्। ॐ जगच्चक्षुषे नेत्रम्। ॐ प्रभाकराय हूं स्वाहा—कवचम्। ॐ महातेजसे हूं फट्—अस्त्रम्।

अब इन मन्त्रों से उन-उन देवताओं की पूजा करे, जो मन्त्र में अंकित हैं—ॐ देवाङ्गेभ्यो नम:, ॐ महाश्वेतादिभ्यो नम:, ॐ अरुणादिभ्यो हूं नम:। ॐ हरिकेशादिभ्यो नम:, ॐ पुञ्जिकास्थल्यादिभ्यो नम:, ॐ गणाधिपतये नम:, ॐ छायादिभ्यो नम:, ॐ ग्रहेभ्यो हूं नम:, ॐ दिग्देवताभ्यो नम:।

हृदय से आवाहनादि सब करना कर्त्तव्य है। देवगणों के मन्त्र द्वारा ही पूजा-कर्म का विधान है।

श्रीसाम्बपुराणोक्त पूजाविधान-नामक पचासवाँ अध्याय समाप्त

●

एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

(ग्रहादिदेवानां पूजनम्)

ॐ चन्द्राय हुं नमः। ॐ मंगलाय हुं नमः। ॐ बुधाय हुं नमः। ॐ बृहस्पतये हुं नमः। ॐ शुक्राय हुं नमः। ॐ शनैश्चराय हुं नमः—एते ग्रहाणां मन्त्राः। ॐ इन्द्राय सुराधिपतये नमः। ॐ अग्नये तेजोधिपतये नमः। ॐ यमाय प्रेताधिपतये नमः। ॐ निर्ऋतये रक्षोधिपतये नमः। ॐ वरुणाय जलाधिपतये नमः। ॐ वायवे प्राणाधिपतये नमः। ॐ कुबेराय यक्षाधिपतये नमः। ॐ शङ्कराय सर्वात्मने नमः। ॐ विद्याधिपतये नमः। ॐ ब्रह्मणे सर्वलोकाधिपतये नमः। ॐ शेषाय सर्वनागाधिपतये नमः—एते दिग्देवानां मन्त्राः।

ग्रहदेवताओं का पूजन इस प्रकार करना चाहिये—ॐ चन्द्राय हुं नमः, ॐ मङ्गलाय हुं नमः, ॐ बुधाय हुं नमः, ॐ बृहस्पतये हुं नमः, ॐ शुक्राय हुं नमः, ॐ शनैश्चराय हुं नमः। तदनन्तर मूल में अंकित मन्त्र से सुराधिपति इन्द्र, तेज के पति अग्नि, प्रेताधिपति यम, राक्षसाधिपति निर्ऋति, जलाधिपति वरुण, प्राण के अधिपति वायु, यक्षों के अधिपति कुबेर, सर्वात्मस्वरूप शंकर, विद्याधिपति, सर्वलोकाधिपति ब्रह्मा तथा समस्त नागों के अधिपति शेष का पूजन करे।

अतः परं प्रवक्ष्यामि स्नानस्य विधिमुत्तमम्।
निर्मले सलिले स्नायात् सुतीर्थे हृदयादिभिः ॥१॥
मनसा तत्तदङ्गेषु दत्त्वैव शिरसा तथा।
ध्यात्वा पुण्यानि तीर्थानि वगाहेच्छिरसा जलम् ॥२॥

अब स्नान की उत्तम विधि कहूँगा। सुतीर्थ में, सहृदय निर्मल जल में स्नान करे। मन ही मन सभी अंगों में तथा मस्तक में मृत्तिका लगाकर पुण्य तीर्थों का स्मरण करके डुबकी लगाकर स्नान करे॥१-२॥

धर्मास्त्रिनेत्रैः कुर्वीत ब्राह्मणान् मन्त्रयेत्ततः।
पूरकाभ्यां खखोल्केन अर्कमीक्षेत सप्तधा ॥३॥
विन्यसेन्मन्त्रसंयोगं त्वचाङ्गुष्ठादितः क्रमात्।
ततः स्वहस्ततलयोर्वरुणादींश्च संख्यया ॥४॥
अमृताख्यां ततो बद्ध्वा मुद्रा ध्यानं समाचरेत्।
जाठरं ज्वालयेदग्निं पुरकाकुलवायुना ॥५॥

धर्मरूप अस्त्र—नेत्र द्वारा (धर्म का आश्रय लेकर) ब्राह्मणों के साथ मन्त्रणा करे (उपदेश ले)। सूर्यमन्त्र से दो बार पूरक करके सूर्यदर्शन करे। क्रमशः त्वक्, अंगुष्ठ प्रभृति द्वारा मन्त्र से योग करे। तदनन्तर अपने हाथों के तलद्वय की संख्या द्वारा वरुणादि के मन्त्र का न्यास करे। तदनन्तर अमृता मुद्रा बनाकर मुद्रा का ध्यान करे। तत्पश्चात् पूरक में ली गयी वायु द्वारा जठराग्नि को प्रज्वलित करे।।३-५।।

कुम्भकेनापि संरुद्धात् त्रिविधं कल्मषं हरेत्।
रेचकेन च निष्क्रम्य हृदि शुद्धिं समाचरेत्।।६।।
आकृष्य पूरकेणार्कं तेजःपिण्डं पुनः पिबेत्।
खखोल्केन च तत्तेजः स्वमूर्तौ विनिवेशयेत्।।७।।
हृदये मूर्ध्नि मूले तु नेत्रवर्त्म करेषु च।
हृदयादीनि चाङ्गानि विन्यसेत् तत्त्वयोगतः।।८।।

कुम्भक द्वारा भी वायु को रोककर कायिक, वाचिक तथा मानसिक पापों का क्षालन करना चाहिये। रेचक में वायु को बाहर निकालकर हृदयशुद्धि का आचरण करना चाहिये। पूरक के द्वारा सूर्य का आकर्षण करके पुनः उसके तेजपिण्ड का पान करना चाहिये। सूर्यमन्त्र द्वारा उस तेज को अपने देह में अभिनिविष्ट कराना चाहिये। हृदय, मस्तक, मूलाधार, नेत्रपथ, करसमूह तथा हृदय प्रभृति में तत्त्वयोग (तत्त्वन्यास) द्वारा न्यास करे।।६-८।।

सुशुभे द्वादशदले कमले च स्थितं तदा।
आत्मानं चिन्तयेद्युक्तः शुद्धचामीकरप्रभम्।।९।।

तदनन्तर सुशोभन द्वादश दलयुक्त कमल में स्थित विशुद्ध स्वर्ण की प्रभा के समान आत्मा का एकाग्र भाव से चिन्तन करना चाहिये।।९।।

एवं कृत्वैव चात्मानं मन्त्रमुद्रादियोगतः।
ततः परमया भक्त्या तदा पूजां समाचरेत्।।१०।।
काष्ठैः काष्ठं विनिर्मथ्य मणेर्वा तापदर्शनात्।
आकृष्यते यथा वह्निः क्रियाशेषकरः क्षमः।।११।।
तद्वन्मन्त्रादियोगेन निष्कलात् सकलो रविः।
आहूय पूजयेत्सम्यक् योगाङ्गो हृष्टमानसः।।१२।।

इस प्रकार मन्त्र मुद्राओं की सहायता से आत्मा का चिन्तन करके भक्तिभावयुक्त होकर पूजा का प्रारम्भ करे। जैसे काठ से काठ का मन्थन करके अग्नि प्रज्वलित करके अथवा तापदर्शन मणि से जैसे क्रिया सम्पन्न कराने योग्य अग्नि का आकर्षण किया जाता है, उसी प्रकार मन्त्रादि द्वारा निष्कल स्थिति में से सकल (कलायुक्त) रवि का आवाहन

करके योगाङ्ग द्वारा अनुष्ठान करते हुये सम्यक् चित्त होकर उनका पूजन सम्पन्न करना चाहिये।।१०-१२।।

मित्रालये नदीतीरे गोष्ठेषु पवनेषु च।
प्रफुल्लपद्मखण्डेषु नदेषु सरसीषु च।।१३।।
नदीनां सङ्गमे तीर्थे पर्वतेषु वनेषु च।
घर्मपृष्ठे समे देशे कुश-पुष्प-फलान्विते।।१४।।
अनुर्वरे प्रकृष्टे तु प्रागुदक्प्रवणे शुभे।
यत्र वा रमते ये च तत्र पूजा विधीयते।।१५।।

मित्रवन में, नदीतीर में, गोष्ठ में, उपवन में, प्रस्फुटित पद्मसमूह में, नद में, जलाशय में, नदीसंगम में, तीर्थ में, पर्वत-वन-घर्मस्थान में, कुश-पुष्पयुक्त समान देश में, अनुर्वर उत्तम स्थान में, नीचे जल नि:सरण के शुभ स्थान में अथवा जहाँ मन प्रसन्न हो, ऐसे स्थान में पूजा करनी चाहिये।।१३-१५।।

भूम्यर्कानलतोयेषु प्रतिमायां महाध्वरे।
काञ्चनं ताम्रपात्रे वा कुर्यात्पूजां वटेऽथवा।।१६।।
विना मन्त्रविधानेन पूजा व्यर्था नृणां भवेत्।
सा चैव सनमस्कारा कर्तुः शतगुणा भवेत्।।१७।।

भूमि, सूर्यमण्डल, अग्नि, जल, प्रतिमा, महायज्ञ, स्वर्ण अथवा वटवृक्ष में पूजन करना चाहिये। मन्त्र-विधान के बिना पूजा व्यर्थ होती है। नमस्कार के साथ पूजा करने से सौगुना फल मिलता है।।१६-१७।।

कनीयांस्तु विधिर्मन्त्रो मध्यमो वा तथोत्तमः।
सहस्रलक्षकोटिस्तु क्रमशः फलमाहरेत्।।१८।।
प्रत्येकं मन्त्रजापेन पूजाविधिरिहोत्तमः।
मध्यमः पादपिण्डेन कनीयान्पिण्ड एव च।।१९।।

कनिष्ट, मध्यम तथा उत्तम—ये तीन प्रकार के विधान तथा मन्त्र होते हैं। कनिष्ठ में सहस्र गुण, मध्यम में लक्षगुण तथा उत्तम में कोटिगुण लाभ होता है। प्रत्येक मन्त्र के जप को उत्तम कहा गया है। पादपिण्ड मध्यम है तथा पिण्ड कनिष्ठ होता है।

व्योमाकृतो व्योमशिखो मुद्रावाहनकर्मणि।
गमने च खखोल्कस्य शोषणे तृप्तिरक्षया।।२०।।
रथस्य च रथादीनां दिगीशानां समुद्रया।
उत्तमो हि विधिर्मध्यः कनीयान् शातपद्मया।।२१।।

मुद्रा तथा आरोहण कर्म में व्योमाकृति तथा व्योमाशिख होता है। इसमें सूर्य के गमन तथा पोषण से अक्षय तृप्ति होती है। रथ तथा रथादि के दिगीश्वर की मुद्रा द्वारा तृप्ति-विधान करे। यह उत्तम विधि है। शातपद्म द्वारा तृप्तिविधान मध्यम तथा कनिष्ठ होता है।।२०-२१।।

आगमः स्थापनं रोधः सान्निध्यं पाद्यमेव च।
अर्घ्यः स्नानं तथा वासो लेपनं कुसुमानि च।।२२।।
धूपं विभूषणं चैव तथान्येषां च पूजनम्।
अङ्गादीनां च देवानां शेषांश्चान्यान्यथाक्रमम्।।२३।।

आवाहन, स्थापन, रोधन, सान्निध्य, पाद्य, अर्घ्य, स्नान, वस्त्र, गन्धादि लेपन, पुष्प, धूप (दीप) तथा विभूषण प्रदान से सूर्य की तथा अन्य की पूजा सम्पन्न होती है। इसी प्रकार अंगादि देवों की तथा शेष अन्य की भी यथाक्रम से पूजा करनी चाहिये।।२२-२३।।

दीपं बलिमथातोऽर्घं जपं न्यासं स्तवं तथा।
अग्निक्रियां च संहारं शुद्धिपातं विहारणम्।।२४।।
विसर्जनं च निर्हारं कुर्यात् सर्वं पृथक्-पृथक्।
मन्त्रैर्यथोदितैः स्वैः स्वैर्भक्त्या परमयान्वितः।।२५।।
निष्कलं सकलीकृत्य मन्त्रेणाह्वाययेत्ततः।
आहूयन्ते हि यद्देवमागमः समुदाहृतः।।२६।।

दीप, पूजोपहार (बलि), अर्घ्य, जप, न्यास, स्तव, अग्निक्रिया (होम), संहार, शुद्धिपात, विहार, विसर्जन तथा निर्हार (बाहर करना) सब कुछ पृथक्-पृथक् यथोक्त रूप से उन-उन देवताओं के मन्त्र से परम भक्तिपूर्वक करने पर निष्कल को सकल करने के लिये आह्वान करना पड़ता है।।२४-२६।।

उपवेशनं च कमले तस्यैव स्थापनं विदुः।
विघातोऽन्यत्र गमने रोधोऽसौ परिकीर्तितः।।२७।।
युक्ताग्रमनसः स्थानं यत्र सान्निध्यमुच्यते।
पादयोः सलिलैः सद्भिः पाद्यं देवस्य कथ्यते।।२८।।

कमल पर उनके बैठने को 'स्थापन' करना कहते हैं। अन्यत्र न जायँ, इस गमन के व्याघात को 'रोध' कहा गया है। एकाग्र मन से अवस्थान करना 'सान्निध्य' है। चरणों पर जल अर्पण करना 'पाद्य' है।।२७-२८।।

हेमपात्रे तथा ताम्रे चन्दनोदकसम्मिते।
आदाय सलिलं पुण्यं हस्ताभ्यां परिगृह्य च।।२९।।

जानुभ्यां धरणीं गत्वा दद्यादर्घं गभस्तिने।
देयं चन्दनपङ्केन कुङ्कुमेन च लेपनम्॥३०॥

स्वर्ण अथवा ताम्रपात्र में चन्दन, जल तथा पुष्प रखकर दोनों हाथों में लेकर जानुद्वय को पृथ्वी पर स्थापित करके सूर्यदेव के लिये अर्घ्य प्रदान करना चाहिये। तदनन्तर चन्दन एवं कुङ्कुम लगाना चाहिये।।२९-३०।।

रक्तराजीवपुष्पाद्यैरम्लानैः सुसुगन्धिभिः।
पूजां च कुड्मलैः कुर्याद्गन्धधूपादिवासितैः॥३१॥
कर्पूरगुग्गुलैश्चैव ह्युशीरागुरुचन्दनैः।
तुरुष्कसारैः सर्जैर्वा धूपो देयः सुगन्धिभिः॥३२॥

अम्लान सुगन्धित रक्तवर्ण पद्मपुष्प तथा कुड्मल द्वारा पूजा करे। गन्ध-धूपादि से वासित कर्पूर, गुग्गुलु, उशीर, अगुरु, चन्दन, तुरुष्कासार (शिलाजीत) अथवा सुगन्धित सर्ज द्वारा पूजा करे।।३१-३२।।

रत्नैरनेकैर्विविधैः शातकुम्भादिभूषणैः।
खखोल्कं भूषयेदेवं हृदये मनसा रविम्॥३३॥
अङ्गादीनां च सर्वेषां देवतानां यथाविधि।
पूजनं च विधातव्यः सपुष्पैश्चन्दनाम्बुभिः॥३४॥

अनेक रत्न, विविध स्वर्णादि आभूषण द्वारा सूर्य को अलंकृत करे। मन ही मन उनका चिन्तन भी करना चाहिये। अंगादि देवगण की यथाविधि पुष्प, चन्दन तथा जल से पूजा करनी चाहिये।।३३-३४।।

षष्टिप्रदीपान् सुबहून् दद्यादर्काय शक्तितः।
शङ्खादिनिर्मितैर्घोषैः पूजयेन्मिहिरं शुभम्॥३५॥
वेणुवीणास्वनैर्घोषैः पूजयेन्मिहिरं शुभम्।
वक्ष्यमाणविधानेन श्रद्धया सुमनोगतम्॥३६॥

साठ प्रदीप अथवा यथाशक्ति (अर्थात् शक्ति के अनुसार अधिक भी) सूर्य को प्रदान करना चाहिये। शङ्ख ध्वनि, दिव्यगोधर (चटचटा शब्द), वीणा तथा वेणु के शब्द द्वारा कहे गये विधानानुसार श्रद्धा एवं एकाग्र भाव से मंगलमय सूर्य की पूजा करनी चाहिये।।३५-३६।।

खखोल्कयुतमन्त्रं च जपेच्चैव सुयत्नतः।
सर्वं पाद्यादिकां पूजां जपं त्रिविधमेव च॥३७॥
न्यासः खखोल्कहृदयं रथाङ्गानां प्रकीर्तितम्।
गुणविग्रहयोः सम्यक् वर्णनं स्तवमुच्यते॥३८॥

सूर्य के मूल मन्त्र का सयत्न जप करे तथा समस्त पाद्यादि विधान से पूजन एवं वाचिक, उपांशु, मानस जप करना उचित है। रथाङ्ग समूह का न्यास सूर्य का हृदय-स्वरूप कहा गया है। गुण एवं विग्रह के सम्यक् वर्णन को स्तव कहते हैं।।३७-३८।।

मन्त्रमुद्रावियोगेन द्रव्यै राज्यादिभिः शुभैः ।
उद्दिष्टं देवयजनं वषट् स्वाहान्तसंयुतम् ॥३९॥
अग्नावियं समुद्दिष्टां निखिलाग्निक्रियां सुराः ।
कृते पूजा विधानेन विप्रकीर्णे च चेतसि ॥४०॥

मन्त्र तथा मुद्रादि द्वारा राज्यादि शुभ द्रव्यों द्वारा अन्त में वषट् तथा स्वाहा शब्द से सूर्यपूजा कही गयी है। अग्नि में समस्त होमादि क्रिया को देवगणों ने कहा है। चित्त को उन्नत करके पूजा विधान द्वारा पूजा सम्पन्न करनी चाहिये।।३९-४०।।

संहृतिः क्रियते यत्र संहारं तं विनिर्दिशेत् ।
पूजाविधाने सर्वस्मिन् द्रव्यमुद्रादिहानितः ॥४१॥
यः कश्चित्तनुजो दोषो विशुद्ध्यान्तं समुन्नयेत् ।
शिरसा मनसा वाचा दृष्ट्या बुद्ध्या च शुद्धया ॥४२॥
जानुभ्यामथ पाणिभ्यां प्रणिपातो हि सप्तधा ।
सप्त सप्त समुद्देशाद् दद्याद् विप्राय शक्तितः ॥४३॥
दानं गुणवते देयमिदं वितरणं स्मृतम् ।

जहाँ संहृति की जाती है, उसे संहार कहा गया है। पूजाविधान में सर्वत्र द्रव्य तथा मुद्रादि की हीनता का जो देहजात दोष है, उसे विशुद्ध कर लिया जाता है। मस्तक, मन, वाक्य, दृष्टि तथा शुद्ध बुद्धि, जानुद्वय तथा हस्तद्वय—इन सबके सहयोग से सात बार प्रणिपात करे। गुणवान ब्राह्मण को यथाशक्ति दान भी करे। यह 'वितरण' कहा गया है।।४१-४३।।

सकलीकृत एवाथ निष्कलीकरणात्पुनः ॥४४॥
विसर्जनेन मन्त्रेण प्राप्नोति पुरुषोत्तमम् ।
यजतः कुसुमस्तोकं गृहीत्वा होमभस्म च ॥४५॥
निक्षिपेद्दिशि कौबेर्यां निर्हारोऽयमुदाहृतः ।
आगमाद्या तु या पूजा सानन्दा परिकीर्तिता ॥४६॥
सर्वास्तास्संविधातव्याः सपुष्पचन्दनादिभिः ।

सकलीकृत वस्तु को पुनः निष्कल करने से विसर्जन मन्त्र द्वारा पुरुषोत्तम की प्राप्ति होती है। यज्ञ के पश्चात् सामान्य पुष्प तथा होमभस्म को उत्तर दिशा की ओर फेंके। इसे निर्हार (अभ्यवकर्षण) कहते हैं। आगमादि में विहित जो पूजा है, उसे शुभजनक कहा गया है। सभी पूजन पुष्प तथा चन्दनादि से करना चाहिये।।४४-४६।।

मन्त्रमुद्रा तथा ध्यानं योगाङ्गं सुसमाहितम् ॥४७॥
समं सम्पादयेत्सर्वमक्लिष्टं यत्परायणम् ।
यामद्वयपरिच्छन्नं प्रातर्वेलादितः क्रमात् ॥४८॥

मन्त्र, मुद्रा एवं सुसमाहित ध्यान-योग से सूर्यदेव की समस्त पूजा अनायास ही सम्पन्न हो जाती है। प्रातःकाल से लेकर क्रमशः दो प्रहर व्यापी पूजन करना चाहिये।।४७-४८।।

शान्तिं पुष्टिं च शान्त्यर्थं शान्तवत्कीर्तितं मया ।
ज्योतिरत्नस्तथाग्निश्च ज्योतिष्मानपरः स्मृतः ॥४९॥
शुभ्रश्च हरितोऽत्यग्निरित्यश्वाः परिकीर्तिताः ।
सर्पिस्त्रिनाभ्यरुणिरर्त्यग्विधातेत्यमी तथा ॥५०॥

शान्ति तथा पुष्टि कर्म करे। शान्ति-हेतु कर्म शान्त भाव से करना चाहिये। ज्योति-रत्न, अग्नि तथा ज्योतिष्मान (सूर्यमण्डल को) पूजास्थान कहते हैं। शुभ्र हरित तथा अग्नि को अश्व कहते हैं। सर्पि, त्रिनाभि, अरुणि—ये अग्निधाता कहे गये हैं।।४९-५०।।

प्रणवादि समायुक्ता नमस्कारान्तकल्पिताः ।
हृदयादिरथादीनां यज्वन्तानां पदक्रमात् ॥५१॥

आदि में प्रणव युक्त करके तथा अन्त में नमस्कार करना चाहिये (अर्थात् नाम के आदि में ॐ तथा अन्त में नमस्कार लगाये)। हृदयादि एवं रथ प्रभृति के पदक्रम से अर्चना करनी चाहिये।।५१।।

आदित्याय सहेहेति मिहिरागच्छतिद्वयम् ।
स्ववर्गेणेति हुंपश्चान्नमः स्वाहान्तकल्पितः ॥५२॥

पहले 'आदित्याय', तत्पश्चात् 'इह', तदनन्तर 'मिहिर' तदनन्तर दो बार 'आगच्छ' लगाये। तदनन्तर 'हुं नमः स्वाहा' लगाने से मन्त्रोद्धार होता है—आदित्याय इह मिहिर आगच्छ आगच्छ हुं नमः स्वाहा।।५२।।

अयमाकाशमन्त्रो हि तथोङ्कारादिसंयुतम् ।
खखोल्कायेति स्वाहान्तो मूलमन्त्र उदाहृतः ॥५३॥
प्रणवादिव्योमिव्यापी सर्वलोकाधिपस्तथा ।
तिष्ठतिष्ठेति निर्दिष्टः स्वाहान्तः स्थापने मतः ॥५४॥

यह आकाश मन्त्र कहा गया। ऐसे ही ॐ युक्त 'खखोल्काय' तथा अन्त में स्वाहा शब्द का योग करने से मन्त्रोद्धार होता है—ॐ खखोल्काय स्वाहा'। यह सूर्यदेव का मूल मन्त्र है। पहले प्रणव तत्पश्चात् 'व्योमव्यापी' तत्पश्चात् 'सर्वलोकाधिप' शब्द

तत्पश्चात् 'तिष्ठ-तिष्ठ' लगाये। अन्त में 'स्वाहा' कहे। मन्त्रोद्धार होता है—ॐ व्योमव्यापिन् सर्वलोकाधिप तिष्ठ तिष्ठ स्वाहा। यह स्थापन मन्त्र है।।५३-५४।।

अर्कप्रदीप्तिचिपिटजगच्चक्षुः प्रभाकरः ।
स महातेजसो मन्त्रः खखोल्कहृदयादिभिः ।।५५।।
एते प्रतिपदं सौख्याः स्वाहान्ताः प्रणवादिकाः ।
कवचस्तु सहुङ्कारो हुंफडस्त्रं तु योजयेत् ।।५६।।

अर्कप्रदीप्ति, चिपिट, जगच्चक्षु, प्रभाकर, महातेजस्वी, खखोल्क हृदयादि के साथ इस मन्त्र के आदि में प्रणव तथा अन्त में 'हुं स्वाहा' लगाये। यह संरोधन मन्त्र कहलाता है। मन्त्रोद्धार होता है—ॐ अर्कप्रदीप्ति चिपिट जगच्चक्षु प्रभाकर महातेजस्वी खखोल्क हृदयादि हुं स्वाहा।।५५-५६।।

गायनाधिपतिश्चैव सहस्रकिरणस्तथा ।
संरोधात्मेति संरोधो ॐ स्वाहाद्यन्तकल्पितः ।।५७।।

गायनाधिपति सहस्रकिरण सरोधात्मा संरोध ॐ स्वाहा—यह है संरोधन मन्त्र।।५७।।

ॐमाकाशविकासिने जगच्चक्षुषे तथा ।
सान्निध्यं कुर्वीतिविश्वस्वाहान्तः सन्निधाय च ।।५८।।

ॐ आकाशविकासिने जगच्चक्षुषे सान्निध्यं कुरु कुरु स्वाहा—यह है सन्निधापन मन्त्र।।५८।।

ह्रां चिरीन्टि चिरिन्टीति दीप्ताङ्घ्रिरिति स्मृतः ।
प्रणवादिकः पाद्यमन्त्रो नमःशब्दान्तसंयुतः ।।५९।।

ॐ ह्रां चिरिण्टि चिरिण्टि दीप्ताङ्घ्रिः नमः—यह है पाद्यदान मन्त्र।।५९।।

ॐ गभस्तिने द्विः किलि कालि कालीति चापरः ।
सर्वार्थसाधिनीत्येव ककिद्विस्त्रिः सहुंकृतिः ।।६०।।
अर्घ्यमन्त्रो विनिर्दिष्टोऽप्यन्ते कृतनमस्कृतिः ।
ॐ सवित्रे च वरुणाय नमः स्यात्स्थापने मन्त्रः ।।६१।।

ॐ गभस्तिने किलि किलि कालि कालि सर्वार्थसाधिनि ककि ककि हुं फट् नमः—यह अर्घ्यदान का मन्त्र है। तदनन्तर 'ॐ सवित्रे वरुणाय नमः' मन्त्र से स्थापन करना चाहिये।।६०-६१।।

खखनेत्रसहस्रं तु नमोऽन्तः परिकल्पितः ।
वस्त्रगन्धस्तु विज्ञेयः पिङ्गलाश्छन्दलेति च ।।६२।।

'खखनेत्रसहस्राय नमः' मन्त्र से वस्त्र प्रदान करे तथा 'पिङ्गला छन्दला' मन्त्र से गन्ध-दान करे।।६२।।

प्रणवादिहिलीतिद्विर्महामालाधरस्तथा ।
तेजोऽधिपतिर्नमोन्तऽश्च पुष्पमन्त्र उदाहृतः ।।६३।।
ज्वलितार्कस्तु तारादिर्धूपद्विर्मिहिरज्वलः ।
विचित्ररत्नधारीति नमोऽन्तो भूषणः स्मृतः ।।६४।।

'ॐ हिलि हिलि महामालाधरतेजोऽधिपतये नमः' यह पुष्पदान का मन्त्र है। 'ॐ ज्वलितार्क धूप धूप मिहिर ज्वल विचित्ररत्नधारिन् नमः' इस मन्त्र से भूषणादि प्रदान किया जाता है।।६३-६४।।

महाश्वेता दण्डपाणिररुणिः पिङ्गलस्तथा ।
प्रणवादिनमोऽन्ताश्च संयोज्याः पद सन्त्वि मे ।।६५।।

'ॐ महाश्वेता दण्डपाणि अरुणि पिङ्गलाय नमः'।

अरुणः सूर्योऽशुमाली धातेन्द्रश्च रविस्तथा ।
गभस्तिश्च यमश्चैव स्वर्णरेतास्तथैव च ।।६६।।
त्वष्टामित्रोऽथ विष्णुश्च द्वादशैव प्रकीर्तिताः ।
आदित्याः प्रतपन्त्येते माघमासादिषु क्रमात् ।।६७।।

अरुण, सूर्य, अंशुमाली, धाता, इन्द्र, रवि, गभस्ति, यम, स्वर्णरेता, त्वष्टा, मित्र तथा विष्णु—इन बारह नामों से सूर्य क्रमशः माघ आदि बारह मास में ताप देते हैं। माघ में अरुण, फाल्गुन में सूर्य, चैत्र में अंशुमाली, वैशाख में धाता, ज्येष्ठ में इन्द्र, आषाढ़ में रवि, श्रावण में गभस्ति, भाद्रपद में यम, आश्विन में स्वर्णरेता, कार्तिक में त्वष्टा, अग्रहायण में मित्र एवं पौष मास में विष्णु ताप देते है।।६६-६७।।

प्रणवादिसमायुक्तानेतानेवं च संज्ञया ।
सहुंकारनमस्कारान् संयुक्तान् संप्रयोजयेत् ।।६८।।

इन नामों के आदि में प्रणव तथा अन्त में हुं नमः लगाये अर्थात् ॐ अरुणाय हुं नमः, ॐ सूर्याय हुं नमः इत्यादि।।६८।।

हरिकेशो रथः कृच्छ्रो रथौजाः पुञ्जिकस्थलः ।
क्रतुस्थलो विश्वकर्मा तथा चैव रथस्वनः ।।६९।।
रथचित्रोऽथ मेनाख्यः सहजान्यस्तथाप्सराः ।
विश्वव्यचा रथप्रोतः सहासमाठरेण तु ।।७०।।
प्रम्लोचन्त्यनुम्लोचन्ती संयद्वसुरथापरः ।
तार्क्ष्यश्चारिष्टनेमिश्च विश्वाची च घृताचिका ।।७१।।

अर्वाग्वसुः सेनजिच्च सुषेणश्चोर्वशी तथा।
पूर्वचित्तिश्च संयोज्याः पूज्याः मन्त्रविधानतः ।।७२।।

हरिकेश, रथकृच्छ्र, रथौजा, पुञ्जिकस्थल, क्रतुस्थल, विश्वकर्मा, रथस्वन, रथचित्र, मेना एवं सहजादि अप्सरागण, विश्वव्यचा, रथप्रोत, सहास, माठर (यम), प्रम्लोचन्ती, अनुम्लोचन्ती, संयद्वसु, तार्क्ष्य, अरिष्टनेमि, विश्वाची, घृताचिका, अर्वाग्वसु, सेनजित्, सुषेण, उर्वशी तथा पूर्वचित्ति—इनकी यथाविधान मन्त्र से पूजा करनी चाहिये।।६९-७२।।

दीप्ताननः कुमारश्च घृणिर्योगवहो विराट्।
केशीसूणपरिष्टौ च माठरानन्तनिक्षुभाः ।।७३।।
तेजोवाह इति ख्याता द्वादशार्कगणाधिपः।
एते स्वनामतोऽभ्यर्च्या नमोऽन्ताः प्रणवादिकाः ।।७४।।

दीप्तानन, कुमार, घृणि, योगवह, विराट्, केशीसूण, परिष्ट, माठर, अनन्त, निक्षुभा तथा तेजोवाह—ये बारहो सूर्य के गणाधिप हैं। इनके नाम के पूर्व में प्रणव तथा अन्त में नमः लगाकर अर्चन करनी चाहिये। जैसे—ॐ दीप्ताननाय नमः, ॐ कुमाराय नमः इत्यादि प्रकार से।।७३-७४।।

क्षुभामैत्रीप्रभाश्यामारोचिर्दीप्तिः सुवर्चला।
योज्यास्तारादिसंयुक्ता नमोऽन्ता सप्त मातरः ।।७५।।

क्षुभा, मैत्री, प्रभा, श्यामा, रोचि, दीप्ति, सुवर्चला—ये सातो मातृगण हैं। इनके आदि में ॐ तथा अन्त में नमः लगाकर पूजा करनी चाहिये।।७५।।

वक्रं शुक्रं गुरुं भौमं सौरिं केतुं बुधाननौ।
सहुङ्कारान्सप्रणवान्नमोऽन्तान्योजयेद् ग्रहान् ।।७६।।

वक्र (क्रूरगति) रवि, शुक्र, गुरु, मंगल, शनि, केतु, बुध तथा राहु—इन नामों के आदि में 'हु' तथा 'ॐ' एवं अन्त में नमः लगाकर पूजा करनी चाहिये।।७६।।

इन्द्रोऽग्निर्यमो निर्ऋतिर्वरुणो वायुरेव च।
कुबेरः शङ्करो ब्रह्मा शेषश्चेति दिगीश्वराः ।।७७।।
एतेष्वनव संयुक्तास्तथाधिपतियोजिताः।
नमस्कारान्तसंयुक्ताः संयोज्या नामतो दश ।।७८।।

इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, कुबेर, शंकर, ब्रह्मा तथा शिव—ये दिगीश्वर हैं अर्थात् पूर्वादि दिक् के अधीश्वर हैं। इन दस लोगों के नाम के पश्चात् जो जिस दिक् का अधिपति है, उसका उल्लेख करके अन्त में 'नमः' लगाकर पूजा करनी चाहिये। जैसे—पूर्वाधिपतये इन्द्राय नमः, पूर्वदक्षिणकोणाधिपतये अग्नये नमः, दक्षिणाधिपतये यमाय नमः इत्यादि।।७७-७८।।

तारादितेजोऽधिपतिर्यस्त्वयैव नमस्कृतः।
अर्कायाप्य गृहाणेति ह्यमृतेति निवेदने ॥७९॥

आदि में तार (ॐ) लगाकर जल निवेदन करना चाहिये; मन्त्र है—ॐ तेजोऽधिपतये अर्काय नमः अमृतं गृहाण।।७९।।

जलकुन्दलायेत्यादौ दिव्यातोद्यप्रियाय च।
प्रणवादिनमोऽन्ताय मत्तोद्ये मन्त्र उच्यते ॥८०॥

ॐ जलकुन्दलाय दिव्यातोद्यप्रियाय नमः—इसे मत्तोद्य मन्त्र कहा गया है।।८०।।

अंशुमानथ देवश्च द्वौ शब्दौ गीयतेति च।
ॐ स्वाहाद्यन्तसंयुक्तो न्यासमन्त्र उदाहृतः ॥८१॥

अंशुमान् तथा देव शब्द के पूर्व में 'ॐ' तथा अन्त में स्वाहा लगाने से न्यास मन्त्र होता है—ॐ अंशुमान् देवाय स्वाहा।।८१।।

आदौ नमस्ते इत्येव दिव्यरूपाय चेत्यथ।
सर्वभूतात्मने चैव नमः सर्वस्य तेजसे ॥८२॥
तथाधिपतयेत्येवं भानवे लोकचक्षुषे।
नम ओंकारसंयुक्तः स्तोत्रमन्त्र उदाहृतः ॥८३॥

'ॐ नमस्ते दिव्यरूपाय सर्वभूतात्मने नमः सर्वतेजसे ताराधिपतये भानवे लोकचक्षुषे नमः—यह स्तोत्र मन्त्र कहा गया है।।८२-८३।।

नमस्कारान्तिका पूजा इह एषा उदाहृता।
स्वाहावषट्कारयुता होमे चानेन तर्पयेत् ॥८४॥

शेष में 'नमः' शब्द का योग करके पूजा की जाती है। स्वाहा तथा वषट्कार का योग करके होम तथा तर्पण किया जाता है (स्वाहा से होम एवं वषट् से तर्पण)।।८४।।

आदौ तारसमायुक्तं संहरेति पदद्वयम्।
विरोचनेति स्वाहान्तो मन्त्रः संहारसंज्ञकः ॥८५॥

ॐ संहर संहर वैरोचनाय स्वाहा—यह संहारमन्त्र है।।८५।।

आदौ शान्तात्मने कृत्वा सर्वलोकजयाय च।
तारादिकः शुद्धमन्त्रः स्वाहान्तः परिकीर्तितः ॥८६॥
खखोल्कायेति कृत्वा यस्तत्पश्चाद्विघ्नहेति च।
सहस्रकिरणायेति धीमहीति तु चापरम् ॥८७॥
तन्नो रविः प्रचोदयादित्योङ्कारादिसंयुतः।
स्वाहान्तो हि नमस्कारो विधेयः सम्प्रकीर्तितः ॥८८॥

ॐ शान्तात्मने सर्वलोकजयाय स्वाहा—इसे शुद्धमन्त्र कहते हैं। ॐ खखोल्काय विद्महे सहस्रकिरणाय धीमहि तन्नो रविः प्रचोदयात्—इसके अन्त में 'स्वाहा' लगाकर नमस्कार करने का नियम है।।८६-८८।।

स्वर्गेणेति च वास्यादौ द्विर्गच्छेति सविग्रहम्।
द्वादशादित्य इति द्विर्हिलीत्योङ्कारसंयुतम् ॥८९॥
गच्छ देवेति च ततः कृत्वा चापि यथागतम्।
मन्त्रः प्रणवादिरेष स्यात् स्वाहान्तो हि विसर्जने ॥९०॥

'ॐ गच्छ गच्छ दिवं द्वादशादित्य हिलि हिलि ॐ गच्छ देव यथागतं स्वाहा'—यह विसर्जन मन्त्र है।

आदावोङ्कारसंयुक्तश्चण्डपिङ्गल इत्ययम्।
निर्माल्यहरणे मन्त्रः स्वाहान्तः परिकीर्तितः ॥९१॥
प्रागुदिष्टे भुवो भागे देवीं शुद्धमृदोद्भवाम्।
चतुरस्रां विदिक्कोणां कुर्यात्प्राक्प्रवणोत्तराम् ॥९२॥

आदि में 'ॐ' तदनन्तर 'चण्डपिङ्गल' तदनन्तर 'स्वाहा' अर्थात् 'ॐ चण्डपिङ्गल स्वाहा' मन्त्र से (चण्डपिङ्गल को) निर्माल्य प्रदान करे। (विधानोक्त) पूर्वनिर्दिष्ट भूमि पर शुद्ध मृत्तिका द्वारा निर्मित देवी को चतुरस्र विदिक् कोण तथा पूर्व की ओर प्रवणोत्तरा करे।।९१-९२।।

गोमयेनोपलिप्यादौ समृदा च भुवं तथा।
चन्दनागुरुपङ्केन कुर्यादर्चनमण्डलम् ॥९३॥

मृत्तिका तथा गोमय (गोबर) के द्वारा भूमिभाग में प्रथमतः लेपन करे। तत्पश्चात् चन्दन एवं अगुरु द्वारा पूजा की वेदी बनाये।।९३।।

वक्ष्यमाणविधानेन स्यन्दनं शश्वदालिखेत्।
पूजाविधाने ध्येयः स्यात्तत्र देवो रविः स्थितः ॥९४॥
सप्तभिः सप्तभिर्युक्तं हरिद्भिरहियोक्तृभिः।
एकचक्रं रथं तस्य चिन्तयेदरुणान्वितम् ॥९५॥

वक्ष्यमाण विधानोक्त रथ अंकित करे। पूजाविधान में उस स्थान में सूर्य का ध्यान करे। सात-सात हरित् वर्ण अश्व द्वारा वाहित एक चक्रयुक्त विशिष्ट तथा अरुण युक्त सूर्य के रथ का चिन्तन करना चाहिये।।९४-९५।।

रवे रजं मासदलं शुभ्रं मध्ये रथस्य तु।
ध्यात्वा तत्कर्णिकामध्ये वह्निशङ्खशिखोज्ज्वलम् ॥९६॥

आवाहनेन मन्त्रेण मुद्रया व्योमसंज्ञया।
कुर्वीत रश्मिनिचयं तमेकत्र पृथक् स्थित: ॥९७॥
पिण्डीकृत्य च तत्तेजो मूलमन्त्रेण चार्कवत्।
तत्र तत्स्थापयेद् व्योम्नि मन्त्रेण स्थापनेन तु ॥९८॥

रवि के रथ में (मध्य में) मासरूप दलविशिष्ट (द्वादशदल) शुभ्र कमल का ध्यान करे। उसकी कर्णिकामध्य में अग्नि, शङ्ख तथा शिखा के समान उज्ज्वल वर्ण रश्मि-समूह को आकाश मुद्रा तथा आवाहन मन्त्र से एकत्र रूप तथा पृथक् रूप स्थित तेज को सूर्य के मूल मन्त्र से पिण्डीकृत करके आकाश में स्थापन मन्त्र द्वारा स्थापित करना चाहिये।।९६-९८।।

तत्रस्थं चिन्तयेद् देवं षड्बीजं प्रणवान्वितम्।
हृदादिभिर्यथायोगं षड्भिरङ्गैः समन्वितम् ॥९९॥
कण्ठादापादसंवीतं पद्महस्तं महाप्रभम्।
खखोल्कं चिन्तयेद्देवं द्वादशादित्यदैवतम् ॥१००॥

उस आकाश-स्थित देव का चिन्तन करे, जो षड्बीज तथा प्रणवयुक्त हैं। यथायुक्त हृदयादि छ: अंगों से समन्वित भी हैं। वे कण्ठ से लेकर पैरों पर्यन्त कान्तिमान हैं। पद्महस्त, महाप्रभायुक्त द्वादश आदित्यों के दैवतरूप में खखोल्क (सूर्य) देव का चिन्तन करे।।९९-१००।।

शिरोऽथ हृदयं चैव शिखां कवचमेव च।
एतानि क्रमतोऽङ्गानि पूजयेद्व्योममूर्द्धनि ॥१०१॥
पद्मपत्राग्रवृन्दान्ते ज्वलदस्तं तथैव च।
महाश्वेतो दण्डपाणिररुण: पिङ्गलस्तथा ॥१०२॥
दिक्षु केसरमूले तु न्यस्य ऐन्द्रीक्रमादिमे।
केशराग्रे तु पद्मस्य पत्रेष्वभ्यर्च्य पूर्ववत् ॥१०३॥
तत्र तत्कर्णिकामध्ये तेजोरूपं तु चिन्तयेत्।
विन्यसेद् द्वादशादित्यान् इन्द्रादीन् हि यथाक्रमम् ॥१०४॥

सूर्यदेव के मस्तक, हृदय, शिखा तथा कवच—इन अंगों की आकाश में क्रमश: पूजा करनी चाहिये। पद्म पत्र के आगे एवं वृन्दान्त में प्रज्वलित तथा अस्तमित महाश्वेत, दण्डपाणि (इन्द्र), अरुण (सूर्य के सारथी), पिङ्गल (अग्नि) की तथा इसी प्रकार पूर्वादि दिक् के केशरमूल में तथा केसराग्र में एवं पद्म के पत्रों में पहले की तरह अर्चना करके उसकी कर्णिका में तेजोरूप का चिन्तन करे। यथाक्रमेण रुद्रादि द्वादश आदित्यों का विन्यास करे।।१०१-१०४।।

हरिकेशस्तथा चैन्द्री रथकृच्छ्ररथौजसौ।
पुञ्जिक्रतुस्थलयुतौ योज्यौ सव्यापसव्ययोः ॥१०५॥
न्यसेदाभ्यां विश्वकर्मा पार्श्वयोश्च रथस्वनः।
रथचित्रश्च मेनाख्या सहजन्यान्वितौ तथा ॥१०६॥
विश्वव्यचाः प्रतीच्यां तु न्यस्य चाश्वसमीपतः।
पार्श्वयोरथ प्रोतश्च माठरोऽथ प्रकीर्तितः ॥१०७॥

हरिकेश, ऐन्द्री, रथकृच्छ्र, रथौज तथा बाँयीं एवं दाहिनी ओर पुञ्जिक्रतु तथा स्थलयुक्त को युक्त करे। विश्वकर्मा ने उभय पार्श्व में रथस्वन तथा रथचित्र को मेना एवं सहजनी के साथ युक्त किया है। पश्चिम दिशा में अश्व के निकट विश्वव्यचा को स्थापित किया है। पार्श्व में प्रोत तथा माठर (यम) की स्थिति कही गयी है।।१०५-१०७।।

प्रम्लोचाम्लोविसंयुक्तो देवदेवस्य कीर्तितः।
संयद्वसूकस्तूत्तरस्यां तार्क्ष्यश्चारिष्टनेमिनौ ॥१०८॥
विश्वाचीघृताचीभ्यां संयुक्तौ सव्यवामतः।
ऊद्ध्र्वमर्वावसुस्तस्य सेनजिच्च सुषेणकः ॥१०९॥
उर्वशी पूर्वचित्तिश्च सहस्ताभ्यां यथाक्रमम्।
दीप्ताननाद्या ये प्रोक्ता द्वादशार्कगणाधिपाः ॥११०॥

प्रम्लोचा तथा म्लोवि संयुक्त देवदेव की महिमा कीर्तित हुई है। ऐसे ही उत्तर में संयद्वसु, तार्क्ष्य, अरिष्टनेमि तथा दाहिनी ओर विश्वाची एवं बाँयीं ओर घृताची स्थित हैं। ऊर्ध्व में अर्वावसु तथा सेनजित् एवं सुषेण हैं। उनके साथ यथाक्रम से उर्वशी तथा पूर्वचित्ति हैं। ये उज्ज्वल वदन द्वादश सूर्य के गणाधिप कहे गये हैं।।१०८-११०।।

ते हि पूर्वात्समारभ्य तस्याः पर्णस्य सन्धिषु।
क्षुपाद्या पर्णतो न्यस्या कंदराया रथस्य तु ॥१११॥
दिग्विदिग्ग्रहपर्यन्ते चन्द्राद्या इन्द्रदिक्क्रमात्।
वासवादींश्च दिग्देवान् न्यसेद्दिक्षु दशस्वपि ॥११२॥

पूर्व से प्रारम्भ करके पत्तों की सन्धियों तथा क्षुपादि अन्य पर्ण-पर्यन्त, रथ के कन्दर में, दिग् विदिक् ग्रह-पर्यन्त, पूर्व दिक् क्रम से चन्द्रादि एवं दश दिशाओं में वासवादि दिक् देवताओं का विन्यास करे।।१११-११२।।

एवं विन्यस्य सर्वांस्तु ततः कुर्वीत पूजनम्।
अथ मन्त्रान्प्रवक्ष्यामि यथावदनुपूर्वशः ॥११३॥

इस प्रकार सभी का विन्यास करके पूजन करना चाहिये। अब आनुपूर्विक मन्त्रों को यथावत् कहता हूँ।।११३।।

ॐ विश्वात्मने नमः। ॐ हृदयशुक्रज्योतिषे नमः। ॐ चित्रज्योतिषे नमः। ॐ सत्यज्योतिषे नमः। ॐ ज्योतिष्मदग्नये नमः। ॐ शुक्राय नमः। ॐ हरिताय नमः। ॐ अत्यग्नये नमः। एते यथाक्रममश्वानां संग्रहाः।

ॐ सर्पाय नमः वासुकिहृदयम्। ॐ चित्रनाभवे नमः चक्रहृदयम्। ॐ अरुणाय नमः अरुणहृदयम्। ॐ ऋत्विग्विधात्रे नमः पद्महृदयम्। ॐ आदित्याय-हे हे मिहिरागच्छ गच्छ हुं खः ठः ठः सर्वाह्लादनमन्त्राः।

खखोल्काय ठः ठः मूलमन्त्रः। ॐ व्योमव्यापिने सर्वलोकाधिपतये तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनमन्त्रः। ॐ अर्काय ठः ठः हृदयम्। ॐ प्रदीप्ताय ठः ठः शिरः। ॐ विपिटये ठः ठः शिखाम्। ॐ जगच्चक्षुषे ठः ठः नेत्रम्। ॐ पद्माकराय हुं ठः ठः कवचम्। ॐ महातेजसे हुं फडस्त्रम्।

ॐ गं गणाधिपतये सहस्त्रकिरणाय संरोधात्मने नमः—संरोधमन्त्रः। ॐ आकाशविकासिने जगच्चक्षुषे सान्निध्यं कुरु कुरु ठः ठः—सन्निधापनमन्त्रः। ॐ इरिटिचिरिटये दीप्ताङ्घ्रये नमः—पाद्यमन्त्रः। ॐ गभस्तिने किलिकिलिकालिकालि-सर्वार्थसाधिनि ककि ककि हुं नमः, ॐ सवित्रे वरुणाय नमः—स्नानमन्त्रः। ॐ खखनेत्राय सहस्त्रतनवे नमः—वस्त्रमन्त्रः। पिङ्गलायाछले नमः—गन्धमन्त्रः। ॐ हिलिहिलि महामालाधरतेजोऽधिपतये नमः—पुष्पमन्त्रः। ॐ ज्वलितार्काय नमः—धूपमन्त्रः। ॐ मिहिराय ज्वलविचित्ररत्नधारिणे नमः—भूषणमन्त्रः।

भ्रं आनिम्बमन्त्रेणैवं पूजयेत्। ॐ महाश्वेतायै नमः। ॐ दण्डपाणये नमः। ॐ अरुणादेव्यै नमः। ॐ पिङ्गलायै नमः। ॐ अरुणाय हुं नमः। ॐ सूर्याय हुं नमः। ॐ अंशुमालिने हुं नमः। ॐ धात्रे हुं नमः। ॐ इन्द्राय हुं नमः। ॐ रवये हुं नमः। ॐ गभस्तिने हुं नमः। ॐ यमाय हुं नमः। ॐ स्वर्णरेतसे हुं नमः। ॐ त्वष्ट्रे हुं नमः। ॐ मित्राय हुं नमः। ॐ विष्णवे हुं नमः—एते आदित्यानां मन्त्राः।

ॐ हरिकेशाय हुं नमः। ॐ रथकृच्छ्राय नमः। ॐ रथौजसे नमः। ॐ पुञ्जिकस्थलायै नमः। ॐ क्रतुस्थलायै नमः। ॐ विश्वकर्मणे नमः। ॐ रथस्वनाय नमः। ॐ रथचित्राय नमः। ॐ मेनकायै नमः। ॐ सहजन्यायै नमः। ॐ विश्वव्यचसे नमः। ॐ रथप्रोताय नमः। ॐ अंशमाठराय नमः। ॐ प्रम्लोचन्त्यै नमः। ॐ अनुम्लोचन्त्यै नमः। ॐ ताक्ष्यार्य नमः। ॐ अरिष्टनेमिने नमः। ॐ विश्वाच्यै नमः। ॐ घृताच्यै नमः। ॐ आर्वाग्वसवे नमः। ॐ सेनजिते नमः। ॐ सुषेणाय नमः। ॐ उर्वश्यै नमः। ॐ पूर्वचित्त्यै नमः—एते रश्मिपतीनामप्सरसां च मन्त्राः।

ॐ प्रदीप्ताननाय नमः। ॐ कुमाराय नमः। ॐ घृणिपाय नमः। ॐ अंगावहाय नमः। ॐ विराजे नमः। ॐ केशिने नमः। ॐ सुरराजाय नमः। ॐ अरिष्टाय नमः। ॐ माषाय नमः। ॐ अनन्ताय नमः। ॐ निक्षुभाय नमः। ॐ तेजोवहाय नमः—एते गणाधिपानां मन्त्राः।

ॐ क्षुपायै नमः। ॐ मैत्र्यै नमः। ॐ प्रेमायै नमः। ॐ श्यामायै नमः। ॐ रोचिषे नमः। ॐ दीप्तये नमः। ॐ सुवर्चलायै नमः—एते मातृमन्त्राः।

ॐ चन्द्राय हुं नमः। ॐ शुक्राय हुं नमः। ॐ बृहस्पतये हुं नमः। ॐ अङ्गारकाय हुं नमः। ॐ शनैश्चराय हुं नमः। ॐ राहवे हुं नमः। ॐ केतवे हुं नमः। ॐ बुधाय हुं नमः—एते ग्रहाणां मन्त्राः।

ॐ इन्द्राय सुराधिपतये नमः। ॐ अग्नये तेजोऽधिपतये नमः। ॐ यमाय प्रेताधिपतये नमः। ॐ निर्ऋतये रक्षोऽधिपतये नमः। ॐ वरुणाय जलाधिपतये नमः। ॐ वायवे प्राणाधिपतये नमः। ॐ कुबेराय यक्षाधिपतये नमः। ॐ शङ्कराय सर्वविद्याधिपतये नमः। ॐ ब्रह्मणे सर्वलोकाधिपतये नमः। ॐ शेषाय सर्वनागाधिपतये नमः—एते दिग्देवतानां मन्त्राः।

ॐ तेजोऽधिपतये नमः—दीपमन्त्रः। ॐ अर्काय गृहाणामृतम्—नैवेद्यमन्त्रः। ॐ जलकुन्दलाय दिव्याय तोद्यप्रियाय नमः—आतोद्यमन्त्राः। ॐ अंशुमते देवाय गोपाय ठः ठः—पूजाजपन्यासमन्त्रः।

अब मूल में 'ॐ विश्वात्मने नमः' इत्यादि मन्त्रों से विश्वात्मा, हृदयशुक्रज्योतिष, चित्रज्योतिष, सत्यज्योतिष, अग्नि, शुक्र, हरित तथा अत्यग्नि की पूजा करे। यह यथाक्रमेण अश्वसमूह का संग्रह है।

तदनन्तर 'ॐ सर्पाय नमः' इत्यादि मूल में अंकित मन्त्रों से वासुकिहृदय, चक्रहृदय, अरुणहृदय, पद्महृदय की अर्चना करके 'ॐ आदित्याय हे हे मिहिरागच्छ गच्छ हुं ख स्वाहा' मन्त्र से सूर्य का आवाहन करना चाहिये। यह है—सर्वाह्लादन मन्त्र।

'खखोल्काय स्वाहा' मूल मन्त्र है। आकाशवासी सभी लोकों के अधिपति यहाँ रहिये—स्वाहा (ॐ व्योमव्यापिने सर्वलोकाधिपतये तिष्ठ तिष्ठ स्वाहा)—यह स्थापना मन्त्र है। तदनन्तर ॐ अर्काय स्वाहा—हृदयम्, ॐ प्रदीप्ताय स्वाहा—शिरः, ॐ विपिटये स्वाहा—शिखाम्, ॐ जगच्चक्षुषे स्वाहा—नेत्रम्, ॐ पद्माकराय हुं स्वाहा—कवचम्। ॐ महातेजसे हुं फट्—अस्त्रम्। इस प्रकार न्यास करना चाहिये।

अब 'ॐ गं गणाधिपतये' इत्यादि संरोध मन्त्र है। 'ॐ आकाशविकासिने' इत्यादि सन्निधान मन्त्र है। (यहाँ-जहाँ भी 'ठः ठः' लिखा है, वहाँ 'ठः ठः' के स्थान पर 'स्वाहा' लगाये।) 'ॐ इरिष्ट' इत्यादि मन्त्र से पाद्य प्रदान करे। 'ॐ गभस्तिने' इत्यादि मन्त्र से

स्नान कराये। 'ॐ खखनेत्राय' इत्यादि वस्त्रदान मन्त्र है। 'पिङ्गलायाछले नमः' गन्ध मन्त्र है। 'ॐ हिलि हिलि' इत्यादि पुष्पदान मन्त्र है। 'ॐ ज्वलितार्काय नमः' इत्यादि मन्त्र से धूपदान किया जाता है। 'ॐ मिहिराय' इत्यादि मन्त्र से भूषणादि प्रदान करना चाहिये।

मूल में लिखित मन्त्रों से क्रमशः महाश्वेता, दण्डपाणि, अरुणादेवी, पिङ्गला, अरुण, सूर्य, अंशुमाली, धाता, इन्द्र, रवि, गभस्ति, यम, स्वर्णरिता, त्वष्टा, मित्र तथा विष्णु का पूजन करे। ये आदित्य गणों के मन्त्र हैं।

मूल में लिखित 'ॐ हरिकेशाय' इत्यादि मन्त्रों से क्रमशः हरिकेश, रथकृच्छ्र, रथौजा, पुञ्जिकस्थला, क्रतुस्थला, विश्वकर्मा, रथस्वन, रथचित्र, मेनका, सहजन्या, विश्वव्यचा, रथप्रोता, अंशमाठर, प्रम्लोचन्ती, अनुम्लोचन्ती, तार्क्ष्य, अरिष्टनेनि, विश्वाची, घृताची, अर्वाग्वसु, सेनजित्, सुषेण, उर्वशी तथा पूर्वचिति का पूजन करना चाहिये। यह सब रश्मिपति तथा अप्सराओं का मन्त्र है।

'ॐ प्रदीप्ताननाय नमः' इत्यादि मन्त्रों से प्रदीप्तासन, कुमार, घृणीश, अङ्गावह, विराज, केशी, सुरराज, अरिष्ट, माष, अनन्त, निक्षुभ तथा तेजोवहा का पूजन करे। यह सब गणाधिपों का मन्त्र है।

तत्पश्चात् 'ॐ क्षुपायै नमः' इत्यादि मन्त्रों द्वारा मातृगण का पूजन कर्त्तव्य है। क्षुपा, मैत्री, प्रेमा, श्यामा, रोचि, दीप्ति तथा सुवर्चला का पूजन करे, जो मातृगण हैं।

'ॐ चन्द्राय हुं नमः' इत्यादि मन्त्र से चन्द्र, शुक्र, बृहस्पति, मंगल, शनि, राहु, केतु तथा बुध ग्रहों का पूजन करे।

तत्पश्चात् मूल में अंकित मन्त्रों से दिक् देवतागण का पूजन करे। जो जिसके अधिपति हैं, उनके साथ उसका उल्लेख करके पूजन करना चाहिये। जैसे—'इन्द्राय सुराधिपतये नमः—देवताओं के अधिपति इन्द्र को नमस्कार, तेज के अधिपति अग्नि को नमस्कार इत्यादि। ऐसे ही इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, कुबेर, शङ्कर, ब्रह्मा तथा शेष (अनन्त) को नमस्कार किया जाता है।

अब 'ॐ तेजोऽधिपतये नमः' इत्यादि मूल में अंकित मन्त्रों से दीप तथा नैवेद्य प्रदान करे। 'ॐ जलकुन्दलाय' इत्यादि आतोद्य मन्त्र है। 'ॐ अंशुमते' इत्यादि पूजा, जप एवं न्यास मन्त्र हैं।

ॐ नमस्ते दिव्यरूपाय सर्वभूतात्मने नमः।
सर्वतेजोऽधिपतये भानवे लोकचक्षुषे॥११४॥

मूल में अंकित श्लोक ११४ द्वारा सूर्यदेव की स्तुति करे। अर्थ है—हे दिव्य रूप! आपको नमस्कार है। हे समस्त प्राणीगण के आत्मरूप! आपको नमस्कार है। हे समस्त तेज के अधिपति! लोकचक्षुस्वरूप भानु! आपको नमस्कार है।।११४।।

अग्निक्रियां ततो वक्ष्ये मन्त्रमुद्रादितः क्रमात्।
उल्लेखनं धारणां तु कुर्यादर्कहृदस्तथा ॥११५॥

तदनन्तर अग्निक्रिया कहता हूँ। तदनन्तर क्रमपूर्वक मन्त्र मुद्राप्रभृति का उल्लेखन तथा सूर्य का हृदय में धारण करना चाहिये।।११५।।

आज्येन व्रीहिभिः पक्वैरर्कस्य कुसुमैश्च वा।
प्रत्येकमाहुतीर्दद्याद्ये पूज्याः परिकीर्तिताः ॥११६॥

सूर्य की यहाँ जो पूजा कही गयी है, उनमें प्रत्येक में घृत, पके गेहूँ-यवादि अथवा कुसुम के द्वारा आहुति देनी चाहिये।।११६।।

ॐ संहर संहर विरोचन ठः ठः—उपसंहारमन्त्रः। ॐ शांतात्मने सर्वलोकप्रियाय ठः ठः—शुद्धिमन्त्रः। ॐ खखोल्काय विद्महे सहस्रकिरणाय धीमहि तन्नो रविः प्रचोदयात्—नमस्कारविधावर्कहृदयेन दानः। गच्छागच्छ स्ववर्गेण द्वादशादित्यविग्रहम्। ॐ हिलि हिलि गच्छ देव यथागतः स्वाहा—विसर्जनमन्त्रः। ॐ चण्डपिङ्गलाय ठः ठः—निर्माल्यमन्त्रः।

ॐ संहर संहर विरोचन स्वाहा—यह उपसंहार मन्त्र है। ॐ शान्तात्मने सर्वलोकप्रियाय स्वाहा—शुद्धिमन्त्र है। 'ॐ खखोल्काय विद्महे' इत्यादि मूल में अंकित मन्त्र से नमस्कार विधान द्वारा सूर्यहृदय में (नमस्कार को) दान करे। 'गच्छागच्छ' इत्यादि मन्त्र से विसर्जन करना चाहिये। ॐ चण्डपिङ्गलाय स्वाहा—यह निर्माल्य मन्त्र है।

एतद्यः प्रत्यहं कुर्याद्रविवासर एव च।
सकृद्वा यो विधानं च तस्य पुण्यफलं शृणु ॥११७॥
आयुरारोग्यमैश्वर्यं बलं तेजो यशस्तथा।
पुत्रान् प्राप्नोत्यपुत्रश्च सूर्यलोकं स गच्छति ॥११८॥

जो प्रतिदिन, रविवार को अथवा एक बार भी इस विधान का पालन करते हैं, उनकी पूजा के फल सुनो। वे आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य, बल, तेज तथा यश प्राप्त करते हैं। अपुत्रक को पुत्र प्राप्त होता है और वह सूर्यलोक में (मरणोपरान्त) जाता है।।११७-११८।।

अष्टपुष्टिकाविधिः

देवा ऊचुः

अर्के कार्या सदा भक्तिः सर्वकालमतन्द्रितैः।
आचार्यस्य गुरूणां च रविशास्त्रविदां तथा ॥११९॥

अब अष्टपुष्टिका विधि कहते हैं। देवगण कहते हैं—सर्वकाल में आलस्य छोड़कर सूर्य की भक्ति करना उचित है। इसी प्रकार आचार्य की, गुरुगण की तथा सूर्यशास्त्र जानने वालों की भी भक्ति करना उचित है।।११९।।

पञ्चम्यां तु हविर्भुक्त्वा सायं दशनधावनम्।
भक्षयित्वा तु गृह्णीयाद् व्रतं नियमपूर्वकम्॥१२०॥
व्यायामं मैथुनक्रोधान्मत्स्यं मांसं च गृञ्जनम्।
हिंसामधुशिलापृष्ठनिवृत्तं कांस्यभोजनम्॥१२१॥
उदक्याः स्पर्शनं तैलं सर्वनिर्माल्यलङ्घनम्।
षष्ठ्यान्तु वर्जनीयानि सप्तम्यां चैव दीक्षितः॥१२२॥

पञ्चमी के दिन घृत खाकर सायंकाल दाँत साफ करके भक्षण करके नियमपूर्वक व्रत करे। व्यायाम, मैथुन, क्रोध, मत्स्य, मांस, विषाक्त पशुमांस, लहसुन-भक्षण, हिंसा, मधु, शिलापृष्ठ पर लगा तथा कांस्य पात्र में भोजन निषिद्ध है। रजस्वला स्त्री का स्पर्श, तैल, सकल निर्माल्य लंघन—इन सबका षष्ठी तथा सप्तमी को सूर्यपूजा में दीक्षित व्यक्ति परित्याग करे।।१२०-१२२।।

सकलो निष्कलः सूर्य इत्युक्तं हि त्वया विभो।
सकलं निष्कलं चैव समाख्यातुमिहार्हसि॥१२३॥

हे विभु! सूर्य सकल तथा निष्कल हैं, यह आपने कहा है। अत: सकल एवं निष्कल सूर्य के विषय में आपका ही बतलाना उचित है।।१२३।।

देव उवाच

सकलो निष्कलश्चैव यथा सूर्यः प्रकीर्तितः।
कथ्यमानं मया सर्वं निबोधत तथा सुरा॥१२४॥
निर्व्यापारं तथा भूतमासीत्सर्वमिदं जगत्।
निद्रोहममलं ज्ञानं निरानन्दं निरात्मकम्॥१२५॥
अव्यक्तं कारणं यत्तन्नित्यं सदसदात्मकम्।
प्रधानं प्रकृतिं चेति यमाहुस्तत्त्वचिन्तकाः॥१२६॥

सूर्यदेव कहते हैं—मैं यह बतलाता हूँ कि सूर्य को सकल तथा निष्कल क्यों कहा गया है। हे देवगण! सुनो। यह समस्त जगत् निर्व्यापार, निर्द्रोह, अमल, ज्ञानरूप, निरानन्द एवं निरात्मक था। जो अव्यक्त कारण है, वह नित्य है। सत् एवं असदात्मक है। तत्त्वविद्गण उसे प्रधान एवं पुरुष कहते हैं।।१२४-१२६।।

गन्धवर्णरसैर्हीनं शब्दस्पर्शविवर्जितम्।
जगद्योनिं तु सर्वार्थं देवशंक्यं सनातनम्॥१२७॥
यमाहुः सर्वभूतानां परमं कारणं महत्।
अयमाद्यमजं सूक्ष्मं त्रिगुणप्रभवाव्ययम्॥१२८॥
यमाहुः पुरुषं श्रेष्ठं परमं परमेश्वरम्।

येनात्मना सर्वमिदं जगद्व्याप्तं चराचरम् ।।१२९।।

वह गन्ध-स्पर्श-रसरहित तथा शब्द-स्पर्शविवर्जित है। जगत् की योनि सर्वार्थ है। देवगण की शंका भी सनातन है। जिनको सभी प्राणीगण का परम महत् कारण कहा गया है, वह आद्य, अज, सूक्ष्म, त्रिगुण-स्वरूप, प्रभव (जिससे सब उत्पन्न होता है) एवं अव्यय भी है। उसे श्रेष्ठ पुरुष परमपरमेश्वर कहते हैं। इस आत्मस्वरूप से ही सचराचर जगत् व्याप्त है।।१२७-१२९।।

जगत्सृष्टिक्षयाव्यक्तश्चोदितः स तदा स्वयम् ।
महदादिगुणैर्युक्तस्तेजोरूपसमन्वितः ।।१३०।।
अव्यक्तं कारणं यत्तदुद्दिष्टं त्रिगुणात्मकम् ।
स्वयमेकाग्रमापन्नं खखोल्कमिति तत्स्मृतम् ।।१३१।।
योगमास्थाय परमं स देवः सर्वतत्त्ववित् ।
ततः प्रजाः स्त्रष्टुमनाः ससर्ज सलिलं पुनः ।।१३२।।

जगत् की सृष्टि, क्षय तथा अव्यक्त रूप से वे स्वयं कथित हैं। महदादि गुणों से युक्त तथा तेजरूप से समन्वित हैं। जिनको अव्यक्त कारण कहा गया है, जो त्रिगुणात्मक हैं, जो एकाग्रतापन्न हैं, उन्हें खखोल्क (सूर्य) कहते हैं। जो देव सर्वतत्त्व के वेत्ता हैं, उन्होंने परम-योग का साहाय्य लेकर प्रजा-सृष्टि की कामना से जल की सृष्टि किया।।१३०-१३२।।

आप एकार्णवे चैव यदस्यायतनङ्गतः ।
नारास्ताः सृष्टिकरणे तेन नारायणस्तु सः ।।१३३।।
एकार्णवे ततस्तस्मिन्निर्विभागे समन्ततः ।
नारायणः खखोल्कोऽसौ सुष्वाप सलिले रविः ।।१३४।।
दिव्यं शतसहस्रं च वत्सराणां तदाम्भसि ।
तेजोरूपेण महता न्यस्य सत्सलिले स्वयम् ।।१३५।।

एकार्णव में जल, जो इनका आयतन (गृह) था, वे सब नर जिसके आश्रित हैं, उनको नारायण कहा जाता है। तदनन्तर चारो ओर निर्विभाग रूप उस एकार्णव जल में खखोल्क सूर्यरूपी नारायण शयन कर रहे थे। तब दिव्य शत-सहस्र वर्ष जल में महान् तेजोरूप उन्होंने निवास किया।।१३३-१३५।।

ततः काले व्यतीते तु कृत्वा त्वण्डं हिरण्मयम् ।
आत्मानं सृष्टवांस्तत्र नैकशक्तिसमन्वितः ।।१३६।।
खखोल्क इति चाख्यातस्तत्रैकः संप्रकाशकः ।
विराट् यः पुरुषश्चान्यः ख्यातो ब्रह्मेति चापरः ।।१३७।।

पञ्चानां तु सुखादीनां कारणं हि यतः स्मृतः ।
खखोल्क इति तेनासौ निगमज्ञैरुदाहृतः ॥१३८॥

तदनन्तर बहुत समय पश्चात् हिरण्मय अण्ड का निर्माण करके वहाँ अनेक शक्ति-समन्वित होकर उन्होंने अपनी सृष्टि किया। वे खखोल्क नाम से प्रसिद्ध थे। वे एक प्रकाशकस्वरूप थे। 'विराट्' संज्ञा से अपर पुरुष के रूप में वे ही ख्यात हुये। ये अपर पुरुष ही ब्रह्मा नाम से प्रसिद्ध हैं; क्योंकि ये पञ्च सुखों के हेतु हैं। इसीलिये वेदज्ञ विद्वान् इनको खखोल्क कहते हैं।।१३६-१३८।।

हिरण्येन च गर्भस्थो यस्मादेष समावृतः ।
हिरण्यगर्भ इत्येवं तस्मात् स तु निगद्यते ॥१३९॥
बृहत्वाद्बृंहणत्वाद्वा ब्रह्माऽसौ परिकीर्तितः ।
पुरे प्रतिष्ठितत्वाच्च पुरुषत्वमुपागतः ॥१४०॥

यह गर्भस्थ स्थिति में स्वर्ण (हिरण्य) द्वारा घिरे हुये थे, अतएव इनको हिरण्यगर्भ कहा जाता है। बृहत्तम तथा सर्वव्यापक होने के कारण इनको ब्रह्मा कहते हैं। पुर (देह) में प्रतिष्ठित होने के कारण ही इनकी प्रसिद्धि 'पुरुष' नाम से हुई।।१३९-१४०।।

देवेषु च महादेवो महादेवस्ततः स्मृतः ।
सदेशत्वाच्च लोकानामवश्यत्वान्महेश्वरः ॥१४१॥
याति यस्मात्प्रजाः सर्वा प्रजापतिरिति स्मृतः ।
स्वयं बभूव पूर्णत्वात्स्वयम्भूरिति विश्रुतः ॥१४२॥
सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रभुक् ।
सहस्रबाहुः प्रथमः पुरुषोऽसौ निगद्यते ॥१४३॥

देवों में इनको महान् कहा जाता है, अतः ये महादेव हैं। सभी लोकों के शासनकर्त्ता तथा अन्य के वश में न आने वाले होने के कारण इनको महेश्वर कहते हैं। समस्त प्राणीगण इनसे ही उत्पन्न हैं, अतएव ये प्रजापति कहलाते हैं। परिपूर्ण तथा स्वयंजात होने के कारण इनको स्वयम्भु कहा जाता है। सहस्र मस्तक-विशिष्ट पुरुष, जिनके हजारो पैर हैं, जो सहस्र भोक्ता, सहस्र बाहुयुक्त हैं; इसीलिये इनको पुरुष भी कहा गया है (यहाँ सहस्र शब्द असंख्यवाचक है)।।१४१-१४३।।

यत्किञ्चिद्दृश्यते लोके तेजोरूपं प्रकाशकम् ।
खखोल्क इति तत्सर्वं निर्दिष्टं लोककारणम् ॥१४४॥
सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं नित्यं सदसदात्मकम् ।
विज्ञानमात्रमव्यक्तं तमाहुः कारणं परम् ॥१४५॥

इस जगत् में जो कुछ तेजोरूप प्रकाशक वस्तु परिलक्षित हो रही है, वह सब खखोल्क है। ये लोक के हेतु हैं। वे सभी उपाधि से मुक्त हैं। नित्य, सत्-असत् सब कुछ वे ही हैं। विज्ञानस्वरूप तथा अव्यक्त होने के कारण ही इनको 'कारण' कहा गया है।।१४४-१४५।।

अव्यक्तात्प्रकृतिर्जज्ञे महांस्तु सदसद्गुणः।
महत्तत्त्वादहङ्कारस्तस्मात् सर्वेन्द्रियाणि च।।१४६।।
इन्द्रियाणि च तन्मात्रं सन्निवेश्यात्मनि प्रभुः।
सृष्टवान्सर्वभूतानि खखोल्कः पुरुषः प्रभुः।।१४७।।

अव्यक्त से प्रकृति उत्पन्न है। महान् सत् तथा असत् गुणयुक्त है। महत्तत्त्व से अहंकार तथा अहंकार से इन्द्रियाँ उत्पन्न हैं। समस्त इन्द्रिय तथा तन्मात्रा को अपनी आत्मा में सन्निविष्ट करके प्रभु ने समस्त प्राणियों की सृष्टि की है। अतः खखोल्क पुरुष तथा प्रभु हैं (सबके नियन्ता हैं)।।१४६-१४७।।

खखोल्कात्कारणाद्यस्मादव्यक्तान्तं चतुर्विधम्।
जगद् व्यक्तं समुत्पन्नं विकारैर्महदादिभिः।।१४८।।
स यदा मनसा सार्धं संयोगमधिच्छति।
तदा ही सर्वभूतानां प्रवृत्तिरुपजायते।।१४९।।
आत्मनो दिवसस्यान्ते सर्वकर्मात्मनः स्वयम्।
यः समारोप्यात्मसुखं तेजोराशिः स्वपीत्यसौ।।१५०।।

कारणस्वरूप खखोल्क से अव्यक्तान्त चतुर्विध व्यक्त जगत् महदादि विकार द्वारा समुत्पन्न हुआ है। जब वे मन के साथ संयुक्त हो गये (मन से संकल्प किया) तब समस्त प्राणियों में प्रवृत्ति की उत्पत्ति हो गयी। अपने दिन के अन्तिम भाग में अपने समस्त कर्म का स्वयं में समापन करके आत्मसुख में वे तेजोराशि (सूर्य) शयन करते हैं।।१४८-१५०।।

प्रतिबुद्धः पुनरसौ महाभूतादिभिः सह।
करोति सर्गं स तदा गुणत्रयसमन्वितम्।।१५१।।
एवंविधश्च सप्ताश्वः सहस्रकिरणो ह्यसौ।
सृजति ग्रसते चैव जगत्सर्वं चराचरम्।।१५२।।
तपति प्रकाशते चैव स च गर्जति वर्षति।
स एव तोयस्य पतिः संस्तृतो वडवानलः।।१५३।।
कालाग्निरुद्रो विख्यातः स च स्यान्नीललोहितः।
सर्वतेजोऽधिपो योगी महांल्लोकश्च स स्मृतः।।१५४।।

पुनः वे जाग्रत् होकर महाभूतों (पञ्चमहाभूत) के साथ त्रिगुणात्मिका सृष्टि रचते हैं। इस प्रकार सात अश्वों से युक्त सहस्रकिरण सूर्य सचराचर जगत् की सृष्टि करते हैं एवं पुनः उसका ग्रास (संहार) कर देते हैं। वे ताप देते तथा प्रकाश करते हैं। वे ही गर्जनयुक्त वर्षण करते हैं। वे ही जल के पति तथा बड़वानलों के रचयिता भी हैं। वे कालाग्नि रुद्र नाम से ख्यात हैं। वे ही नीललोहित हैं। समस्त तेज के अधिपति, योगी तथा महान् पुरुष हैं।।१५१-१५४।।

अनानिनिधनो ब्रह्माऽक्षरश्चाक्षर एव च।
तस्मात्परतरो नास्ति देवानामपि दैवतम्।।१५५।।
तेन सृष्टमिदं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम्।
सर्वात्मानं च तं यान्ति प्रलये समुपस्थिते।।१५६।।
संतापयति लोकांस्त्रींश्चित्रभानुः स्वरश्मिभिः।
वर्षाणां सर्वकामानां पर्जन्य इति स स्मृतः।।१५७।।

वे अनादिनिधन (जिनका आदि भी नहीं है, अन्त भी नहीं है), क्षररहित अक्षर ब्रह्म हैं। उनसे परतर कोई भी नहीं है। वे देवताओं के भी देवता हैं। उनके द्वारा सृष्ट इस समस्त स्थावर-जंगमात्मक जगत् का प्रलय उपस्थित होने पर वे सर्वात्मस्वरूप में प्रवेश कर जाते हैं। चित्रभानु (सूर्य) अपनी रश्मि के द्वारा तीनों लोकों को सन्तप्त करते हैं। समस्त कामनाओं का वर्षण करने के कारण उनको 'पर्जन्य' कहा गया है।।१५५-१५७।।

तेजोरूपेण महता बाह्यतश्चापि तेन वै।
युगान्तवह्निना सर्वमिदं ब्रह्माण्डमावृतम्।।१५८।।

उनके महान् तेज के कारण बाह्यतः दिखाई देने वाली, युग को अन्त करने वाली अग्नि से यह समस्त ब्रह्माण्ड घिरा हुआ है।।१५८।।

संहारकाले च जगद्भुक्त्वा संवर्तकोऽनलः।
भस्मीकरोति त्रैलोक्यं द्वादशादित्यरूपकैः।।१५९।।
स्वर्गधारणाविद्यातः संहारान्प्रकरोति सः।
ब्रह्मा विष्णुः खखोल्कः सरूपकैर्जगतः क्रमात्।।१६०।।
उद्यन् स पूर्वदिग्भागे गच्छंश्चापि स पश्चिमे।
मेरु-प्रदक्षिणं कुर्वन् जगत्सर्वं प्रकाशते।।१६१।।

संहारकाल में संवर्तक अनल होकर वे द्वादश आदित्यरूप से त्रिभुवन को भस्म कर देते हैं। वे ब्रह्मा, विष्णु तथा खखोल्क रूप से क्रमशः जगत् की सृष्टि, स्थिति तथा विनाश करते हैं। वे पूर्व दिग् भाग में उदित होकर पश्चिम दिशा के अन्त में जाते-जाते मेरु की प्रदक्षिणा करके समस्त जगत् को प्रकाशित करते हैं।।१५९-१६१।।

सर्वभूतशरीराणि यस्मादावृत्य तिष्ठति।
अरुणः कीर्तितस्तेन देवोऽसौ सर्वलोकधृक् ॥१६२॥
शश्वच्च जायते यस्माच्छश्वत् संतिष्ठते च यत्।
यस्मात् स वै स्मृतः सूर्यो निगमज्ञैर्मनीषिभिः ॥१६३॥
अंशवः किरणाः प्रोक्ताः स्मृतस्तेनांशुमानिति।
ऐश्वर्यं परमं तस्य वशगाश्च सुरासुराः ॥१६४॥

वे समस्त प्राणिगण के शरीर को आवृत्त करके अवस्थान करते हैं। अतएव वे अरुण कहे जाते हैं। वे देव समस्त लोकों को धारण करते हैं। वे निरन्तर उत्पन्न होते हैं तथा निरन्तर अवस्थित रहते हैं। इसीलिये उन्हें सूर्य कहा गया है। उनके अंश को किरण कहा जाता है। अतएव सूर्य को अंशुमान कहते हैं। उनका परम ऐश्वर्य है। इसीलिये देवता तथा असुरगण सब उनके वश में हैं।।१६२-१६४।।

इदीति परमैश्वर्ये धातुरिन्द्रस्ततः स्मृतः।
अवतीमांस्तु लोकांस्त्रीन् यस्मादेष परिभ्रमन् ॥१६५॥
अवेति रक्षणे धातुस्तस्मात् स च रविः स्मृतः।
गभस्तिभिः समायोगाद् गभस्तिदेव उच्यते ॥१६६॥

'इदि' धातु परम ऐश्वर्य के अर्थ में प्रयुक्त होती है। इसीलिये उनको इन्द्र कहा गया है। ये परिभ्रमण करके तीनों लोकों का पालन करते हैं। 'अव्' धातु का प्रयोग रक्षा के अर्थ में किया जाता है। इसलिये इनको रवि कहते हैं। किरणों (गभास्ति) के समायोग के कारण ये 'गभस्तिदेव' कहे गये हैं।।१६५-१६६।।

संयच्छते यतः सर्वान् यमस्तेन स उच्यते।
प्रजाः संसृजतो रेतः स्वर्णमस्याद्रवत् पुरा।
सुवर्णरेतास्ततो देवैः कीर्तितोऽसौ दिवाकरः ॥१६७॥
सृजत्येष प्रजास्त्वष्टो यस्मात्त्वष्टा ततः स्मृतः।
त्वष्टृत्वेनापि यत्सर्वमौषधीष्वेव यः स्थितः ॥१६८॥

सबको संयत करने के कारण ये 'यम' हैं। पूर्व में प्रजागण की सृष्टि के समय इनका सुवर्णमय रेत स्खलित हुआ। अतः इनको सुवर्णरेता कहा जाता है। विश्वकर्मारूपेण प्रजागण की ये सृष्टि करते हैं; अतः इन्हें त्वष्टा कहा जाता है। त्वष्टृत्वरूप से (सूत्रधारण रूप से) सभी औषधियों में ये ही अवस्थित हैं।।१६७-१६८।।

स्नेहेन सर्वभूतानि यस्माद् भजति भास्करः।
बन्धुभूतो हि जगतो मित्रस्तेन स कीर्तितः ॥१६९॥

यस्माज्जातमिदं सर्वमादित्येनेह रश्मिभिः।
प्रवेशनात्पालनाच्च विष्णुस्तेन स कीर्तितः॥१७०॥
प्रणवेन समायुक्तः सप्तबीजः स्मृतस्तु सः।
मूलमन्त्रं खखोल्कस्य देवस्यामिततेजसः॥१७१॥

भास्कर स्नेहवशात् समस्त प्राणियों का भजन करते हैं। समस्त जगत् के बन्धु-स्वरूप हैं। अतः इनको मित्र कहा गया है। आदित्य रश्मियों द्वारा इस जगत् के सब कुछ को उत्पन्न करते हैं। उनके प्रवेश तथा पालन के कारण वे 'विष्णु' नाम से प्रसिद्ध हैं। प्रणवयुक्त सप्तबीज अमित तेजस्वी खखोल्क का मूल मन्त्र कहा गया है—ॐ खखोल्काय स्वाहा।।१६९-१७१।।

प्रणवो दीपकस्तस्य मकारः साम्प्रदायिकः।
स्वाहाकारनमस्कारौ कुर्यात्पूजा पदे स्थितौ॥१७२॥
वर्णत्रयं तु यच्छेषं खखोल्क इति संज्ञितम्।
तन्महाभूतभेदैस्तु भिद्यते पञ्चधा पुनः॥१७३॥
खकारः खं विनिर्दिष्टं सूर्यत्वात् पार्थयोगतः।
अनादिनिधनं शुद्धं तस्य शब्दं गुणं विदुः॥१७४॥

प्रणव उनका दीपक है। मकार साम्प्रदायिक है। स्वाहा एवं नमः शब्द पूजनकाल में व्यवहृत होता है। शेष तीन वर्ण 'खखोल्क'—यह सूर्य का नाम है। वह महाभूत के भेद से पुनः पाँच प्रकार का हो जाता है। खकार शब्द आकाश का निर्देश करने वाला है। पार्थयोग से सूर्य अनादि निधन, शुद्ध हैं। शब्द उनका गुण कहा गया है।।१७२-१७४।।

सज्जनात्सर्जनाच्चैव ककारो वायुरुच्यते।
स्पर्शस्तस्य गुणो ज्ञेयः पूर्वश्वासविकारतः॥१७५॥
ओरस्तेजो विज्ञेयं तच्च रूपगुणं स्मृतम्।
विकारात्पूर्वयोगश्च तद्गुणाभ्यां च संशयः॥१७६॥
लपनात्प्रलयाच्चैव लकारो वरुणः स्मृतः।
रसेन पूर्वैश्च गुणैरप्युक्तत्वाच्चतुर्गुणः॥१७७॥
ककारा संस्मृता पृथ्वी पित्रागम्यगुणा तु सा।
पूर्वैश्चतुर्भिश्च गुर्णैयुक्ता पञ्चगुणा भवेत्॥१७८॥

सज्जन (सुजात) तथा सर्जन (सृष्टि) के कारण 'क' शब्द को वायु कहा गया है। उसका गुण है—स्पर्श। पूर्वश्वास विकार से उसे समझा जाता है (?)। ओकार को तेज जानना चाहिये। वह रूप का गुण है। विकार-हेतु को पूर्वयोग और उसके गुण द्वारा जाना जाता है (?)। लपन (मुख) तथा प्रलय हेतु 'ल'कार शब्द से वरुण को कहा जाता है।

रस तथा पूर्वगुणों के द्वारा इसे चतुर्गुण कहते हैं। ककार शब्द पृथ्वी का वाचक है। वह पृथिवी पिता का गुण (गन्ध) प्राप्त करती है तथा पूर्व के चार गुण (शब्द-स्पर्श रूप-रस) से युक्त होकर पञ्चगुण-विशिष्ट हो जाती है।।१७५-१७८।।

खखोल्क इति यत्प्रोक्तं महाभूतानि पञ्च तत्।
प्राणाद्या वायवः पञ्च तथा बुद्धीन्द्रियाणि च ॥१७९॥
कर्मेन्द्रियाणि पञ्चैव सत्त्वाद्यास्तद्गुणास्त्रयः।
मनोबुद्धिरहङ्कार इत्येतदपरत्रयम् ॥१८०॥
खखोल्कानीति बीजानि चोक्तान्येकोनविंशतिः।
षड्विंशकेतनासश्च सर्वव्याप्तमनेन तु ॥१८१॥

खखोल्क = पञ्चमहाभूत, प्राणादि पञ्चवायु तथा बुद्धि, इन्द्रियाँ एवं पाँच कर्मेन्द्रिय तथा उनके सत्त्वादि तीन गुण, मन-बुद्धि-अहंकार। इस प्रकार खखोल्क एवं १९ बीज कहे गये। २६ चिह्नों द्वारा सब कुछ इसी से व्याप्त है।।१७९-१८१।।

स एव देव उत्पाद्यानुष्ठाद्यात्मानमात्मना।
सर्वं करोति जगतः पालनं प्रलयं तथा ॥१८२॥
आदित्यः सततं नाम तपत्येष मरीचिभिः।
वह्निः सहस्रकिरणवृत्तं कुम्भनिभं स्मृतम् ॥१८३॥
नदीनदसमुद्रेभ्यः सर्वेभ्यः सलिलं ह्यसौ।
किरणानां सहस्रेण समादत्ते सदा रविः ॥१८४॥

वे देव स्वयं ही स्वयं को उत्पन्न करके तथा अनुष्ठान करके जगत् का पालन-प्रलयादि सब कुछ करते हैं। आदित्य निरन्तर अपनी किरणों से ताप प्रदान करते हैं। अग्नि को सहस्र किरण वृत्त कुम्भतुल्य कहा गया है। सभी नद-नदी तथा समुद्र से रवि अपनी किरणों से जल खींचते रहते हैं, संग्रह करते रहते हैं।।१८२-१८४।।

अस्तकाले खखोल्कस्य प्रभापादेन पावकम्।
समाविशति सूर्यं च दिवा तच्चापि पावकः ॥१८५॥
एवमेतद्भवेद्धेतुः परस्परनिवेशनात्।
प्राकाश्यमौष्णवृत्तिं च कुरुते हि दिवानिशि ॥१८६॥
एष ब्रह्मा च विष्णुश्च एष देवो महेश्वरः।
ऋचो यजूंषि सामानि एष एव न संशयः ॥१८७॥

अस्तगमन काल में खखोल्क की प्रभा का एक पाद अग्नि में प्रविष्ट हो जाता है। दिन में अग्नि उसे सूर्य को प्रदान करते हैं। परस्पर निवेशन के फल का यही कारण है।

ये दिन-रात प्रकाश तथा उष्णता देते हैं। ये ही ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर हैं। ये ही हैं—ऋक्, यजुः तथा साम। इस विषय में कोई सन्देह नहीं है।।१८५-१८७।।

उद्यन् स दीप्यते ऋग्भिर्मध्याह्ने यजुर्भिस्तथा।
सामभिश्चैव सायाह्ने भास्करः प्रतपत्यसौ ॥१८८॥
त्रीणि रश्मीनि तस्यैव भूलोकन्द्योतयन्त्यधः।
चत्वारि तु पितॄंस्तिर्यक् त्रीण्येवोद्र्ध्वसुरालयम् ॥१८९॥

उदयकाल में सूर्य ऋक् समूह द्वारा दीप्ति प्राप्त करते हैं। मध्याह्न में यजुःसमूह द्वारा तथा सन्ध्याकाल में सामसमूह द्वारा भास्कर ताप प्रदान करते है। उनकी तीन रश्मि भूलोक तथा अधःलोक को प्रकाशित करती है। चार रश्मि पितृलोक को तथा तीन तिर्यक् रश्मि ऊर्ध्व देवलोक को आलोकित करती है।।१८८-१८९।।

सुषुम्नो हरिवेशश्च विश्वकर्मा तथैव च।
विश्वव्यचा पुनश्चान्यः संयद्वसुरथापरः ॥१९०॥
उदावसुः पुनश्चान्यः पुरोऽन्यः परिकीर्तितः।
रवेः करसहस्राद्धि सप्तश्रेष्ठास्तु रश्मयः ॥१९१॥
एवं हि रश्मिभिर्देवो जगत्सर्वं प्रकाशते।
तथा वर्द्धयति क्षीणं क्रमतोऽयं निशाकरम् ॥१९२॥
एवं हि स्वल्प उद्दिष्टः सर्वव्यापी दिवाकरः।
अध्वरैर्विविधैः पुण्यैरीज्योऽसौ पापनाशनः ॥१९३॥

सुषुम्न, हरिकेश, विश्वकर्मा, विश्वव्यचा, संयद्वसु, उदावसु तथा पुर—ये सूर्यकिरणों में से सात श्रेष्ठ रश्मियाँ हैं। सूर्यदेव इन रश्मियों द्वारा समस्त जगत् को प्रकाशित करते हैं तथा क्रमश क्षीण चन्द्र को वर्द्धित करते हैं। यहाँ कुछ सामान्य रूप से कहा गया दिवाकर विश्वव्यापी है। पापनाशक दिवाकर पुण्यरूप विविध यज्ञों द्वारा पूजित होते हैं।।१९०-१९३।।

तस्य तावत्खखोल्कस्य महाध्वरविधिं शुभम्।
शृणुष्वाख्यायमानं वै पश्चाच्छ्रोष्यथ निष्कलम् ॥१९४॥
नमः सवित्रे देवाय समीहितफलप्रदः।
अदीक्षितस्तु यः कश्चिदिदन्तन्त्रं विचारयेत् ॥१९५॥
स कुष्ठी भवति क्षिप्रं प्रेत्येह नरकं व्रजेत्।

इन खखोल्क के मंगलकारी महायज्ञों की विविध कथा कहता हूँ, सुनो। तदनन्तर निष्कल की बात सुनना। देव सविता को नमस्कार है, जो सम्यक् रूप से पूजित होकर

फल देते हैं। अदीक्षित व्यक्ति इस तन्त्र का विचार (कर्म) करने पर कुष्ठरोगी होता है तथा शीघ्र मृत्यु को प्राप्त होता है; साथ ही नरकगामी भी होता है।।१९४-१९५।।

आर्जवे कुलसम्पन्ने शीलधर्मरते सदा ॥
दातव्यं सूर्यभक्ताय प्रज्ञावति जितेन्द्रिये ॥१९६॥

इति श्रीसाम्बपुराणे ग्रहादिदेवपूजनं नामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

●

सरल, सत् कुलोत्पन्न, सर्वदा धर्मरत, प्राज्ञ, जितेन्द्रिय सूर्यभक्त को ही यह विद्या प्रदान करनी चाहिये।।१९६।।

श्री साम्बपुराणोक्त ग्रहादि देवपूजा नामक इक्यावनवाँ अध्याय समाप्त

●

द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

(साधनरहस्यम्)

अहं चेदं प्रवक्ष्यामि रहस्यं ज्ञानमुत्तमम्।
उक्तं भगवता भानो रहस्यं च प्रकाशकम्॥१॥
प्रथमं शोधयेद् भूमिं स्थानानि च यथाविधि।
वर्णांश्चानुक्रमं कृत्वा वसुधां च विशोधयेत्॥२॥
ततोऽधिवासयेद् देवं न्यासेन सकलीकृतम्।
मण्डलं च समालिख्य आचार्यः सुसमाहितः॥३॥

अब मैं गोपनीय उत्तम ज्ञान का वर्णन करता हूँ, जिसे भगवान् (सूर्यदेव) द्वारा कहा गया है और जो सूर्यरहस्य-विषयक तथा प्रकाशक है। प्रथमतः भूमि तथा स्थान का यथाविधि शोधन करना चाहिये। अनुक्रम में वर्णों का विन्यास करके भूमि-शोधन करना चाहिये। तदनन्तर न्यास के द्वारा सकलीकृत देवता का अधिवास करके आचार्य को सुसमाहित होकर मण्डल अंकित करना चाहिये।।१-३।।

एकान्ते स नदीतीरे तीर्थेष्वायतनेषु च।
उद्यानकुसुमाकीर्णे चित्रप्रासादसङ्कुले॥४॥
आकाशतलके चापि यत्र वा रोचते मनः।
पूर्वात्मावेशने चैव भूदेशे दोषवर्जिते॥५॥
विप्रस्य वसुधा शुक्ला लोहिता क्षत्रियस्य तु।
पीता वैश्यस्य विज्ञेया कृष्णा शूद्रस्य कीर्तिता॥६॥

निर्जन में, नदीतीर में, तीर्थ स्थान, गृह, उद्यान के कुसुम से भरे स्थान में, विचित्र प्रासाद समूह में, आकाश के नीचे अथवा जहाँ मन की प्रेरणा हो, पूर्व आवेशन में (सूर्यादि की परिधि स्थान में) तथा दोषवर्जित भूप्रदेश में मण्डल अंकित करना चाहिये। ब्राह्मण की भूमि शुभ्र, क्षत्रिय की रक्तवर्ण, वैश्य की पीतवर्ण तथा शूद्र की कृष्णवर्ण कही गयी है।।४-६।।

चतुर्णामपि वर्णानां यथावदनुपूर्वशः।
ततः शब्दं निरीक्ष्येह माङ्गल्यांश्चापि वाचकान्॥७॥
प्रशस्तं वचनं ग्राह्यमप्रशस्तं विवर्जयेत्।
आज्यमध्ववलिप्तेन हन्याज्जतुफलेन तु॥८॥

यथावत् आनुपूर्विक चार वर्ण की शब्दपरीक्षा करके माङ्गल्यवाचक प्रशस्त वचन ग्रहणीय है तथा अप्रशस्त वर्जनीय है। घृत तथा मधु से लिप्त अतुफल (जिसके फल से दलबद्ध पतङ्गसमूह आविर्भूत होते हैं, ऐसे गूलर के फल) से आहुति प्रदान करनी चाहिये।।७-८।।

ततः सूत्रान्न्यसेन् मन्त्री यथावदनुपूर्वशः।
सिन्दूरिकानसुचनग्रन्थिस्त्येन विवर्जितान्।।९।।
कार्पासिकान् बल्कलयान्क्षौमान् कौशिकपट्टकान्।
यथाहस्तविभागेन पातयन्मन्त्रवत्समम्।।१०।।
ऐन्द्रे च प्रथमं सूत्रं हृदयेनाभिमन्त्रितम्।
ततश्चाष्टदले पद्ममध्ये तस्य नियोजयेत्।।११।।

तदनन्तर मन्त्री यथावत् आनुपूर्विक सूत्र का विन्यास करे। सिन्दूर वर्ण के तथा सिले वस्त्र का वर्जन करके कपास का वस्त्र, वल्कलवस्त्र, सिल्क या कौशिकवस्त्र—इनमें से किसी एक का एक हाथ वस्त्र मन्त्रज्ञ साधक पूर्व की ओर प्रथम सूत्र को हृदय द्वारा अभिमन्त्रित करे। तदनन्तर अष्टदल पद्म से उसे युक्त करे।।९-११।।

गायत्र्या लब्धहस्तं तु चिन्तयित्वा दिवाकरम्।
याति चित्तरजाः प्राज्ञो जपेच्चैव षडक्षरम्।।१२।।
सत्वं रजस्तमश्चेति हितं राजसलक्षणम्।
अङ्गुष्ठपर्वविपुलं रजः सर्वत्र कथ्यते।।१३।।
अतिक्षीणं तथा स्थूलं कृशं बिन्दुविवर्जितम्।
आलिखेन्मण्डलं दिव्यं चतुर्द्वारं सुशोभनम्।।१४।।

गायत्री द्वारा अपने हस्त में प्राप्त दिव्य हाथ का चिन्तन करे। चित्त का मालिन्य हट जाने पर प्राज्ञ व्यक्ति (षडक्षर) सूर्यमन्त्र का जप करे। सत्व-रज तथा तम हैं—राजस चिह्न। अंगुष्ठपर्व के बराबर स्थूल रज:गुण सर्वत्र रहता है। अति तीक्ष्ण, स्थूल, कृशबिन्दु, चतुर्द्वारयुक्त सुशोभन दिव्य मण्डल अंकित करे।।१२-१४।।

आयुधानि तथा चाष्टौ दिशासु विदिशासु च।
पूर्वपत्रे तथोङ्कारे पश्चिमे तु खकारकम्।।१५।।
खोकारं दक्षिणे पत्रे ल्काकारं चोत्तरे तथा।
यकारः वायुभागे तु स्वाकारं वह्निसंस्थितम्।।१६।।
हकारं नैर्ऋते योज्यं क्षेमेशान्यां तथा दिशि।
कर्णिकायां तथा देवं महातेजो द्विरक्षरम्।।१७।।

इस प्रकार दिक् तथा विदिक् में आठ आयुध अंकित करे। पूर्वपत्र में ओंकार, पश्चिम में 'ख'कार, दक्षिण में 'खो'कार तथा उत्तर में 'ल्का'कार अंकित करे। इसी प्रकार

वायुकोण में (पश्चिम उत्तर कोण में) 'य'कार, अग्निकोण में (पूर्व-पश्चिम कोण में) 'स्वा', नैर्ऋत्य-ईशान कोण में 'हा' अंकित करे (अर्थात् ॐ खखोल्काय स्वाहा)। कर्णिका में महातेजा दो अक्षर विशिष्ट देवता का (?) अङ्कन करे।।१५-१७।।

तस्य वै हृद्गतां देवीं विन्यसेच्छ्रुतसंस्थिताम्।
अष्टौ वर्ज्या निशा देव्या दिशासु विदिशासु च ।।१८।।
पूर्णप्राकारमध्ये कवर्गः पञ्चभूतमहानि च।
दक्षिणे षकारवर्गः पञ्चबुद्धीन्द्रियाणि च ।।१९।।
पश्चिमे टकारवर्गः पञ्च कर्मेन्द्रियाणि च।
उत्तरे तकारवर्गः पञ्चतन्मात्राणि च।
ऐशान्यां पकारवर्गमव्यक्तं च तथाहितम् ।।२०।।

उसके हृद्गत श्वेत संस्थित देवी का अङ्कन करे (यहाँ श्वेत संस्थित का तात्पर्य श्वेत पद्मसंस्थित प्रतीत होता है) तथा निशा देवी को छोड़कर दिक्-विदिक् में आठ जन को स्थापित करे। पूर्व प्राकार के मध्य में 'क'वर्ग तथा पञ्चभूत महत्तत्त्व, दक्षिण में 'ष'कार वर्ग तथा पञ्चज्ञानेन्द्रिय, पश्चिम में 'ट'कार वर्ग तथा पञ्च कर्मेन्द्रियगण, उत्तर में 'स'कार वर्ग एवं पञ्चतन्मात्रा एवं ईशानकोण में अव्यक्त 'प'कार वर्ग का विन्यास करे।।१८-२०।।

आग्नेय्यां चकारवर्गं बुद्धिं च। नैर्ऋत्यां वकारवर्गमहं च। वायव्यां कोऽहं कोऽहं क्षौंमनश्चेति। द्वितीये प्राकारे—सुरेन्द्रं पूर्वे आग्नेय्यां अग्निम्। याम्ये यमम्। नैर्ऋत्ये निर्ऋत्याधिपम्। पश्चिमे वरुणम्। वायव्ये वायुम्। सौम्ये सोमम्। ऐशान्या-मीशानम्। मुद्रालक्षणं घटेत इति। तृतीये प्राकारे—चाशनि तथा शक्तिदण्डं खड्गं चक्रं गदां परशुं च पुनर्लिखेत्। तथापरं चैव महामुद्रा दातव्या दिशि विदिशि। पूर्वादारभ्य लोकपालानावाहयेत्। चतुर्थे त्वावरणे—व्योमपुष्पं बलिमुपहारांश्च गृह्णीतवति। ॐङ्कारादि स्वाहान्ताः। ततोऽग्निस्थापनं कृत्वा। आर्यं उष्णिक् कृतभूषणः। भूमिं उल्लिख्यालिख्य धृतदर्भमवकीर्य ब्राह्मणं दक्षिणतः स्थाप्य स्रुवपात्रं विशोध्य आज्यं प्रदक्षिणीकृत्य दक्षिणं जानुभूमौ निपात्य स्रुवमुपागृह्य अभुक्तपात्रः षड़ाहुतीर्जुहुयात्। सान्निध्यकरणं सम्भवति एतादृशलक्षणमग्निं सञ्चिन्त्य छागारूढं प्रादेशमात्रं सप्तार्चिः कुण्डाक्षधरं पिङ्गलश्मश्रुलोचनम् स्वमन्त्रेणाह्वयेत्। ततः शिष्यस्य गर्भाधानाद्याः पञ्चपञ्चाहुतीर्जुहुयात्। ततो दण्डं मेखलां स्थापयेत्। पूर्वतोमुखं प्रवेशयेत्सूर्यभक्तान् हृदये नाभिमन्त्रितान्।

अग्निकोण में 'च'कार वर्ग एवं बुद्धि, नैर्ऋत्य में 'व'कार वर्ग तथा अहंतत्त्व, वायुकोण में कोहं कोहं क्षौं तथा मन। द्वितीय प्राकार में—पूर्व में इन्द्र, अग्निकोण में अग्नि, दक्षिण में यम, नैर्ऋत्य में नैर्ऋत्य के अधिपति, पश्चिम में वरुण, वायुकोण में वायु, उत्तर में सोम, ईशानकोण में ईशान इस प्रकार से मुद्रालक्षण होगा।

तृतीय प्राकार में—वज्र, शक्ति, दण्ड, खड्ग, शङ्ख, चक्र, गदा तथा परशु बनाये। ऐसे ही ऊपर पुर में पूर्व की ओर महामुद्रा लिखे। पूर्व से आवाहन प्रारम्भ करके लोकपालगण का आवाहन करे। चतुर्थ प्राकार (आवरण) में व्योमपुष्प, बलि तथा पूजोपहार ग्रहण करे। आदि में ॐकार, अन्त में स्वाहा का योग करना चाहिये। तदनन्तर अग्नि-स्थापना करे। आचार्य मस्तक पर पगड़ी पहने। भूमि रेखाङ्कित करके कुश-स्थापन करके दाहिनी ओर ब्राह्मण को बैठाये। तदनन्तर स्रुवपात्र का शोधन करके आज्य की प्रदक्षिणा करे (घृत की प्रदक्षिणा)। दाहिना जानु पृथ्वी पर रखे, स्रुव लेकर पात्र-परित्यागी न हो (अर्थात् पात्र लिये रहे)। दस आहुति प्रदान करे। तत्पश्चात् सन्निधीकरण करे। सम्भव होने पर इस प्रकार से अग्नि का चिन्तन करना चाहिये—छाग (मेष) के ऊपर आरूढ, प्रादेश मात्र, सप्त किरणयुक्त, कुण्डाक्ष धारणकारी, पिङ्गल श्मश्रु तथा नेत्रयुक्त अग्नि का ध्यान करके अपने मन्त्र से उनका आवाहन करे। तत्पश्चात् शिष्य-हेतु गर्भाधानादि पाँच-पाँच आहुति देनी चाहिये। इसके अनन्तर दण्ड एवं मेखला की स्थापना करे। तदनन्तर पूर्व की ओर हृदय के द्वारा अभिमन्त्रित सूर्यभक्तों को प्रवेश कराये।

वस्त्रबद्धमुखान् कृत्वा त्रिधा भ्राम्यन्विचक्षणः।
जानुभ्यामवनीं गत्व शिरसा ते क्षमापयेत् ॥२१॥
तत्र तत्पतेः पुण्यं तस्य तल्लयमादिशेत्।
नाम तस्य स्वरूपेण कारयेद्रविपूर्वकम् ॥२२॥
षष्ट्या चैव महाश्वेतां हृदि ध्यात्वा दिवाकरम्।
साधनं तु निरीक्षेत ततो दीक्षित उच्यते ॥२३॥

विचक्षण व्यक्ति मुख को कपड़े से बाँधकर तीन बार घुमाकर भूमि पर जानु रखकर मस्तक द्वारा क्षमापन कराये (प्रणाम की मुद्रा में क्षमापन कराये)। तदनन्तर वहाँ उसके अधिपति के पुण्यलय का चिन्तन करे। स्वरूप में रविपूर्वक उसका नामकरण करना पड़ता है। षष्ठी में महाश्वेता तथा हृदय में दिवाकर का ध्यान करे, साधन दर्शन करे। तदनन्तर उसे दीक्षित कहा जाता है।।२१-२३।।

ततः साधकोऽग्निस्थापनं कृत्वैकैकामाहुतिं जुहुयात्। ततोऽष्टपुष्पिकां दापयेत्॥२४॥

इति श्रीसाम्बपुराणे साधनरहस्यं नाम द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

●

तदनन्तर साधक अग्नि-स्थापन करके एक-एक आहुति देकर होम करे। तत्पश्चात् अष्टपुष्पिका प्रदान करे।।२४।।

श्री साम्बपुराणोक्त साधनरहस्य नामक बावनवाँ अध्याय समाप्त

●

त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

(पूजाविधिनिरूपणम्)

नारद उवाच

प्रथमं चिन्तयेत् पद्ममष्टपत्रं सकर्णिकम्।
तन्मध्ये चिन्तयेद्देवं भास्करं रश्मिविग्रहम्॥१॥
सहस्रदिनसंस्कारं सूर्यकोटिसमप्रभम्।
महातेजोमयं ध्यात्वा आदित्यं पूजयेद् बुधः॥२॥
योऽयं हरितवर्णाभं रथे तिष्ठति वाजिनम्।
अरुणः सारथिर्यस्य रथवाहः स्वयं स्थितः॥३॥
तमहं लोकशांत्यर्थमादित्यमाह्वयाम्यहम्।
आयाहि भगवन्भानो तव यज्ञः प्रवर्तते॥४॥

प्रथमतः कर्णिकायुक्त अष्टपत्र-विशिष्ट पद्म का चिन्तन करे। उसमें रश्मिस्वरूप सूर्यदेव का चिन्तन करना चाहिये। सहस्र दिनसंस्कारक (असंख्य दिनों को प्रकाशित करने वाले) कोटि सूर्य प्रभातुल्य महातेजोमय आदित्य का ध्यान करके पण्डितगण उनका पूजन करते हैं। जो हरित वर्ण वाले अश्वों के रथ पर स्थित हैं, रथ के सारथी अरुण जिस रथ पर हैं, लोक की शान्ति के लिये मैं उन आदित्य का आवाहन करता हूँ। हे भगवन् भानु! आप आईये। आपका यज्ञ प्रारम्भ होता है।।१-४।।

इदमर्घ्यं च पाद्यं च प्रतिगृह्य नमो नमः।
आह्वानं सहस्रकिरणं स्वागतं स्वागतं स्वागतं ठः ठः।
ॐ धर धर अद्य॥५॥

यह अर्घ्य तथा पाद्य ग्रहण करिये। आपको नमस्कार है, नमस्कार है। सहस्रकिरणों से युक्त आपका मैं आह्वान करता हूँ। आपका स्वागत है (मूल में लिखित मन्त्र से पाद्य अर्घ्य प्रदान करे, यथा—इदमर्घ्यञ्च पाद्यं च प्रतिगृह्य नमो नमः (यह अर्घ्य तथा पाद्य मन्त्र है)। आवाहन मन्त्र है—आह्वानं······धर धर अद्य।।५।।

वनस्पतिरसो दिव्यो गन्धाढ्यो गन्ध उत्तमः।
आघ्रेयः सर्वभूतानां प्रतिगृह्य नमो नमः॥६॥

स्वाहा धूपः गन्ध गन्धादि ठः ठः गन्धः। ॐ दीपपञ्चलिनि ठं ठं दीपः।

तृतीय प्राकार में—वज्र, शक्ति, दण्ड, खड्ग, शङ्ख, चक्र, गदा तथा परशु बनाये। ऐसे ही ऊपर पुर में पूर्व की ओर महामुद्रा लिखे। पूर्व से आवाहन प्रारम्भ करके लोकपालगण का आवाहन करे। चतुर्थ प्राकार (आवरण) में व्योमपुष्प, बलि तथा पूजोपहार ग्रहण करे। आदि में ॐकार, अन्त में स्वाहा का योग करना चाहिये। तदनन्तर अग्नि-स्थापना करे। आचार्य मस्तक पर पगड़ी पहने। भूमि रेखाङ्कित करके कुश-स्थापन करके दाहिनी ओर ब्राह्मण को बैठाये। तदनन्तर स्रुवपात्र का शोधन करके आज्य की प्रदक्षिणा करे (घृत की प्रदक्षिणा)। दाहिना जानु पृथ्वी पर रखे, स्रुव लेकर पात्र-परित्यागी न हो (अर्थात् पात्र लिये रहे)। दस आहुति प्रदान करे। तत्पश्चात् सन्निधीकरण करे। सम्भव होने पर इस प्रकार से अग्नि का चिन्तन करना चाहिये—छाग (मेष) के ऊपर आरूढ, प्रादेश मात्र, सप्त किरणयुक्त, कुण्डाक्ष धारणकारी, पिङ्गल श्मश्रु तथा नेत्रयुक्त अग्नि का ध्यान करके अपने मन्त्र से उनका आवाहन करे। तत्पश्चात् शिष्य-हेतु गर्भाधानादि पाँच-पाँच आहुति देनी चाहिये। इसके अनन्तर दण्ड एवं मेखला की स्थापना करे। तदनन्तर पूर्व की ओर हृदय के द्वारा अभिमन्त्रित सूर्यभक्तों को प्रवेश कराये।

वस्त्रबद्धमुखान् कृत्वा त्रिधा भ्राम्यन्विचक्षणः ।
जानुभ्यामवनीं गत्व शिरसा ते क्षमापयेत् ।।२१।।
तत्र तत्पतेः पुण्यं तस्य तल्लयमादिशेत् ।
नाम तस्य स्वरूपेण कारयेद्रविपूर्वकम् ।।२२।।
षष्ट्या चैव महाश्वेतां हृदि ध्यात्वा दिवाकरम् ।
साधनं तु निरीक्षेत ततो दीक्षित उच्यते ।।२३।।

विचक्षण व्यक्ति मुख को कपड़े से बाँधकर तीन बार घुमाकर भूमि पर जानु रखकर मस्तक द्वारा क्षमापन कराये (प्रणाम की मुद्रा में क्षमापन कराये)। तदनन्तर वहाँ उसके अधिपति के पुण्यलय का चिन्तन करे। स्वरूप में रविपूर्वक उसका नामकरण करना पड़ता है। षष्ठी में महाश्वेता तथा हृदय में दिवाकर का ध्यान करे, साधन दर्शन करे। तदनन्तर उसे दीक्षित कहा जाता है।।२१-२३।।

ततः साधकोऽग्निस्थापनं कृत्वैकैकामाहुतिं जुहुयात्। ततोऽष्टपुष्पिकां दापयेत्।।२४।।

इति श्रीसाम्बपुराणे साधनरहस्यं नाम द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

●

तदनन्तर साधक अग्नि-स्थापन करके एक-एक आहुति देकर होम करे। तत्पश्चात् अष्टपुष्पिका प्रदान करे।।२४।।

श्री साम्बपुराणोक्त साधनरहस्य नामक बावनवाँ अध्याय समाप्त

●

त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः
(पूजाविधिनिरूपणम्)

नारद उवाच

प्रथमं चिन्तयेत् पद्ममष्टपत्रं सकर्णिकम्।
तन्मध्ये चिन्तयेद्देवं भास्करं रश्मिविग्रहम्।।१।।
सहस्रदिनसंस्कारं सूर्यकोटिसमप्रभम्।
महातेजोमयं ध्यात्वा आदित्यं पूजयेद् बुधः।।२।।
योऽयं हरितवर्णाभं रथे तिष्ठति वाजिनम्।
अरुणः सारथिर्यस्य रथवाहः स्वयं स्थितः।।३।।
तमहं लोकशांत्यर्थमादित्यमाह्वयाम्यहम्।
आयाहि भगवन्भानो तव यज्ञः प्रवर्तते।।४।।

प्रथमतः कर्णिकायुक्त अष्टपत्र-विशिष्ट पद्म का चिन्तन करे। उसमें रश्मिस्वरूप सूर्यदेव का चिन्तन करना चाहिये। सहस्र दिनसंस्कारक (असंख्य दिनों को प्रकाशित करने वाले) कोटि सूर्य प्रभातुल्य महातेजोमय आदित्य का ध्यान करके पण्डितगण उनका पूजन करते हैं। जो हरित वर्ण वाले अश्वों के रथ पर स्थित हैं, रथ के सारथी अरुण जिस रथ पर हैं, लोक की शान्ति के लिये मैं उन आदित्य का आवाहन करता हूँ। हे भगवन् भानु! आप आईये। आपका यज्ञ प्रारम्भ होता है।।१-४।।

इदमर्घ्यं च पाद्यं च प्रतिगृह्य नमो नमः।
आह्वानं सहस्रकिरणं स्वागतं स्वागतं स्वागतं ठः ठः।
ॐ धर धर अद्य।।५।।

यह अर्घ्य तथा पाद्य ग्रहण करिये। आपको नमस्कार है, नमस्कार है। सहस्रकिरणों से युक्त आपका मैं आह्वान करता हूँ। आपका स्वागत है (मूल में लिखित मन्त्र से पाद्य अर्घ्य प्रदान करे, यथा—इदमर्घ्यञ्च पाद्यं च प्रतिगृह्य नमो नमः (यह अर्घ्य तथा पाद्य मन्त्र है)। आवाहन मन्त्र है—आह्वानं······धर धर अद्य।।५।।

वनस्पतिरसो दिव्यो गन्धाढ्यो गन्ध उत्तमः।
आघ्रेयः सर्वभूतानां प्रतिगृह्य नमो नमः।।६।।

स्वाहा धूपः गन्ध गन्धादि ठः ठः गन्धः। ॐ दीपपञ्चलिनि ठं ठं दीपः।

तृतीय प्राकार में—वज्र, शक्ति, दण्ड, खड्ग, शङ्ख, चक्र, गदा तथा परशु बनाये। ऐसे ही ऊपर पुर में पूर्व की ओर महामुद्रा लिखे। पूर्व से आवाहन प्रारम्भ करके लोकपालगण का आवाहन करे। चतुर्थ प्राकार (आवरण) में व्योमपुष्प, बलि तथा पूजोपहार ग्रहण करे। आदि में ॐकार, अन्त में स्वाहा का योग करना चाहिये। तदनन्तर अग्नि-स्थापना करे। आचार्य मस्तक पर पगड़ी पहने। भूमि रेखाङ्कित करके कुश-स्थापन करके दाहिनी ओर ब्राह्मण को बैठाये। तदनन्तर स्रुवपात्र का शोधन करके आज्य की प्रदक्षिणा करे (घृत की प्रदक्षिणा)। दाहिना जानु पृथ्वी पर रखे, स्रुव लेकर पात्र-परित्यागी न हो (अर्थात् पात्र लिये रहे)। दस आहुति प्रदान करे। तत्पश्चात् सन्निधीकरण करे। सम्भव होने पर इस प्रकार से अग्नि का चिन्तन करना चाहिये—छाग (मेष) के ऊपर आरूढ, प्रादेश मात्र, सप्त किरणयुक्त, कुण्डाक्ष धारणकारी, पिङ्गल श्मश्रु तथा नेत्रयुक्त अग्नि का ध्यान करके अपने मन्त्र से उनका आवाहन करे। तत्पश्चात् शिष्य-हेतु गर्भाधानादि पाँच-पाँच आहुति देनी चाहिये। इसके अनन्तर दण्ड एवं मेखला की स्थापना करे। तदनन्तर पूर्व की ओर हृदय के द्वारा अभिमन्त्रित सूर्यभक्तों को प्रवेश कराये।

वस्त्रबद्धमुखान् कृत्वा त्रिधा भ्राम्यन्विचक्षणः।
जानुभ्यामवनीं गत्व शिरसा ते क्षमापयेत् ॥२१॥
तत्र तत्पतेः पुण्यं तस्य तल्लयमादिशेत्।
नाम तस्य स्वरूपेण कारयेद्रविपूर्वकम् ॥२२॥
षष्ठ्या चैव महाश्वेतां हृदि ध्यात्वा दिवाकरम्।
साधनं तु निरीक्षेत ततो दीक्षित उच्यते ॥२३॥

विचक्षण व्यक्ति मुख को कपड़े से बाँधकर तीन बार घुमाकर भूमि पर जानु रखकर मस्तक द्वारा क्षमापन कराये (प्रणाम की मुद्रा में क्षमापन कराये)। तदनन्तर वहाँ उसके अधिपति के पुण्यलय का चिन्तन करे। स्वरूप में रविपूर्वक उसका नामकरण करना पड़ता है। षष्ठी में महाश्वेता तथा हृदय में दिवाकर का ध्यान करे, साधन दर्शन करे। तदनन्तर उसे दीक्षित कहा जाता है।।२१-२३।।

ततः साधकोऽग्निस्थापनं कृत्वैकैकामाहुतिं जुहुयात्। ततोऽष्टपुष्पिकां दापयेत्॥२४॥

इति श्रीसाम्बपुराणे साधनरहस्यं नाम द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

●

तदनन्तर साधक अग्नि-स्थापन करके एक-एक आहुति देकर होम करे। तत्पश्चात् अष्टपुष्पिका प्रदान करे।।२४।।

श्री साम्बपुराणोक्त साधनरहस्य नामक बावनवाँ अध्याय समाप्त

●

त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

(पूजाविधिनिरूपणम्)

नारद उवाच

प्रथमं चिन्तयेत् पद्ममष्टपत्रं सकर्णिकम्।
तन्मध्ये चिन्तयेद्देवं भास्करं रश्मिविग्रहम् ॥१॥
सहस्रदिनसंस्कारं सूर्यकोटिसमप्रभम्।
महातेजोमयं ध्यात्वा आदित्यं पूजयेद् बुधः ॥२॥
योऽयं हरितवर्णाभं रथे तिष्ठति वाजिनम्।
अरुणः सारथिर्यस्य रथवाहः स्वयं स्थितः ॥३॥
तमहं लोकशांत्यर्थमादित्यमाह्वयाम्यहम्।
आयाहि भगवन्भानो तव यज्ञः प्रवर्तते ॥४॥

प्रथमतः कर्णिकायुक्त अष्टपत्र-विशिष्ट पद्म का चिन्तन करे। उसमें रश्मिस्वरूप सूर्यदेव का चिन्तन करना चाहिये। सहस्र दिनसंस्कारक (असंख्य दिनों को प्रकाशित करने वाले) कोटि सूर्य प्रभातुल्य महातेजोमय आदित्य का ध्यान करके पण्डितगण उनका पूजन करते हैं। जो हरित वर्ण वाले अश्वों के रथ पर स्थित हैं, रथ के सारथी अरुण जिस रथ पर हैं, लोक की शान्ति के लिये मैं उन आदित्य का आवाहन करता हूँ। हे भगवन् भानु! आप आईये। आपका यज्ञ प्रारम्भ होता है।।१-४।।

इदमर्घ्यं च पाद्यं च प्रतिगृह्य नमो नमः।
आह्वानं सहस्रकिरणं स्वागतं स्वागतं स्वागतं ठः ठः।
ॐ धर धर अद्य ॥५॥

यह अर्घ्य तथा पाद्य ग्रहण करिये। आपको नमस्कार है, नमस्कार है। सहस्रकिरणों से युक्त आपका मैं आह्वान करता हूँ। आपका स्वागत है (मूल में लिखित मन्त्र से पाद्य अर्घ्य प्रदान करे, यथा—इदमर्घ्यञ्च पाद्यं च प्रतिगृह्य नमो नमः (यह अर्घ्य तथा पाद्य मन्त्र है)। आवाहन मन्त्र है—आह्वानं······धर धर अद्य।।५।।

वनस्पतिरसो दिव्यो गन्धाढ्यो गन्ध उत्तमः।
आघ्रेयः सर्वभूतानां प्रतिगृह्य नमो नमः ॥६॥

स्वाहा धूपः गन्ध गन्धादि ठः ठः गन्धः। ॐ दीपपञ्चलिनि ठं ठं दीपः।

वनस्पतिरसो से लेकर नमः-पर्यन्त मूल श्लोक छः से धूप तथा दीप प्रदान करे। मन्त्रार्थ है—वनस्पति के निर्यास से उत्पन्न दिव्य गन्धयुक्त उत्तम गन्ध, जो समस्त प्राणियों के आघ्राण-योग्य है, उस धूप को ग्रहण करिये। आपको नमस्कार-नमस्कार। तदनन्तर स्वाहा कहे। तत्पश्चात् 'धूपः गन्धगन्धादि स्वाहा' से गन्ध प्रदान करे और 'दीपपञ्चलिनि स्वाहा' से दीपदान करे।।६।।

ॐ एतत्सुमनसं दिव्यं गन्धादिः गन्धवत्तमम्।
आघ्रेयः सर्वभूतानां प्रतिगृह्य नमो नमः ठः ठः ।।७।। इति पुष्पम्

अब श्लोक ७ से पुष्पदान करे। जहाँ 'ठः ठः' लिखा है, वहाँ 'स्वाहा' कहे। मन्त्रार्थ है—इस दिव्य गन्धयुक्त गन्धश्रेष्ठ को, समस्त प्राणियों के आघ्रेय पुष्प को ग्रहण करिये। आपको नमस्कार-नमस्कार।।७।।

ॐ ब्रह्मणा ग्रथितं पूर्वं पवित्रमिदमुत्तमम्।
यज्ञोपवीतं महातेज गृह्णीष्व नमोऽस्तु ते ।।८।।

मूल श्लोक ८ द्वारा यज्ञोपवीत दान करे। मन्त्रार्थ है—पहले ब्रह्मा द्वारा ग्रथित इस उत्तम महातेजयुक्त यज्ञोपवीत को ग्रहण करिये। हे हंस! आपको नमस्कार है।।८।।

सर्वौषधिसमृद्धस्तु भक्ष्योऽयं परमेश्वर।
अमृतं गृह्यतां देव अमृतोऽयं तवाशनः ।।९।। इति अन्नम्।

श्लोक ९ द्वारा अन्नदान करना चाहिये। मन्त्रार्थ है—हे परमेश्वर! समस्त औषधियों (शस्य तथा वृक्ष-लतादि से उत्पन्न) के सहित यह खाद्य, यह अमृत आप ग्रहण करिये। हे देव! यह अमृत आपके लिये भक्षणीय है।।९।।

रत्नोज्ज्वलमिदं पुण्यं मुकुटं भूषणोत्तमम्।
मुकुटं गृह्यतां देव देवदेव नमो नमः ।।१०।। इति मुकुटम्।

श्लोक १० द्वारा मुकुट-दान करे। मन्त्रार्थ है—रत्न के समान उज्ज्वल पुण्य मुकुट उत्तम भूषण है। हे देव! इसे आप ग्रहण करिये। हे देवदेव! आपको नमस्कार है, नमस्कार है।।१०।।

ॐ भास्कराय त्विदं वस्त्रं सर्ववस्त्रोत्तमं वरम्।
कटिभूषणमिदं पुण्यं दिव्यं देव नमोऽस्तु ते ।।११।।

इति श्रीसाम्बपुराणे पूजाविधिनिरूपणे प्रथमं पटलं नाम त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

●

श्लोक ११ द्वारा वस्त्रदान करना चाहिये। मन्त्रार्थ है—भास्कर को इन सभी वस्त्रों में से उत्तम वस्त्र अर्पित करता हूँ। इस दिव्य पुण्य कटिभूषण को आप ग्रहण करिये। हे देव! आपको नमस्कार है, नमस्कार है।।११।।

श्रीसाम्बपुराणोक्त पूजाविधि-निरूपण नामक तिरेपनवाँ अध्याय समाप्त

●

चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

(अष्टपुष्पिका)

देव उवाच

संक्षेपेण तु देवेश कथयस्वाष्टपुष्पिकाम् ॥१॥

देवगण कहते हैं—हे देवेश! संक्षेप में अष्टपुष्पिका कहिये॥१॥

देव उवाच

खखोल्काय स्वाहा ठः ठः।

ॐकारं स्थापयेत्पूर्वं खकारं वह्निसंयुतम्।
खोकारं दक्षिणे भागे ल्काकारं नैर्ऋते तथा॥२॥
यकारं पश्चिमे भागे स्वाकारं वायवे ततः।
हाकारमुत्तरे स्थाप्यं तथैशान्यां क्षकारकम्॥३॥
ओङ्कारेणावाहनं कुर्यात्सान्निध्ये च खमुच्यते।
खोकारं स्थापने विद्याल्काकारं पुष्पकारणात्॥४॥
स्वाकारं योजयेत् सूक्तं भोज्यं भक्ष्यं तथैव च।
हाकारं च सदा योगी चिन्तयेन्मुक्तिकारणात्॥५॥

सूर्यदेव कहते हैं—'खखोल्काय स्वाहा स्वाहा' (यह सूर्य का मूलमन्त्र है। इसके प्रत्येक अक्षर के बीज न्यास को अष्टपुष्पिका कहते हैं।) इस मन्त्र के पहले 'ॐ' लगाना होगा, तदनन्तर वह्नियुक्त 'ख', दक्षिण में 'खो' नैर्ऋत्य में 'ल्का' कार, पश्चिम में 'य', वायु-कोण में 'स्वा'कार, उत्तर में हाकार का स्थापन करके ईशान कोण में 'क्ष'कार स्थापित करे। ॐकार द्वारा आवाहन करे। सन्निहित करण में 'ख' कहना होगा। स्थापन में 'खो'कार मन्त्र तथा पुष्पदान में 'ल्का'कार होगा। इस प्रकार भोज्य तथा भक्ष्य दान में 'स्वा' का योग होगा। योगी को मुक्ति के लिये सर्वदा 'हा'कार का चिन्तन करना चाहिये॥२-५॥

क्षकारं तु स्वयं देवमादित्यसमतेजसम्।
विन्यसेद्दक्षिणावर्तं साधको बीजसाधने॥६॥
ततो मन्त्रान्प्रयुञ्जीत यथान्यायेन साधकः।
बीजाष्टपुष्पिका।

इति श्रीसाम्बपुराणे अष्टपुष्पिकानाम चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः द्वितीयं पटलम्

●

'क्ष'कार स्वयं देवतास्वरूप है। आदित्य का तेज है। बीज-साधना हेतु साधक दक्षिणावर्त्त विन्यास करे। तदनन्तर साधक यथाविधान मन्त्रों को युक्त करे। यही है—बीजाष्टपुष्पिका॥६॥

श्री साम्बपुराणोक्त चौवनवाँ अध्याय का अष्टपुष्पिका नामक द्वितीय पटल समाप्त

●

पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

(मण्डलकथनम्)

यद्यत्स्वर्गापवर्गार्थं यच्च सर्वार्थसाधनम्।
संवत्सराख्यमतुलं मण्डलं कथयामि ते ॥१॥
आचार्यः संयतो धीमानर्कशास्त्रविशारदः।
क्रोधलोभपरित्यक्तो द्विजः शस्तो निरामयः ॥२॥
प्राप्ताभिषेकनिपुणः शास्त्रभक्तो निरामयः।
गुरोर्विधिसमाख्याता ईप्यन्ते परिचारकाः ॥३॥
कुलीनाः शुचयो दान्ता देवद्विजपरायणाः।
एते शिष्याः प्रशंसन्ते रविशासनतत्पराः ॥४॥

सूर्यदेव कहते हैं कि जो स्वर्ग तथा अपवर्ग का निमित्त एवं सर्वार्थ-साधक है, उस संवत्सर नामक अतुलनीय मण्डल का वर्णन तुमसे करता हूँ। इसमें संयत, धीमान्, अर्कशास्त्र-विशारद, जिन्होंने क्रोध तथा लोभ का परित्याग किया है, ऐसे अरोगी ब्राह्मण आचार्य प्रशस्त हैं। जो अभिषिक्त तथा निपुण हैं, शास्त्र के प्रति जिनकी भक्ति है, ऐसे अरोगी, गुरु के विधान में जो अवस्थित हैं, वैसे परिचारक अभीप्सित हैं। जो कुलीन (सत् कुलोत्पन्न) हैं, शुचि, जितेन्द्रिय, देवता तथा ब्राह्मण की सेवा में परायण हैं, सूर्य के शासनपालन में तत्पर हैं, ऐसे शिष्य प्रशंसनीय हैं।।१-४।।

अन्ये ये ये स्युरार्ता वा पापरोगाद्यविप्लुताः।
अप्रजा वसुहीना वा न कुर्युस्तेऽभिषेचनम् ॥५॥
सप्तम्यामुपरागे च संक्रान्तिषु गभस्तिनः।
पुण्येष्वन्येषु वाहस्सु लिखेदर्कोदिते तथा ॥६॥

जो अन्य लोग आर्त्त हैं, पाप तथा रोगादि द्वारा अभिभूत हैं, पुत्रहीन अथवा धनहीन हैं, उनका कदापि अभिषेक नहीं करना चाहिये। सप्तमी को, ग्रहणकाल में, संक्रान्ति में अथवा सूर्य के अन्य शुभ दिनों में तथा सूर्य के उदयकाल में (मण्डल का) अङ्कन करना चाहिये।।५-६।।

प्रागुद्दिष्टे भुवो भागे सुविस्तीर्णे शुभे शुचौ।
गोभिरध्युषितं कार्य्यं ब्राह्मणैश्चाभिनन्दितम् ॥७॥
चैद्यकण्टकवल्मीकश्मशानादिविवर्जितम्।
खखोल्कहृदयेनार्घ्यं दत्त्वा चैतद्विशोधयेत् ॥८॥

दन्दशूकाखुकेशास्थिकाष्ठभस्मतुषादिकम् ।
खखोल्कं च गुरुं चैव प्रणम्य शिरसाः ततः ॥९॥
भूम्यादि भ्रामयेच्छिष्यः स्वपेत्संयतमानसः ।

पूर्वनिर्दिष्ट सुविस्तीर्ण शुभ्र, शुचि भूमिभाग गोगण (गौओं) का आवास स्थान बनाये तथा वह होगा—ब्राह्मणों से अभिनन्दित। चैत्य (श्मशान का वृक्ष अथवा बौद्ध मन्दिर), कण्टक, दीमक की बांवी तथा श्मशानादि से वर्जित यह स्थान होता है। खखोल्क हृदय द्वारा अर्घ्य देकर विच्छू, सर्पादि, चूहों के वासस्थान का, केश, अस्थि, काठ की राखी तथा तुष आदि से स्थान का शोधन करे। सूर्य को तथा गुरु को शिर नत करके प्रणाम करना चाहिये। शिष्य ऐसा करके भूमि प्रभृति पर भ्रमण करे तथा संयत होकर शयन करे।।७-९।।

प्रासादं द्विरदादीनां काननस्य द्रुमस्य च ॥१०॥
आरोहणं प्रशस्तं स्यात् स्वप्ने सिंहासनस्य वा ।
वस्त्रभूषणदध्यन्ननारीक्षेत्रध्वजस्त्रजम् ॥११॥
लोभो प्रस्तरणं वैरिमारणं रुधिरस्त्रवम् ।
मांसाशनं सुरास्वादो रुधिरस्वादुकर्त्तनम् ॥१२॥
स्वप्न एवंविधो दृष्टः साधयेदभिवाञ्छितम् ।

शयन में प्रासाद, हाथी-प्रभृति, जंगल, वृक्ष अथवा सिंहासन पर आरोहण दर्शन करना प्रशस्त है। ऐसे ही वस्त्र, भूषण, दधि, अन्न, नारी, खेत, ध्वजा, माला, पुष्पादि-रचित शय्या, शत्रुमारण, रक्तक्षरण, मांसभक्षण, मद्यपान, रक्तवर्ण मणिविशेष का कर्त्तन—ऐसे स्वप्न अभीष्टप्रद होते हैं।।१०-१२।।

पुनः कुर्वीत संस्कारं चन्दनागुरुपाणिना ॥१३॥
तत्स्थानं शोभनं कार्य्यं नानाध्वजविभूषितम् ।
किङ्किणीनादमुखरं प्रचलच्चारुचामरम् ॥१४॥

पुनः चन्दन, अगुरु-मिश्रित जल द्वारा संस्कार करे। नाना ध्वजाओं से स्थान को शोभित करना उचित है। वह स्थान किङ्किणी के शब्द से मुखर तथा सुन्दर चामरयुक्त होना चाहिये।।१३-१४।।

पद्मपत्रवनोपेतं कदलीखण्डमण्डितम् ।
शिखिपिच्छोल्लसच्छत्रं वितानकविभूषितम् ॥१५॥
नानारत्नसमाकीर्णं लसत्स्त्रग्दामतोरणम् ।
त्रिवृतं ग्रन्थिरहितं क्षौमं कार्पासमाविकम् ॥१६॥
सूत्रं प्रशस्यते तत्र खखोल्कपुरतस्ततः ।
आशापूर्वासमस्या तु सावित्र्या शासते रविः ॥१७॥

पद्मपत्र के वनयुक्त, केला के वृक्षों से शोभित हो, छत्र में मयूर का पंख लगा हो तथा चंदोवा द्वारा विभूषित हो। वह नानाविध रत्नों से समाकीर्ण हो, मालाओं के तोरण से शोभित किया गया हो। ग्रन्थिरहित त्रिवृत, क्षौम, कपास तथा रोयें से बने सूत्र से खखोल्क (सूर्य) के सामने (सजाना) प्रशस्त है। पूर्व की ओर सावित्री के साथ रवि शासन करते हैं।।१५-१७।।

ध्रुवास्पदास्तु सौम्या ये स्यातां पश्चिमदक्षिणे।
तत्र क्षोणीं प्रमाणेन अतुलात्प्रभृतिक्रमः ।।१८।।
कर्णिकां सूत्रयेन्मध्ये कमलस्य रवेः शुभाम्।
केसरं कर्णिकातुल्यं तस्माच्च द्विगुणं दलम् ।।१९।।

ध्रुवास्पद सौम्य का स्थान पश्चिम-दक्षिण में है। वहाँ क्षोणी प्रमाण से अतुल से क्रम जाने (अर्थात् अतुल से क्रम प्रारम्भ करे)। रवि के कमल के मध्य में शुभ कर्णिका चिह्नित करना होगा। केशर है कर्णिका के तुल्य। उसका दूना होगा दल।।१८-१९।।

मण्डलं वृत्तपत्राग्रं तच्छिष्टाब्जपुरःस्थितम्।
षड्विंशतिबीजपत्रं चतुर्विंशतिकेसरम् ।।२०।।
कर्षितं च सिताम्भोजं चतुःशृङ्गं शिखोज्ज्वलम्।
ततोऽपि बाह्यमपरं चतुरस्रं तु सूत्रयेत् ।।२१।।

पद्म के पुरस्थित वृत्तपत्राग्र मण्डल होगा। २६ बीजपत्र तथा २४ केशर रहेंगे। उज्ज्वल शिखायुक्त चार शृङ्गविशिष्ट श्वेत कमल अंकित करे। उसके बाह्य की ओर अन्य चतुरस्र बनाये।।२०-२१।।

चतुर्ग्रीवं विदिक्कोणं रथस्यावयवं शुभम्।
पुरावरणमध्ये तु अरुणं कन्दरावृतम् ।।२२।।
तत्पर्यन्तं विनिष्क्रान्ते द्वे द्वे रेखे तदर्द्धिके।
पुनस्तिर्यग्गतेऽग्रे तु स्वनिष्क्रान्तप्रमाणतः ।।२३।।

चार ग्रीवायुक्त, विदिक् कोणयुक्त रथ के अवयव शुभ होते हैं। पूर्व आवरण में कन्दरावृत स्थान अरुण का है। वहाँ तक विनिष्क्रान्त होकर दो-दो रेखा प्राप्त करना चाहिये। उसका आधा अब तिर्यक् भाव से स्वनिष्क्रान्त प्रमाण होगा।।२२-२३।।

पुनस्तावच्च निष्क्रम्य विलग्नमुखयेत्तु ते।
पद्मगर्भाद्विनिष्क्रांतां वारुण्यां मकराननाम् ।।२४।।
यष्टिं पद्मायतां कुर्याद्रथस्य कर्णिकामिताम्।
यष्ट्यग्रे सप्तसंलग्नान् वाजिनः पार्श्वयोर्द्वयोः ।।२५।।

अब निष्क्रमण करके उभय दिक् विलग्न होगा। पद्मगर्भ से विनिष्क्रान्त पश्चिम दिशा की ओर पद्मपत्र के समान विस्तृत यष्टि रथ की कर्णिका के समान बनवाये। यह होगा यष्टि के आगे सात संलग्न अश्व के दोनों ओर।।२४-२५।।

तदधस्तावती यष्टेर्मूलादूर्ध्वस्मृतोऽरुणाः ।
क्षोणी च पीठमित्युक्ता तथान्तः शेषपन्नगाः ।।२६।।
कर्णिका तेजसः पिण्डो भूताद्या बीजसंज्ञिता ।
खपरं कर्णिका व्योम वारं पत्रं सकेसरम् ।।२७।।
पत्राग्रं मण्डलं हस्तिरन्तर्व्योमस्थितं पुरे ।
वाह्याकाशं च तं विद्धि यष्टिधर्मार्थसंज्ञितम् ।।२८।।

यष्टि के नीचे उसी प्रकार मूल के ऊर्ध्व में अरुण का स्मरण करना चाहिये। पृथ्वी को पीठ कहते हैं। उसमें शेषनागगण की स्थिति है। तेज के पिण्डद्वय को कर्णिका, भूतादि बीजसंज्ञक, खपर, कर्णिका, व्योम तथा वारसमूह को केशरयुक्त पत्र कहते है। पत्र के अग्रभाग में मण्डल है। पुर के मध्य में व्योमस्थित हस्ति रहते हैं। उसे बाह्याकाश जानो, जो यष्टिधर्मार्थ नामक है।।२६-२८।।

रथः संवत्सरो ज्ञेयः पितरस्त्वृतवः स्मृताः ।
नेत्रं पत्रस्य मूले वै दोषाच्छन्दांसि शङ्करः ।।२९।।
सुषुम्नाद्यास्तु या नाड्यः सहस्रं रविविग्रहे ।
अत ऊर्ध्वं विदिक्षु स्यात् पीतं तस्य शतं शतम् ।।३०।।
योजनायतविस्तीर्णमुच्छ्रितं तत्प्रमाणतः ।
अरुणो घृणयः प्रोक्ता बाह्यछन्दांसि वाजिनः ।।३१।।
पञ्चर्तुर्वासुकिः प्रोक्तश्चक्रेशोऽस्य भुवस्त्रयः ।
एवं सर्वमयं प्रोक्तं रथश्रेष्ठं विभावसोः ।।३२।।

रथ को संवत्सर जानना चाहिये। ऋतुसमूह को पितृगण कहा है। पत्र के मूल में नेत्ररूप रात्रि तथा शम्भुरूपी हैं छन्द। सूर्य शरीर में सुषुम्नादि हजार नाड़ियाँ हैं, इसलिये ऊर्ध्व में विदिक् में १००-१०० पीतवर्ण रहते हैं। वह योजनायत विस्तीर्ण है। उसके प्रमाण से उच्छ्रित अरुण तथा घृणिसमूह (शिखाओं के) के अश्वों को बाह्य छन्द कहा जाता है। वासुकी को पञ्च ऋतु कहा गया है तथा इस भुवन के तीन लोक चक्रेश हैं। इस प्रकार से विभावसु के सर्वमय श्रेष्ठ रथ की बात कही गयी।।२९-३२।।

दर्भैश्च कुसुमैर्वापि लिखेदेतत् समाहितः ।
सञ्चिन्त्य मनसा वापि पूर्वोद्दिष्टं विधानतः ।।३३।।
पूजयेत्परमं देवं खखोल्कमिति विश्रुतम् ।
नित्यमेष विधिर्ज्ञेयः परो नैमित्तिकः स्मृतः ।।३४।।

तेजोदानादिदीक्षासु भुवनस्थापितर्पणे ।
रथे चास्मिन्महायोगा बाह्यावाचारणावुभौ ।।३५।।

कुश अथवा पुष्प द्वारा समाहित होकर इन सबका अंकन करना चाहिये अथवा विधान के अनुसार पूर्वनिर्दिष्ट विषय की मन ही मन चिन्तना करके परम देवता का पूजन करना चाहिये, जो खखोल्क के नाम से विख्यात हैं। यह नित्य विधि है, अन्य को नैमित्तिक कहा गया है। तेजोदानादि दीक्षा का विषय है। भुवनस्थ आवि तर्पण में इस रथ का महायोग है। दोनों में बाह्य आचरण है। (दीक्षा तथा तर्पण दोनों में बाह्य आचार रहता है)।।३३-३५।।

रथकन्दरवीथ्यास्तु तदर्धगुणसम्मिता ।
वीथी कार्य्या प्रमाणेन द्विगुणा चापरा बहिः ।।३६।।
सा तूद्दिष्टगुणा ग्रीवा चारुणा पद्मतुल्यया ।
अलग्ना बाह्यतः कार्य्या याम्यां दिशि सदासुराः ।।३७।।
द्वारमेतद्विनिर्दिष्टं भिन्नमम्बुजवेश्मनि ।
रथस्य बाह्यवीथ्यौ द्वे तस्य दीप्तिः प्रकीर्तिता ।।३८।।
ग्रहदिग्देवताभानोस्तत्रत्या गुणकन्दरा ।
द्वारपश्चिमतो मोक्षं येन शिष्यान् प्रवेशयेत् ।।३९।।

रथ, कन्दर, वीथी (चत्वर) उसके आधे गुण के समान हैं। बाहर अन्य द्विगुण प्रमाण की वीथी का अंकन करे। यह होगी पूर्वनिर्दिष्ट गुणसम्पन्न पद्मतुल्य चारु ग्रीवा। बाहर विच्छिन्न होगा। दक्षिण दिक् में सर्वदा असुरगण रहेंगे। यह द्वार का वर्णन निश्चित हुआ। इसके अतिरिक्त पद्मगृह में रथ की दो बाहरी वीथी होगी। उसे रथ की दीप्ति कहते हैं। सूर्य के ग्रह दिक् देवगण वहाँ के गुणकन्दर हैं। द्वार के पश्चिम दिक् की ओर मोक्ष है। वहाँ से शिष्यों को प्रवेश कराये।।३६-३९।।

एवं निखिल उद्दिष्टः सूत्रपातविधिक्रमः ।
अनेन सम्यग् ज्ञानेन प्राप्नोति परमां गतिम् ।।४०।।
आद्यक्षरेण येन स्याद् ये च लेख्याः सविग्रहाः ।
यादृशयश्चरजः वाते विधिस्तत्कथयाम्यहम् ।।४१।।
मणिमुक्ताप्रवालोत्थैर्व्रीहिधातुसमुद्भवैः ।
चूर्णैरग्नीन्द्रमरुद्वर्णैरथ वा चानुपूर्वतः ।।४२।।

इस प्रकार से सभी सूत्रपात का विधिक्रम कह दिया था। इसके सम्यक् ज्ञान से परम गति मिलती है। जिस प्रकार से आद्य अक्षर द्वारा उसे विग्रह के साथ अंकित करना होगा तथा रजःपात की जो विधि है, मैं उसे कहता हूँ। मणि-मुक्ता तथा प्रवालोत्थित व्रीहि एवं धातु-समुद्भव चूर्ण से अग्नि, इन्द्र तथा मरुद्वर्ण का रथ आनुपूर्विक होता है।।४०-४२।।

असंसक्तमिदं कुर्यादस्थूलामकृशां तथा।
अविक्षीणां रजोरेखां देशिकाङ्गुष्ठयोजिताम् ॥४३॥
न च मासप्रमाणं तु रेखामानवशाद् भवेत्।
वलिता चापरा मृष्या दीना शुक्ला ततः क्रमात् ॥४४॥
पद्मगर्भस्य नवमो योगः स परिकीर्तितः।
तस्याधिनवमे याम्यां तयोर्मध्ये तु तत्स्मृतः ॥४५॥

यह परस्पर मिलित नहीं होगा। इसी प्रकार स्थूल एवं कृश नहीं होगा। रजोरेखा होगी गुरु के अंगुष्ठ में योजित अक्षीण। मास इसका प्रमाण नहीं होगा। रेखा ही मान-प्रमाण होगी। क्रम से कहने पर मृष्य, दीन, शुक्लवर्ण के पद्मगर्भ में नवम योग के रूप में कीर्त्तित होता है। उसके भी नवम दक्षिण दिशा में उन दो के मध्य में वह स्मृत है।।४३-४५।।

लिखेद् भूतादितः पद्मं भौतिके पद्मसप्रभम्।
उदितार्कसमानं तु नैष्ठिके कर्मणि स्थितम् ॥४६॥
पीतां तु कर्णिकां तत्र किञ्जल्कं हरितं लिखेत्।
केसराण्यरुणान्यन्तः शुक्लान्यादन्तपत्रयोः ॥४७॥
पीतामर्कपुरं शोणमस्त्रं पद्माग्रसन्धिषु।
प्रतिदिग्देवतास्त्राणि स्वीकृत्य हरितान् हयान् ॥४८॥

भूतादि से पद्म का अंकन करे। भौतिक में पद्म तुल्य होगा (कमल के समान)। नैष्ठिक कर्म में उदित सूर्य के समान (नैष्ठिक कर्म में पद्म के समान अंकन न होकर उदित सूर्य जैसा अंकन करना चाहिये, उसमें पद्म के समान अंकन नहीं होगा)। कर्णिका जहाँ होगी, वहाँ पीतवर्ण तथा किंजल्क हरितवर्ण का होगा। केशरसमूह में अरुण वर्ण होगा तथा अन्त पत्र (दोनों) का वर्ण शुक्ल होगा। सूर्यपुरी का वर्ण होगा पीत। पद्म की अग्रसन्धि में रक्त वर्ण का अस्त्र होगा। प्रत्येक दिग् देवता का अस्त्र स्वीकार करना होगा। उनके अस्त्र होंगे—हरितवर्ण।।४६-४८।।

संध्यारुणसमं व्योमकन्दरां कनकप्रभाम्।
सितपीतारुणैर्वर्णैर्यष्टिर्लेखसु नाननः ॥४९॥

सन्ध्याकालीन अरुण के समान वर्ण का आकाश बनाये। कन्दर स्वर्णतुल्य होंगे। श्वेत, पीत तथा अरुण वर्ण के द्वारा यष्टि रञ्जित करे, किन्तु मुख न करे।।४९।।

चतुर्भिर्वर्णकैर्लेख्यं सर्वमावरणादिकम्।
चतुर्भिर्वर्णकैरेव चारालान् पूरयेत्तथा ॥५०॥
उक्ता देवादयो येषु पूर्वस्थानेषु तत्र वै।
स्वनाभ्याभ्यन्तरे तेषां लिखितं खेलनं भवेत् ॥५१॥

एवं मण्डलमालेख्य भूयः स्नात्वा समाहितः ।
शस्यते हरितां हृद्यां सर्वेषु रविकर्मसु ।।५२।।

चार वर्णों से आवरणादि का अंकन करे। ऐसे ही चार वर्ण से अन्तराल वाले स्थानों को भी अंकित करे। जिन पूर्व स्थानों में देवादि की स्थिति कही गयी है, नाभिदेश के अभ्यन्तर में उनका अंकन करना चाहिये। इस प्रकार मण्डल का अंकन करके समाहित होकर सूर्य के समस्त कार्यों में मन लगाये।।५०-५२।।

अग्निगर्भस्य चान्तेषु प्रागुदक्कुलकान् कुशान् ।
न्यसेत्समंतात् सर्वेषु ह्यग्निकार्ये च नैत्यिके ।।५३।।
विशेषं परमं किञ्चित्पूजाग्निक्रिययोर्मया ।
कथ्यमानं सुराः सर्वे निबोधत महाफलम् ।।५४।।
नदीद्विकूलगोशृङ्गमृत्स्नागोशीर्षकाननम् ।
शुक्लं सभस्मदूर्वान्तिकर्णीसर्षपरोचनाः ।।५५।।
क्रोड़क्रान्तां निशां मुस्तां सर्वास्वष्टासु दिक्ष्वपि ।
चन्दनोदकपूर्वेषु चन्दनस्थालिकेषु च ।।५६।।
शम्याभिपल्लवाक्षेपचिराजितमुखेषु च ।
कन्दराबद्धवस्त्रेषु कलशेषु विनिक्षिपेत् ।।५७।।

नित्य अग्नि कार्य में तथा अग्निगर्भ के चतुर्दिक उदककुलक कुश का विन्यास करे। पूजा तथा अग्निकार्य के सम्बन्ध में कुछ विशेष मैं कहता हूँ। हे देवगण! तुम उसे सुनो। वह महान् फलद है। नदी के दोनों तट, गाय का सींग, मृत्तिका, गाय का मस्तक, वन पर शुक्ल भस्म के साथ दूर्वा, अंतिकर्णी, सरसों, रोचना (गोरोचन), क्रोड़क्रान्त निशा, मुस्ता को सभी आठ दिशाओं में चन्दन मिश्रित जल के साथ चन्दनस्थ असिक, शमि के अभि-पल्लवाक्षेप से तथा चिराजित मुख में कन्दर के द्वारा वस्त्रबद्ध कलशों को निक्षेप करना होगा (इन सबका कोई अर्थ स्पष्ट नहीं है। अतः मात्र शब्दार्थ दिया गया है)।।५३-५७।।

संवत्सरस्य तस्यापि दिश्याग्नेय्यां ततः शुभम् ।
अग्निकुण्डं विदिक्कोणे तदेवपुरसम्मितम् ।।५८।।
आर्यादितीर्थसहितं निखातं द्वादशाङ्गुलम् ।
विस्तृताष्टाङ्गुलं तीर्थं कुर्यात्प्राक् प्लवमुत्तमम् ।।५९।।
आर्यादिकतीर्थम् ।

उस संवत्सर के आग्नेयी दिशा में (पूर्व तथा दक्षिण का मध्यवर्त्ती कोण) शुभ अग्नि-कुण्ड, विदिक् कोण में पद्मपुर के समान आर्यादि तीर्थ के साथ १२ अंगुल निखात करे। विस्तृत आठ अंगुल नीचे प्रवाह में उत्तम तीर्थ करे। यह है आर्यादिक तीर्थ।।५८-५९।।

कुण्डादष्टाङ्गुलं न्यस्य याम्यदर्भसमेनकम्।
विज्ञः सप्ताङ्गुलैश्चैव पारियात्रमथोत्तरे ।।६०।।
यैः सहैव खखोल्कस्य पूजा निगदिता शुभा।
वह्निरूपः स तैः सार्द्धं ध्येयः स्वहृदयेन तु ।।६१।।
ब्रह्मतो वरुणाभ्यासे प्राङ्मुखे स्रुक्स्रुवौ न्यसेत्।
इष्टाङ्गानि तु सर्वाणि गुरोर्नैर्ऋतभागतः ।।६२।।
अक्षीणाग्राः कुशा ह्रस्वा लूनाश्चैवोपमूलतः।
शस्यं ते हरिता ह्द्याः सर्वेषु रविकर्मसु ।।६३।।

विज्ञ व्यक्ति कुण्ड से आठ अंगुल दक्षिण में दर्भ (कुश) निक्षेप करे। उत्तर दिशा में सात अंगुल का पारियात्र बनाये। जिनके साथ खखोल्क की (सूर्य की) पूजा की वार्त्ता कही गयी हो, उनके साथ अपने हृदय में वह्निरूप सूर्य का ध्यान करना चाहिये। ब्रह्मा से लेकर वरुण के पास तक पूर्व मुख में स्रुक् तथा स्रुव को न्यस्त करे। गुरु के नैर्ऋत्य भाग में समस्त ईप्सित अंग समूह रहें। उनके अग्रभाग में छोटी कुशों को (जो क्षीण न हों) न्यस्त करना होगा। सूर्य के सभी कर्म में हरे रंग के शस्य ईप्सित हैं।।६०-६३।।

अग्निगर्भस्य चान्तेषु प्रागुदक्कुलकान् कुशान्।
न्यसेत्समन्तात् सर्वेषां ब्रह्मादीनामधस्ततः ।।६४।।
चतुर्विंशतिरङ्गुष्ठपरिमाणं स्रुवस्य तु।
तस्याप्युद्धरणाग्रस्य न तमङ्गुष्ठसम्मितम् ।।६५।।
तदर्द्धाङ्गुलं पात्रिमानं पाणिपात्रतलोदरम्।
वृत्तं तस्यापि निर्दिष्टं खातं द्व्यङ्गुलमेव च ।।६६।।
रक्तचन्दनकाष्ठैश्च खदिराश्वत्थकिंशुकैः।
अन्यैश्चैवापि याज्ञीयैः कर्तव्यं स्रुक्स्रुवादिकम् ।।६७।।

अग्निगर्भ के शेष भाग में पूर्व में उदक कुलक कुश का ब्रह्मादि के नीचे चारो ओर निःक्षेप करे। स्रुव का परिमाण होगा २४ अंगुल। उद्धरण (जिससे यज्ञ में घृत दिया जाता है) का अग्रभाग नत तथा अंगुष्ठ के समान होगा। उसके अर्द्धाङ्गुल पात्रिमाण में हस्तरूप पात्र के तल देश में जिसका उदर है उसका वृत्त निर्दिष्ट है—वहाँ दो अंगुल गहराई होगी। रक्तवर्ण चन्दन की लकड़ी से, खैर, पीपल, किंशुक अथवा अन्य यज्ञीय काष्ठ से स्रुक् तथा स्रुवा का निर्माण करना उचित है।।६४-६७।।

काष्ठैरमीभिः कर्त्तव्यं मुशलोलूखलं तथा।
चमसश्चैव तत्रापि मुशलं द्वादशाङ्गुलम् ।।६८।।
उलूखलं तु दिक्संख्यं खातं च चतुरङ्गुलम्।
चमसवर्णसंख्यातं खातं ह्यर्द्धाङ्गुलं तथा ।।६९।।

पुच्छं षडङ्गुलं तस्य विज्ञेयं परिमाणतः ।
दन्तकाष्ठन्तु शिष्यस्य ललाटेन तु सम्मितम् ।।७०।।

इन सब लकड़ियों से मूसल-उलूखल तथा चमस बनाना उचित है। मूशल होगा १२ अगुल। उलूखल होगा दस अंगुल परिमित तथा चार अंगुल गहरा होगा। चमस होगा चार अंगुल परिमित तथा आधा अंगुल गहरा। उसके पुच्छ का परिमाण होगा छः अंगुल। दन्तकाष्ठ होगा शिष्य के ललाट के तुल्य।।६८-७०।।

अर्कस्य समिधः काष्ठं द्वादशाङ्गुलमायतम् ।
अवक्रं सत्वचं चैव सार्द्रनिष्पाणिकं तथा ।
उपवीतं कुशमयं कर्त्तव्या मेखला त्रिवृत् ।।७१।।
समा शुक्ला च मौञ्जी स्याद्बर्हिजा बिल्वजा तथा ।
अविछिन्नशिखाजालः सर्प्पिः काञ्चनसन्निभम् ।।७२।।
स्निग्धः प्रदक्षिणावर्तो वह्निः सिद्धिकरः स्मृतः ।
उलूखलैः ततस्तस्मिन्क्षोदयेच्चतुरङ्गुलम् ।।७३।।

सूर्य के समिध का काष्ठ १२ अंगुल का हो। वह वक्र न हो। त्वचा से युक्त, आर्द्र तथा शाखारहित हो। कुशमय उपवीत हो तथा उसमें त्रिवृत मेखला हो। समान तथा शुक्लवर्ण की मौञ्जी होनी चाहिये, जो मयूरपुच्छ की अथवा वस्त्र की हो। अविच्छिन्न अग्नि शिखायुक्त घृत स्वर्ण के समान उज्ज्वल हो (पिघलने पर स्वर्ण के समान स्वर्णाभ लगे)। स्निग्ध प्रदक्षिणावर्त्त अग्नि (होमाग्नि जो दक्षिण (दाहिनी) ओर घूमती हो) सिद्धि-कारक कही गयी है। तदनन्तर उलूखल को चार अङ्गुल खोद दे (गहरा करे)।।७१-७३।।

खखोल्कमूलमन्त्रेण मुशलेन समाहितः ।
नवोपपानं तु शिखया पञ्चसा तण्डुलेन च ।।७४।।
मूलेन चैव शमयेत्पायसं चतुरङ्गुलम् ।
प्रवेश्याः प्रयताः शिष्या ये पूर्वमधिवासिताः ।।७५।।

सूर्य के मूलमन्त्र में मूसल द्वारा समाहित हो शिखा द्वारा नौ उपपान एवं ५-६ तण्डुलों द्वारा तथा मूल द्वारा ४ अंगुल पायस उपशम करे। तदनन्तर जो पूर्व में अधिवास करते हैं, संयत मन उन शिष्यों को प्रवेश (मण्डल में) कराये।।७४-७५।।

लिखितं स्याद्यमुद्दिश्य तं च पूर्वं निवेशयेत् ।
सोष्णीषं वाग्यतं दान्तं सितचन्दनचर्चितम् ।।७६।।
अचञ्चलोज्ज्वलकरं सितवस्त्रविभूषितम् ।
गवां पुच्छेन सलिलैः खखोल्काहृदयेन तु ।।७७।।
अभिषिञ्चेद् गुरुः शिष्यं ततस्तैः पापनाशनैः ।
प्रदद्याद् गुरवे शिष्यो गां वत्सेन समन्विताम् ।।७८।।

चारुरूपां समाधानां हेमस्त्रग्वस्त्रभूषिताम् ।
सितवस्त्रावृतखुरां द्वारेणाप्यानयेत्सदा ।।७९।।

जिनके उद्देश्य से इसे अंकित किया गया है, उन्हें पूर्व में निवेश कराये (उन शिष्यों को पूर्व में स्थित करे)। सर मौन पगड़ी पहने, मौन, उज्ज्वल हस्त, श्वेत वस्त्रधारी शिष्य को पापनाशक गौ के पुच्छ के जल द्वारा खखोल्क मन्त्र से गुरु अभिषिञ्चन कराये। शिष्य गुरु को बछड़े के साथ गौदान करे। गौ सुन्दर हो। स्वर्ण, माला तथा वस्त्र से भूषित हो, श्वेत वस्त्र द्वारा आवृत, विशिष्ट खुरों वाली गौ को द्वार पर लाये।।७६-७९।।

प्रवेश्य यष्ट्याः पुरतः स्थापयेत्सुसमाहितः ।
कायिकं वाचिकं चैव मानसं च हरेद् गुरुः ।।८०।।
पापं हि त्रिविधं तस्य खखोल्कहृदयादिभिः ।
पुष्पैरञ्जलिमापूर्य जानुभ्यां धरणीं गतः ।।८१।।
खखोल्कमिति-मन्त्रेण कमले प्रक्षिपेत्तदा ।
पद्मस्य यस्मिन्देवाग्रे प्रक्षिप्तं कुसुमं पतेत् ।।८२।।

प्रवेश करके याग करे। सामने सुसमाहित शिष्य को स्थापित करे। गुरु शिष्य के कायिक-वाचिक तथा मानसिक त्रिविध पाप का हरण खखोल्क हृदयादि से करे। पुष्प के द्वारा अञ्जलि पूर्ण करे। जानुद्वय को भूमि पर टिकाकर 'खखोल्क' इत्यादि मन्त्र से कमल निक्षेप करे। ऐसे निक्षिप्त करे कि देवता के आगे पुष्प गिरें।।८०-८२।।

एतस्य कुलदेवः स्यात्सद्यः सर्वार्थसाधकः ।
उत्पाद्य मुखबन्धन्तु दृष्ट्वा हंसं समन्ततः ।।८३।।
खखोल्ककुलदेवस्य प्रणमेद्यत्नतः क्रमात् ।
पद्मरागेण हेम्ना वा युक्तं सर्वान्निवेशयेत् ।।८४।।

वे होंगे शिष्य के कुलदेवता तथा सद्यः सर्वार्थ-साधक। मुखबन्ध करके चारो ओर हंस (जीवात्मा) को देखे। यत्नपूर्वक खखोल्क कुलदेवता को प्रणाम करे। पद्मरागमणि से अथवा स्वर्ण से सबकी स्थापना करे।।८३-८४।।

ऐशानीं तु दिशं नीत्वा गुरुः शिष्यं कुशासने ।
उपवेश्य ततो दद्यान्नृपतिर्यजनानि तु ।।८५।।

गुरुदेव शिष्य को ईशानी (पूर्व तथा उत्तर के मध्यवर्त्ती के अधिपति) शिव की ओर ले जाकर कुशासन पर बैठाये। नृपति वहाँ बैठकर पूजोपहार प्रदान करें।।८५।।

कुशाग्रेण समादाय कलशेभ्यो गुरुर्जलम् ।
पूर्वाननं खखोल्काग्रैः शिष्यं तमभिषेचयेत् ।।८६।।

अभिषेककाले तस्याथ ब्राह्मणास्तु यथाक्रमम्।
त्रिष्वेतेषु देवेषु त्रिशिक्षां परिपाठयेत्॥८७॥
अस्य वासोद्वयमिति उदूत्यं च निधापयेत्।
आकृष्णेनेति यजुषामष्टौ व्याहृतिकत्रयम्॥८८॥
आदित्यव्रतसंज्ञं च शुक्लं वस्त्रं च सामसु।
सामभिश्चाभिषिञ्चेयुः सर्वे संयतमानसाः॥८९॥

गुरुदेव कलशों से कुशा से जल लेकर सूर्य की ओर पूर्वाभिमुख शिष्य का अभिषेक कराये। तदनन्तर उसके अभिषेक काल में ब्राह्मणगण यथाक्रमेण तीन शिक्षा (तीन वेद-मन्त्र) का पाठ करें। 'अस्य वासो स्वयं, उदूत्यं च एवं आकृष्णेन' इत्यादि आठ यजुर्मन्त्रों में तीन व्याहृति लगाये। आदित्य व्रत नामक एवं साम (मन्त्र गाने वाले) गायी को शुक्ल वस्त्र प्रदान करे। सभी संयत मन से साममन्त्रों द्वारा अभिषेक करें।।८६-८९।।

ततोऽग्निनिकटं गत्वा मन्त्रेण हृदयेन तु।
कुशेन मृज्य तं शिष्यं होमं कुर्याद् गुरुः स्वयम्॥९०॥
गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्तोन्नयनं तथा।
जातकर्म तथा नामकरणं चाशनक्रियाम्॥९१॥
चूडोपनयनं स्नानपानीयं च क्रतूनपि।
कुशेनाङ्गपरामृज्य कुर्य्यादवसथे हृदा॥९२॥

तदनन्तर अग्नि के पास जाकर हृदयमन्त्र से शिष्य की कुश से मार्जना करे। अब गुरुदेव स्वयं होम करें। गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण तथा अन्न-प्राशन, चूड़ाकरण, उपनयन में स्नान एवं पानीय (आचमन) ग्रहण करें तथा यज्ञ करें। कुश द्वारा अंगमार्जना करके हृदय गृह में अवस्थान करना उचित है।।९०-९२।।

सकुशेन तु हस्तेन च्छित्वा शिष्यशिखां गुरुः।
घृतप्लुतां दहेदग्नौ मूर्द्धादिक्षिप्तकारणात्॥९३॥
परामृज्याथवा मूर्ध्नि तथैव जुहुयात्कुशान्।
पाकसंस्थां हविःसंस्थां होमसंस्थां च कारयेत्॥९४॥
प्रागुक्तेनैव विधिना ततः शुद्धेन सर्पिषा।
शिष्यो होमं प्रकुर्वीत स्रुक्स्रुवाभ्यां यथाक्रमम्॥९५॥

गुरु कुशयुक्त हाथ से शिष्य की शिखा छिन्न करे। मस्तकादि की क्षिप्तता हेतु घृत से उसे लिप्त करके अग्नि में दग्ध करे अथवा (कुश से) मस्तक की मार्जना करके उसी प्रकार कुशा की अग्नि में आहुति दे। तदनन्तर पाकसंस्था, हरिसंस्था तथा होमसंस्था करायें।।९३-९५।।

शिष्योऽभिमुखमातिष्ठेत्संस्पृशेत्तु गुरुं कुशैः ।
भुवनानि सहादित्यं योगं कुर्याद्गुरुः स्वयम् ॥९६॥

शिष्य सामने रहे और कुश से गुरुदेव का स्पर्श करे। गुरु स्वयं 'भुवनानि सहादित्यं' इत्यादि वेदमन्त्र से याग करें।।९६।।

श्रावयेन्नित्यकृत्यादौ तथा च श्रौषडित्यपि ।
यागाङ्गे वषट्कारः कार्यो लोकाभितर्पणे ॥९७॥

नित्य कृत्यादि (शिष्य को) सुनावे। वैसे ही 'श्रौषड्' को भी सुनायें तथा याग के अन्त में लौकिक तर्पण में वषट्कार का उच्चारण करें।।९७।।

ॐ कालाग्निरुद्राय ठः ठः। ॐ कालरुद्रेभ्यः ठः ठः। ॐ भस्मरुद्रेभ्यः ठः ठः। ॐ श्वेताधिपतये ठः ठः। ॐ कालरुद्रेभ्यो ठः ठः। ॐ पिङ्गलरुद्रेभ्यो ठः ठः। ॐ हिरण्यवर्णाय ठः ठः। ॐ कालाय ठः ठः। ॐ लोहिताक्षाय ठः ठः। ॐ रक्तपिङ्गलेभ्यो ठः ठः। ॐ अनन्ताय ठः ठः। ॐ पुण्डरीकाक्षाय ठः ठः। ॐ सहस्रशीर्षाय ठः ठः। ॐ महोज्ज्वलाय ठः ठः। ॐ सज्ज्वलाय ठः ठः। ॐ आशीविषाय ठः ठः। ॐ सर्वेभ्योऽनन्ताय वरुणेभ्य ठः ठः। ॐ अविचये ठः ठः। ॐ रौरवाय ठः ठः। ॐ तामिस्राय ठः ठः। ॐ तामसाय ठः ठः। ॐ अन्धतामिस्राय ठः ठः। ॐ शीताय ठः ठः। ॐ उष्णाय ठः ठः। ॐ सन्तापनाय ठः ठः। ॐ सुप्रतपनाय ठः ठः। ॐ संहताय ठः ठः। ॐ काकोलूकाय ठः ठः। ॐ पद्मलोचनाय ठः ठः। ॐ संयमनाय ठः ठः। ॐ जम्बूकाय ठः ठः। ॐ उलूकाय ठः ठः। ॐ व्याघ्राय ठः ठः। ॐ पूतिमृत्तिकाय ठः ठः। ॐ कालसूत्राय ठः ठः। ॐ सूचीमुखाय ठः ठः। ॐ लोहशङ्कवे ठः ठः। ॐ क्षुरधारोपमाय ठः ठः। ॐ विरीकाय ठः ठः। ॐ दंशकाय ठः ठः। ॐ तप्तकुम्भोपमाय ठः ठः। ॐ पूयशोणितप्रवाहाय ठः ठः। ॐ कूटपर्वताय ठः ठः। ॐ तीक्ष्णशल्याय ठः ठः। ॐ चक्रपिण्डाय ठः ठः। ॐ तार्क्ष्याय सतुण्डाय ठः ठः। ॐ मेदोसृक्पूयप्रवाहाय ठः ठः। ॐ क्रकचच्छेदनाय ठः ठः। ॐ अस्थिभञ्जनाय ठः ठः। ॐ तप्तवालुकाय ठः ठः। ॐ पङ्कलेपनाय ठः ठः। ॐ निरुच्छ्वासाय ठः ठः। ॐ यमलपर्वताय ठः ठः। स्वाहाकारमन्त्रेभ्यः। ॐ कूटशाल्मलये ठः ठः।

ऊपर मूल में अंकित 'ॐ कालाग्निरुद्राय ठ: ठ:' इत्यादि मन्त्रों से (ठ: ठ: के स्थान पर सबमें स्वाहा कहें, ठ: ठ: नहीं कहना है) कालाग्निरुद्र, कालरुद्र, भस्मरुद्र, श्वेताधिपति तथा कालरुद्र के लिये आहुति प्रदान करे।

ऐसे ही पिङ्गल रुद्र, हिरण्यवर्ण, काल, लोहिताख्य, रक्तपिंगलगण, अनन्त, पुण्डरीकाक्ष, सहस्रशीर्ष, महोज्ज्वल, सज्जल, आशीविष, सकल, अनन्त, वरुणगण,

अविचि, रौरव, तामिस्र, तामस, अन्धतामिस्र, शीत, उष्ण, सन्तापन, सुप्रतपन, संहत, काकोलूक, पद्मलोचन, संयमन, जम्बूक, उलूक, व्याघ्र, पूतिमृत्तिक तथा कालसूत्र के लिये आहुति प्रदान करें।

ऐसे ही सूचीमुख, लोहशंकु, क्षुरधारोपम, विरीक, दंशक, तप्तकुम्भोपम, पूयशोणित प्रवाह, कूट पर्वत, तीक्ष्ण शल्य, चक्रपिण्ड, सतुण्ड ताक्ष्र्य, मेदोऽसृक्-पूयप्रवाह, क्रकचछेदन, अस्थिभंजन, तप्तबालूक, पङ्कलेपन, निरुच्छ्वास, यमलपर्वत तथा कूटशाल्मलि को स्वाहा लगाकर मन्त्रों से (जो मूल में अंकित है) एक-एक आहुति प्रदान करें।

ब्रह्मोवाच

दशधा भेदभिन्नस्य भेदो द्वादशधा पुनः।
तत्रास्य तव देवेश प्रसृतिर्बहुविस्तरा ॥९८॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे देवेश! आपके दस प्रकार के भिन्न देह का पुनः बारह प्रकार का भेद है। आपकी बहु विस्तृत प्रसृति है।।९८।।

प्रतिविद्येषु तन्त्रेषु गतिरुक्ता परा तथा।
कृत्स्नेन तपसा सिद्धिः प्राप्यते बहु विस्तरा ॥९९॥
रहस्यं परमं देव ब्रूहि तत्त्वार्थसिद्धये।
प्रतिमन्त्रप्रयोगार्थं ध्यानसिद्धिं च तत्त्वतः ॥१००॥
अचिन्त्यं परमं गुह्यमनुक्तं यन्मयि त्वया।
मन्त्रसिद्धिर्यतो यावत्तन्त्रेऽस्मिन्प्रथमे विभो ॥१०१॥

प्रतिविद्या तन्त्रों में परा गति की बात कही गयी है। कठोर तपस्या से बहु-विस्तृत सिद्धि प्राप्त होती है। हे देव! तत्त्वार्थ-सिद्धि के लिये परम रहस्य कहिये। प्रत्येक मन्त्र प्रयोगार्थ उन-उन ध्यानसिद्धि का वर्णन करिये। जो अचिन्त्य परम गुह्य (परम गोपनीय रहस्य) आपने मुझसे कहा नहीं है, हे विभु! उस प्रथम तन्त्र से जो मन्त्रसिद्धि होती है, वह बतलाईये।।९९-१०१।।

भास्कर उवाच

पृष्टः प्रोवाच तं तस्य सृष्टिं सदसदात्मिकाम्।
असतः प्रथमं जज्ञे वर्णोऽग्रः षोडशात्मकः ॥१०२॥
सप्तविंशत्तथा वर्णा जज्ञिरे क्रमशः परे।
उभयेभ्यो विनिर्मथ्य विंशद्वर्णाश्च सृष्टये ॥१०३॥
आदितो मथ्यमानेषु पञ्चविंशदयोनिजाः।
परमेष्ठ्यादयः सप्त प्राणस्थानेषु निःसृताः ॥१०४॥
वक्त्रतः पारमेष्ठ्यात्तु कारणं दक्षिणेक्षणात्।
क्रियावानेक्षणात्तस्य मन्त्रात्सदक्षिणात्सुतः ॥१०५॥

सूर्यदेव कहते हैं—तुमने मुझसे जो जिज्ञासा किया है, उस सदसदात्मक सृष्टि की बातें बतलाता हूँ। असत् से प्रथमत: १६ अग्र वर्ण की उत्पत्ति हुई थी। तदनन्तर क्रमश: २७ वर्ण उत्पन्न हो गये। दोनों को मथित करके अन्य बीस वर्णों की उत्पत्ति हुई। आदि से मथित होने पर (१६ अग्रवर्ण) अयोनिज २५ उत्पन्न हुये। परमेष्ठि-प्रभृति सात लोग प्राण स्थान से नि:सृत हैं। परमेष्ठि के मुख से हठात् दक्षिण चक्षु से, कारण की उत्पत्ति हुई। क्षणकाल में वाम चक्षु से क्रिया की उत्पत्ति, दाहिनी ओर मन्त्र से सुत की उत्पत्ति हो गयी।।१०२-१०५।।

विजसो वामतश्चास्य नासिकाप्रसवावुभौ ।
प्रसूती तस्य सृष्ट्यंशौ नि:सृतौ तौ यथाक्रमम् ।।१०६।।
ततस्तेषां निरोधाय सृष्टिसंहारकारणम् ।
संसृत्याद्यानि पादानि प्रणवां तं सकारणम् ।।१०७।।
मूर्ध्नि चैवं तथा न्यस्य योनिशेषात्तु योजयेत् ।।१०८।।
शिवयोनिर्निर्मिता देवी हृदयाग्रे परं ततः ।
कारणं दक्षिणे बाहौ स्थाप्या सर्वा क्रिया तथा ।।१०९।।

इसके वाम दिक् से विजस दोनों नासिका से उत्पन्न हैं। उससे सृष्ट-शौनि—यथाक्रम से दो लोग उपस्थित हो गये। तदनन्तर उनके निरोधार्थ सृष्टि तथा संहार का कारण (प्रकट हुआ)। संसृत्य प्रभृति पद, प्रणवान्त कारणयुक्त (?)। इस प्रकार मस्तक, वैसे ही अन्य के योनिशेष से युक्त किया गया। तदनन्तर हृदय के आगे शिवयोनि देवी परम कारण निर्मित हुआ। दक्षिण बाहु में समस्त क्रिया स्थापित हो गई।।१०६-१०९।।

भुवनाधिपतिर्यस्य बीजयोनिरथोभयोः ।
लिङ्गोपतिप्रसूतिं तु न्यसेत्सृष्टिन्तु पादयोः ।।११०।।
संहारं चक्रुरूर्ध्वस्मात्स्यातां सर्वाङ्गिनीन्तथा ।
भूतयोनिस्थिता नाभ्यां प्रेरिता विश्वसंज्ञिताः ।।१११।।
जठरे संस्थितो वह्निर्जगतोऽस्य प्रकाशकः ।
लिङ्गस्यातिशयं वक्ष्ये दीर्घविस्तरणं तथा ।।११२।।

भुवनाधिपति जिनकी बीजयोनि तथा दोनों के लिंग के समीप प्रसूति को न्यस्त किया गया, उनके पादयुगल से सृष्टि हुई (यहाँ दोनों के लिंग के समीप अर्थात् श्लोक १०९ में वर्णित शिवयोनि देवी, जिनकी बीज योनि है तथा भुवनाधिपति जिनका लिंग है)। ऊर्ध्व से जो संहार करते हैं, वह सर्वाङ्गीण विश्व नामक प्राणि की योनिस्थिता नाभि द्वारा प्रेरित होता है। जठर-संस्थित अग्नि इस जगत् का प्रकाशक है। लिंग के अतिशय एवं वीर्य विस्तार को अब कहूँगा।।११०-११२।।

षष्ठि रथ्योत्तरा ज्ञेया व्योमव्याप्य तथा स्थिताः।
अर्चिषो देवदेवस्य व्योमव्यापीति चाक्षरः॥११३॥
दश कोट्योऽथ लोकेभ्यो मन्त्राणाञ्जज्ञिरे प्रभो।
तुल्यायते तु विज्ञेया शिवेन परमात्मना॥११४॥
भुवने शान्तयः कार्य्या शिवयोनिप्रसूतिजः।
पातालदिशि विन्यस्य वारयंति स्वशक्तितः॥११५॥
शरीरं देवदेवस्य गृह्यमेतच्छिवात्मकम्।
ज्ञेयं ध्येयं तथा पूज्यं योज्यं स्यात्पञ्चविंशकम्॥११६॥

रथोत्तरा ६० जानना चाहिये, जो आकाश को व्याप्त करके स्थित है। देवदेव सूर्य की किरणें आकाशव्यापी एवं क्षयहीन हैं। लोकमंगलार्थ दस करोड़ मन्त्र उत्पन्न हुये। हे प्रभु! इन्हें परमात्मा शिव के समान जानना चाहिये। भुवनों में शिवयोनि से उत्पन्न शान्ति कार्य पाताल दिक् में विन्यस्त होकर अपनी शक्ति से उसका वरण करता है। देवदेव के इस शिवात्मक शरीर को अत्यन्त गोपनीय जानना चाहिये। वैसे ही वह ध्येय, पूज्य तथा योजनीय है। वह २५ है॥११३-११६॥

योज्यमेकरसङ्कर्म प्रोक्तं योगे मनीषिभिः।
एतज्ज्ञात्वा सुखात्सिद्धिं सन्दिग्धा त्वन्यथा भवेत्।
बीजार्थं वपुषो ह्येतत्प्रोक्तं तव पितामह॥११७॥

इति श्रीसाम्बपुराणे मण्डलकथनं नाम पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः तृतीयं पटलम्

●

मनीषीगण योग में एकरसात्मक कर्म का योग करने के लिये कहते हैं। यह जानकर सुख से सिद्धि मिलती है। इसमें संदिग्ध होने पर सिद्धि नहीं मिलती। हे पितामह! शरीर के बीज के लिये आपसे यह सब कहा॥११७॥

श्रीसाम्ब पुराणोक्त पचपनवें अध्याय में मण्डलकथन नामक तृतीय पटल समाप्त

●

षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

(ज्ञानोत्तरम्)

तत्र तत्त्वानि बीजतत्त्वं वर्णतत्त्वं योनितत्त्वं चेति ॥१॥

निष्कलं सकलं सिद्धाश्चत्वारः पदार्थाः सिद्धाः पञ्चविंशकभावाः॥२॥

अथास्य हृदयं वक्ष्ये गुह्याद्गुह्यतरं विभोः।
ऊर्द्ध्वं च सप्तस्त्रोतांसि नालं द्वादशकं तथा ॥३॥
पञ्जिका कर्णिका तस्य मकरः पञ्चधा स्मृतः।
केसरं षोडशन्तस्य पद्मद्वादशभिर्दलैः ॥४॥
सप्तशृङ्गं तथा पारं मेरुमन्दरभूषितम्।
योनयो द्वादशाख्याताः प्रतियन्त्रं प्रतिष्ठिताः ॥५॥
एकाक्षरपरो देवो वर्णेभ्यो बीजवान्प्रभुः।
तत्त्वनिर्म्मथनाज्ज्ञेया कला साध्यर्द्धमात्रिका ॥६॥
बीजबीजादमुं प्राहुः षोडशार्द्धं च यः क्रमात्।
आत्मा चार्धकला तस्य हृदि स्थितस्य सप्तधा ॥७॥

तत्त्व तीन हैं—बीजतत्त्व, वर्णतत्त्व तथा योनितत्त्व। (ये त्रितत्त्व तथा) निष्कल, सकल तथा सिद्ध—ये चार पदार्थ हैं (यहाँ बीजतत्त्व, वर्णतत्त्व तथा योनितत्त्व को एक में ही गिना गया है)। उनमें २५ सिद्ध भाव पदार्थ हैं। अब इनका हृदय कहूँगा, जो विभु का गुप्त से गुप्त तत्त्व है। ऊर्ध्व में सात स्त्रोत तथा १२ नाल हैं। उसकी पंजिका है—कर्णिका और मकर पाँच प्रकार का कहा गया है। उसके १६ केशर तथा १२ दल विशिष्ट हैं। उसके सात शृङ्ग एवं मेरु तथा मन्दर भूषित हैं। १२ योनि प्रसिद्ध है। वह प्रतियन्त्र में प्रतिष्ठित है। एकाक्षर परदेवता है। वर्णो के निमित्त बीजयुक्त प्रभु विराजित हैं। तत्त्व-निर्मन्थन करके ऊर्ध्वमात्रिका कला उत्पन्न हो सकी है। उसके प्रति बीज से क्रम को षोडशार्ध कहते हैं। उसके हृदयस्थ सात प्रकार की आत्मा है—अर्धकला।।१-७।।

सप्तशृङ्गकृतैश्चैव सप्त तस्य कलात्मकम्।
तत्त्वविद् बीजमेतत्स्यान्नान्यद्बीजमतः परम् ॥८॥
आदौ पञ्चदशं यत्तु संज्ञात्मा तदयन्न तत्।
सबिन्दुकाः प्लुता ज्ञेया विसर्गाश्च यथाक्रमम् ॥९॥
ओंकारान्ता अकाराद्या प्रथमे केसरे स्थिताः।
ककारादिहकारान्ता द्वितीये केसरे स्थिताः ॥१०॥

सप्तशृङ्ग-कृत वह सात कलात्मक है। यह तत्त्व ज्ञान का बीज है। इसके अनन्तर (परे) कोई बीज नहीं है। प्रथम जो १५ है, वह संज्ञारूप है। बिन्दु के साथ प्लुत (दीर्घ) स्वर जानना चाहिये तथा यथाक्रम से विसर्ग जानना चाहिये। प्रथम केसर में अ से ॐ पर्यन्त अवस्थित है। द्वितीय में 'क' से 'ह' पर्यन्त स्थित है।।८-१०।।

अकारादिक्षकारान्ताः पञ्चाशद्यंत्रसंख्यया।
एतद्धृदयपद्मं स्याद्बीजयोनिकृतं प्रभो ।।११।।
ध्यात्वैतन्मुच्यते सर्वो बीजनिर्दग्धकल्मषः।
विधिना दीक्षितश्चास्मिन्मण्डले बीजयोनिजे ।।१२।।
निष्कलं सकलं चैव तथा सकलनिष्कले।
ध्यानं ज्ञेयं च योगश्च सर्वमेतस्य कीर्तितम् ।।१३।।

इति श्रीसाम्बपुराणे ज्ञानोत्तरे षट्पञ्चाशत्तमेऽध्याये तृतीयं पटलम्

●

'अ' से 'क्ष' पर्यन्त ५० यन्त्र संख्या है। हे प्रभु! बीजयोनिकृत यही है—हृदयपद्म। बीजयोनि से उत्पन्न इस मण्डल में यथाविधि दीक्षित सब व्यक्ति बीज के द्वारा पापयुक्त होते हैं तथा ध्यान के फल से मुक्त हो जाते हैं। निष्कल-सकल एवं सकल-निष्कल ध्यान तथा योग को जानना चाहिये।।११-१३।।

श्री साम्बपुराणोक्त ज्ञानोन्तर छप्पनवें अध्याय में तृतीय पटल समाप्त

●

सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

(बीजोत्तरम्)

तत्त्वज्ञानमहं वक्ष्ये बीजान्येतान्यतः परम्।
अनादिनिधनं ज्ञानं गुह्याद्गुह्यतरं च यत्॥१॥
आसीदिदं समग्रं च ततानेतैदजायत।
तस्माद्धर्म वशी कामो जज्ञे व्याहार संप्रति॥२॥
विवक्षितं त्वहं श्रेष्ठं विवृतं न च संवृतम्।
प्रादुरासीदवर्णोऽस्मात्तस्य संहारमिच्छतः॥३॥
स तमागाच्च जिह्वायां मध्ये प्रकृतिसम्भवः।
इवर्णोवर्णसंहारादुवर्णोऽभून्मनस्ततः ॥४॥

अब तत्त्वज्ञान का वर्णन करता हूँ। तदनन्तर इन बीजों का वर्णन करूँगा। अनादि-निधन ज्ञान गुह्य से भी गुह्यतर है। यह समग्र था, उससे विस्तृत होकर उत्पन्न हुआ (अर्थात् पहले एक में ही निहित था, तदनन्तर उससे विविक्त होकर अनेक रूप में विस्तृत हुआ), उससे धर्म वशीकामना का व्यवहार उत्पन्न होने लगा। बलवान इच्छा का मैंने प्रकाश किया; किन्तु संवृत का नहीं किया। संहार की इच्छा से यह 'अवर्ग' आविर्भूत हुआ। प्रकृति से उत्पन्न होकर उसने जिह्वा में प्रवेश किया। वर्णसंहार से 'इ' वर्ण तथा 'उ' वर्ण उत्पन्न हुआ। तत्पश्चात् मन की उत्पत्ति कही गयी है।।१-४।।

तदन्ते बिन्दुसम्भूतिः सर्वान्तः प्रभु शाश्वतः।
वायोर्निर्धारणात्कण्ठे हकारः सविसर्गकः॥५॥

उसके अन्त में बिन्दु की उत्पत्ति है, जो सबके अन्तर के प्रभु तथा नित्य हैं। वायु-धारणार्थ कण्ठ से विसर्ग के साथ 'ह'कार की उत्पत्ति हुई है।।५।।

अहये चोत्तरे ज्ञेयो वर्णानां सम्भवः स्वयम्।
अवर्णो परयोगे स्यादेकारस्त्वनुलोमतः॥६॥
विलोमतो यकारः स्यात्तथोकारवकारयोः।
तृतीयो योगतो ज्ञेयो व्योकारस्य तु सिद्धये॥७॥

'अ ह' को उत्तर में जानो (?)। वर्णों की उत्पत्ति अपने-आप होती है। 'अ' वर्ण परयोग से उत्पन्न है, किन्तु 'ए'कार अनुलोम क्रम में एवं विलोम 'ष'कार, 'उ'कार तथा 'व'कार उत्पन्न है। तृतीय योग से व्योकार (वि-उकार) की उत्पत्ति जाननी चाहिये।।६-७।।

ह्रस्वदीर्घप्लुता ह्येते न चोङ्कारसमानजाः।
ऋकारऋवरिवल्कारा: स्वरा जिह्वाग्रकारिताः ॥८॥

ये ह्रस्व, दीर्घ तथा प्लुतवर्ण हैं। ये ॐकार के समान उत्पन्न नहीं होते। ऋ, ॠ तथा ऌ जिह्वा के अग्रभाग से उत्पन्न हैं।।८।।

इष्टावीषत्प्रविष्टो च संहतो च हनुं यदा।
जिह्वा मध्यस्थनानाभ्यां हन्वोरन्तरदर्शनात् ॥९॥

ईषत् प्रविष्ट २ इष्ट जब हनु से बाधा प्राप्त होते हैं, तब जिह्वा के मध्यस्थ तथा नाना (?) से लेकर हनु के मध्य में दर्शन मिलता है।।९।।

ताल्वोरेकारसम्भूतिरकाराद्दग्धसिद्धये।
आकारैकारयोरादिरीकारार्द्धं च पूर्वशः।
तथोङ्कारपरा शेषा एतद्विस्तारलक्षणम्।
स्पर्शाश्चाथ प्रवक्ष्यन्ते विद्यातत्त्वस्य सिद्धये ॥१०॥

तालु से 'ए'कार की उत्पत्ति होती है। यह होती है 'अ'कार की दग्ध-सिद्धि के लिये (?)। 'आ' तथा 'ऐ' के आदि तथा पूर्व से 'ई'कार अर्ध है (?)। इसी प्रकार अवशिष्ट ॐकार के पर है (पश्चात् है), यह है विस्तार का लक्षण। अब विद्या तत्त्व की सिद्धि के लिये स्पर्श वर्ण की बात कहूँगा।।१०।।

जिह्वामूले च हन्वोः स्यात्स्पर्शनं कादिके गणे।
मध्ये तालुं स्पृशेद्यच्च वेष्टयित्वा तृतीयकाः ॥११॥

जिह्वा के मूल में तथा हनुद्वय के मध्य में ककारादि वर्णों का स्पर्श होता है। तृतीय वर्ण 'ट' वर्ग में तालु का वेष्टन करके स्पर्श करता है।।११।।

मूर्द्धन्ये देवतानां च चतुर्थे शिवमूलतः।
ओष्ठाभ्यां पञ्चमस्याथ तत्त्वस्पर्शः सबीजकः ॥१२॥

मूर्धन्य का देवताओं तथा शिवमूल से चतुर्थ वर्ग (तवर्ग) का स्पर्श होता है। ओष्ठद्वय से पञ्चम वर्ग (पवर्ग) का स्पर्श होता है। यह है—बीजों के साथ तत्त्व का स्पर्श।।१२।।

करवन्द्यपात्तस्याहेकैकावद्धवेत्ततः।
दन्तमूल्यो लकारः स्याच्चतुर्थश्चोष्ठदन्तगः ॥१३॥
ऊष्माणश्च गतास्ता वै प्रथमा मध्यमास्तथा।
नपुंसका भवन्त्येते नासिकाश्च भवन्ति हि ॥१४॥

दाँतों के मूल से लकार तथा चतुर्थ वर्ग (तवर्ग) ओष्ठ तथा दाँतों से उत्पन्न हैं। प्रथम तथा मध्यम (?) ऊष्मवर्ण हैं। ये नपुंसक तथा नासिका से उत्पन्न होते हैं।।१३-१४।।

एते अनादिनिधनस्य सिसृक्षोश्चाव्ययं महत्।
विद्यातन्त्रविवृद्ध्यर्थमेभ्यो योनिं चकार सः ।।१५।।

ये सब अनादि निधन सृष्टिकर्त्ता के महत् अव्यय हैं। विद्यातन्त्र की वृद्धि के लिये वे इनसे सृष्टि करते हैं।।१५।।

अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः—षोडशस्वराः। क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ ट ड ढ ण त थ द ध न प फ ब भ म—एते स्पर्शाः। य र ल वा अन्तःस्थाः। श ष स हा एते ऊष्माणः। क ख ग घ एते यमाः। नपुंसकाश्च तृतीयेऽध्याये एतत् सिद्धम्।

इति श्रीसाम्बपुराणे सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः बीजोत्तरे चतुर्थपटलं समाप्तम्

●

मूल में लिखित अ से अः तक १६ स्वरवर्ण हैं। ककार से मकार-पर्यन्त स्पर्श वर्ण हैं। य र ल व अन्तःस्थ वर्ण हैं। श ष स—ऊष्म वर्ण हैं। क ख ग घ—यम वर्ण तथा नपुंसक हैं। तृतीय अध्याय में ये सिद्ध हैं।

श्री साम्बपुराणोक्त सत्तावनवें अध्याय में बीजोत्तर का चतुर्थ पटल समाप्त

●

अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

(ज्ञानोत्तरे बीजस्वरप्रसवः)

स्वरावाद्यौ चतुर्थाश्च ऊष्मा च प्रथमं तथा।
चत्वारश्चोत्तरं ज्ञेयास्तृतीयाः स्पर्शसंज्ञकाः ॥१॥
द्वितीयान्तश्चतुष्कश्च उत्तमश्च तथैव तु।
चतुर्थत्रयमेव स्यात्तृतीयो द्वौ तथैव च ॥२॥
द्वितीयाद्यस्य चत्वारस्तृतीयस्यानुनासिकम्।
पञ्चमः प्रथमश्च स्यात्तया स्यादनुनासिकम् ॥३॥
चतुर्थो ह्यष्टकश्चैव योनिः सा हि सुसृष्टये।
चत्वारो स्याद्द्विवर्णाः स्युर्दीपिता बिन्दुभिस्त्रिभिः ॥४॥

आद्यस्वर दो, चतुर्थ वर्णसमूह, ऊष्म वर्णसमूह तथा प्रथम वर्ण—इन चारो को परवर्त्ती जानना चाहिये। तृतीय वर्ण स्पर्शसंज्ञक हैं। द्वितीयान्त चार हैं, चतुर्थ तीन हैं तथा तृतीय में दो उत्तम हैं। द्वितीय के आद्य चार तथा तृतीय अनुनासिक हैं। इसी प्रकार पञ्चम एवं प्रथम अनुनासिक हैं। चतुर्थ एवं अष्टक सुसृष्टि के योनिरूप हैं और ये चार द्विवर्ण बिन्दुसमूह के साथ दीपित होते हैं।।१-४।।

दीपिनी बीजिनी ह्येषा पावनी स्वरसन्ततिः।
नित्यमेषानुजप्तव्या परं निर्वाणमिच्छता ॥५॥
आहावहवो हवाभवे चारिणी परमशक्तिना।
तन्त्र इति स्थितोभूमिमहाभूत इतरेतरचुम्बचुम्ब-
एषा सिद्धा चत्वारिंशदक्षरा योनिः ॥६॥

इति श्रीसाम्बपुराणे अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ज्ञानोत्तरे बीजस्वरप्रसवे
पञ्चमं पटलम् समाप्तम्

●

ये स्वरसमूह दीपिनी, बीजिनी तथा पावनी हैं। परनिर्वाण के इच्छुक व्यक्ति को इनका नित्य जप करना चाहिये। अहो! इस संसार में परमशक्ति के साथ विचरणशील परस्पर भिन्न महाभूतों का समूह 'तन्त्र' नामक भूमि में स्थित है। इस प्रकार सिद्ध ४० अक्षरात्मिका योनि सिद्ध होती है।।५-६।।

श्रीसाम्बपुराणोक्त ज्ञानोत्तर बीजप्रसव नामक अट्ठावनवें अध्याय का पञ्चम पटल समाप्त

●

एकोनषष्टितमोऽध्यायः

(ज्ञानोत्तरे बीजस्वरप्रसवः)

पञ्चविंशतिभिर्नाम सप्तधा क्रमशस्तथा।
प्रणवादित्रिधा भिन्नं तस्मिन्नेव पदे उभे ।।१।।
प्रणवादिर्नमोऽन्तस्थः प्रसवः सप्तमस्तु सः।
एषामादिपदं यत्स्याद् द्वितीयां चैव योजयेत् ।।२।।
तथा चादिपदैस्तत्त्वं प्रतिलोमो विधीयते।
योनि मुख्यानि यानि स्युः सर्वसृष्टिप्रवृत्तये ।।३।।

इति श्रीसाम्बपुराणे एकोनषष्टितमोऽध्यायः ज्ञानोत्तरे बीजस्वरप्रसवे षष्ठं पटलं समाप्तम्

●

२५ द्वारा क्रम-क्रम से सात प्रकार के नाम हैं। आदि में प्रणव है। तीन प्रकार से भिन्न रूप उसका उदय पद है। आदि में प्रणव, अन्त में नमः शब्द सप्तम उत्पत्ति है। उसका स्तव करता है। इसमें जो आदि पद है, उसमें द्वितीय का योग करे। इस प्रकार आदि पद द्वारा प्रतिलोम में तत्त्व की उत्पत्ति होती है। समस्त सृष्टि में प्रवृत्ति के कारण ये योनिमुख हैं।।१-३।।

श्री साम्ब पुराणोक्त उनसठवें अध्याय में ज्ञानोत्तर बीजस्वर प्रसव अध्याय का षष्ठ पटल समाप्त

●

षष्टितमोऽध्यायः

(सोमसूत्रम्)

ध्यातव्य एष यत्नाद्यः सेवते ह्यखिलं जगत्।
आहावहोहवाभवेचारिणि परमशक्तिरात्मातन्त्र इति स्थिते ॥१॥

जो इस वस्तु को धारण कर सकते हैं, वे समस्त जगत् की सेवा करते हैं। 'आहा अहो ह वा भवे चारिणि' परमशक्ति आत्मा है—यह तन्त्र है।

ॐ अं ॐ उं व्योमव्यापिने। अनुषङ्गेण सप्तानां यथासंख्येन संपुटः। पादांतस्थ-बीजाख्या योनयः। ॐ अं व्योमव्यापिने ॐ इं आं व्योम। ॐ आं ई ॐ व्योमव्यापिने भूतिवितर चुम्ब चुम्ब। वर्णायाः प्रभृतिः स्यान्मयोक्ता विस्तरतः॥२॥

ऊपर मूल में लिखे 'ॐ अं' से लेकर 'भूतिवितर चुम्ब चुम्ब' मन्त्र से व्योमव्यापी परमात्मा का ध्यान करे। अनुष्वङ्ग में सात यथासंख्य सम्पुट होगा। पाद के अन्तस्थ बीजादि योनि है। 'ॐ अं व्योमव्यापिने' इत्यादि मूल में अंकित मन्त्रों का विस्तार से वर्णन करता हूँ।।२।।

कालात्मनः प्रसृतिन्ते मन्त्रराजस्य मुक्त्यार्थं वक्ष्यन्तेऽथो यथाशास्त्रविनिश्चयः।

चक्रं त्रिनाभ्यं तत् सर्वं संवत्सरमिति प्रभुः ॥३॥
द्वादशारं तु तन्मनसो प्रत्ययश्चार्द्धमासिकः।
त्रीणि षष्टिशतान्याहुरहोरात्राणि संकरः ॥४॥
कला मुहूर्ता दण्डाश्च निमिषास्तु प्रतिष्ठिताः।
तदर्धन्नातिविश्वात्माव्यञ्जयच्छब्ददेहिनाम् ॥५॥
सप्तकः पञ्चभिर्युक्तः परितो बिन्दुभिर्युतः।
पुनः षोडशभिर्नद्धा त्रिनाभीत्युच्यते बुधैः ॥६॥

कालात्मा के प्रसृति को आपके मन्त्रराज को मुक्ति के लिये यथाशास्त्र मैं कहता हूँ। चक्र-त्रिनाभि-पर्यन्त ये सभी संवत्सर हैं। ये प्रभु हैं। द्वादशार है—उनका मन। प्रत्यय है—अर्धमासिक तीन षष्टिशत अहोरात्र। कला, मुहूर्त्त, दण्ड, निमेष प्रतिष्ठित हैं। वे वर्धित होकर अतिविश्वात्मा शब्ददेहियों का प्रकाशन करते हैं। जो पाँच सप्तक से युक्त, चारो ओर बिन्दुओं के साथ मिलित, पुनः १६ के साथ बद्ध हुआ। उसे पण्डितगण त्रिनाभि कहते हैं।।३-६।।

द्वितीयं सप्तभिः प्रोक्तं परं यच्च प्रभाषते।
नाभिगर्भे स्थितं सप्तयोनिविष्टभ्यसूचिकाम् ॥७॥
त्रिशतं नवभिः षट्कं वर्णास्ते स्वके स्थिताः।
ग्रहनक्षत्रगर्भान्ता योनिविष्टभ्यपूर्विकाम् ॥८॥
त्रिशतं नवति त्रीणि गणना कीर्त्यतेऽधुना।
आरेषु शब्दाः पर्याप्तास्तेषु विंशत्प्रतिष्ठिताः ॥९॥
चतुर्विंशतिसंख्याका वर्द्धयंस्तेषु चार्पिताः।
भेदाः षोडशप्राप्तैषा द्विधा योनिश्च मध्यमा ॥१०॥

द्वितीय सात के साथ युक्त है। जिसे पर कहा गया, वह नाभिगर्भ में स्थित सप्त योनि को आवृत करके स्थित है। ३९६ वर्ण स्वर में स्थित हैं। वह ग्रह, नक्षत्र में स्थित है। वह योनि को आवृत करके स्थित है। यहाँ ३९३ की गई है और सब शब्दपर्यन्त रहते हैं। उनमें २० प्रतिष्ठित हैं। २४ संख्या वर्धित होकर उसमें अर्पित है। इसके १६ भेद हैं। इनके दो भाग में मध्यम योनि है।।७-१०।।

त्रिंशद्द्वेष्ट्याः प्रोक्ताः पञ्चानां द्विगुणा पदैः।
विद्येश्वरप्रसूत्यर्थं लक्षमध्ये भजेत् तथा ॥११॥

कारिकापरशुशक्तिरेते सप्त हृदये सिद्धाः। ॐ आं ईं ऊं व्योमव्यापिने ॐ— एते पञ्चविद्येश्वरप्रस्तावे सिद्धाः। अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः एतेषां षोडशतत्त्वज्ञाने सिद्धाः। क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ ट ठ ड ढ ण त थ द ध न प फ ब भ म य र ल व श ष स ह आकारासि ताः स्पर्शज्ञाने सिद्धाः। त्रयस्त्रिंशत्। आहवप्रतिमध्ये आसनं बोद्धव्यम्। एषा प्रधिप्रथमा सिद्धी। ऊं ऊं ऊं ऊं द्वादशेष्वपि बोद्धव्यः केवलं वर्णभेदः। पृथगेषा भवति अतः प्रसिद्धः प्रकृतकारणात्।

इति श्रीसाम्बपुराणे षष्टितमेऽध्याये ज्ञानोत्तरे सोमसूत्रे सप्तमं पटलम्

●

जो ३० तथा १२ कहा गया है, पञ्च भाग के द्विगुण पद द्वारा विद्येश्वर की उन्नति के लिये वह लक्ष में भजनीय है। कारिका पशु शक्ति है। यह सब सप्त हृदय में सिद्ध है। 'ॐ आं ईं ॐ व्योमव्यापिने ॐ' इससे पञ्च विश्वेश्वर प्रस्ताव सिद्ध होता है। 'अ' से 'अः' पर्यन्त १६ स्वर तत्त्वज्ञान में सिद्ध है। मूल में लिखित 'क' से लेकर 'ह' पर्यन्त आकार स्पर्श स्थान में सिद्ध हैं। ३३ आहवप्रति में आसन है। इससे प्रधिप्रथमा सिद्ध है। 'ॐ ॐ ॐ ॐ' इन चार को द्वादश में जानना चाहिये। यह केवल वर्णभेद है। यह पृथक् होता है, इसीलिये प्रकृत कारण में प्रसिद्ध है।।११।।

श्री साम्बपुराणोक्त साठवें अध्याय का ज्ञानोत्तर सोमसूत्र नामक सप्तम पटल समाप्त

●

एकषष्टितमोऽध्यायः

(शरीरसाधनम्)

त्रिनाभ्यसन्तसम्भूतं बीजिनं प्रथमं पदम्।
प्रतिमध्येषु सर्वेषु स्थितं यत् परमं पदम्॥१॥
संपृक्तौ वायव्यैशान्यामोङ्कारेण प्रदीपितौ।
अकारान्तो मकारः स्याद्दिशि सर्वत्र निष्ठितः॥२॥
पूर्ववर्चवदीर्घान्तो नैर्ऋति दिशमाश्रितः।
इकारान्तः पकारोऽथ वायवीदिशमाश्रितः॥३॥
एकारान्तो नकारः स्यादैशान्याधिष्ठितो बहिः।
आद्यो वै दक्षिणस्तस्य द्वितीयस्तस्य दक्षिणः॥४॥

नाभि से उत्पन्न बीजधारी का प्रथम पद है। सबमें परमपद उपस्थित है। वायु तथा ईशान कोण में युक्त होकर ॐकार द्वारा प्रदीपित होता है। अकारान्त मकार सभी दिशाओं में अधीष्ठित है। पूववर्च तथा दीर्घान्त नैर्ऋत्य दिशा का आश्रय लेकर स्थित है। इकारान्त पकार वायवी दिक् का आश्रय लेकर स्थित है। 'ए'कारान्त 'न'कार ईशान दिक् के बाहर स्थित है। आद्य निश्चित रूप दक्षिण है। द्वितीय उसके दक्षिण है।।१-४।।

पुनरष्टौ स्थितां बाह्यान्मकारस्तु द्वितीयके।
ऊकारो वा तथा रेफस्तृतीयं पद्ममाश्रितः॥५॥
आकाराद्दीपितश्चैव पकारो नैर्ऋते पदे।
तस्योत्तरे पकारः स्याद्द्वितीयं पद्ममाश्रितः॥६॥

पुनः आठ बाहर हैं। मकार द्वितीय है। ऊकार अथवा रेफ तृतीय पद का आश्रय करके स्थित है। 'आ' से दीपित होकर मकार नैर्ऋत्य स्थान में अवस्थित है। उसके उत्तर में 'प'कार द्वितीय पद्म का आश्रयं लेकर स्थित है।।५-६।।

बिन्दुरेवमधः पूर्वपक्षं च पूरयेच्छुभम्।
पूर्वपक्षो यथा ह्येष तद्वदेवोत्तरो भवेत्॥७॥
भेदस्त्वक्षरयोर्न स्यादक्षरे तस्य निश्चयः॥८॥

इस प्रकार निम्न बिन्दु शुभ पूर्वपक्ष का पूरण करके स्थित है। जिस प्रकार पूर्वपक्ष, उसी प्रकार उत्तर पक्ष होगा। अक्षर का (दोनों का) भेद नहीं होता, अक्षर में उसका निश्चय होता है।।७-८।।

अकचटतपयशवर्गाः। आवह अधस्ताद्व्योम अयमुपरिष्टात्। ॐ उ व य अ म। आ व य इ म। त न र च य अ म। उ व य। अ म य ज र आ य। अ य अ स अ र व आ व य—षोडशत्वं व्योमव्यापिने व्योम व्योमरूपाय सर्वव्यापि पूर्वपक्षः सिद्धः। प्रथमा अपि।

एनसावास्तु विज्ञेया मध्यमस्य विदिक् स्थिताः।
इकारान्तो यशौ चापि तज्जारपुरुषः स्मृतौ ॥९॥

'अ क च त ट प' वर्ण हैं। आवह नीचे से व्योम है। यह ऊपर से 'ॐ उ व' से लेकर 'आ व य' पर्यन्त मूल में अंकित वर्ण के षोड़शत्व व्योमव्यापी तथा व्योमरूप पूर्व-पक्ष सिद्ध है। प्रथम भी वही है। मध्यम में विदिक् स्थित पापमुक्त पुरुष को जानना चाहिये। इकारान्त 'ष' तथा 'श'—ये जार पुरुष कहे गये है।।९।।

ऐकारोऽथ स्वरश्चाद्यौ नकारो बिन्दुदीपितः।
दीर्घान्तः प्रथमस्तस्य पश्चाद्यश्चायतश्च न ॥१०॥

'ऐ'कार तथा स्वर, आदि में बिन्दु-दीपित 'न'कार, उसके दीर्घान्त के पश्चात् जो है, वह है—आयत।।१०।।

थकारश्च यकारः स्यात्प्रवृत्तः स्वर एव च।
नकार आयतश्चैव विसर्गः सर्वतो मतः ॥११॥

थकार तथा यकार हैं—प्रकृत स्वर। नकार तथा आयत—इन सब स्थानों में विसर्ग जानना चाहिये।।११।।

यहवा अधस्ताद् व्योम अयमुपरिष्टात्। भाषा ऐन इशाम्ब यं अ य अ आ ना आ थ अ य अ आ न षोडशो विसर्गः। व्यापिने शिवाय अनन्ताय अनाथाय अनाथो मधुमासः। प्रथमोरसिद्धाद्द्वितीया प्रधिः।

मूल में अंकित 'य ह व' से 'अ आ न' पर्यन्त षोड़श विसर्गव्यापी, शिव, अनन्त, अनाथ—मधुमास है। प्रथम 'अ' सिद्ध है। द्वितीय प्रधि (चक्र का धार—नेमि) है। रेफान्तस्थ (जिसमें अन्त में रेफ है), प्रकृत्यन्त (प्रकृति के अन्त में) तकार दीर्घयुक्त है।

रेफास्तस्यः प्रकृत्यन्तस्तकारो दीर्घसंयुतः।
पश्चात्स्याद् ह्रस्व उकारो वकारश्च तथा मतः ॥१२॥
याद्य शान्ताः शाश्वतः स्युर्यश्चैवोङ्कारदीपितः।
ग ष ठः सस्वविद्वन्त इकारान्तो द्वितीयकः ॥१३॥

बाद में ह्रस्व है, उसी प्रकार उकार तथा वकार को भी जानना चाहिये। यादि (जिसके आदि में 'य' है), शान्त (जिसके अन्त में 'श' है)—यह नित्य है। जो ॐकार से दीपित

है। ग-ष-ठ इत्यादि इकारान्त (जिसके अन्त में 'इ' है) द्वितीय है। यह द्वितीय प्रधि है। अ क च ट इत्यादि मूल में अंकित षोडशस्थित ध्रुव शाश्वत योगपीठ के लिये तृतीय प्रधि सिद्ध है।।१२-१३।।

अ क च ट त प य शान्ताः सर्वद्वितीयेनचाहवाराअधस्ताद् व्योम अयमुपरिष्टात् इ श र आ त अ य उ ध र आ व अ यः आशः अ श व आत अ ष उ य अ ग इ य अ ठ अ समा षोडशस्थिताय ध्रुवाय शाश्वताय योगपीठायः सा सिद्धा तृतीया प्रधिः।

साध्यस्थः स्यात् प्रकृत्यन्त आपस्तस्य तथा यतः।
यन्नित्थं योगिने चेत्वे विज्ञेयाः स्युर्यथोक्तवत्॥१४॥

साध्यस्थ होगा प्रकृत्यन्त एवं उसका जल भी वहीं होगा। उस नित्य वस्तु को योगी के लिये पूर्वोक्त के समान जानना चाहिये।।१४।।

आद्या यतो यकारः स्यान्नाहताश्वस्वरेण वः।
अन्तरं च नमस्कारो विसर्गश्चान्त्यतः पदे॥१५॥
विन्द्वन्तः पूर्वपक्षोत्र विसर्गश्चोत्तरा ध्रुवः।
वसन्त एष विज्ञेयस्त्वग्रे ग्रीष्मादयः शुभाः॥१६॥

जो आद्य 'य'कार है, वह आहत अश्वस्वर के समान नहीं है। मध्य में है—नमस्कार एवं अन्त पद में है—विसर्ग। विन्द्वन्त पूर्वपक्ष है। उत्तर में (बाद में) निश्चित विसर्ग है। इसे वसन्त ऋतु जानना चाहिये। पहले शुभ ग्रीष्मादि की बात हो चुकी है।।१५-१६।।

हवो अहवा अधस्ताद् व्योम अयमुपरिष्टात्। इशयः आस्त अ य इ न त प अ म उपज्ञा मम। आ ष य आ सा अ र च आ र अ य षोडशी विसर्गः। स्थिताय परित्यागिने ध्यानहाराय ॐ नमः सिद्धाः चतुर्थी प्रधिः; द्वितीयान्तः माधवो मासः। वसन्तर्तुः।

ह व अ ह व नीचे है। व्योम इसके ऊपर है। इ श य इत्यादि मूल में लिखित वर्ण षोडश विसर्ग हैं। 'स्थिताय' इत्यादि मूल में अंकित मन्त्र चतुर्थ प्रधि हैं। द्वितीयान्त है—माधव मास, वसन्त ऋतु।

विसर्गवांस्तु मः शुक्ले प्रकृत्यन्तः शावयुतः।
स्वरवंतौ यशौ ज्ञेयौ रेफाद्यन्तौ पयौ स्मृतौ।
भकारान्तो वकारस्तु प्रसवौ सर्वदैव हि।
यश्चेज्ज्ञानस्तथान्यश्च स्पृष्टो दिष्टः सबिन्दुकः॥१७॥

अ क च त ट प य शा भवेदधस्ताद्व्योम अयमुपरिष्टात्। अ म इ य आ व अ प अ म अ र अ प र अं भ अ ऐ व ई श आ य अ य इ आ स अ ग इ ॐ नमो नमः सर्वप्रभवे ईशानाय असिद्धा पञ्चमी प्रधिः।

उकारो दीपितो यः स्याद्रेफादिन्द्रायुधो धनुः।
स्वरवन्तौ यतौ तेन युयुक्त्यनु तथा भवेत् ॥१८॥

उकार दीपित मकार होगा, रेफ के पश्चात् इन्द्र का आयुध धनुष। 'य' तथा 'त' स्वरयुक्त होंगे (?)। 'प' तथा 'च' स्वरयुक्त तथा कादि रेफान्त-युक्त होंगे। उसके पश्चात् खद्योत तथा जैसे कहा गया हृदय जानना चाहिये।।१७-१८।।

स्वरवंतौ पचौ कादिरेफान्तश्च यथा युतः।
पश्चात्खद्योतविज्ञेयो हृदयश्च यथोदितः ॥१९॥

भवेदधस्ताद्व्योम अयमुपरिष्टात्। य म आ र द ध न अ यः अ त त उ प भः अ सः अ व आ क त र अ य अ उ ध अ र ॠ ह अ दः षोडशो विसर्गः। मूर्धाय तत्पुरुषाय व्यक्ताय अघोरहृदयाय च। अतस्तृतीयोरः शुक्रो मासः सिद्धा षष्ठी प्रधिः।

ऊपर व्योम है। 'य म आ' से-लेकर 'ह अ दः' पर्यन्त (मूल में अंकित) १६ विसर्ग हैं। मस्तकरूप तत्पुरुष व्यक्त है तथा अघोर हृदय के उद्देश्य से तृतीय शुक्र (ज्येष्ठ) मास है। यह षष्ठी प्रधि सिद्ध है।

असौ ययतोऽन्यश्च ह्रस्वो यश्चायतो यतः।
मदमामध्यमेकाराद्गुकारेणैव दीपिताः ॥२०॥
अदीर्घश्चैव दीर्घः स्यात्स्वरवन्तौ यशौ ततः।
दकारादिर्यतुश्च स्याद्दीर्घो यस्तः स्वरेण च ॥२१॥
उकारवान् मकारः स्याद् रेफादिस्तन्मनोन्नतः।
यद्देहान्ते च बिन्दुः स्यात्पक्षे शुक्ले तु पूजितः ॥२२॥

यह 'य य' एवं अन्य ह्रस्व 'ष' आयत है। 'म द म', मध्यम 'ऐ' 'गु'कार से दीपित है। अदीर्घ तथा दीर्घ होगा। तत्पश्चात् स्वरयुक्त 'य' तथा 'श', दकारादि 'य' एवं 'तु' दीर्घ होगा। 'य' तथा 'त' स्वरयुक्त होगा। 'उ'कार-युक्त मकार होगा। रेफादि उसका मनोन्नत होगा। जिसके देह में बिन्दु है, वह शुक्ल पक्ष में पूजित होता है।।२०-२२।।

क च ट त प य शाः चारिणि अधस्ताद् व्योम अयमुपरिष्टात्। आ य अ ष आ च अ म य प द अ व व उ आ इ य अ स उ द य आ य त उ म अ र तः पा य वामदेवगुह्याय सद्योजाताय मूर्त्तये। असिद्धा सप्तमी प्रधिः।

'क च ट त प' इत्यादि मूल में अंकित अक्षर वामदेवगुह्य सद्योजात मूर्त्ति के उद्देश्य से कहे गये हैं। यह है सप्तमी प्रधि।

ऐकारान्तो यकारः स्यादक्षरं परमं पदम्।
नकारो मौन मश्च स्यात्ततो गाभ्यादुकारवान् ॥२३॥

हीद्यायतश्च यस्तस्मादिकारान्तस्तथैव यत्।
आवेद्विद्धिः पुनर्यश्च गतकान्तः स उत्तमः ॥२४॥

ऐकारान्त यकार अक्षय परम पद है। नकार मौन 'म' हो जाता है। तदनन्तर उकारयुक्त होगा। जो आयत है, वह रहता है विकारान्त। इस प्रकार पुन: गतकान्त उत्तम है। रेफयुक्त दो पकारान्त उसके शेष स्वर हैं। ये दोनों ग्रीष्म मास हैं। अन्त में नम: शब्द कहना चाहिये।।२३-२४।।

पकारान्तौ सरेफौ द्वौ तदन्ते स्वर एव च।
तावेतौ ग्रैष्मिकौ मासौ नमोऽन्तः सम्प्रवक्ष्यते ॥२५॥

चारिणि अधस्ताद्व्योम अयमुपरिष्टात्। ऐं ष ॐ ङ अ न ॐ ङ म अ न अ म ङ ग मा ह य त ह गमाहयः ॐ ङ य स्त ओ र अः षोडशो विसर्गः। ॐ यः ॐ नमो नमो नमः गुह्यातिगुह्याय गोप्तेन शा चतुर्थो चः। शुचिर्मासो ग्रैष्मऋतुः सिद्धा अष्टमी प्रधिः।

चारिणी नीचे है। ऊपर है व्योम। मूल मे अंकित 'ऐं ष ॐ' से लेकर 'ओ र अ:' तक षोडश विसर्ग है। 'ॐ य: ॐ नमो नमो नम:' गुह्य से अतिगुह्य रक्षक है 'न श' चतुर्थ च। यह है—ज्येष्ठ मास, ग्रीष्म ऋतु तथा अष्टमी प्रधि सिद्ध।।२५।।

हकारान्तो नकारः स्याद्वस्तुत आयतः स्वरः।
स्वरवन्तौ यशौ तश्च रेफादीरोयुतश्च यः ॥२६॥

हकारान्त नकार वास्तव में आयत स्वर है। स्वरवन्त 'य श' तथा 'त' है। रेफ के पश्चात् 'ई र' होगा 'य' से संयुक्त।।२६।।

गोदीर्घाधः प्रकृत्यन्तः ककारस्तच्च दीर्घवान्।
यकारः स्वरवान् जादि यश्चैवोकारदीपितः ॥२७॥
हकारान्तस्तथाकारो रेफ उकारवांस्ततः।
बिन्दुरित्यपदो ज्ञेयो नभस्यः पूर्वपक्षकृत् ॥२८॥

गोदीर्घाध प्रकृत्यन्त तथा दीर्घयुक्त ककार, स्वरयुक्त यकार आदि तथा उकार दीपित यकार। हकारान्त 'आ'कार, तदनन्तर 'उ'कारयुक्त रेफ। बिन्दु को अपद जानना चाहिये। नभस्य (भाद्रमास) पूर्व पञ्चकारक।।२७-२८।।

अ क च ट त प य शा आत्मतन्त्रे। अधस्ताद्व्योम अयमुपरिष्टात्। हे न अ घ आरी अ प अ सारव उप आ ग हे ध स क आत औ प उ जय हे त ऊ त निधनाय सर्वगोधकृता कष्टोऽतिरूपसिद्धा नवमी प्रधिः।

'अ क च त प य श' आत्मतन्त्र है। निम्न में व्योम है, यह (आत्मतन्त्र) है ऊपर। मूल में अंकित 'हे न अ' से लेकर 'हे त ऊ त' यह है निधन का निमित्त अतिरूप सिद्ध नवमी प्रधि।

षोडशर्चपरो दीर्घः पकारः स्यात्पराश्रये स्वरो दीपितः ।
आद्यश्च चेन्यान्ना स्युश्च शुश्चैकारेण दीपितः ।।२९।।
व्याख्यातो वै नमस्त्वेष यथावल्लक्षणान्वितः ।
नमश्चैवोच्यते भूयोः यथा वर्णो यथाक्रमम् ।।३०।।

१६ अक्षरों के पश्चात् दीर्घ 'प'कार है। पराश्रय में स्वर दीप्त है। 'च शु च' ऐकार द्वारा दीपित है। इस प्रकार उन लक्षणयुक्त 'नमः' शब्द व्याख्यात हुआ। अब वर्ण तथा क्रम के अनुसार नमः शब्द की व्याख्या होगी।।२९-३०।।

आत्मतन्त्र अधस्ताद्व्योम अयमुपरिष्टात्। आय अय अय अर आय अयन्तर अप अपय अत अनय एव विसर्गः षोडशः। अजाय परमेश्वरपराय अचेतन अपञ्चमो नभोमासः सिद्धा दशमी प्रधिः।

आत्मतन्त्र नीचे है। व्योम ऊपर है। 'आय अय' से लेकर 'अपय अत अनय' पर्यन्त षोडश विसर्ग है। अज परमेश्वर का अचेतन अपंचम नभो मास (श्रावण मास) दशमी प्रधि सिद्ध है।

स्वर एवास्तुत वनव्योम्नि स्यात्सानुनासिकः ।
पुनः सत्यश्च दीर्घश्च पश्चात्स्यादि नकारवान् ।।३१।।
अयमेवमथाप्रमेय स्वरेफउकारदीपितः ।
पूर्ववच्च यकारः स्यात्तत्सर्वं पुनरेव तु ।।३२।।

जो भी हो 'त व न' अनुनासिक के साथ व्योम में स्थित है। सत्य तथा दीर्घ है। बाद में 'इ' नकारयुक्त है। यही अनन्तर अप्रमेय है। स्वरेफ में 'उ'कार दीपित है। पहले की तरह 'म'कार होगा। वे सब (जो पहले कहे गये) पुनः होंगे।।३१-३२।।

अ क च ट त प य शान्ता इति स्थिते। अधस्ताद्व्योम अयमुपरिष्टात्। अव अन उवय इ यन आवय इयन अधर षोडशो विसर्गः। तेन व्योम्नि अव्योम्नि ऊ रूपिन्। अरूपं सिद्धा एकादशी प्रधिः।

अ क च त ट प इत्यादि के रहने के कारण नीचे व्योम है। ये 'अकचट' आदि उसके ऊपर हैं। 'अव अन' (मूलोक्त) इत्यादि षोडश विसर्ग है। उसके द्वारा व्योम तथा अव्योम में 'अ ऊ' रूपवान है। अरूप सिद्ध है एकादश प्रधि।

परेऽपिन्यश्च रेफान्तः स्थश्च स्यात्स्वरवांस्ततः ।
मकारः प्रथमाश्चेत्स्युस्तेजश्च विविसर्गवान् ।।३३।।

रेफान्तस्थ-स्वरयुक्त होगा। मकार प्रथमा होने के कारण तेज विसर्गयुक्त होगा।।३३।।

यो योऽन्तस्थः प्रकृत्यन्तो विसर्गश्च पुनश्चतो। नभस्व एष व्याख्यातो वर्षाख्यश्च ऋतुस्त्वयम्। इनस्त्विये अधस्ताद्व्योम अयमुपरिष्टात्। इय अपर अथ अम एत अय एत अपद्रुत षोडशो विसर्गः। यिनः प्रथमः। तेजः ॐ ज्योतिः ऊं षष्ठो वः नभस्यो मासः। वर्षाख्य ऋतुः सिद्धा द्वादशी प्रधिः।

जो जो अन्तस्थ हैं तथा प्रकृति के अन्त में जो विसर्ग है, इन्हें भाद्रमास कहकर व्याख्या की जाती है। यह है—वर्षाकाल। 'इन' नीचे है, व्योम ऊपर है। 'इय' से लेकर 'अपर' (अपद्रुत) पर्यन्त षोडश विसर्ग हैं। 'ॐ ज्योति' से लेकर 'षष्ठो वः' पर्यन्त भाद्रमास है, वर्षा ऋतु। यह है सिद्ध द्वादशी प्रधि।

इष आदिगकारः स्याद्धूयाच्च तदनन्तरम्।
अश्चलो लग्न ऐकारं आद्यः स्यात्तदनन्तरम्॥३४॥
धुकारश्च यआद्यश्च तस्मेशाद्यस्तथैव च।
अकाराद्दीपितो नः स्यादश्चैकारेण दीपितः॥३५॥

'इ ष' आदि गकार है। उसमें 'अश्चल' लग्न है। उसमें ऐकार आद्य होगा। धूकार एवं आद्य य, उसी तरह भस्मेशाद्य अकार के पश्चात् दीपित है एवं नकार ऐकार के द्वारा दीपित है।।३४-३५।।

क च ट त प य शा भूतिरधस्ताद्व्योम अयमुपरिष्टात्। अदूर अयम अ अगन अभव अम अ अभय सम अ आन य ऐ षोडशतत्त्वअरूपअनये अधूप अभस्म अनादियं सिद्धा त्रयोदशी प्रधिः।

'क च ट त प य श' भूति के निम्न है। व्योम ऊपर है। 'अदूर अयम' इत्यादि से लेकर 'आन य ऐ' षोडश तत्त्व हैं। 'अरूप अनग्न अधूप अभस्म अनादिः' त्रयोदश प्रधि सिद्ध है।

दीर्घा नकाराश्चत्वारो धूकाराश्च तथैव च।
ऊकारान्तः समो ज्ञेयः सोक्षरोभयदीपितः॥३६॥
पुनर्विसर्गरहितो ह्रस्वो वसु विसर्गवान्।
अक्षरश्शोथवक्रान्तो विसर्गेण विभूषितः॥३७॥

दीर्घ नकार तथा उसके धूकार को उकारान्त समान जानना चाहिये। वह उकार उभय दीपित है। अकार विसर्गरहित 'र' स्व वसु विसर्गयुक्त है। 'श' अक्षर यक्रान्त विसर्ग से विभूषित है।।३६-३७।।

भूरधस्ताद्व्योम अयमुपरिष्टात्। आन आन ऊध ऊध ऊं ऊं रभ ऊभ ऊं आवसः षोडशः। ना ना ना ना धू धू धू धू ऊं भुवः ऊं स्वः आसप्तमो रसः इषो मासः। सिद्धा चतुर्दशी प्रधिः।

नीचे पृथ्वी। व्योम ऊपर। 'आन आन' से लेकर 'ॐ आवसः' पर्यन्त षोडश तत्त्व हैं। 'नाना नाना' से लेकर 'स्व आसप्तमो रसः' पर्यन्त आश्विन मास है। यह चतुर्दश प्रधि सिद्ध है।

ऊर्ज्जस्योर्क आदिः स्यान्नद्रेकारेण दीपितः।
स्वरवन्तौ धनौ भूयो निधौ नः परिकीर्त्तितः ॥३८॥
ओंकारान्तो नकारः स्याद्भादिर्भौवस्वरान्वितः।
प्रकृत्यासो मकारश्च शकारो बिन्दुरेव च ॥३९॥

उर्ज का अर्क आदि होता है। नद् ऐकार द्वारा दीपित 'ध' तथा 'न' स्वरयुक्त है। और 'नि' तथा 'ध' यह दो 'न' कहकर कीर्त्तित हो गये। ॐकारान्त 'न'कार का 'भादि' 'भौव' स्वरयुक्त है। प्रकृति के साथ सोमकार तथा शकार बिन्दु है।।३८-३९।।

अ क च त ट प यशाः महीरधस्ताद्व्योम अयमुपरिष्टात्। आ इ न अ धः अ म इ न अ ध अ न ल इ न अधः ॐ न अ द भ अ व इ श अवः अ स षोडशतत्त्वं अनिधननिधानोद्भवशिवशः। सिद्धा पञ्चदशी प्रधिः।

'अ क च ट त प य श' पृथ्वी के नीचे है। व्योम ऊपर है। मूलोक्त 'आ इ न' से लेकर 'अवः अ स' षोडश तत्त्व अनिधन निधानोद्भव शिव है। पञ्चदश प्रधि सिद्ध है।

रेफपूर्वो दकारः स्यात्परो स्वरेण मानवः।
आदिर्मध्याह्नकारेण मकारश्च स्वरान्वितः ॥४०॥
पकारादीपितो हश्च साक्षाद्दीर्घैरमाततेः।
हकार अपतोदः स्यादेकारेण तु दीपितः ॥४१॥
वः स्वः स्यात् स्वरवान् रश्च दकारोभयतस्तथा।
अन्तवतीशरेखा लक्षणतश्च शरदृतुः ॥४२॥

रेफपूर्वक दकार 'आ' के पश्चात् स्वरयुक्त मानव। आदि मध्याह्नकार के साथ स्वरयुक्त मकार। पकार दीपित 'ह' साक्षात् दीर्घयुक्त अम्। हकार एकार द्वारा दीपित। 'वः स्वः' एवं स्वरयुक्त 'र'। ऐसे ही उभयतः दकार अन्तवतीश रेखा-लक्षणार्थ यह है शरद् ऋतु।।४०-४२।।

महाधस्ताद्व्योम अयमुपरिष्टात्। अर च अप अर आम अत मनप असव अर अम आह यत अस आद्यः षोडशो विसर्गः। पूर्वपरआत्मने महेश्वर महादेवसमाः अष्टमोदीरः। ऊर्जो मासः। शरदृतुः। असिद्धा षोडशी प्रधिः।

महा नीचे। व्योम ऊपर। 'अर च' से लेकर 'अस आद्यः' षोडश विसर्ग। (?)······ कीर्त्तिक मास। शरत् ऋतु। असिद्ध षोड़श प्रधि।

एकारान्तः सहेवः स्यात्तरादिस्तु छान्तवः ।
नमो दीर्घो हकारः स्यादेकारेण तु तत्सह ॥४३॥
स्वरवान्वै जकारोद्वयशोकारेण दीपितः ।
ग आयतः प्रकृश्नावयकारस्तच्च पूर्ववत् ॥४४॥
वयव्यौमाधुकारेण दीपितौ तु सबिन्दुकौ ।
विन्द्वन्तः शुक्लपक्षः स्याद्व्योमन्तः स्यादिरुच्यते ॥४५॥

ऐकारान्त के साथ 'इव' तरादि छान्तव। 'न' तथा 'म' दीर्घ। उसके साथ 'ए'कार युक्त होगा। हकार स्वरयुक्त होकर दो 'श' द्वारा दीपित इत्यादि।।४३-४५।।

(श्लोक ४४-४५ का अर्थ कुछ स्पष्ट नहीं है; अत: अनुवाद में असमर्थता है)

भूम्यधस्ताद्व्योम अयमुपरिष्टात्। ऐव असर अन अम आह ऐत अज आय आग इव अव ऊम षोडशतत्त्वं चेश्वरम्। हातेजावायोगाधिपतये मुष्ण मां च असिद्धा सप्तदशी प्रधिः।

भूमि नीचे है। व्योम ऊपर है। 'ऐव असर' से लेकर 'इव अव ऊम' षोडश तत्त्व तथा ईश्वर हैं। 'गणाधिपति हमें मुक्त करो'। यह असिद्ध सप्तदश प्रधि है।

चकारादिर्मे शुक्लेऽथ स्याद्रान्तो यो मधौ ततः ।
पुनरेतेशकारा फो दीर्घाभूयउवचतौ ॥४६॥
स्वरवन्तौ च तौ द्विस्तौ विसर्गश्चान्तिमे पदे ।
सह ऐष समाख्यातस्सहस्यः सूर्यसंततः ॥४७॥

(इन दोनों का अर्थ स्पष्ट नहीं है; अत: आंशिक अर्थ प्रस्तुत है)

चकारादि 'म', रान्त 'म'..............। पुन: ये 'शकार', 'फ' दीर्घ........। स्वरयुक्त दो मकार। शेष विसर्ग। इसे 'ऐष' कहा है। यह है—पौष मास।।४६-४७।।

भूम्यधस्ताद्व्योम अयमुपरिष्टात्। अव अपर अम अल अपर अल अप अथ अश अर च अम अर अव षोडशो विसर्गः। वः प्रथमः ऊं सर्वः ऊं भवः ऊं अनवमोनः सहोमासः सिद्धाष्टादशी प्रधिः।

भूमि है निम्न, ऊपर है यह व्योम। 'अव अपर' से लेकर 'अम अर अव' षोडश विसर्ग। 'व' प्रथम, सर्व, भव, अनवमान। पौष मास। यह अष्टादशी प्रधि सिद्ध।

भं आदिर्व ओंकारान्तो दादिर्भः स्यात्स्वरेणवः ।
शकारो वश्च रेफान्तो द्विरकारान्तो तस्तथा ॥४८॥
उकारवान् सश्च सोऽथ रेफान्तः पादशौ ततः ।
रेफाद्दीर्घः सदीर्घान्तः शुक्लोऽयं बिन्दुदीपितः ॥४९॥

'भ' आदि, ओकारान्त 'व', दादि भ, स्वरयुक्त 'व', शकार, रेफान्त 'व' तथा द्विरकारान्त 'त'। ऊकार युक्त 'स' एवं रेफान्त 'ष', रेफ के पश्चात् दीर्घयुक्त। दीर्घान्त इस शुक्ल बिन्दु के द्वारा दीपित है।।४८-४९।।

क च ट त प य शा इतरेतरव्योम अयमुपरिष्टात्। भ ऊं थ अदव अर अस अरव उभ अत उस अश्व अपर अद अस आरव अस षोडशत्वं भवोद्भवसर्वभूत-सुखप्रदसर्वसाध्यसिद्धः। एकोनविंशतिः प्रधिः।

क च ट त प य श इतरेतर हैं। इसके ऊपर है—व्योम। 'भ ॐ थ' से लेकर 'अस आरव अस' पर्यन्त षोडशत्व है। समस्त प्राणीगण का उद्भव, सर्व सुखप्रद तथा सकल साध्य का सिद्ध है। यह है उन्नीस प्रधि।

चरेद्व्रतं सुसिद्ध्यर्थं यथा वक्ष्यामि तन्त्रजम्।
प्राणायामसहस्रं तु बीजतत्त्वेन धारयेत्।।५०।।

सम्यक् सिद्धि-हेतु अन्य व्रत का आचरण करे, जैसे मैं तन्त्र से कहूँगा। सहस्र प्राणायाम बीजतत्त्व के द्वारा धारण करे।।५०।।

पञ्चाग्निभिः शिवैरङ्गैः स्याद्वृतोऽनिलभक्षणः।
त्र्यहं त्र्यहं त्रिकं प्यस्तं जपेत्तापे जले क्रमात्।।५१।।

पञ्चाग्नि (चारो ओर प्रज्ज्वलित अग्निकुण्ड हो तथा माथा के ऊपर तप्त सूर्य हो) साधन रूप मंगलमय अंग द्वारा वृत होकर वायु-भक्षण करके तीन दिन पञ्चाग्नि साधन करे तथा तीन दिन जल में जप करे।।५१।।

गुर्वाज्ञया भस्मसुप्स्यान्तधर्माहं पदमस्तके।
भुञ्जीताथोचितं भक्ष्यं योगस्यास्य सदा विधिः।।५२।।

गुरुदेव के आदेश को लेकर भस्म लगाकर भस्म तथा (जल में?) अन्तधर्मा होकर अहं पद मस्तक में रखकर यथोचित भोजन करे। यह इस योग की सर्वदा की विधि है।।५२।।

चरित्वैतद्व्रतं पुण्यं मुच्यते सर्वपातकैः।
पूज्यते सर्वसिद्धैश्च ज्ञानं चास्य प्रवर्तते।।५३।।
ये भवन्ति हि वै दोषाः साधने दिव्यमानुषाः।
शरीरजास्तथा रागा नश्यन्ति तेन वै ध्रुवम्।।५४।।
भूतव्रतान्तसिद्ध्यर्थमेकान्ते तु मनोरमे।
आत्मतुल्यसहायः स्याद्बीजनिर्दग्धकल्मषः।।५५।।

इस पुण्य व्रत का आचरण करके सब पापों से मुक्ति मिलती है और समस्त सिद्धि के साथ पूजा होती है तथा ज्ञान भी प्रवर्त्तित होता है। साधन में जो दैव, मनुष्य, शरीरजात

तथा आसक्ति के कारण जो दोष उत्पन्न होता है, वह इस व्रत से निश्चित नष्ट हो जाता है। भूत व्रतान्त सिद्धि के लिये एकान्त मनोरम स्थान में अपने समान सहायक रखकर बीज मन्त्रों द्वारा पाप (कल्मष) निर्दग्ध कर दिया जा सकता है।।५३-५५।।

एकादशा निजव्याधिर्बोद्धव्याङ्गुष्ठमस्तके।
ललाटे तेन संपीड्य सर्वविघ्नान्निवारयेत् ।।५६।।

एकादश व्याधि (नाश-हेतु) अंगुष्ठ को मस्तक (पर लाकर) जानकर उससे ललाट को दबाने से समस्त विघ्न शान्त हो जाते हैं।।५६।।

आहारार्थं च सर्वेषां चरेत्सम्यग्यथाक्रमम्।
वारुणे सलिलाहारं शुक्त्यजाक्षीरपोऽपि वा ।।५७।।
शक्तस्य जपतस्तस्य विघ्नान्येतानि लक्षयेत्।
मेघानां स्तनितं विद्युद्वृष्टिक्षोभश्च सागरे ।।५८।।
मत्स्यादयश्च दृश्यन्ते व्रते वारुणसंज्ञके।
कापिलं घृतमाग्नेये भुञ्जतो व्रतमाचरेत् ।।५९।।

सबके आहारार्थ यथाक्रम से आचरण करे। जल में जल का पान करे अथवा चार तोला परिमाण बकरी के दुग्ध का पान करे। जप में समर्थ व्यक्ति इन विघ्नों को लक्ष्य करे—मेघ ध्वनि, विद्युत्, वृष्टि से सागर की क्षुब्धता (तूफान आदि)। वारुण नामक व्रत में मत्स्यादि। आग्नेय व्रत में कपिला गौ के दूध से घृत निकाल कर (उसका भोजन करके) व्रत का आचरण करे।।५७-५९।।

सर्वमादीप्यते तस्य शुक्लार्द्धं च तथोदकम्।
वायव्येऽनिलभक्ष्यः स्याच्छ्वेताजाक्षीरभुग्यथा ।।६०।।
विघ्नं पात्राशने पातो वातक्षोभश्च दारुणः।
आशोकं गोरसं पीत्वा व्रतमेतत्समाचरेत् ।।६१।।

(अग्नि व्रत में) तदनन्तर कुछ दीप्त होकर तथा शुक्ल अर्घ्य का जल (ग्रहण करे)। वायुव्रत में वायुपान करे तथा श्वेत वर्ण की बकरी के दुग्ध का भक्षण करे। विघ्न परिलक्षित होते हैं—विद्युत्पात, दारुण वातक्षोभ। दुःख उपस्थित होने के पूर्व तक गाय का दुग्ध पान करे तथा व्रताचरण करे।।६०-६१।।

विघ्नं सर्गस्य सम्पातो ज्योतिषां पतनं तथा।
भूतानामिह सर्वेषामशक्तश्चरितुं व्रता ।।६२।।
भूतयोनिव्रतं कुर्यादिषामन्यतमेन तु।
व्रतेन माससिद्धायामस्यां सिद्धा भवन्ति ते ।।६३।।
हन्यादेतेन वै रोगान्दिव्यान्भौमान्स्वदेहजान्।
एतदेव व्रतङ्कुर्य्याच्छान्तिकर्मणि मन्त्रवित् ।।६४।।

सभी प्राणियों में व्रत आचरण में अशक्त व्यक्तियों को विघ्न परिलक्षित होता है— सृष्टि का विनाश, नक्षत्रादि का पतन। भूतयोनि व्रत करे। इन सबमें से किसी एक व्रत के आचरण द्वारा इसे करे। एक मास में व्रत द्वारा सिद्ध हो जाने पर सब (कामनायें) इससे सिद्ध हो जाती हैं। इस व्रत द्वारा दिव्य-भौम तथा निज देहजात रोगों का विनाश करे। मन्त्रज्ञ साधक शान्ति कर्मों में इन्हीं व्रत का पालन करे।।६२-६४।।

व्रतं वैवस्वतं कुर्वन् शाकाहारो भवेन्नरः।
साध्यानृषीन्वसूंश्चैव पश्येत्सर्वानिशेषतः ।।६५।।
विघ्नप्रशमनं प्रोक्तं सर्वमन्त्रविधिस्त्वयम्।
मध्ये ध्यायञ्जपेन्मन्त्रन्तत्त्वस्य हृदयस्य च ।।६६।।

सूर्य के व्रत में शाकाहार करना चाहिये। साध्य-ऋषि वसुगण तथा सबको सर्वतोभाव से देखे। इन सब मन्त्रों का विधान विघ्ननाशार्थ कहा गया है। बीच में ध्यान करे। तत्त्व तथा हृदय मन्त्र का जप भी करे।।६५-६६।।

दृढासनः स्थिरमना जितवायुर्जितेन्द्रियः।
मुख्यां सिद्धिमवाप्नोति तत्त्ववाजप्रसूतिजाम् ।।६७।।

इति श्रीसाम्बपुराणे एकषष्टितमेऽध्याये ज्ञानोत्तरे शरीरसाधनमष्टमं पटलम्

●

दृढ़ासन, स्थिर मन, जितवायु तथा जितेन्द्रिय होकर तत्त्व तथा यज्ञ से मुख्य सिद्धि का लाभ करे।।६७।।

श्री साम्बपुराणोक्त इकसठवें अध्याय में ज्ञानोत्तर शरीर-साधन नामक अष्टम पटल समाप्त

●

द्विषष्टितमोऽध्यायः

(सर्वकार्यसिद्धिविधानम्)

सिद्धये सर्वकार्याणां विधानमभिधीयते ।
सम्पुटानां यथा तत्त्वं कर्मणां सिद्धयेऽपि च ।।१।।
सकलीकृत्य देहं त्वं प्राणायामश्च योजयेत् ।
शिवाख्यां परमाख्यां च योनिं हृन्नाभितस्तथा ।।२।।
वायुरग्नेरधस्ताच्च संहरन्सह पातकैः ।
अन्तरे प्राणमायच्छेत्सद्यः सिध्यति योगवित् ।।३।।
ब्रह्मतत्त्वस्त्रिभिः शोध्यापद्य तेन शुभं भवेत् ।
परस्यापि दहेन्मत्री ग्रामं नगरमेव च ।।४।।

समस्त कार्यसिद्धि-हेतु विधान तथा कर्मसिद्धि-हेतु सम्पुट के यथार्थ तत्त्व को कहा जा रहा है। अपनी देह को एकत्र (एकाग्र) करके प्राणायाम करे। शिवा एवं परमा योनि को हृदय तथा नाभि से, वायु को अग्नि के नीचे से पातक का संहार करे। अन्तर को प्राणयुक्त करने से योगी तत्काल सिद्धिलाभ करता है। ब्रह्मतत्त्व से तीन द्वारा (उपरोक्त तीन से) शोधन करने से अपना तथा अन्य का शुभ होता है। इसका मन्त्री (मननकारी साधक) ग्राम तथा नगर को भी दग्ध कर सकता है।।१-४।।

गृहं चापि दुराधर्षः भूतं चापि महाबलम् ।
निहन्ति वै प्रयुक्तः सन् क्षणादग्निदिवेन्धनम् ।।५।।
व्याधिं चापि दुराबाधां तनुत्थां दैविकां तथा ।
निहन्ति तत्र तूर्णं च दिवाकरव्रती नरः ।।६।।

दुर्घर्ष गृह तथा महाबलशाली भूत को (प्रयुक्त होने पर क्षणकाल में अग्नि जैसे काष्ठ को दग्ध करती है, वैसे) यह दग्ध कर देता है। सूर्यव्रतधारी नर देह के तथा दैव से दुराराध्य व्याधि का भी शीघ्र विनाश कर देता है।।५-६।।

बीजयोनिर्भवन्मध्ये पृथिव्याश्चारुणस्य च ।
पूर्ववद् ध्यानयोगः स्यात्प्राणयोगस्तथैव च ।।७।।
तेषामध्ययने चैव ये पूर्वं चैव साधिताः ।
शान्तिं चैतां प्रयुञ्जीत कृतकृत्यो भवेत्तदा ।।८।।

पृथ्वी तथा आरुण के मध्य बीजयोनि होगी एवं पूर्व के समान ध्यानयोग एवं प्राणयोग होगा। उनके अध्ययन के पूर्व जो साधित हुआ है, उसका शान्ति विधान करके वह कृतकृत्य हो जाता है।।७-८।।

द्रव्यापहरणो वापि न्यासनिर्यातनेऽपि वा।
नाशने चैव देवानां ग्रहोत्पादनकर्मणि ।।९।।
कुर्वन्नेतानि योगी स्याद्वायुरग्निमिवेन्धनम्।
परस्थानां च सर्वेषामपाहारः प्रयुज्यते ।।१०।।

द्रव्य का अपहरण, न्यास का निर्यातन, किंवा नाशन तथा देवताओं के ग्रहोत्पादन कर्म में इनका विधान करके योगी वायु के समान होता है अर्थात् प्रज्ज्वलित अग्नि के लिये जैसे वायु सहायक होती है, वैसे ही योगी इन कर्मों में सहायक हो जाता है। अन्य से इसको गोपित रखना होता है।।९-१०।।

एष संहरते सर्वं यत्किञ्चिज्जगतीगतम्।
आरूढः संशये युञ्जन्नान्यथा तु कदाचन ।।११।।
स तु होमस्तथाग्नौ तु यदा रोगेण युज्यते।
तत्क्षणाद्धन्ति तान् सर्वान् सरोगान् हन्ति योनिजान् ।।१२।।
स्थावरं जङ्गमं वापि कृत्रिमं चापि यद्विषम्।
क्षणान्नाशयति ह्येषः यदि सम्यक् प्रयुज्यते ।।१३।।

वे इस जगत् के सब कुछ का संहार कर सकते हैं। आरूढ़ योगी संशय उपस्थित होने पर ऐसा करते हैं, अन्यथा नहीं करते। रोग होने पर अग्नि में होम करे। ऐसा होने पर यह सब, विशेषकर योनिज समस्त रोग तत्काल विनष्ट हो जाते हैं। यदि सम्यक् रूप से प्रयोग किया जाय तब स्थावर, जंगम अथवा कृत्रिम विष भी तत्काल नष्ट हो जाता है।।११-१३।।

संक्रमेण तथा व्याधिर्विपरीतेन योजितः।
चिकित्सामन्त्रपूर्वेण क्रीडार्थमनुयोजयेत् ।।१४।।
ध्यायेत्तु वारुणे वायुं शांत्यर्थं शिवसम्पुटे।
वृष्टिं कारयते ह्येष भूतयोनिः सबीजकः ।।१५।।
षड्विधं च सृजत्यस्य भूतसंहारिणस्ततः।
वायुनावेष्टयेत्सर्वं स्तमितं स्याज्जगन्महत् ।।१६।।

संक्रामक व्याधि होने पर विपरीत भाव से युक्त करना होगा। मन्त्र से इसकी चिकित्सा होगी। उसे क्रीड़ार्थ युक्त करे। शान्ति-हेतु शिवसम्पुट वारुण में वायु का ध्यान करना चाहिये। ऐसा करने से वृष्टि होगी। यह है—बीज के साथ भूतयोनि।।१४-१६।।

अश्वानान्तु जपेन्मन्त्रं योगिनां च गतिं तथा।
निरुन्ध्याद्यद्यदीक्षेत व्रणव्याधिविषं च यत् ॥१७॥
ध्यायंश्च होमयेन्नित्यं युक्तो मन्त्रार्चने नरः।
उद्घाटने च संहारे योज्यश्चापि दशात्मकः ॥१८॥

अश्व का मन्त्र जप करे। ऐसा करने से योगियों की गति तक का निरोध हो जाता है। यहाँ तक कि जो-जो देखा जायेगा, जो व्रण है, व्याधि अथवा विष है, सबका निरोध हो जायेगा। मन्त्र तथा अर्चन में लगा व्यक्ति ध्यान करके नित्य होम करे। उद्घाटन तथा संहार में भी ऐसे ही दशात्मक मन्त्र का प्रयोग करे।।१७-१८।।

सर्वत्र वेष्टनं कृत्वा ततः शान्तिं प्रयोजयेत्।
परमपुटमध्ये तु द्रव्यमन्त्रेण योजयेत्।
असन्देहेन सिद्ध्येत बद्ध्वा मन्त्रविभागशः ॥१९॥

इति श्रीसाम्बपुराणे ज्ञानोत्तरे द्विषष्टितमेऽध्याये नवमं पटलम्

●

सर्वत्र वेष्टन करे। तदनन्तर शान्ति प्रदान करे। परम पुट के मध्य में द्रव्य मन्त्र द्वारा युक्त करे। ऐसे मन्त्रविभाग से बन्धन करने पर निश्चय सिद्धि प्राप्त होती है।।१९।।

श्री साम्बपुराणोक्त सकल कार्यसिद्धि विधाननामक बासठवाँ अध्याय समाप्त

●

त्रिषष्टितमोऽध्यायः

साधकस्येह युक्तस्य व्याधिर्भवति दारुणः ।
उपसर्गः समं तस्य चिकित्सास्य न दुष्यति ।।१।।
धातुरेको ग्रहो वापि कोष्ठे त्वध्यासितोऽपि वा ।
स्मृत्वा यो मनसापायो मन्त्रकैर्न प्रशाम्यति ।।२।।
क्षेत्राच्चाण्डालसेनायाश्चाग्निहोत्रगृहात्तथा ।
तस्मादपञ्चतत्तूर्णं मासवृद्ध्यै प्रकल्पयेत् ।।३।।
क्षेत्राच्चाण्डालसेनाच्च तथा द्विजपरा अपि ।
क्रमवृद्धं च तत्सर्वे बध्नीयान्मिश्रितं क्रमात् ।।४।।

साधन में प्रवृत्त साधक को दारुण व्याधि हो सकती है; साथ ही उपसर्ग भी परिलक्षित होते हैं। इनकी चिकित्सा करने में कोई दोष नहीं है। धातुज, किंवा ग्रहादि आक्रमण-जनित अथवा कोष्ठ में अध्यासित व्याधि, जो मनसा पाप (जनित) है, वह मन्त्र से भी प्रशमित नहीं होती। चण्डाल सेना के क्षेत्र से, किंवा अग्निहोत्री ब्राह्मण के घर से अपञ्च लाकर उसकी मासवृद्धि की व्यवस्था करनी चाहिये। क्षेत्र से तथा चण्डाल-सेना से द्विज-परायण व्यक्ति भी क्रमवृद्धि-हेतु जो सब मिश्रित करे, उसका क्रमश बन्धन करे।।१-४।।

तिस्रः पोटलिकाः कार्याः सूतिकर्पटकेन च ।
संमार्जनतटे चैव आरभेत चरोः क्रियाम् ।।५।।
अन्यजानां गृहस्थैश्च श्नपयेत्तण्डुलैश्च ताम् ।
ध्यायन्वै पातकं घोरं सम्पुटं यदि दारुणम् ।।६।।
यावच्च श्रयते वह्नौ तावद्रागः प्रणश्यति ।
खदिरेप्यतवा शूले चैकवृद्ध्या क्रमं गताः ।।७।।
बद्धाः पोटलिकाः सर्वापप्यापूर्वमवस्थिताः ।
वरुणे त्वाकृतिं कृत्वा क्षुरकृत्तां तु होमयेत् ।।८।।

तीन पोटली बनाये। सूति के कर्पटक द्वारा तथा सम्मार्जन तट पर चरु की क्रिया आरम्भ करे। अन्य जाति के गृहस्थ के तण्डुल (चावल) द्वारा उस चरु का पाक करे। घोर पातक का चिन्तन करके दारुण सम्पुट करे। जब तक वह्नि में पाक होगा, उतने में रोग प्रशमित हो जायेगा। खदिर अथवा शूल में क्रमशः एक-एक की वृद्धि करे। पहले से रखी सभी पोटली को बन्द करे। वरुण की आकृति बना करके छूरे से उसको छिन्न करके होम करे।।५-८।।

रुधिरं च विषं तैलमाहुत्यन्ते तु दीपनम्।
अन्ये पोटलिकेद्धोतुं जुहुयाच्छूललक्षिते ॥९॥
भागं बद्ध्वा तृतीयन्तु चरोः कर्म समारभेत्।
निवेद्य च बलिं तेन स्नायाद्रोगान्निहन्ति सः ॥१०॥
तत्क्षणाच्छुद्धिमाप्नोति चन्द्रवत्परिनिर्मलः।
हत्वा रोगसहस्राणि ततः साध्यांश्च साधयेत् ॥११॥

रुधिर, विष तथा तैल को आहुति के अन्त में प्रदीप्त करे। अन्य दो शूलचिह्नित पुटली की आहुति प्रदान करे। तृतीय भाग बद्ध करके चरु कर्म करना चाहिये। उससे बलि (उपहार) निवेदन करके स्नान करे। ऐसा होने पर रोग विनष्ट हो जाता है।।९-११।।

शरीरान्मनसश्चैव ये तु रोगाः सुदारुणाः।
पातकान्यातयेत्सर्वान् कृतज्ञः साधुसम्मतः ॥१२॥
राजा विप्रस्तथा वर्णाः साधनार्थं प्रतिष्ठिताः।
आपत्सु घातयेत्तीव्रा विधिना घातकाः स तु ॥१३॥

जो सुदारुण शारीरिक तथा मानसिक रोग हैं, कृतज्ञ साधुजन-सम्मत उपाय से वह व्यक्ति समस्त पातकों का विनाश कर देता है। राजा, ब्राह्मण अथवा अन्य वर्ण के जो व्यक्ति साधनार्थ प्रतिष्ठित होते हैं, आपत् काल में उनका तीव्र भाव से विनाश करते हैं (पाप का विनाश करते हैं), विधि द्वारा वे बाधक होते हैं।।१२-१३।।

विनायका हरन्त्येते रूपैः सिद्धैश्च मन्त्रिणाम्।
न दोषघातने तेषामिति रुद्रः प्रभाषते ॥१४॥

इति श्रीसाम्बपुराणे ज्ञानोत्तरे त्रिषष्टितमोऽध्याये दशमं पटलं समाप्तम्

●

साधक के सिद्ध रूप से विनायक गण विनाश (पापों का) करते हैं। इस घातन में उसका कोई दोष नहीं होता, यह रुद्र ने कहा है।।१४।।

श्री साम्बपुराणोक्त ज्ञानोत्तर में रोगविनाश नामक तिरेसठवें अध्याय में दशम पटल समाप्त

●

चतुःषष्टितमोऽध्यायः

(मारणाभिचारः)

अभिचारविधिं श्रुत्वा मन्त्रः सर्वार्तिनाशनः ।
अधःशूलान् ग्रहान् क्रूरान् भैरवांश्च महाबलान् ॥१॥
महामारी कुलोद्भूतानुत्सादयति मन्त्रवित् ।
यमजिह्वां मृत्युभूतमघोरां चापि योजयेत् ॥२॥
प्राह्वनं तु महारौद्रं शत्रुपक्षभयंकरम् ।
कुर्यात्तु कंटकं शालं याम्यां दिशिमुपाश्रितः ॥३॥

सबके लिये आर्त्तिनाशक मन्त्र अभिचार विधि को सुनकर मन्त्रवित् साधक अधःशूल, क्रूर ग्रह, महाबलशाली महामारी कुलोत्पन्न भैरव देव को उत्सारित करते हैं और यम की जिह्वारूप मृत्युस्वरूप अघोर को युक्त करते हैं। महारौद्र का आह्वान शत्रुपक्ष के लिये भयंकर है। दक्षिण दिशा का आश्रय लेकर कण्टक का शाल (चटाई) तैयार करे।।१-३।।

नैर्ऋत्यां वा श्मशाने वा त्रिकोणज्ञान्तमालिखेत् ।
श्मशाने केशसंच्छन्ने कंटकैः सर्वतोवृते ॥४॥
द्वारं च कल्पयेत्तत्र कंटकैः कल्पितार्गलम् ।
अन्त्रमालासमायुक्तं याम्यां दिशिमुपाश्रितम् ॥५॥
कपालैर्बहुभिश्चैव परितः परिवेष्टयेत् ।
अग्न्यागारं त्रिकोणं च कल्पयेत्तत्र साधकः ॥६॥

नैर्ऋत्य कोण में अथवा श्मशान में त्रिकोण पद्म आदि का अंकन करे। केश आच्छादित श्मशान में सब दिशाओं में कण्टक द्वारा आवृत स्थान में द्वार की कल्पना करे तथा कण्टक द्वारा ही अर्गला तैयार करे। इसे दक्षिण दिशा की ओर अस्त्रमाला से युक्त होना चाहिये। नरकपाल से चारो दिशाओं को बाँधे (चारो दिशाओं में नर कपाल से वेष्टन करे)। साधक वहाँ अग्नि आगार तथा त्रिकोण की कल्पना करे।।४-६।।

रुधिराक्तेन सूत्रेण परितः परिवेष्टयेत् ।
श्मशानभस्मना स्नातः कृष्णवासा जितेन्द्रियः ॥७॥
रक्तोष्णीषधरो मन्त्री रक्तयज्ञोपवीतवान् ।
संक्रुब्ध्य भ्रुकुटी वक्त्रो रक्तचन्दनशूलधृक् ॥८॥

रक्तलिप्त सूत्र से चतुर्दिक वेष्टन करना चाहिये श्मशान भस्म से स्नान करके कृष्ण (काला) वर्ण वस्त्र पहनकर जितेन्द्रिय साधक लाल रंग की पगड़ी तथा लाल यज्ञोपवीत धारण करके क्रुद्ध होकर भृकुटी बद्ध मुख करके रक्त चन्दन से लिप्त शूल धारण करे।।७-८।।

पुष्पं लोहमयं चापि धारयेच्छूलमुत्तमम्।
खदिरं रुधिराक्तं वा धारयेच्चाभिचारवान्॥९॥

तदनन्तर पुष्प तथा लोहमय उत्तम शूल धारण करके अथवा अभिचारयुक्त होकर रुधिराक्त खदिर धारण करे।।९।।

अग्न्यागारस्य मध्ये तु प्रतिमाङ्कारयेद्बुधः।
शत्रोर्मूत्रपुरीषेण रुधिरेणान्त्रपांशुना॥१०॥
पादपांशुं समालोड्य मृद्भस्मासानकी तथा।
बल्मीकसम्भवां चापि गृहीत्वा शत्रुमालिखेत्॥११॥

बुद्धिमान व्यक्ति अग्निगृह के मध्य में शत्रु की प्रतिमा स्थापित करे तथा उसे शत्रु की मूत्रविष्ठा-रक्त तथा अन्त्र (आँत) पांशु से उसे लिप्त करे। ऐसे ही दीमक के बाबी की मिट्टी तथा भस्म से शत्रु को अंकित करे।।१०-११।।

खादिरैः कीलकैस्तस्य ऊर्ध्वकेशमधोमुखम्।
पाशेन वेष्टयित्वा तु शत्रोः प्राणान्निकृन्तयेत्॥१२॥

खैर की लकड़ी की कील से शत्रु के ऊर्ध्वकेश तथा नीचे किया मुख पाश द्वारा वेष्टित करके शत्रु का प्राण-हरण करे।।१२।।

कुर्याच्छूलेन भिन्नं तु पादयोर्मूर्ध्नि विद्विषम्।
आयसस्त्रुवमादाय सोमं कुर्याद्विचक्षणः॥१३॥

शत्रु (की प्रतिमा) का पादद्वय एवं मस्तक शूल से छिन्न करे। विचक्षण व्यक्ति लोहे के स्त्रुव द्वारा होम करे।।१३।।

अथ चेद्दशधा प्रोक्तमभिचारविधाविह।
कृष्णच्छागोष्ट्रमातङ्गशलभानां च शोणितम्॥१४॥
विषं च मलिनं तैलं चातुर्वर्णस्य शोणितम्।
वामहस्ते स्त्रुवं कृत्वा दक्षिणाभिमुखः स्थितः॥१५॥
त्रिसंध्यं जुहुयात्क्रुद्धः फट्कारेणैव मन्त्रवित्।
कपालत्रयमारूढः द्वयोः पादौ निवेशयेत्॥१६॥

तदनन्तर दश प्रकार की आभिचारिक विधि कही गयी है। कृष्णवर्ण का बकरा, ऊँट, हस्ती तथा शलभ का रक्त एवं विष, मलिन तैल तथा चार वर्ण के मनुष्य का रक्त, वाम

हाथ में स्रुवा लेकर दक्षिण की ओर मुख करके खड़ा हो मन्त्रज्ञ साधक क्रुद्ध होकर 'फट्' कहते हुये त्रिसन्ध्या (प्रात:-मध्याह्न-सायं) होम करे। तीन कपालों (मनुष्य की खोपड़ी) पर आरूढ़ होकर दोनों पैरों को (शत्रु की प्रतिमा) उसके पैरों पर रखे।।१४-१६।।

ऊर्ध्वं शुक्लतरूणां च समिद्भिर्जुहुयान्नरः ।
खदिरै रुधिराक्तैर्वा तथा निम्बमयैरपि ।।१७।।
अन्येन तु यथोक्तेन अव्यक्तं होमयेद् बुधः ।
कुर्यात्प्रकुपितो होमं यावत्क्रोधो न नश्यति ।।१८।।
कल्पोक्तमभिचारं तु कुर्यात्सिद्धार्थमात्मनः ।
सिद्धिस्त्रयो दशविधा अभिचारेण मन्त्रिणाम् ।।१९।।
शत्रोर्देशपरित्यागो व्याधिरर्थविनाशनम् ।
उन्मत्ततान्धता चैव तथा चैवाङ्गहीनता ।।२०।।
वधो बन्धो नृपक्रोधोऽकस्माच्चापि धनक्षयः ।
प्रयातं याचितं चापि आरण्यं च त्रयोदश ।।२१।।

ऊर्ध्व शुक्ल वृक्ष के काष्ठ से होम करना चाहिये। रक्त लिप्त खैर अथवा नीम की लकड़ी के द्वारा भी होम हो सकता है। यथाविधि अन्य काष्ठ द्वारा भी पण्डित व्यक्ति अव्याहत होम कर सकते हैं। अपनी सिद्धि के लिये कल्पोक्त अभिचार करना उचित है। मन्त्रज्ञ साधक के अभिचार द्वारा सिद्धि तेरह प्रकार की है। शत्रु देश-परित्याग, व्याधि, अर्थनाश, उन्मत्तता, अन्धता, अंगहीनता, वध, बन्धन, नृपक्रोध, अकस्मात् धनक्षय, परलोक-गमन, याच्ञा वृत्ति तथा वनगमन।।१७-२१।।

आभिर्निर्मलितो दीप्तः प्रोक्षितो विधिना पुनः ।
तत्त्वेनाप्यायितश्चैव कथं मन्त्रो न सिद्ध्यति ।।२२।।

आभिचारिक शब्द का अर्थ है—आभि = विमुक्त करना, दीप्त होना। उसमें विधिपूर्वक प्रोक्षित एवं तत्त्व द्वारा आप्यायित होने पर मन्त्र क्यों सिद्ध नहीं होगा?।।२२।।

असिद्धौ तु पुरो दण्डः स्वमन्त्रात्ताडनं भवेत् ।
अभिवार्य परं गच्छन् करं हन्यात्तथान्तकी ।।२३।।
ततो निकृन्तप्राणोऽसौ देहमुत्सृजति क्षणात् ।
विधिना द्रव्यघटने क्रोधार्तः शत्रुपीडितः ।।२४।।
प्रतिलोमेन युञ्जीत घातके प्राणसंयुतः ।
तत्क्षणाद् घातयेत्सर्वान् सेन्द्रब्रह्मपुरस्सरान् ।।२५।।

मन्त्र असिद्ध होने पर सर्वप्रथम कर्त्तव्य है उसमें स्वमन्त्र से ताड़ना। विनाशकारी अन्य को बाधा देने के लिये शत्रु (प्रतिमा) का हस्तच्छेदन करे। तदनन्तर शत्रु निष्प्राण होकर देहत्याग करेगा। यथाविधि द्रव्यसंग्रह होने पर शत्रुपीड़ित साधक क्रोधित होकर (पुरश्चरण

को) प्रतिलोम द्वारा युक्त करे। इससे तत्क्षण ही साधक इन्द्र, ब्रह्मादि प्रमुख का भी विनाश कर सकता है।।२३-२५।।

आपत्सु योजयेन्मन्त्री यदा संशयितो भवेत्।
शरीरा मानसाश्चैव उपसर्गास्तु कीर्तिता॥२६॥

जब संशयापन्न हो तब आपत्ति काल में साधक यह सब क्रिया करे। उपसर्ग दो प्रकार का मानसिक एवं शारीरिक कहा गया है।।२६।।

शारीरा व्याधयो ज्ञेया मानसा बहु विस्तराः।
स्त्रीकृत्वेवं त्यजैश्चैव बन्धुमित्रपुरःसरैः॥२७॥
पीड्यते मन्त्रिणो ह्येते चोपसर्गैः सुदारुणैः।
सिद्धवाक्यमुपेतस्तु मन्त्रहोमपुरस्कृतः॥२८॥
असंदेहात्तु सिद्ध्यन्ति बुद्ध्या योगाः सुमन्त्रिणः।
स्त्रीलोलास्तु न सिद्ध्यन्ति तथा चार्थविचिन्तकाः॥२९॥

शारीरिक उपसर्ग व्याधियों को जानना चाहिये। मानसिक अनेक प्रकार के होते हैं। स्त्री लोगों को उपलक्ष्य करके ऐसे बन्धु-मित्र प्रभृति द्वारा किये (कर्तृक) सुदारुण उपसर्गों से साधक पीड़ित हो जाते हैं। सिद्ध वाक्य (उपदेश) प्राप्त करके मन्त्र, होम प्रभृति द्वारा मन्त्रज्ञ निःसंदेह सिद्धि प्राप्त करते हैं। जो स्त्रीलोलुप तथा स्वार्थी होते हैं, उनको सिद्धि नहीं प्राप्त होती।।२७-२९।।

स्त्रीभार्याशूद्रभार्यायां तथान्यासु च संरता।
क्रियालोपी चानुरोधी व्यसनी तृष्णया हतः॥३०॥

स्त्रीगण, भार्या, शूद्र की भार्या अथवा अन्य स्त्री में जो आसक्त हैं, उनका क्रियालोप हो जाता है। जो अन्य से अनुरोध करते हैं, व्यसनी हैं, तृष्णा से आक्रान्त हैं—ऐसे लोग अग्राह्य हैं। विधानतः ये सभी उपसर्गयुक्त हैं।।३०।।

अग्राह्या मन्त्रिणो ह्येते विधाने ह्युपसर्गिणः।
आचार्ये चातिभक्तश्च तपस्वी च जितेन्द्रियः।
घातयेत्सर्वरोगांश्च बुद्ध्वा ज्ञानं सविस्तरम्॥३१॥

इति श्रीसाम्बपुराणे मारणाभिचारे चतुःषष्टितमेऽध्याये एकादशं पटलम्

●

जो आचार्य के प्रति भक्तिमान हैं, तपस्वी तथा जितेन्द्रिय हैं, वे सविस्तार ज्ञान प्राप्त करते हैं एवं समस्त रोगों का विनाश करते हैं।।३१।।

श्री साम्बपुराणोक्त चौंसठवें अध्याय का एकादश पटल समाप्त

●

पञ्चषष्टितमोऽध्यायः

(देहगतरोगाणां चिकित्सा)

अथ भेदान् प्रवक्ष्यामि चाङ्गप्रत्यङ्गयोगजान्।
उभयस्यार्थविन्मन्त्री योन्यां बीजेन घातयेत्॥१॥
बीजस्य चोद्भवत्वाय व्याधयोऽन्यान्यघातिनाम्।
योनिस्थं बीजयोगेन स्थानस्तम्भं विनिर्दिशेत्॥२॥

तदनन्तर अंग तथा प्रत्यङ्ग के योगजात भेदों को कहूँगा। अंग तथा प्रत्यङ्ग के अर्थ को जानने वाला मन्त्री योनि तथा बीज द्वारा आघात करे। बीज का उद्भव ही व्याधि का अन्तिम विनाशक अर्थात् रोग का अन्त करने वाला है। बीजयोग द्वारा योनिस्थ स्थानस्तम्भ का निर्देश करे।।१-२।।

नेत्रयोः श्रवणं पीतं मुखे सिन्दूरवर्णकम्।
बाह्वंसयोश्च हरितमुदरे कृष्णमेव च॥३॥
गुदशिश्ने विचित्रं तु नीलचित्रं तु जङ्घयोः।
चरणे कुक्कुटं युञ्ज्याद्बलिं माल्यं च सर्वतः॥४॥

नेत्रद्वय तथा श्रवण में पीत वर्ण, मुख में सिन्दूर वर्ण, बाहु तथा स्कन्धद्वय में हरित् वर्ण, उदर में कृष्ण वर्ण, गुदा तथा शिश्न में विचित्र वर्ण, जङ्घाओं में नील चित्र, चरणों में कुक्कुट वर्ण तथा समस्त स्थान को बलि तथा माला द्वारा युक्त करे।।३-४।।

स्वस्थाने पूजयेत् तज्ज्ञो विपरीतेन नाशयेत्।
न नश्येत यदा व्याधिः स्नेहाहारेण योजितः॥५॥
निग्रहस्तस्य वै कार्यः शारेण मन्त्रिणा तदा।
कीलयित्वा तु वै तं च योनिस्थं वर्णजैर्दृढम्॥६॥

तत्त्वज्ञ जन स्वस्थान में पूजन करे। विपरीत का विनाश करे। स्नेहाहार द्वारा युक्त करने पर भी यदि व्याधि का विनाश न हो, तब मन्त्री 'शार' (?अस्त्र) द्वारा उसका निग्रह करे। योनिस्थ (व्याधि का) वर्णजात द्वारा दृढ़भाव से बन्धन करना चाहिये।।५-६।।

बिल्वं शिरसि वै पुष्यात्कन्दरं वक्रनेत्रयोः।
श्रौत्रे तु यास्यकं कीलं विन्यसेदश्मकन्तु वै॥७॥
शाकजं वक्षसि प्रोक्तं बादरं पृष्ठ एव च।
उदरे च तथा शिग्रुं चन्दनं शिश्नजानुनी॥८॥
सुरदारुमधःकाये वैतसं चरणे स्मृतम्।
प्रतिस्थाने न्यसेत् कीलं सर्वस्थानेषु मन्त्रवित्॥९॥

मस्तक का बिल्व से पोषण करे। मुख तथा नेत्रद्वय में कदर, कर्णों में यास्यक प्रस्तर की कील का विन्यास करे। वक्ष में शाकजात (शाक से उत्पन्न) का, पृष्ठ में कूलजात (वादर), उदर में शिग्रु (सहजन) तथा शिश्न एवं जानु में चन्दन का विन्यास करे। निम्न शरीर में देवदारु का, चरण में वैतस का तथा मन्त्रज्ञ साधक सभी स्थान में कील स्थापित करे।।७-९।।

विनाशाय विवक्ताः स्युः श्लेष्मान्तकविभीतकाः ।
तथा सहचरश्चैव कीला वै सर्वकर्मणि ॥१०॥
अथवा स्नपयेद्रक्तमावृतिश्चात्र कीलयेत् ।
ध्यायेत्तु घातकं रोगे यदिच्छेद् घातनं परम् ॥११॥
अदग्धमवतार्य्यन्तु यदा शान्तिः प्रवर्त्तते ।
हतो दावेन तेन स्याद् ब्रह्मापि यदि च स्वयम् ॥१२॥
आकृतिस्तु सदा मांसैः क्रियते विघ्नकारिणः ।
सकलस्तस्य परशुः संक्रमे नायकस्य वै ॥१३॥

विनाशार्थ श्लेष्मात्मक तथा विभीतक की लकड़ी देनी होगा। ऐसे सभी कार्य में कीलक सहचर होगा। अथवा रक्त से स्नान कराये। यहाँ आकृति कीलक होगी। रोग में घातक का ध्यान करके उसके विनाश की इच्छा करनी होगी। जब शान्ति हो जाय, तब अदग्ध अवस्था में उतर कर फेंकना होता है। उसके फल से शत्रु दावानल में पड़ जाता है, यदि ब्रह्मा भी शत्रु हों, वे भी। विघ्नकारी की मांस से आकृति बनानी होगा। नायक के संक्रम में समस्त अंश है उसका परशु (?)।।१०-१३।।

संहारं क्रमशो युञ्ज्यात्तथा मांसेन वै बुधः ।
योनिबीजविभागेन स्थानस्थानेषु सर्वतः ॥१४॥
सर्वाङ्गगतरोगा हि चिकित्स्याः सर्वतोमुखाः ।
संक्रामस्तस्य वै यो हि क्रीडा संमन्त्रिणः स तु ॥१५॥

योनि तथा बीजविभाग द्वारा सभी स्थान में विज्ञ जन मांस द्वारा क्रमशः संहार करे। सर्वाङ्ग-जात रोग की सर्वतोभावेन चिकित्सा करनी चाहिये। उसका जो संक्रमण है, वह मन्त्रज्ञ साधक की क्रीड़ा है।।१४-१५।।

ये ये वै कीलकाः प्रोक्ताः समिधो पिहिता यतः ।
चतुर्माल्योपहारेण तेन तस्य चिकित्सितम् ॥१६॥

इति श्रीसाम्बपुराणे देहजातरोगाणां चिकित्सा नाम पञ्चषष्टितमेऽध्याये द्वादशं पटलम्

जिन-जिन कीलक की चर्चा की गयी है, उसे काष्ठ से आबद्ध करे। चार माल्य उपहार से उसकी चिकित्सा की जाती है।।१६।।

श्रीसाम्बपुराण देहजात रोग की चिकित्सा नामक पैंसठवें अध्याय का द्वादश पटल समाप्त

●

षट्षष्टितमोऽध्यायः

(सर्वोपद्रवशान्तये व्रतविधिः)

सामान्यां तु यदा मन्त्री चिकित्सां सार्वलौकिकीम्।
प्रार्थितो वा नृपेन्द्रेण तथा कुर्यादिमं विधिम्॥१॥
व्रतं पूर्वं समुद्दिष्टं नायकानान्तु शान्तये।
शान्तयेऽद्भुतहोमेन सत्वं वापि विनायकम्॥२॥
स्वेन गात्रेण वै नश्येत् साधकः सर्वकर्मणि।
तस्माद् व्रतं तु वै कार्यं सर्वोपद्रवशान्तये॥३॥
अन्यथा हीयते मन्त्रः स्वेन गात्रेण योजयेत्।
श्वेताम्बरधरो मन्त्री श्वेतमाल्यानुलेपनः॥४॥

जब साधक साधारण रूप से सबकी चिकित्सा करे अथवा राजा द्वारा प्रार्थित होकर (चिकित्सा करें) तब इस विधि का पालन करे। नायक की शान्ति के लिये व्रत की कथा पहले ही कही है। भूतहोम द्वारा सत्व तथा विनायक का प्रशमन करना होगा। साधक सब कर्म में अपने गात्र द्वारा (विघ्न) नाश करे। तदनन्तर समस्त उपद्रव की शान्ति-हेतु व्रत-पालन करे। अन्यथा मन्त्र क्षयीभूत होगा। इसलिये अपनी गात्रयोजना करे। साधक श्वेत वस्त्र धारण करके श्वेत माला द्वारा शोभित हो जाय॥१-४॥

जितेन्द्रियः प्रशान्तात्मा काष्ठमौनी सुमन्त्रितः।
शुद्धवर्णां समादाय पत्नीं शुद्धकुलात्मजाम्॥५॥
दशाहन्तु तया सार्धं ब्रह्मचारीव्रतं चरेत्।
दासविभ्रमयोगेन न कुर्यादात्मनः कृतम्॥६॥

जितेन्द्रिय, प्रशमात्मा, काष्ठमौनी संयत होकर शुद्धवर्ण ब्राह्मण शुद्धकुलोत्पन्ना पत्नी लाकर उसके साथ ब्रह्मचर्य व्रत के साथ दस दिन रहे। दास-विभ्रम योग से जो स्वयं करणीय है, ऐसा कुछ न करे॥५-६॥

अतीते दशरात्रे तु द्वितीयां क्षत्रियां तनुम्।
सर्वपीतोपहारेण श्रृङ्गारैः कृतभूषणः॥७॥
सुमना दृढचित्तश्च दशाहं क्षत्रियापतिः।
वैश्यो गुणसमायुक्तः पीतवस्त्रानुलेपनः॥८॥
दृढचित्तश्चरेन् मन्त्री दशाहं वैश्यगोचरः।
कृष्णवस्त्रोपहारेण कृष्णवर्णान् तु योजयेत्॥९॥

दश रात्रि बीतने पर द्वितीय (दूसरी) क्षत्रिय कन्या लाकर (पत्नीरूप) समस्त पीत वर्ण के उपहार के साथ शृङ्गार से भूषित करके शोभन मनस्क तथा दृढ़ चित्त होकर १० दिन क्षत्रियपति होकर रहे। इसी प्रकार वैश्य गुणयुक्त (वैश्यकन्या को पत्नीरूपा करके) पीत वस्त्र तथा अनुलेपनादि ग्रहण करके दृढ़ चित्त होकर उसके साथ दस दिन विचरण करे। इसी प्रकार दस दिन कृष्णवर्णा (शूद्रा) को (पत्नी बनाकर) कृष्ण वर्णात्मक वस्त्रादि से विभूषित करके दृढ़ हो, उसके साथ रहे।।७-९।।

गणिकां सर्ववर्णां वै पञ्चमं सार्ववर्णिकम्।
कृत्वा व्रतसमाप्तिं तु योनिचक्रं ततो यजेत्॥१०॥

सर्ववर्णमयी गणिका के साथ (यह पञ्चम सार्ववर्णिक है) व्रत समापन करके योनिचक्र का यजन करे।।१०।।

तत्राभिषिच्य चात्मानं हन्याद्रोगांस्त्वशेषतः।
यावत्कालं व्रतं युञ्ज्यात्तावत्कालं यजेन्नरः॥११॥
अहस्तु पूजयेद् देवं निशायां तु न पूजयेत्।
एतद् व्रतं त्वया प्रोक्तं मन्त्रिणां सिद्धिदं परम्॥१२॥

वहाँ स्वयं को अभिषिक्त करे। निःशेष रूप से रोग का विनाश करे। जब तक व्रतानुष्ठान करना है, तब तक कालयोजन करना चाहिये। दिन में देवपूजन करे, रात्रि में न करे। इस प्रकार यह जो व्रत तुमसे कहा है, वह मन्त्रज्ञ साधक के लिये परम सिद्धि देने वाला है।।११-१२।।

सर्वसिद्धिपरो मन्त्री व्रतमेतत्समाचरेत्।
न पाणिपादचपलो न नेत्रचपलो भवेत्॥१३॥
न तु वाक् चपलश्चैव लघ्वाहारो जितेन्द्रियः।
साधयेत् प्रयतो नित्यमुपसर्गान् निजोद्धरेत्।
हन्तारः सर्वविघ्नानां नरा व्रतपरास्तु ये॥१४॥

इति श्रीसाम्बपुराणे ज्ञानोत्तरे सर्वोपद्रवशान्तये व्रतविधिर्नाम षट्षष्टितमेऽध्याये त्रयोदशं पटलम्

●

सर्वचिकित्सा-परायण मन्त्रज्ञ इस व्रत का आचरण करे। हाथ-पैर न हिलाये, नेत्र चालित न करे तथा वाक्य की चञ्चलता भी न करे। स्वल्पाहार तथा जितेन्द्रिय होकर सयत्न नित्य साधन करे तथा उपसर्गों का विनाश करे। इससे व्रतपरायण व्यक्ति के समस्त विघ्नों का विनाश होता है।।१३-१४।।

श्री साम्बपुराणान्तर्गत ज्ञानोत्तर व्रतविधान नामक छियासठवें अध्याय का त्रयोदश पटल समाप्त

●

सप्तषष्टितमोऽध्यायः

(वेधयोगवर्णनम्)

एतद् व्रतं महापुण्यं चरेदुत्तरसाधने।
अर्द्धन्त्वधमयोगे तु पादमेकं तथाधमे ॥१॥
यदुक्तं साधने तस्मिन् पुराकल्पे महौजसा।
वेधयोगान् प्रवक्ष्यामि दिव्यभौमार्थसाधकान् ॥२॥
सत्त्वं रजस्तमश्चैव तिस्रो वै मन्त्रयोनयः।
ब्रह्मा विष्णुस्तथा रुद्रस्ते वै साध्यास्तु मन्त्रिणः ॥३॥

उत्तर-साधन में महापूजा तथा व्रतानुष्ठान करना चाहिये। अधम योग में अर्ध तथा अधमाधम में एकपाद। पूजाकल्प में उस साधन के विषय में महान् तेजस्वी ने जैसा कहा है, दिव्य तथा भौम प्रयोजन के साधकों के लिये वेधयोग का वर्णन मैं करता हूँ। सत्व, रज तथा तम—ये तीनों मन्त्रयोनि हैं। ब्रह्मा (रजोगुण में), विष्णु (सत्वगुण में) तथा रुद्र (तमोगुण में) साधकों के साध्य हैं।।१-३।।

अर्चायां कामसङ्कल्पश्चाग्निकार्ये यथा पुनः।
नारी दुःखप्रकृत्यां च लिङ्गे वा सार्वकामिके ॥४॥
चतुर्भुजा भवेत् सा हि नरमाक्रम्य संस्थिता।
खट्वाङ्गं दक्षिणे तस्याः कपालं वामके करे ॥५॥
चक्रं वरः क्रमाद्धस्ते अर्धा स्याद्दिव्यमानुषैः।
क्रूरा दन्तांश्च विन्यस्य तेजोराशिपुटानि षट् ॥६॥

अर्चनीय प्रतिमा में यथाभिलषित संकल्प, अग्निकार्य (होम), नारी दुःख प्रकृति में (?) अथवा सार्वकामिक लिङ्ग में साधन करे। वह नारी चतुर्भुजा, महादेव पर संस्थिता, उनके दाहिने हाथ में खट्वाङ्ग तथा बाँयें हाथ में कपाल है। अन्य हस्तद्वय में क्रमशः चक्र तथा वरमुद्रा है। दिव्य मनुष्यमाला से (कपालमाला) शोभित हैं, उससे उनका अर्द्धांग ढ़का है। क्रूर दन्तों को विन्यस्त करके छः तेजोराशिपुट का विस्तार हो रहा है।।४-६।।

क्रमान् मन्त्रपदं चैकं शिष्टं तस्यैव सम्पुटम्।
जपित्वा क्रमयोगेन लक्षमन्त्रान् सुसंयतः ॥७॥
व्रतं त्वनन्तरं कार्यं कामं तत्साधकेन तु।
पासं गुग्गुलुहोमः स्याच्छागमांसेन योजितः ॥८॥
त्रिसंध्यं ताडनं प्रीत्या होमश्चाथमनन्तरम्।
प्रतिसन्ध्यं सहस्रं तु यावन्मासो विनिर्गतः ॥९॥

क्रम से एक मन्त्र पद है और उसका सम्पुट है शिष्ट (?)। सुसंयत होकर क्रमयोग से एक लाख मन्त्र-जप करना चाहिये। तदनन्तर साधक यथाभिलषित व्रत करे। एक मास पर्यन्त बकरे के मांसयुक्त गुग्गुलु से होम करे। प्रीतिपूर्वक तीन सन्ध्या ताड़न, तदनन्तर यह होम करे। प्रतिसन्ध्या १००० होम करे जब तक १ मास पूर्ण न हो जाय।।७-९।।

एवं संसाधितो मन्त्रः कामदस्तु सदा भवेत्।
तन्त्रज्ञः साधयेदेवमथवा मन्त्रवित्तमः ।।१०।।

इस प्रकार का मन्त्र-साधन समस्त कामना पूर्ण करता है। तन्त्रज्ञ साधक इस प्रकार साधन करे अथवा मन्त्रज्ञों में से श्रेष्ठ व्यक्ति साधन करे।।१०।।

सुसहायः प्रसन्नात्मा नित्ययुक्तश्च सात्त्विकः।
मोहादारभते यस्तु साधनं वेधवर्जितः ।।११।।
कृत्या भवति वै सा हि देवता हीनकर्मणि।
विपिने काष्ठमौनी स्यादथवा साधकैर्वदेत् ।।१२।।
समयज्ञैस्ततो विप्रैरन्यथा हीनसाधनः।
यादृशः साधको ज्ञेयः सहायस्तस्य तादृशः ।।१३।।

उपयुक्त सहायक के साथ प्रसन्न अन्तःकरण से नित्ययुक्त सात्विक साधक साधन करे। जो वेधवर्द्धित होकर मोह के कारण साधन प्रारम्भ करते हैं, देवताहीन कर्म उसके लिये अनिष्ट-कारिणी हो जाते हैं। वन में काष्ठमौनी हो अथवा समान याज्ञिक ब्राह्मण साधकों के साथ ही वार्त्ता करे। अन्यथा वह हीन साधन होगा। उसका सहायक भी ऐसा ही होगा।।११-१३।।

तत्त्वदृष्टेन योगेन साध्यं मन्त्री समारभेत्।
तपस्वी च जितात्मा च नित्यभक्तो महेश्वरे ।।१४।।
एवंविधस्तु वै मन्त्री काले यो मृत्युमाप्नुयात्।
अनन्तास्तस्य वै लोका इति मन्त्रव्यवस्थितिः ।।१५।।

तत्त्वदृष्ट योग द्वारा साधक साधन प्रारम्भ करे। वह मननशील साधक तेजस्वी हो, जितात्मा तथा महेश्वर के प्रति भक्तियुक्त हो। ऐसा साधक पूर्ण परिणत काल में (पूर्णायु में) मृत्यु को प्राप्त होता है। उसे अनन्त लोक मिलता है। यही मन्त्र की व्यवस्था है।।१४-१५।।

पुण्यात्मा सुकृते स्थाने राजा वा सार्वभौमिकः।
विद्या सिद्धा भवन्त्येते साधकास्तु महीतले ।।१६।।

इति श्रीसाम्बपुराणे ज्ञानोत्तरे वेधयोगवर्णनं नाम सप्तषष्टितमेऽध्याये चतुर्दशं पटलम्

साधक एक पृथ्वी पर (किसी एक लोक में) पुण्यवान् व्यक्ति के गृह में जन्म लेकर अथवा सार्वभौम राजा के घर में जन्म लेकर विद्यासिद्ध होता है।।१६।।

श्रीसाम्बपुराणान्तर्गत ज्ञानोत्तर वेधयोग वर्णननामक सड़सठवें अध्याय का चौदहवाँ पटल समाप्त

●

अष्टषष्टितमोऽध्याय:

(सर्वसामान्यसाधनम्)

साधनं संप्रवक्ष्यामि यथा सिद्ध्यन्ति साधका: ।
वेधयोगांश्च विमलान् नानासिद्धिफलप्रदान् ॥१॥
षाण्मासिकं तु वै योज्यं पुरश्चरणमादिशेत् ।
शाकादिना विधानेन जलैर्वापि च शोधनम् ॥२॥
ध्यायेच्च प्रणवं पश्चात् सहस्रं शतषड्गुणम् ।
आयच्छन्न तु सम्भ्रान्त: पूर्वेणापूर्णचेतसा ॥३॥
शुद्धकायस्ततो मन्त्री कृत्वा वासगृहं तत: ।
तस्मिन् संस्थापयेद् देवं विधिना शास्त्रचोदितम् ॥४॥

जिससे साधकों को सिद्धि प्राप्त होती है, उन साधनों की कथा कहूँगा। यह निर्मल, वेधयोग्य तथा नाना सिद्धिदायिनी है। छ: मास पुरश्चरण करे। शाकादि विधान द्वारा अथवा केवल जल द्वारा शोधन करे। प्रणव का ध्यान करना चाहिये। तदनन्तर छ: सौ हजार जप करना चाहिये। जल्दबाजी अथवा असन्तुष्ट मन से जप कभी न करे। मननशील साधक देहशुद्धि करके निवास का गृह निश्चित करे और उस गृह में यथाशास्त्र विधान से देव-स्थापना करनी चाहिये॥१-४॥

विद्याङ्गानि त्वरिष्टानि स्वमन्त्रं विधिना क्रमात् ।
सहस्रदशपर्यायमेवैकं परिवर्त्तयेत् ॥५॥
ततो मन्त्रं समाधाय ईप्सितं मनस: शुभम् ।
आप्यायितुं विरक्तं च दीपितै: शास्त्रत: क्रमात् ॥६॥

क्रमश यथाविधि विद्याङ्ग, अरिष्टसमूह तथा अपना मन्त्र पर्याय क्रम से दस हजार जपे। तदनन्तर मन में ईप्सित मन्त्र को सम्यक् रूप से धारण करे और यथाशास्त्र आप्यायित, विरक्त तथा दीपित करे।।५-६।।

जपान्ते तु व्रतं योज्यं व्रतान्तेऽपि च साधनम् ।
अतस्तान् मण्डले योग: साध्यमन्त्रस्य साधने ॥७॥
प्रोक्ता: क्रमेण विधय: सर्वमन्त्रानुसारिण: ।
असिध्यमेध्यमायोज्यं कृते वा व्यञ्जनादिके ॥८॥

जपान्त में व्रत करना चाहिये। व्रत के पश्चात् भी साधन किया जाता है। साध्य मन्त्र के साधन के अन्त में मण्डल में योग करना चाहिये। सभी मन्त्र के अनुसार क्रमशः विधि का वर्णन किया गया। व्यञ्जनादि का योग करने से मन्त्र की असिद्धि होती है। अमेध्य युक्त होता है(?)।।७-८।।

तन्त्रोक्तं वेधमादध्याद् स्वमन्त्राकारमेव च।
साधयेदथ तन्त्रज्ञो यज्ञस्य नवसः क्रियात् ।।९।।

अपने मन्त्र के अनुसार तन्त्रोक्त वेध को ग्रहण करे। तदनन्तर तन्त्रज्ञ व्यक्ति यज्ञ का साधन करे।।९।।

होमान्ते ह्यग्निकुण्डायां चोदितो विधिनोत्थितः।
नरो न सिद्धिमान् यः स्यान्मन्त्ररूपी स दृश्यते ।।१०।।
चलत्यपि तथा मन्त्रं मन्यन्ते परिचारिकाः।
उद्यताश्च महाघोरा लक्ष्यन्ते मन्त्रिणः परे ।।११।।

अब विधिवत् उठकर होमान्त में अग्निकुण्ड का चालन करने से केवल लोक में ही सिद्धि नहीं मिलती, अपितु जो मन्त्ररूपी (देवता) हैं, वे भी दृश्यमान होते हैं।।१०-११।।

लक्षयेद्यदि रूपेण शास्त्रस्योक्तस्य लक्षितम्।
सिद्धमन्त्रं विजानीयादन्यथा तु विनाशकः ।।१२।।
उत्थाय यदि मन्त्रेण स्वेनार्थः सम्प्रदृश्यते।
साध्यः स एव विज्ञेयोऽन्यथा घातयते तु तम् ।।१३।।

यदि इसे शास्त्रलक्षण के अनुसार स्वरूप में देखा जाय तब इसे मन्त्रसिद्धि कहा जाता है, अन्यथा यह विनाशक है। यदि मन्त्र उत्थित (जाग्रत) होकर अपने अर्थ को प्रकट कर दे तब उसे साध्य कहते हैं, अन्यथा वह मन्त्र साधक का विनाश करता है।।१२-१३।।

पातालदिशि वान्तस्तु क्रमतस्तत्र साधकः।
विद्यासिद्धो तु वै मन्त्री कामाद्वै घोरकं प्रदम् ।।१४।।
सिद्धो यः स श्रिया राजा सप्तद्वीपाधिपो बली।
भुक्त्वा तु पार्थिवान् भोगान् शिवं याति तनुक्षये ।।१५।।

पाताल (?) की ओर अथवा अन्तःकरण में क्रमशः साधक विद्यासिद्धि के विषय में कामना करे। विद्यासिद्धि से वह……(कामाद्वै घोरकं प्रदम् का कोई तात्पर्य ही नहीं है। प्रतीत होता है कि यहाँ कुछ पंक्तियाँ लुप्त हैं)। जो सिद्ध हो जाते हैं, वे ऐश्वर्य के साथ ही बलवान् सप्तद्वीप के अधिपति होते हैं। सभी पार्थिव भोगों का भोग करके देह के अन्त होने के पश्चात् शिवलोक प्राप्त करते हैं।।१४-१५।।

एतास्तु सिद्धयः प्रोक्ता उत्तमाः सर्वकामदाः।
तदर्द्धा मध्यमा ज्ञेयाः कनीयस्योदूर्ध्वतोऽप्यतः ॥१६॥

इस प्रकार सभी कामनाओं की उत्तम सिद्धि की बातें कही गयीं। इससे आधी मिलने पर मध्यम तथा आधे से कम मिलने पर कनिष्ठ सिद्धि कही गयी है।।१६।।

स स कामयति सिद्धो ह्यन्यस्मिन्सिद्धिमिच्छति।
सहायैर्गुग्गुलुयोगैः सिद्धो ध्यानी ततोऽन्यथा ॥१७॥

साधक एक विषय में सिद्ध होकर अन्य विषय की सिद्धि चाहने लगता है। गुग्गुलु के योग से ध्यानी साधक सिद्ध हो जाता है॥१७॥

भ्रष्टराज्यो नरो देवो यदि स्यात्सिद्धिशोधिते।
असिद्धे तु गुणो योगे जपादेर्व्रतिनो नराः ॥१८॥

यह न होने पर वह राज्यभ्रष्ट होता है। सिद्धि से शोधित होकर नर ही देवत्व लाभ कर लेता है। गुणयोग (त्रिगुणयोग) से असिद्ध हो जाने पर व्यक्ति जपादि द्वारा व्रत ग्रहण कर सकता है॥१८॥

सुखं क्रामन्ति वै सिद्धिं संतृप्ता मन्त्रदीपिताः।
हीनो यो हि नरो योज्यः किं पुनः साधकेक्षते ॥१९॥

मन्त्र द्वारा दीपित साधक तृप्त होकर सुख में सिद्धिलाभ के पथ पर अग्रसर होता है। हीन व्यक्ति भी मन्त्र द्वारा युक्त हो जाते हैं, फिर अन्य साधकों की तो बात ही क्या है।।१९।।

मासं गुग्गुलुहोमस्तु सर्वदा सर्वकर्मसु।
जपवृद्धिः सदा योज्या संक्रमे मन्त्रिणा सदा ॥२०॥

एक मास-पर्यन्त सभी कर्म में गुग्गुलु का होम करना चाहिये। मन्त्री साधक सर्वदा जप-वृद्धि करता रहे॥२०॥

सङ्कल्पक्रमणं युज्यान्नासङ्कल्पस्तु सिद्ध्यति।
सङ्कल्पं तु ततः कृत्वा साध्यं मन्त्री तु साधयेत् ॥२१॥

सभी कार्य में सङ्कल्प करना आवश्यक है। सङ्कल्प के अभाव में सिद्धि नहीं मिलती। अतः सङ्कल्प करके साधक (मन्त्रसाधक) साधार साधन करे॥२१॥

जितेन्द्रियः सत्यवादी दृढचर्यारतः शुचिः।
मितभुग्मितभाषश्च साधयेत्सिद्धिमुत्तमाम् ॥२२॥

सत्यवादी, द्वन्द्वों को जीतने वाला, दृढ़ रूप से आचरण में रत, पवित्र, अल्पाहारी तथा वाक् संयमी साधक उत्तम सिद्धि प्राप्त करते हैं॥२२॥

न सम्भाषेत वै शूद्रं प्रमादान् मन्त्रसाधकः।
अरक्तो रञ्जयेल्लोकान् कामी चेत्स्यादकामुकः ॥२३॥

मन्त्रसाधक प्रमाद के कारण भी कभी शूद्र से वार्त्ता न करे। अनासक्त होकर लोगों का मनोरञ्जन करे तथा (लोगों के) कामी होने पर भी स्वयं अकामुक निस्पृह ही रहे॥२३॥

गूढविद्याव्रतश्चापि प्रमादी स्यात् स साधकः।
क्रियां च सुदृढां कुर्यान्नविधि चेत्स साधकः ॥२४॥

गूढ़विद्या व्रताचरण में प्रमादी (?) हो जाय, सुदृढ़ क्रिया करे; किन्तु किसी की हिंसा न करे (यहाँ प्रमादी पद उचित नहीं लगता, इसे अप्रमादी होना चाहिये)॥२४॥

यावद् व्रतं तु यः कुर्यात्तस्य सिद्ध्यन्ति लौकिकाः।
जपित्वा सहितां मासं ततः साध्यं प्रयोजयेत् ॥२५॥

जो इतने दिनों तक व्रत करते हैं, उनके लौकिक कार्य सिद्ध हो जाते हैं। एक मास जप करने के उपरान्त साध्य का प्रयोग करना चाहिये॥२५॥

प्रसूतिं घातकं कृत्वा लवणस्याहुतिं क्रमात्।
सप्तरात्रं तथा हुत्वा वशे जन्तून् करोति सः ॥२६॥
प्रतिलौमैस्तथा वर्णैः साधको घातकस्य तु।
शृङ्गवेरविषे हुत्वा घातयेत् सर्वजन्तुकान् ॥२७॥

प्रसूति के घात का (?) समर्पण करके क्रमशः लवण की आहुति देनी चाहिये। सात रात्रि आहुति देने पर साधक सभी प्राणीगण को वश में कर लेता है। घातक के प्रतिलोम (?) वर्ण द्वारा साधक को शृंगवेर के विष की आहुति देनी चाहिये, इससे वह सभी जन्तुओं का विनाश कर सकता है॥२६-२७॥

अव्रती नैव संसिद्धेदजयः साधकः स वै।
मोहादारभते यस्तु हन्यते स विधानवित् ॥२८॥

जो व्रतानुष्ठान नहीं करते, उन्हें कभी भी सिद्धि प्राप्त नहीं होती। वह असंयमी है। जो मोहवशात् विधान जाने विना आरम्भ करता है, वह विनष्ट हो जाता है॥२८॥

वेधकामस्तु मन्त्रस्तु यदि रूपं समालिखेत्।
पूर्वोक्तेन विधानेन त्रिमुखान्तां चतुर्भुजाम् ॥२९॥
अष्टशक्तिपरो चैव दिक्पतीनां च रूपकैः।
रश्मयस्तु यथार्कस्य तथा मन्त्रस्य ताः स्मृताः ॥३०॥

यदि वेधकामना से मन्त्र का रूप अंकित किया जाय, तब पूर्वोक्त विधानानुसार त्रिमुखान्त चतुर्भुजा का अङ्कन करे। अष्टशक्ति तथा दिक्पाल का रूप, सूर्य की रश्मिसमूह जिस प्रकार से मन्त्र में स्मृत है, उसे अङ्कित करना चाहिये॥२९-३०॥

यथा विष्णुस्तथा रुद्रो वीरभद्रश्च पार्श्वतः।
एते मन्त्रस्य वै योज्याः सर्वकालं च मन्त्रवित्॥३१॥
होमकाले तु मन्त्रस्य जपेन विनियोजयेत्।
शान्तने चापि रोगाणामेष दृष्टो विधिः परः॥३२॥

जैसे विष्णु हैं, उसी प्रकार से रुद्र हैं। पार्श्व में वीरभद्र रहते हैं। मन्त्रज्ञ व्यक्ति मन्त्र में सर्वदा इसी प्रकार से योग करे। होमकाल में मन्त्र को जपयुक्त करने से (मन्त्रजप द्वारा) रोगों के विनाश की यह श्रेष्ठ विधि है॥३१-३२॥

संशयी तु यदा स स्यात्तदा कुर्यादिमं विधिम्।
साधयेत् कामतो ह्यर्थान् पतिः स्याद् बीजसत्तमः॥३३॥

साधक जब संशयापन्न हो जाय, तब इस विधि का पालन करे। यथाकामना प्रयोजन साधन करे। पति (?) श्रेष्ठ बीज है॥३३॥

राष्ट्रभङ्गनिपाते वा स्थानत्यागे तथा बुधः।
सम्पुटे स्थापयेन्मन्त्रं यावत्कालविपर्ययः॥३४॥
संहारान्तं ततः कृत्वा मध्ये मन्त्रं तु योजयेत्।
पुनः संहारमायोज्य मध्ये बीजेन वेष्टयेत्॥३५॥

राष्ट्रभंग अथवा विपदा के समय, किंवा स्थानत्याग-काल में तत्त्वज्ञ व्यक्ति संपुट मन्त्र स्थापित करे, जब तक कालविपर्यय न हो जाय। तदनन्तर संहार-पर्यन्त करके मध्य में मन्त्र योजित करे। पुनः संहार करे। मध्य में बीज से वेष्टन करे॥३४-३५॥

दशवर्णेन बीजेन स्वङ्गप्रत्यङ्गयोजनम्।
न्यस्तो भवति वै मन्त्रः कालमाकल्पमन्त्रिणाम्॥३६॥
अधस्तात् प्रणवं कृत्वा प्लुतो भवति पादयोः।
पुनः पुनस्तथा हस्ते व्योकारश्चापि वामके॥३७॥
हृदये तु मकारः स्याद् व्योकारः जठरे स्थितः।
पिकारः पृष्ठसंस्थो वै नकारो मुखसंस्थितः॥३८॥
प्रणवं स्थापयेन्मूर्ध्नि स च दृष्टो विधिः परः।
न्यस्तो भवति वै मन्त्रो यावत्कालं तु साधनम्॥३९॥

दशवर्ण बीज द्वारा अंग प्रत्यङ्ग को योजित करना चाहिये। मन्त्र विन्यस्त हो जाने पर मन्त्र साधक के यावत् जीवन के लिये हो जाता है। निम्न में प्रणव करे। पादद्वय में दो प्लुतस्वर हो। ऐसा बारम्बार करते हुये बाँयें हाथ में व्योकार, हृदय में मकार, जठर में व्योकार, पृष्ठ में पिकार, मुख में नकार तथा मस्तक में प्रणव की योजना करनी चाहिये। यह श्रेष्ठ विधि है। जब तक साधन है, तब तक मन्त्र न्यस्त रहता है।।३६-३९।।

विधिरेष तु मन्त्राणां सूक्ष्मो वै सर्वतोमुखः।
असन्देहेन सिद्धेन विधिगुप्तेन मन्त्रवित् ॥४०॥

सर्वतोभाव से मन्त्र की यही सूक्ष्म विधि है। मन्त्रज्ञ व्यक्ति नि:संदेह विधि को गोपनीय रखकर सिद्धि प्राप्त करता है॥४०॥

ग्रहणे चापि मन्त्रस्य भिन्नकार्याश्च मन्त्रिणः।
मूलन्तु साधनं युञ्ज्यादाद्यन्तकविधिः क्रमात् ॥४१॥

सूर्य-चन्द्रग्रहण काल में मन्त्र का भिन्न कार्य होगा। मूल मन्त्र से साधन करनी चाहिये। क्रमशः आदि तथा अन्त की विधि युक्त करे॥४१॥

क्रमाद्वा नैव कुर्वन्ति कृतमित्यत्र साधनम्।
आमन्त्र्य तु विवर्त्तेत तन्त्रयुक्तं तु साधयेत् ॥४२॥

अथवा क्रमशः करे। यह न विचारे कि साधन किया जा रहा है। आमन्त्रण करके विवर्त्तन करना चाहिये। तन्त्रोक्त विधि से साधन करना उचित है।।४२।।

मन्त्रे जपे च ये लग्नास्तथा व्रतविधौ स्थिताः।
साधनं तु पुनस्तेषां यथाशास्त्रसमागमम् ॥४३॥

मन्त्र तथा जप में इस विधि से जो लग्न रहता है, यथाशास्त्र पुनः उसका साधन होता है॥४३॥

स्वल्पेऽपि साधने युञ्ज्याज्जपव्रतरतैस्तु वै।
अन्यथा हीयते मन्त्री कर्म वापि निरर्थकम् ॥४४॥

अल्प साधन में भी जप तथा व्रतपरायण होना चाहिये; अन्यथा साधक भ्रष्ट हो जाता है और उसका कर्म भी निरर्थक होता है।।४४।।

मासं साधनयोगेन जपित्वा चापि संहिताम्।
पञ्चरात्रव्रतं पश्चादसिधारं यथाक्रमम् ॥४५॥

एक मास साधन योग द्वारा संहित होकर जप करना चाहिये। पञ्चरात्र व्रत का अनुष्ठान करे। तदनन्तर यथाक्रमेण असिधार व्रत का पालन करना चाहिये।।४५।।

क्षुद्रान् रोगान् गृहांश्चापि तथा व्याधीनुपद्रवान्।
इच्छातः साधयेत् सर्वांस्तीक्ष्णव्रतरतो नरः ॥४६॥

तीव्र व्रतरत व्यक्ति क्षुद्र रोग, गृहदोष, व्याधि तथा उपद्रवों का इच्छामात्र से शमन कर सकता है।।४६।।

महातपस्वी च जितेन्द्रियश्च न चान्यभक्तश्च महेश्वरादसौ ।
विद्यासु तत्त्वेषु महास्थितिंश्च प्राप्नोति विद्याधरमुक्तलक्ष्मीम् ॥४७॥

जो महातपस्वी, जितेन्द्रिय हैं, महेश्वर के ही भक्त हैं, वे विद्या तथा तत्त्वसमूहं की महास्थिति का तथा विद्याधरत्व का ऐश्वर्य प्राप्त करते हैं।।४७।।

दशात्मकं तु तं बुद्ध्वा बीजतत्त्वन्तु कृत्स्नतः ।
नियोगं पदबीजानां बुद्धिसिद्धिं यथोदिताम् ॥४८॥

उसे दशात्मक जान लेने पर समग्र भाव से बीजतत्त्व तथा पदबीज में नियोग होता है। यथोदित बुद्धिसिद्धि प्राप्त होती है।।४८।।

सर्वमन्त्रात्मका देवाः सर्वदेवाः शिवात्मकाः ।
शिवतन्त्रपदैर्बीजैः कालकालकृपादिभिः ।
बुद्ध्या सम्यग्यथान्यायं सिद्धिं चाशु प्रवर्तते ॥४९॥

इति श्रीसाम्बपुराणे ज्ञानोत्तरे अष्टषष्टितमेऽध्याये सर्वसामान्यसाधनं नाम पञ्चदशं पटलम्

●

सभी देवगण मन्त्रात्मक हैं। सभी देवता शिवात्मक हैं। शिवोक्त तन्त्रोक्त बीज तथा काल में महादेव की कृपा से बुद्धि की सहकारिता से यथान्याय सिद्धि की शीघ्र प्राप्ति होती है।।४९।।

श्रीसाम्बपुराणान्तर्गत ज्ञानोत्तर अड़सठवें अध्याय में सर्वसामान्य-साधन नामक पन्द्रहवाँ पटल समाप्त

●

एकोनसप्ततितमोऽध्यायः

(तत्त्वमण्डलवर्णनम्)

तत्त्वानुसारेण पथः क्रमशोऽथानुवर्ण्यते।
शिवलोकं यथा येन प्रविशेद् गृहवद् गृही॥१॥

तन्त्रानुसार पदों का क्रमशः वर्णन करता हूँ, जिसके द्वारा जैसे गृही घर में प्रवेश करता है, तदनुसार ही साधक शिवलोक (शिवगृह) में प्रवेश करता है॥१॥

गणमण्डलतत्त्वज्ञस्तेषु पापरतः सदा।
अनेकशोऽभिषिक्तश्च शिववद्गुरुपूजकः॥२॥

गणमण्डल के तत्त्व को न जानने वाला, उसमें सदा पापरत (?), अनेक बार अभिषिक्त व्यक्ति शिवतुल्य होता है॥२॥

अर्पितः शिवयोनौ च गर्भश्चाम्बिकया धृतः।
योगेन जनितश्चैव योगात्मा योगसम्भवः॥३॥

शिवयोनि में अर्पित होकर अम्बिका द्वारा जब गर्भ को धारण किया जाता है तभी योग द्वारा योगात्मा योगसम्भव की उत्पत्ति होती है॥३॥

जातकर्मगुणैर्युक्तः स्नानादिगतकल्मषः।
कृतरक्षश्च धूपेन सत्यात्मा सत्यसम्भवः॥४॥

जन्म-कर्म-गुण द्वारा युक्त होकर स्नान से पाप हटता है। धूप से रक्षित होकर सत्यात्मा सत्यसम्भव हो जाता है॥४॥

प्रसृतस्त्रिवृतान्तं च मूर्ध्न्याघ्रातः शिवात्मना।
कर्तृवत् कृतचूडोऽयं मन्त्रशक्तितनुस्थितः॥५॥

निर्गत त्रिवृत्तान्त शिवरूप में मस्तक द्वारा आघ्रात होने पर मन्त्रशक्ति का देहस्थित चूड़ाकरण होता है॥५॥

विधिना चोपनीतस्तु मुञ्जाजिनधरः शुचिः।
देवव्रतधरो मुण्डी जटी वा भैक्ष्यभोजनः॥६॥

विधिवत् उपवीत धारण करके, मुञ्जा, मृगचर्म धारण करके पवित्र होकर देवता का व्रत पालन करना चाहिये। मस्तक का मुण्डन करके जटाधारी होकर भिक्षालब्ध वस्तु का भोजन करना चाहिये।।६।।

विधिनाऽधीतविद्यश्च सर्वज्ञो बीजवित्तमः ।
कृतात्मा कृतविद्यश्च कृतगोदानदक्षिणः ॥७॥
पाकयज्ञो हविर्यज्ञो सोमयाजी तथैव च ।
शिवमार्गानुसारी च धनवान् योगनिश्चयः ॥८॥

यथाविधि विद्याध्ययन तथा सर्वज्ञता लाभकर श्रेष्ठ बीजविद् कृतात्मा, कृतविद्य को जिन्होंने गोदान दिया है, जो पाकयज्ञ, हविर्यज्ञ तथा सोमयाग करता है, जो शिवमार्ग का अनुसरण करने वाले हैं, वे धनवान तथा योगविषय के ज्ञाता हो जाते हैं॥७-८॥

यथोक्तज्ञानकर्मस्थो गुणदोषविवर्जितः ।
नास्ति निर्माल्यदोषश्च सर्वतत्त्वेषु सिद्ध्यति ॥९॥

यथोक्त ज्ञान तथा कर्म में अवस्थित व्यक्ति गुण तथा दोष से रहित हो जाते हैं। उनको निर्माल्य दोष भी नहीं होता और वे सर्वतत्त्वों को सिद्ध कर लेते हैं॥९॥

एवंगुणविशिष्टात्मा तपस्वी द्वन्द्ववर्जितः ।
क्रोधादिभिर्वियुक्तश्च समलोष्ठाश्मकाञ्चनः ॥१०॥

ऐसे गुणयुक्त तपस्वी द्वन्द्व-वर्जित (शीतोष्ण, सुख-दुःख रहित) क्रोधादि रहित होते हैं। वे लोष्ठ (मिट्टी), प्रस्तर तथा काञ्चन में समदृष्टि होते हैं॥१०॥

आत्मवत् सर्वभूतेषु सर्वमात्मनि पश्यति ।
प्राणायामादिभिः खिन्नस्तुत्या च पुटसंशयः ॥११॥

सभी प्राणियों को आत्मवत् देखते हैं तथा अपनी आत्मा में ही सब कुछ देख लेते हैं। प्राणायाम-प्रभृति द्वारा खिन्न होने पर भी संशयरहित हो जाते हैं॥११॥

विशुद्धाचार आचार्यो भावतः प्रणियुज्यते ।
अनेन क्रमयोगेन विशेद् देवं परं प्रभुम् ॥१२॥

विशुद्ध आचारयुक्त आचार्य भाव से (गुरुभक्ति से) युक्त हो जायँ। इस क्रमयोग द्वारा प्रभु परम देवता में प्रवेश करे॥१२॥

प्रतिकर्तृ प्रतिध्यायी विधिना तत्तदात्मनः ।
ध्यायंश्च शिवमात्मस्थमाचार्य्यं चापि शेषयेत् ॥१३॥

विधिवत् तत्तदात्मा का एवं आत्मस्थ शिव का ध्यान करके आचार्य का भी ध्यान करना चाहिये॥१३॥

प्रवक्ष्यति प्रयुक्तश्च दीक्षया विमलीकृतः ।
ध्यानयुक्तः सदा गच्छेद् ध्यायिनं परमं पदम् ॥१४॥

दीक्षा से निर्मल होकर सर्वदा ध्यानयुक्त होकर ध्येय परम पद का लाभ करना चाहिये॥१४॥

चरेदुत्पन्नविज्ञानो मुक्तिव्रतमनिन्दितम्।
भूतव्रतादिसिद्ध्यर्थमेकान्ते सर्वतः क्षमी॥१५॥

विज्ञानोत्पत्ति हो जाने पर अनिन्दित मुक्तिव्रत का आचरण करना चाहिये। सिद्धि के लिये भूतव्रताचरण करके सर्वतोभावेन धैर्यवान् होकर निर्जन में अवस्थान करना चाहिये॥१५॥

सन्त्यज्य सर्वकालात्मप्रधानहितवादिनम्।
मतानि विपरीतानि ध्यायेन्नित्यं सदाशिवम्॥१६॥

सर्वकालात्म-प्रधान हितवादियों का तथा विपरीत मतसमूह का परित्याग करके नित्य सदाशिव का ध्यान करना चाहिये॥१६॥

निर्निमित्तं निराकारं वाग्विशुद्धं परात्परम्।
प्रमाणं विषयातीतमदृष्टान्तादिलक्षणम्॥१७॥

वे निर्निमित्त, निराकर, विशुद्ध, परात्पर तत्त्व हैं। वे प्रमाणरूप, विषयातीत एवं दृष्टान्तरहित हैं॥१७॥

ज्योतिषां च परं धाम ज्ञानानां परमं पदम्।
तत्त्वानां परमं तत्त्वं गतीनां परमां गतिम्॥१८॥

वे ज्योतियों के परम धाम (स्थान), ज्ञानसमूह के परमपद, तत्त्वसमूह के परमतत्त्व तथा गतियों की परमगति हैं॥१८॥

तत्त्वेन तन्तुतत्तत्वं तन्तुता चैव सन्ततम्।
तेनैव तन्तुना नित्यं चिन्तयेत्तत्सुनिष्कलम्॥१९॥

तत्त्व के द्वारा उनका तन्तुतत्त्वत्व है। ओत-प्रोतभाव से सर्वत्र उनकी सत्ता है। अतः तन्तु के द्वारा उन निष्कल सदाशिव का नित्य प्रति चिन्तन करना चाहिये॥१९॥

क्षुनिकाध्येययोगज्ञो बिन्दुनादतनुस्थितम्।
मुञ्चति क्षिप्रमात्मानं बुद्ध्वा ज्ञानमयं परम्॥२०॥

क्षुनिका ध्येय योग (?) को जो जानते हैं, वे ज्ञानमय परमतत्त्व को जानते हैं और बिन्दु तथा नाद देहस्थ आत्मा का (देहबोध का) शीघ्र त्याग कर देते हैं॥२०॥

सतस्यास्य योगेन कालेन बहुधा नरः।
विधिना भावशुद्धेन देही बिन्दति सत्पदम्॥२१॥

बहुधा निरन्तर अभ्यास के फल से देहधारी जीव भावशुद्ध विधान द्वारा सत्पद का लाभ करता है॥२१॥

मुहूर्त्तार्द्धार्द्धमात्रेण मन्त्रबीजकलादिभिः ।
दिवार्द्धं रविभागेन देही बिन्दति तत्क्षणात् ॥२२॥

मुहूर्त काल के आधे के आधे में मन्त्र, बीज तथा कला के द्वारा दिन के अर्द्धभाग रविभाग के द्वारा देही तत्क्षण उस सम्पत्ति को पाता है॥२२॥

प्राकृतानि च तत्त्वानि प्रकृत्या प्रकृतानि वै ।
तीव्रं तत्त्वं परं सूक्ष्मं मन्त्रात्मा पञ्चविंशकम् ॥२३॥
तीव्रस्यात्मनि तत्त्वज्ञो योगवान् योगपण्डितः ।
अचिराल्लभते शान्तिं देही तत्त्वेन यो हितः ॥२४॥

तत्त्वसमूह प्राकृत हैं। प्रकृति द्वारा (तत्त्वसमूह) प्रस्तुत ये तीव्र तत्त्व परमसूक्ष्म, मन्त्रात्मा २५ हैं। आत्मा में तीव्रतत्त्व से अभिज्ञ योगयुक्त देही तत्त्वों से युक्त होकर शीघ्र शान्ति-लाभ करता है॥२३-२४॥

धारणात्सततं योगो जपध्यानादिदीपितः ।
योजयंस्तु परं योज्यं लिलिहेत्पत्रमव्ययम् ॥२५॥

जप, ध्यानादि से दीप्त होकर निरन्तर धारणा योग से परम योज्य वस्तु में चित्त को युक्त करके अव्यय पत्र का लेहन करे॥२५॥

एवंगुणविशिष्टस्तु योजयेत्तत्त्वमण्डलम् ।
अगुणस्त्वेव योज्यः स्यान्मन्त्री विद्येश्वरादृते ॥२६॥

इति श्रीसाम्बपुराणे तत्त्वमण्डलवर्णनं नाम एकोनसप्ततितमोऽध्यायः

●

ऐसा गुणयुक्त होकर तत्त्वमण्डल को युक्त करे। इससे साधक विद्येश्वर से व्यतीत (सगुण से परे) अगुण (निर्गुण) से युक्त हो जाता है॥२६॥

श्रीसाम्बपुराण में तत्त्वमण्डल-वर्णन नामक उनहत्तरवाँ अध्याय समाप्त

●

सप्ततितमोऽध्यायः

(बीजप्रसवः)

उक्तो जपो विधिर्विश्वो बीजं च सह कर्मभिः ।
सहयोज्यं यथा बीजमिच्छते परमेश्वरः ॥१॥
वक्तुमर्हस्य शेषेण भक्ताय सततं प्रभो ।
एवमुक्तः प्रभुर्देवः प्राह तस्मै यथाविधि ॥२॥

हे प्रभो! जप-विधि तथा समस्त कर्म के साथ बीज कहा गया है। परमेश्वर योज्य के साथ जैसे बीज की इच्छा की जाती है, वह भक्त से समग्र रूप से आप द्वारा कहना उचित है। ऐसा कहने पर सूर्यदेव ने साम्ब को यथाविधि बतलाना प्रारम्भ किया॥१-२॥

अक्षराणि दशत्रिंशद्योनिरुक्ता मया पुरा ।
सर्वं वै चोच्यते तस्माद्यथाबीजं प्रसूयते ॥३॥

दस अक्षर तथा ३० योनि की बात मैंने पहले बतलायी है। उसमें सब कुछ कह दिया गया है कि बीज कैसे उत्पन्न होता है॥३॥

त्रीणि चत्वारि च द्वे च त्रीणि पञ्च चतुष्टयम् ।
त्रीणि चत्वारि द्वे त्रीणि पञ्च चैव चतुश्चतुः ॥४॥
तद्द्विकेन समायुक्तो योनिरेषा हि विश्वभुक् ।
संपृक्तैषा प्रसूयेत अक्षरेण दशात्मकम् ॥५॥

३, ४, २, ३, ५ तथा ४, ३, ४, २, ३, ५ एवं १६। दो के द्वारा युक्त होने पर योनि विश्वभुक् होती है। यह मिलित होकर अक्षर के साथ दशात्मक प्रसव करती है॥४-५॥

व्यञ्जनानि स्वरश्चैव परमेष्ठ्यादयस्तथा ।
भूताधिपतयश्चैव तेभ्यो ज्योतिः परं ततः ॥६॥

इति श्रीसाम्बपुराणे बीजप्रसवे संप्ततितमोऽध्यायः

व्यञ्जनसमूह एवं स्वर का, ऐसे ही परमेष्ठि प्रभृति, भूताधिपति गण का तदनन्तर उससे परम ज्योति का प्रकाश होता है॥६॥

श्रीसाम्बपुराण में बीजप्रसव नामक सत्तरवाँ अध्याय समाप्त

●

एकसप्ततितमोऽध्यायः

(बीजप्रसवः)

कृष्णचक्रसमा कालमाग्नीष्टकसमायुतम् ।
बीजानां परमं बीजं शङ्करं परमेश्वरम् ॥१॥
भिन्नं च मार्गमूलेषु विन्यस्तं च सबिन्दुकम् ।
शरीरं देवदेवस्य अक्षरं बीजनिःसृतम् ॥२॥

कृष्णचक्र सदा अग्नीष्टक समायुक्त है। बीजसमूह के परम बीज परमेश्वर शङ्कर हैं। सभी मार्गमूल भिन्न हैं। वे बिन्दु के साथ विन्यस्त है। देव-देवीगण का शरीर बीज से उत्पन्न होता है॥१-२॥

धृतं परं स या भक्त्या प्रणवाद्यच्च संहतम् ।
भिन्नं चतुर्भिर्वर्णैश्च सदृशश्चात्मनस्तथा ॥३॥

परम धृत भक्ति द्वारा प्रणव से जो संहत है, वह चारो से भिन्न हैं(?)। ऐसे ही वर्णसमूह आत्मा के सदृश हैं॥३॥

अकाराद्यं त्रिकं पूर्वे सुकारात्पूर्वदक्षिणे ।
सम्यग्विज्ञाय मेधावी स्थापयेच्चतुरक्षम् ॥४॥

अकारादि तीन पूर्व में तथा सुकार के पूर्व दक्षिण में है। मेधावी इसे सम्यक्रूपेण जानकर चतुरक्षर की स्थापना करते हैं॥४॥

पश्चिमे तु तकाराद्यं पदयोन्यां तु तत्त्ववित् ।
हृदक्षरं पदविन्मन्त्री विन्यसेद् भूतये शुभम् ॥५॥

पश्चिम में तकाराद्य अक्षर है, इसे अयोनि में तत्त्वविद् स्थापित करते हैं। परसमूह का ज्ञाता मन्त्री मंगल-हेतु शुभ अक्षर का विन्यास करता है॥५॥

चकाराद्यन्तरे मार्गे पदमक्षरसंज्ञितम्।
आत्मप्रसूतिं प्राणंश्च विन्यसेत्तत्त्वविद् भुवि ॥६॥

चकारादि के मध्य में अक्षरसंज्ञक पद है। आत्मप्रसूति तथा प्राणसमूह का विन्यास तत्त्वज्ञाता पृथिवी में करता है॥६॥

पकारादि यकारान्ता पङ्क्तिका शक्तिसंज्ञिता ।
शिवधात्री स्थिता मध्यं व्याप्य विश्वं जगत्पतिम् ॥७॥

पकारादि चकारान्त पञ्जिका शक्ति है। शिवधात्री (शिव को धारण करने वाली) विश्व के तथा जगत्पति के मध्य में स्थित रहती है।।७।।

विशिष्टानि ततोऽन्यस्य बिन्दुना भूपतिः क्रमात्।
द्वे द्वे यथा पतत्वं वै चैशान्यां दिशि दक्षिणे ।।८।।

भूपतिक्रम से विन्दु द्वारा विशिष्ट समूह का विन्यास करके ईशान तथा दक्षिण में २-२ करके पातित करे।।८।।

अकारेकारभूताद्या रेफाद्याश्च ततः परम्।
एकाराद्ये तथा द्वे च शन्तर्षोत्तरवर्मिका: ।।९।।

इति श्रीसाम्बपुराणे बीजप्रसवे एकसप्ततितमोऽध्यायः

●

अकार, ईकार, भूतादि का, तदनन्तर रेफादि एवं एकाराद्य दो शन्तर्योत्तर (?) वर्म होगा।।९।।

श्रीसाम्बपुराण में बीजप्रसव नामक इकहत्तरवाँ अध्याय समाप्त

●

द्विसप्ततितमोऽध्यायः

(वर्णनाशविधिः)

वर्णनाशविधिस्तु स्याद्व्यञ्जनानि यथाक्रमम्।
सिद्धये सर्वरूपाणां प्रथमः पूर्वदक्षिणे ॥१॥
द्वितीयं नैर्ऋते स्थाप्यः तृतीयो वायुदैवते।
चतुर्थः सर्वदैवत्ये विन्यासं श्रृण्वतः परम् ॥२॥

वर्णनाश-विधि कहते हैं। यथाक्रमेण व्यञ्जन वर्णों को शब्दरूप की सिद्धि के विषय में पहले पूर्व दक्षिण में, द्वितीय नैर्ऋत में, तृतीय वायुदैवत में, चतुर्थ सर्वदैवत में श्रेष्ठ विन्यास होगा। अब आगे सुनो॥१-२॥

अन्तस्थाः प्रथमं च स्याद्विन्यस्य दक्षिणे तथा।
शेषास्तथा शकाराद्या विन्यस्य पश्चिमां दिशम् ॥३॥

अन्तःस्थ वर्णों को प्रथमतः तथा वैसे ही दक्षिण में विन्यास करे। अन्त में अवशिष्ट शकारादि का पश्चिम दिशा में विन्यास करे॥३॥

उत्तरस्यां च सन्न्यस्याश्चत्वारो मुखनासिकाः।
परतश्च सुरास्तेभ्यो बहिःस्थानं यथाक्रमम् ॥४॥

उत्तर में ष, स नासिकोद्भव, ४ मुख-नासिका, तत्पश्चात् देवगण को यथाक्रम से उनके बाहर स्थान प्रदत्त करे॥४॥

पूर्वेण तु समान्यस्य ह्रस्वदीर्घप्लुतास्त्रयः।
उत्तरेण त्रयस्त्वन्ये तदेवं द्वादशैव तु ॥५॥

पूर्व से ह्रस्व, दीर्घ तथा प्लुत—ये तीन, उत्तर में अन्य तीन, सब १२ होंगे॥५॥

ऐकारो नैर्ऋते स्थाप्य उत्तरे वायुदैवतम्।
चक्रमेतद्धि शक्तिस्थं बीजं वै शब्दतां वरम् ॥६॥

इति श्रीसाम्बपुराणे ज्ञानोत्तरे वर्णनाशविधिर्नाम द्विसप्ततितमोऽध्यायः

●

नैर्ऋत्य कोण में ऐकार को स्थापित करे। उत्तर में वायु दैवत को स्थापित करे। यह बीजशक्तिस्थ चक्र शब्दों में श्रेष्ठ है॥६॥

श्रीसाम्बपुराण-ज्ञानोत्तर में वर्णनाश-विधि नामक बहत्तरवाँ अध्याय समाप्त

●

त्रिसप्ततितमोऽध्यायः

(बीजप्रसवः)

आद्यन्तं प्रणवं ज्ञेयं योनिबीजं पुनः पुनः।
न्यसेत् पञ्चाक्षरं भूमौ फलार्थी परमेष्ठिनम् ॥१॥
न्यसेदष्टाक्षरं तस्य बीजमादौ सबिन्दुकम्।
शेषाः स्युः प्रणवाद्यन्ताः परस्यां दिशि कारणम् ॥२॥

आदि तथा अन्त में प्रणव को जाने, बारम्बार योनिबीज का विन्यास करे। फलार्थी भूमि में परमेष्ठी रूप पञ्चाक्षर का विन्यास करे। अष्टाक्षर विन्यास करे। उसका बीज आदि में बिन्दुयुक्त होगा। शेष के आदि तथा अन्त में प्रणवयुक्त रहेगा। यह है—पश्चिम का कारण॥१-२॥

दक्षिणस्यां परो देवः परस्यां स्यात् सबिन्दुकः।
ईशान्यादौ सबिन्दुः स्यात्तदन्यानि तु पूर्ववत् ॥३॥
न चाक्षरः परस्यां स्यात् सबिन्दूकारपूर्वकः।
अष्टौ क्रिया यदन्यानि भूतात्मा नामतस्तु सः ॥४॥

दक्षिण दिशा में परमदेवता हैं। यह बिन्दुयुक्त होंगे। इनके आदि में बिन्दु होगा, अन्य पूर्ववत् होगा। परयोनि में बिन्दु तथा उकारयुक्त कोई अक्षर नहीं होगा। अन्य जो आठ क्रिया है, वह भूतात्मा है॥३-४॥

व्योमाद्यन्तं परो देवो विरामे प्रणवस्ततः।
अक्षराणि च विज्ञेया बीजयोनिस्तु यादृशी ॥५॥

व्योमाद्यन्त परमदेवता है। तदनन्तर विराम में प्रणव है। जैसा योनिबीज होगा, वैसे ही अक्षर होंगे॥५॥

सुप्रणवादि च भवेद् व्यापिने मध्यतो भवेत्।
प्रासूत्याख्यो यदा देवः वर्णा दश च सप्त च ॥६॥

आदि में प्रणव होगा। व्याप्ति होने पर मध्य में होगा। प्रसूति नामक देवता १० तथा ७ (अर्थात् १७) वर्णयुक्त होगा॥६॥

ओंकारावभितो यस्य व्योममध्ये ततः परः।
विन्यस्य सृष्टिसंज्ञोऽथ देवः पञ्चदशाक्षरः ॥७॥

एषामादिपदैर्न्यस्य देवः सदसदात्मकः ।
ऐशान्यां दशको धाता सृष्टिसंहारसंज्ञितः ॥८॥

इति श्रीसाम्बपुराणे बीजप्रसवे त्रिसप्ततितमोऽध्यायः

●

जिसके ऊपर की ओर २ ओंकार, व्योम मध्य में परयोनि हो। यह सृष्टि नामक पञ्चदशाक्षर देवता है। इनके आदि पद के द्वारा सत् तथा असत् रूप देवता का विन्यास करे। ईशान में १० सृष्टि-संहार नामक धाता रहते हैं।।७-८।।

श्रीसाम्बपुराण में तिहत्तरवाँ अध्याय समाप्त

●

चतुःसप्ततितमोऽध्यायः

(बीजप्रसवः)

उत्तरा योनयस्तेषां मन्त्रास्ताभ्यो विनिःसृताः ।
अष्टाक्षरा तु भूत्यन्ते व्योमादि प्रथमा हि सा ।।१।।

शिवयोनिः।

उत्तर में योनि, उनका मन्त्र उससे ही विनिःसृत हुआ है। अष्टाक्षरयुक्त (मन्त्र) भूति के अन्त में है। व्योमादि तथा वह प्रथमा है। इसे शिवयोनि कहते हैं।।१।।

ॐकारादि हकारान्ता अक्षराः परमाः पराः ।
मुक्तये विहिता पुण्या योनिः शब्दवतां मता ।।२।।

परयोनिः।

जिसके आदि में ॐ है, अन्त में 'ह' है, वह श्रेष्ठ परयोनि है। मुक्ति के लिये यह पुण्य योनि विहित है। यह शब्दविद् गण को ईप्सित है। यह पर योनि है।।२।।

दिशि कारणयोनिः स्याद् द्वन्द्ववाहो ह्यनन्तरम् ।
सविंद्वाकारपूर्वा सा भूत्यन्ताश्चतुरक्षराः ।।३।।

कारणयोनिः।

दिक् में कारण योनि होती है। तदनन्तर द्वन्द्व वहनकारी गण हैं। वह बिन्दु के साथ आकार के पूर्व हैं तथा भूत्यन्त चतुरक्षरात्मक है। यह कारणयोनि है।।३।।

क्रियाशक्तिस्तथान्यस्य पञ्चवर्णेयमात्मनः ।
इकारादिस्तकारान्ता भूतये त्रिगुणस्य तु ।।४।।

क्रियायोनिः।

क्रियाशक्ति आत्मा की पञ्चवर्णात्मिका है। इकारादि तकारान्त त्रिगुण के मंगलार्थ है। यह क्रिया योनि है।।४।।

वारुणाभ्यां भूतयोनिः स्यादुकारादिषड़क्षराम् ।
भकारान्ता च सा ज्ञेया भुवनस्य वनस्य तु ।।५।।

भूतयोनिः।

वारुणद्वय से भूतयोनि होती है। वह उकारादि अक्षरद्वययुक्ता है तथा मकारान्त है। इसे भुवनत्रय के पालनार्थ जानना चाहिये। यही है—भूतयोनि।।५।।

सप्ताक्षरपरा चास्याः भूतयोनेरनन्तरम्।
व्योमादिवायुदेवान्ता वायव्या बीजयोनिका ॥६॥

बीजयोनिः।

इस भूतयोनि के पश्चात् सप्ताक्षर-विशिष्ट, जिसके आदि में व्योम है तथा अन्त में वायुदेव है, वह वायव्या बीजयोनि है। यही है—बीजयोनि॥६॥

वकारादिमकारान्ता मध्ये व्योमसमीरणात्।
सृष्टियोनिः परा द्वे च दश चैकाक्षराणि तु॥७॥

सृष्टियोनिः।

वकार जिसके आदि में है, अन्त में मकार है, मध्य में व्योम तथा वायु है, जिससे सृष्टि योनि उत्पन्न होती है। यह १३ अक्षरों से युक्त है। यह है—सृष्टि योनि॥७॥

संहारो द्वादशास्यां ते प्रणवाद्यन्तदीपितः।
सर्वस्य वाङ्मयस्यैष संहर्त्ता केवलः प्रभुः॥८॥

संहारयोनिः।

द्वादश से संहार होता है। उसका आदि एवं अन्त प्रणव से दीपित है। यही है—संहार योनि॥८॥

क्षणपूर्णावथोङ्कारौ द्वारपालौ तु बाह्यतः।
कुम्भाकृतिरुदग्द्वारं धृतं भूतैश्च सर्वतः॥९॥
योनयः पार्थिवान्यस्थास्तन्त्रस्य त्रयमादितः।
पृथ्वी यः पूरयेत् सप्त विभक्तेः प्रणवाष्टकः॥१०॥

पार्थिवयोनिः।

क्षणपूर्ण दो ओंकार हैं। बाहर वे द्वारपाल हैं। कुम्भाकृति, जलपूर्ण द्वारयुक्त धृतरूप है। वह सभी ओर से प्राणीगण से वेष्टित है। उसकी सभी योनि है—पार्थिव योनि। यह तन्त्र के आदि से ही तीन है। जो पृथिवीरूपा है, जो सप्तविंशति पूर्ण करती है तथा आठ प्रणवयुक्ता है। यह है—पार्थिव योनि॥९-१०॥

अक्षराणां च योनिः स्यादादिवर्णा यथाक्रमात्।
सर्वत्र बीजनं कार्यं बीजिनां प्रणवेन हि॥११॥

अपां योनिः।

जो अक्षरसमूह की योनि है, यथाक्रमेण आदिवर्ण बीजधारी गण का प्रणव द्वारा सर्वत्र बीजन ही इसका कार्य है। यह है—जलयोनि॥११॥

योनिस्तु तेजसोऽम्भः स्याद् भूतये सर्वदेहिनाम् ।
कादयस्त्वग्निवर्णानां प्रभवाय महात्मनाम् ।।१२।।

योनिराग्नेयी।

सभी देहधारीगण के मंगलार्थ तेज की जलरूप (आग्नेयी) योनि है। कादि, अग्निवर्णा है तथा महात्मा गण की सृष्टि के लिये यह योनि है। यह है—आग्नेयी योनि।।१२।।

आकाशादिः गुणाकाराः शब्दाश्च बीजयोनयः ।
सृष्टये शब्दरूपाणां कालादिवरताविधिः ।।१३।।

आकाशात्मिकायोनिः।

आकाश गुणयुक्त शब्दसमूह बीजयोनिसमूह शब्दरूप की सृष्टि के लिये कालादि श्रेष्ठ विधि है। यह है—आकाशात्मिका योनि।।१३।।

भूतानां परमां योनिं भकारादि तथा परा ।
वाङ्मयस्य च सिद्ध्यर्थं भूतयोनिं विधापयेत् ।।१४।।

भूतसंहारयोनिः।

प्राणिसमूह की परमयोनि तकारादि अपरा है। वाङ्मय की सिद्धि हेतु भूतयोनि का प्रयोग करना चाहिये। यह है—भूतसंहार योनि।।१४।।

द्वादशे ते तु विन्यस्य चत्वारो यमसंज्ञकाः ।
विषमं परमं देवं य एवं ध्येयमीश्वरम् ।।१५।।

नपुंसकयोनिः।

द्वारदेश में चार यमसंज्ञक का स्थापन करे तथा इस प्रकार विषम परमदेवता ईश्वर का ध्यान करे। यह है—नपुंसक योनि।।१५।।

विश्वयोनिरतोऽन्यस्याः सर्वज्ञा विश्वसृक्पराः ।
द्वारपालनमस्कारवर्णा उक्ता ससंज्ञिता ।।१६।।
नमो नमो भवेन् मध्ये तत्त्वस्य प्रणवस्य तु ।
एवं दीपितमेतत्तु विश्वसृग् भूतये मतम् ।।१७।।

विश्वयोनिः।

विश्वयोनि है अपर की स्रष्टा। सर्वज्ञ, विश्व सृजन-परायण। नाम के साथ द्वारपाल नमस्कार वर्णसमूह कहे गये हैं। प्रणव तत्त्व के मध्य में नमः नमः शब्द रहता है। इस प्रकार से दीपित होकर विश्वसृष्टि के मंगलार्थ पूजित होती है। यह है विश्वयोनि।।१६-१७।।

परमं कारणं चैव क्रियाभूतात्मना सह।
बीजयोनिश्च सृष्टिश्च संहारश्चाष्टमः पुनः ॥१८॥

बीजयोनि परम कारण है तथा भूतात्मा के साथ क्रियारूप, सृष्टिरूप और अष्टम संहार, रूप है॥१८॥

विधानं देवदेवस्य मनसाप्यथ कीर्त्तयेत्।
प्रविशेत् परमं देवं विमुक्तः सर्वबन्धनैः ॥१९॥

देवदेव (सूर्यदेव) के विधान का मन ही मन स्मरण रखना चाहिये। इससे समस्त बन्धनों से मुक्ति मिलती है तथा परमदेव की प्राप्ति होती है॥१९॥

एवमेव सदा देवः कृत्स्नस्य जगतो गुरुः।
पूज्यो ध्येयस्तथेज्यश्च विद्वद्भिः परमार्थकः ॥२०॥

इति श्रीसाम्बपुराणे बीजप्रसवो नाम चतुःसप्ततितमोऽध्यायः

●

इस प्रकार से सूर्यदेव सर्वदा समस्त जगत् के गुरु हैं। वे विद्वद् गण द्वारा यथार्थतः पूज्य है। ध्येय तथा स्तुत हुये हैं॥२०॥

श्रीसाम्बपुराण में बीजप्रसव नामक चौहत्तरवाँ अध्याय समाप्त

●

पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः

(बीजप्रसवः)

उक्तं तद्योनिबीजं च साङ्कुरं प्रसवं महत्।
तत्पुष्पफलदं मह्यं मुक्तिदं सर्वदेहिनाम् ॥१॥

यह योनिबीज की कथा अंकुर तथा महत् की उत्पत्ति के साथ कही गयी, जो हमारे लिये पुण्यप्रद तथा फलप्रद है एवं सभी देहधारियों को मुक्ति देने वाली है॥१॥

पूर्वस्यां संशयश्चैवं दीप्तायामुच्यतां पुनः।
तं विधिं संशयं देव भक्तः स्यामहम्भास्करेः ॥२॥

पूर्व में जो संशय था, दीप्त सूर्य के सम्बन्ध में उस संशय को दूर करिये। हे देव! वह विधि कहिये, जिससे मैं दुर्लभ भक्त हो जाऊँ॥२॥

श्रुत्वा विज्ञापनं तस्मै प्रोवाच विधिवत् प्रभुः।
समयादि यथातत्त्वं दीक्षां सम्यक्चतुर्विधाम् ॥३॥
परीक्षिताय भक्ताय सुश्रूषणरताय च।
तपस्विने विनीताय क्रोधादिरहिताय च ॥४॥

उनका निवेदन सुनकर प्रभु सूर्यदेव ने यथाविधि समयादि यथार्थ तत्त्व एवं सम्यक् चतुर्विध दीक्षा की बातें कहीं; क्योंकि साम्ब परीक्षित भक्त थे, वे शुश्रूषा में रत, तपस्वी, विनीति तथा क्रोधादि से रहित थे॥३-४॥

पूजयित्वाथ देवेशं प्रागुक्तेन विधानतः।
आवाहयेत्ततस्तस्मिन् भूतयोनिदशात्मिकाम् ॥५॥

सूर्यदेव कहते हैं—पूर्वोक्त विधान के अनुसार देवाधिपति सूर्यदेव की पूजा करे। उनमें दशात्मिका भूतयोनि का आवाहन करे॥५॥

दृष्ट्वा च सर्वभूतैश्च श्मशाने सकलीकृतम्।
सप्तकृत्वोऽथ संपात्य दर्भपुञ्जे स्थितस्ततः ॥६॥
अन्यत्र स्थापितं शिष्यमाज्याद्यैश्च सुपूजितम्।
पावयेत्तत्त्रिरूर्ध्वं वै नार्यैः पिञ्जूलकैरधः ॥७॥
आहुतीर्जुहुयाद्भूतैः सर्वैरेव यथाक्रमम्।
सम्पातान् पातयेच्छिष्यो मुक्तदोषस्तथा भवेत् ॥८॥

श्मशान में सर्वभूतों द्वारा सकलीकृत देखे। दर्भपुञ्ज (कुश आदि के गुच्छे के ऊपर) ७ भाग में स्थापित करे। वहाँ से अन्यत्र स्थापित घृतादि से पूजित शिष्य को तीन बार पवित्र कराये। नाभि के ऊपर तथा पञ्जर के नीचे यथाक्रमेण सभी प्राणियों के लिये आहुति देनी चाहिये। शिष्य में सम्पात पातन करे। इससे वह दोषरहित हो जाता है।।६-८।।

सकलीकृत्य पश्चाच्च यजेच्चापि पुनः शुचिः ।
संस्थाप्य दक्षिणेनाग्नेर्भूतैर्हूत्वा च किल्विषम् ।।९।।
भस्ममुष्टिं ततस्तस्मिन् दद्यादादाय पावकम् ।
एवं समयिनस्तस्य भवेत् संस्कारयोग्यता ।।१०।।

इति श्रीसाम्बपुराणे ज्ञानोत्तरे बीजप्रसवे पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः

●

सब एकत्र करके पवित्र होकर पुनः यजन करना चाहिये। अग्नि को दक्षिण में स्थापित करके भूत द्वारा पापों की आहुति देकर उसमें भस्ममुष्टि छोड़कर अग्नि ग्रहण करे। ऐसे नियमपालक में संस्कार-योग्यता होती है।।९-१०।।

श्रीसाम्बपुराण ज्ञानोत्तर में बीजप्रसव नामक पचहत्तरवाँ अध्याय समाप्त

●

षट्सप्ततितमोऽध्यायः

(बीजप्रसवः)

योग्यतामप्यबुद्धस्य संस्कारं गुरुरारभेत्।
भूतस्य पावनेरेव तस्य सम्पूज्य तत्त्वतः ॥१॥
संहारशक्तिमावाह्य विधानेन दशात्मना।
आत्मानं सकलीकृत्य शिष्ये न्यासान् प्रयोजयेत् ॥२॥

शिष्य की योग्यता को भली प्रकार जानकर गुरुदेव संस्कार प्रारम्भ करे। भूतसमूह को पावन करके तत्त्वतः उसका पूजन करना चाहिये। दशात्मक विधान से संहार शक्ति का आवाहन करके आत्मा को एकत्र करके शिष्य का न्यास करे (आत्मा को एकत्र करना अर्थात् विक्षिप्त आत्मभाव का केन्द्रीयकरण)॥१-२॥

कृत्वा पूजादिकां सम्यक् प्रतिमन्त्रं प्रयोजयेत्।
सृष्टन्तु पावकं कर्म यद्यसौ प्रतिपद्यते ॥३॥

पूजादि करके सम्यक् रूप से प्रतिमन्त्र का प्रयोग करना चाहिये। यदि वह प्रतिपाद्य हो तब सृष्ट होकर पावक कर्म करना चाहिये॥३॥

ब्रह्मघ्नं शोधयेद् गोष्ठं दशाहं पापशुद्धये।
अन्येष्वप्सु त्रिरात्रञ्च महासर्गेषु तत्त्ववित् ॥४॥

ब्रह्महत्यारे की शुद्धि हेतु १० दिन वह गोष्ठ (गौशाला) में रहकर शोधन करे। तत्त्वज्ञ व्यक्ति अन्य जल एवं महत् के साथ तीन रात्रि शोधन करे॥४॥

प्रत्येकमाहुतीस्तिस्रो हुत्वा सम्पातकारणम्।
संस्थितो दक्षिणेनाग्नेः क्रमेण लभते गुरुः ॥५॥

प्रत्येक की तीन आहुति देकर अग्नि के दक्षिण से लेकर गुरुक्रम से सम्पात-पारण लाभ करे॥५॥

गुरुणाष्टशतं हुत्वा सम्पात्यास्त्वेकविंशतिः।
सम्पातो मूर्ध्नि शिष्यस्य शिवयोन्यां तथाञ्जलिम् ॥६॥
पुष्पस्य मूर्ध्नि दद्याच्च क्रियायोन्याञ्च निःक्षिपेत्।
दर्भे दशात्मना होमस्त्रिकमेतन्मयोदितम् ॥७॥

गुरु १०८ आहुति देकर २१ सम्पात करे। शिष्य के मस्तक में सम्पात देकर शिवयोनि में पुष्पाञ्जलि देनी चाहिये। तदनन्तर मस्तक में तथा क्रियायोनि में पुष्पाञ्जलि प्रदान करे। दर्भ में दशात्मक विधान से तीन बार होम करे। यह मेरी उक्ति है॥६-७॥

तथा पुंसवनं कृत्वा क्रियायोन्यैश्च मन्त्रिणः।
तथैव तण्डुलैर्जुहुयादाहुतिं त्वेकविंशतिम् ॥८॥
जातकर्म तथैव स्यात्तोयं मूर्ध्नि दशात्मना।
तथा व्याहृतिहोमश्च पानं चास्य मलापहम् ॥९॥

तदनन्तर मन्त्रसाधक क्रियायोनि के द्वारा पुंसवन करे तथा तण्डुल से २१ आहुति प्रदान करे। इस प्रकार से जातकर्म होता है। दशात्मक विधान से मस्तक पर जल देना, व्याहुति होम करना तथा इस जल के द्वारा आचमन मलिनता का नाशक होता है॥८-९॥

हिरण्यगर्भस्योक्तायाः क्रियायोन्यसितं परम्।
हुत्वा प्रशमयेच्चैव मधुना च समायुतम् ॥१०॥
ये चापि शिष्टसंस्काराः प्राशनाद्या व्रतान्तकाः।
कृष्णाजिनादिलिङ्गानि दद्यादस्य दशात्मना ॥११॥

हिरण्यगर्भोक्त मन्त्र से क्रिया योनि में मधु से होम करके प्रशमन करना चाहिये। ये सभी शिष्ट संस्कार हैं। अन्नप्राशादि व्रतान्त में कृष्णाजिन प्रभृति दशात्म विधि से इस शिष्य को प्रदान करे॥१०-११॥

होमं कारणयोन्यां च कुर्यान्नित्यं समाहितः।
सप्त सप्त तथा हानिं चरेत् सप्त व्रतानि वै ॥१२॥
सम्पातनयनं चाद्यां तथा वै कारणस्य तु।
कर्म वैवाहिकं चैव वररूपाय यज्ञवान् ॥१३॥
यागवांश्च हविर्यज्ञैः सोमपानं यथोच्यते ॥१४॥

समाहित होकर नित्य कारण योनि में होमकार्य उचित है। ७-७ दिन ७ व्रत का आचरण करना चाहिये। कारण का सम्पातनयन प्रदान करे। यज्ञवान व्यक्ति वररूप के उद्देश्य से वैवाहिक कर्म करे। यागयुक्त व्यक्ति हवि से यज्ञ करे। तदनन्तर सोमपान कहा गया है॥१२-१४॥

सोममौदुम्बरे न्यस्तं नमस्ये तं दशात्मना।
दशसम्पातितं पीत्वा ऋतुभिर्युज्यते तदा ॥१५॥

सोम को उदुम्बर काष्ठपात्र में रखकर दशात्मक विधान से उसे नमस्कार करना चाहिये। १० सम्पातित पान करके याग करे॥१५॥

दक्षिणां तद्विदे दद्याद् देवायेनं निवेदयेत् ।
गुरुं प्रदक्षिणीकृत्य लब्ध्यानुज्ञो यथाविधिः ॥१६॥
एवं तु संस्कृतो योग्यः सिद्धीनां सर्वतस्ततः ।
मृतश्च मोक्षमाप्नोति विशेच्च परमं पदम् ॥१७॥

इति श्रीसाम्बपुराणे ज्ञानोत्तरे बीजप्रसवे षट्सप्ततितमोऽध्यायः

●

यज्ञविद् लोगों को दक्षिणा देनी चाहिये। देवता के उद्देश्य से यह निवेदन होता है। गुरुदेव की यथाविधि प्रदक्षिणा करके उनकी अनुमति लेनी चाहिये। ऐसे भाव से संस्कृत होने पर सब दिक् से साधक सिद्धिलाभ के लिये योग्य हो जाता है। उसे मृत्यु के उपरान्त मोक्षलाभ तथा परमपद मिलता है॥१६-१७॥

श्रीसाम्बपुराण ज्ञानोत्तर में बीजप्रसव नामक छिहत्तरवाँ अध्याय समाप्त

●

सप्तसप्ततितमोऽध्यायः

(विसर्जनविधिः)

शिवतुल्यत्वमस्य स्यात् पाशच्छेदस्तु येन वै।
तमतो वर्णयिष्यामि संस्कारं क्रमशः परम्॥१॥

यह संस्कार का शिवतुल्यत्व कहा गया। जैसे शिव द्वारा पाश-छेदन होता है, वैसे ही संस्कार के द्वारा जीवन के बन्धन छिन्न हो जाते हैं। अतः क्रमशः श्रेष्ठ संस्कार का वर्णन करूँगा॥१॥

संस्कृत्य पूर्ववद् धीरो दृष्ट्वा दैवं यथाविधि।
आलिखेन्मण्डलं सम्यग् भूतानां विधिवत्ततः॥२॥

धीर व्यक्ति पूर्व की तरह संस्कृत होकर यथाविधि देवदर्शन करके सम्यक् रूपेण मण्डल का अंकन करे। तदनन्तर विधिवत् भूतगण के मण्डल का अंकन करे॥२॥

तस्मिन्निवेश्य भूतानां सम्पूज्यैनं यथाविधि।
भूताधिपेन तत्त्वज्ञो मन्त्रपूतजलैस्तु तत्॥३॥
द्रव्यैस्तु मंगलैश्चैवमभिषिच्य सुपूजितः।
अलङ्कृतं गृहीत्वाथ देवायैनं निवेदयेत्॥४॥

उस मण्डल में भूतों का निवेश करके यथाविधि पूजन करके तत्त्वज्ञ साधक भूतपति का मन्त्रपूत जल एवं माङ्गलिक द्रव्य से अभिषेक करके पूजा करके इस अलंकृत का देवता के उद्देश्य से निवेदन करे॥३-४॥

प्रदक्षिणामतः कृत्वा विज्ञाप्यो विधिवत् प्रभुः।
प्रणम्य विधिवद्धीरः प्रसीदैतिह्यमुं वदेत्॥५॥
पप्रच्छ शिताम्यस्यादुक्तश्चापि यथासुखम्।
पाशेभ्यो मोक्षयेच्चैनं गुरुत्वं वै प्रसादजम्॥६॥

तदनन्तर प्रदक्षिणा करके विधिवत् प्रभु को बताये अर्थात् धीर साधक यथाविधि प्रणामोपरान्त 'आप प्रसन्न होईये' यह कहे। यह जिज्ञासा करे। यथासुख से कहे कि गुरु की कृपा से बन्धन से मुक्ति हो रही है॥५-६॥

अथास्य दक्षिणेनाग्नौ सूर्य्ययोन्यां विधानतः।
दत्वा दर्भासनं तत्र उपविश्य सुयन्त्रितम्॥७॥

यथोक्तं पुरुषं देवं सन्निवेश्य प्रपूज्य च।
विज्ञापयेच्च तस्यार्थं यथानुग्रहवान् भवेत् ॥८॥

तदनन्तर अग्नि के दक्षिण में सूर्ययोनि में विधानतः कुशासन बिछाकर वहाँ संयत होकर बैठ जाय। यथोक्त देवता पुरुष को सन्निवेशित करके पूजा द्वारा निवेदन करे, जिससे अनुग्रह मिले॥७-८॥

आग्नेय्यां दिशि च प्राच्यां पुरुषं सन्निवेश्य च।
आपदं संस्थितैर्मन्त्रैर्जुहुयात्तु शिरः पुमान् ॥९॥

आग्नेय तथा पूर्व की दिशा में सूर्यदेव का सन्निवेश करके आपत्ति में संस्थित मन्त्र द्वारा आहुति देनी चाहिये॥९॥

अभिमन्त्र्य च तं शिष्यं जुहुयाच्च शतं शतम्।
स्वेन स्वेन तु मन्त्रेण सृष्ट्वा येन यथाविधि ॥१०॥

वह शिष्य को अभिमन्त्रित करके अपने-अपने मन्त्र से यथाविधि सृष्टि करे। शत-शत बार आहुति देनी चाहिये॥१०॥

अक्षयेन तु दैवेन सर्वेषामनु मन्त्रिणम्।
जानुतो भूतयोनिः स्याद्वनात्मा धातुना समम् ॥११॥
लिङ्गे प्रसवयोनिश्च प्रतिबीजस्तु विनिःसृता।
नाभौ च भावयोनिः स्याद्बीजमस्य दशात्मकम् ॥१२॥

अक्षय देव सबकी अनुमन्त्रणा है। जानु तक भूतयोनि होती है। वनात्मा धातु के समान है। लिङ्ग प्रसवयोनि प्रतिर्वन्ति (?) विनिसूत होती है। नाभि में भावयोनि है। इसका बीज है—दशात्मक॥११-१२॥

हृदये परमा योनिर्जाता सा परमेष्ठिनः।
कारणाख्या क्रियायोनिर्बाह्ली चैषा च बीजयेत्॥१३॥

परमेष्ठि के हृदय में परम योनि उत्पन्न होती है। कारण नामक यह क्रिया योनि है। इससे वाल्ही (गन्धर्वविशेष) बीज उत्पन्न होती है॥१३॥

संहारः चक्षुरुर्ध्वं स्यादष्टबीजं प्रकीर्तितम्।
सर्वाश्च जुहुयाद् ध्यायन् साधके चात्र विन्यसेत् ॥१४॥
अङ्गुष्ठेन सपुष्पेण न्यासः सर्वत्र शस्यते।
प्रतिमानं च भस्म स्याद्देयं पात्राधिवासितम् ॥१५॥
विश्वसृक्तर्पणं कुर्यात् साधकस्य च सम्पुटम्।
निवारस्तेन विघ्नानामन्यत्रापि प्रयुज्यते ॥१६॥

संहार चक्षु ऊर्ध्व में होते हैं। उसे अष्टबीज कहा गया है। ध्यान करके सबको आहुति प्रदान करे तथा साधक में उसका विन्यास करे। पुष्प के साथ अंगुष्ठ द्वारा न्यास प्रशंसनीय है। भस्म है—प्रतिमान। उसे पात्राधिवासित करके देना होगा। विश्वस्त्रष्टा को तर्पण करना उचित हैं। तथा (यहाँ साधक का सम्पुट है। इसके द्वारा विघ्नों का निवारण होता है, अन्यत्र भी ऐसा प्रयोग करना चाहिये)।।१४-१६।।

देवस्याथ सकाशे तु श्राव्यं तस्यानुशासनम्।
अनुग्राह्यास्त्वया शिष्या यथा शास्त्रमनिन्दिताः ।।१७।।
संयुज्य देववच्चापि गुरुं तद्वत् सगोचरम्।
सर्वं प्रदक्षिणीकृत्य ततो देवं विसर्जयेत् ।।१८।।

इति श्रीसाम्बपुराणे विसर्जनविधिर्नाम सप्तसप्ततितमोऽध्यायः

●

देवता के सामने उसके अनुशासन को सुनाये तथा अनिन्दित शिष्यों पर अनुग्रह करे। देवता के समान गुरुदेव को देखना चाहिये। सबकी प्रदक्षिणा करे। तदनन्तर देवता का विसर्जन करे।।१७-१८।।

श्री साम्बपुराणोक्त विसर्जनविधि नामक सतहत्तरवाँ अध्याय समाप्त

●

अष्टसप्ततितमोऽध्यायः

(संन्यासमार्गः)

सन्न्यासस्य त्वहं मार्गं संवक्ष्ये तत्त्वतः परम्।
समयाद्यं च पाशान्तं कृत्वा तु श्रावणादृते ॥१॥
न च पूजा प्रयोक्तव्या हुत्वा होमं यथाविधि।
हृदये हृदये न्यस्य होमभस्मादि निर्मितम् ॥२॥
स्वयोनौ पातयेदेवं ब्रह्मसूत्रं सकर्मकम्।
जुहुयाद्विश्वसृक्चाग्नौ वाचयेदगृहागतम् ॥३॥
स्वयोनौ यातयेदेवं ब्रह्मसूत्रं सकर्मकम्।
जुहुयाद्विश्वसृगग्नौ वाचयेदगृहागतम् ॥४॥

संन्यास श्रेष्ठ पथ है। उसे अब तत्त्वतः मैं कहूँगा। नियम से लेकर पाशान्त (पाशों के उच्छेद तक) अनुष्ठान क्षरण व्यतीत करे। इसमें पूजा नहीं करना है। यथाविधि होम करके प्रति हृदय में होम-भस्मादि निर्मित वस्तु विन्यस्त करे। स्वयोनि में ऐसे सकर्मक ब्रह्मसूत्र का पालन करना चाहिये। विश्वसृक् अग्नि में होम करे। अब अगृहागत का वर्णन करूँगा। अग्नि की एक आत्मा समस्त भुवन की प्रदक्षिणा करता है, बीज अक्षरों से पुण्य भस्मोदक का पान करे॥१-४॥

अग्निं प्रदक्षिणीकृत्य भुवनान्यस्य चात्मनि।
पिबेद् भस्मोदकं पुण्यं बीजेनैवाक्षरेण सः ॥५॥
संन्यस्तमिति च क्रमादाचरेच्च व्रतानि च।
प्रदक्षिणमतः कृत्वा देवमग्निं गुरुं तथा ॥६॥
सशिष्यं वपनं कृत्वा त्यजेत् सर्वमतः परम्।
सुखदुःखे समे कृत्वा देवाल्लोकाच्च सर्वतः ॥७॥

सब कुछ का त्याग करता हूँ, ऐसा कहे। व्रतों का पालन करे। तदनन्तर देवता, अग्नि तथा गुरु की प्रदक्षिणा करे। शिष्य के साथ क्षौरकार्य करके सब कुछ का त्याग करे। दैव तथा पार्थिक लोकों से आगत सुख-दुःख में समान भावना रखनी चाहिये॥५-७॥

पूतोदकेन कार्यं वै पाणिपादं चरेच्छनैः।
वर्षासु शून्यमागारं मूलं घृतस्य नाश्रयेत् ॥८॥
मौनी स्यात्तु त्यजेद् देहं ध्यायेच्च हृदयाधिपम्।
देवं दृष्ट्वा गुरुं चापि मनसा पूजयेच्च सः ॥९॥

पवित्र जल में हाथ-पैर धोये। धीरे-धीरे चले। शून्य गृह अथवा वृक्ष के नीचे आश्रय न ले। मौनी होकर हृदयाधिपति का ध्यान करते हुये देहत्याग करे। देवता तथा गुरु को देखकर मन ही मन उनका पूजन करे॥८-९॥

स खल्वावर्त्तयस्त्वेवं शिवं शुद्ध्यत्यसंशयम्।
पुनरावर्त्तिनो न स्युः सर्वतन्त्राधिकारिणः ॥१०॥

इति श्रीसाम्बपुराणे ज्ञानोत्तरे अष्टसप्ततितमोऽध्यायः

●

वह इस प्रकार का मंगल आचरण करके अवश्य शुद्ध हो जाता है। सभी तन्त्रों के अधिकारीगण पुन: जन्म नहीं लेते॥१०॥

श्रीसाम्बपुराणोक्त ज्ञानोत्तर संन्यास मार्ग नामक अठहत्तरवाँ अध्याय समाप्त

●

एकोनाशीतितमोऽध्यायः

(न्यासादिनिर्वतनम्)

यदा निर्वेदमापन्नो यश्चेच्छापदमन्वगः।
दस्युभिर्निहिते राष्ट्रे शत्रुणा वा बलीयसा ॥१॥
प्रार्थितेऽपि नयेनाथ बलानां सम्भवादपि।
जीर्णो विगतचेष्टो वा सन्न्यासाद्विनिवर्त्तयेत् ॥२॥
अथागत्वाशुभं गोष्ठं संहारं च त्र्यहं जपेत्।
ततः सम्भाष्य योग्यः स्यान्नमस्कारादिपूजनैः ॥३॥
यतः स्नातः शुचिर्भूत्वा देवदेवं प्रणम्य च।
विज्ञापयेत् क्षमस्वेति रक्षां मम निवर्तय ॥४॥

जब निर्वेद प्राप्त होता है अथवा स्वेच्छाकृत भाव से अथवा जब दस्यु तथा बलवान शत्रु से राष्ट्र विपन्न हो जाता है, तब राजा द्वारा प्रार्थना करने पर, बलशालीगण का उद्भव होने पर अथवा स्वयं जीर्ण एवं निश्चेष्ट स्थिति में हो जाने पर संन्यास से लौट आये। तदनन्तर मंगलमय गोष्ठ में आकर तीन दिन संहार मन्त्र का जप करे। तदनन्तर नमस्कारादि पूजन द्वारा सम्भाषण करके योग्य हो जाय। तदनन्तर स्नान करके पवित्र स्थिति में देवदेव सूर्य को प्रणाम करके निवेदन करना चाहिये—'हे देव! क्षमा करिये। मेरी रक्षा करिये'।।१-४।।

बीजयोन्यां समावाह्य पृथिवीं संन्यसेदतः।
न्यसेच्च वरुणं मूर्ध्नि यजेदेवं दशात्मना ॥५॥
संहारशक्तिमावाह्य चात्मन्यासं प्रयोजयेत्।
सकलीकृत्य भूतैश्च तथैतान् जुहुयात्ततः ॥६॥

बीजयोनि में आवाहन करके पृथ्वी का सम्यक् न्यास करे। मस्तक में वरुण का न्यास करे। ऐसे ही दशात्म द्वारा संहार शक्ति का आवाहन करके अंगन्यास करने के अनन्तर भूत-गण द्वारा सकलीकरण (एकत्रीकरण) करे। इसके पश्चात् उनकी आहुति देनी चाहिये।।५-६।।

शेषं तु शतमाभाषिरधिकं तु पिबेत्ततः।
ततः प्रकृतिमापन्नो दीक्षां शक्तिमवाप्नुयात् ॥७॥

पार्थिवः सकलीरग्नौ मन्त्रैर्होम्य शतं घृतम्।
वारुणेन ततो हुत्वा शेषं पानं यथा पुरा॥८॥
बीजयोन्यां ततः स्तुत्वा पूजां कृत्वा प्रणम्य च।
अनुग्राह्योऽस्मि देवेश कामं सर्वसमृद्धये॥९॥
पूर्वपक्षं क्षपा उक्ता नित्यं स्यात् समया यथा।
अनेन विधिना न्यासान्निवर्तनमनन्यथा॥१०॥

इति श्रीसाम्बपुराणे ज्ञानोत्तरे एकोनाशीतितमोऽध्यायः

●

अवशिष्ट १०० बार कहे। तदनन्तर उससे अधिक पान (?) करे। तदनन्तर प्रकृतिस्थ होकर दीक्षा की शक्ति प्राप्त करे। पार्थिव मन्त्र द्वारा एकत्र करके अग्नि में घृत से १०० होम करे। तदनन्तर वारुण मन्त्र से आहुति देकर अवशिष्ट का पूर्व के समान पान करे। बीजयोनि द्वारा स्तुति, पूजा तथा प्रणामोपरान्त कहे—'हे देवेश! यथेष्ट सर्व-समृद्धि के लिये मुझपर अनुग्रह करें। पूर्वपक्ष को क्षपा कहा गया है। तह नियमपूर्वक नित्य हो। इस विधानोक्त न्यास से निवर्त्तन होगा, अन्यथा नहीं होगा।।७-१०।।

श्री साम्ब पुराणोक्त ज्ञानोत्तर न्यास में निवर्त्तन नामक उन्यासीवाँ अध्याय समाप्त

●

अशीतितमोऽध्यायः

(मुक्तिमार्गः)

अथवा संशयापन्नं सद्योमुक्तिं समाचरेत्।
देवं सम्पूज्य सम्यक्च दक्षिणामूर्तिमाश्रितः ॥१॥
अप्यतद्दर्शनाद्धीरः स्थिरचित्तो दृढव्रतः।
स्वहृदि पुरुषं न्यस्य यथापूर्वविधानतः ॥२॥
आचान्तः पुनराचम्य युञ्जन् मन्त्रान् यथाक्रमम्।
वायव्याऽग्निं निवेश्याथ ह्यात्मानं तत्र योजयेत् ॥३॥
ततः संहारदेवेन सृष्टिमाग्नेर्नियोजयेत्।
विशेच्च दीपमापन्नो योनिं भूतेशसंज्ञिताम् ॥४॥

अथवा संन्यासापन्न होकर सद्यः मुक्ति का आचरण करे। दक्षिणामूर्त्ति का आश्रय लेकर देवता का सम्यक् पूजन करे। तदनन्तर उनके दर्शनार्थ धीर व्यक्ति स्थिर चित्त तथा दृढ़व्रत होकर अपने हृदय में पुरुष का विन्यास करके पूर्वोक्त विधान से आचमनोपरान्त पुनः आचमन करे तथा यथाक्रम से मन्त्रों को युक्त करे। वायव्य अग्नि में निवेश करे, वहाँ आत्मा को युक्त करना चाहिये। तदनन्तर संहार देव के साथ सृष्टि को अग्नि से युक्त करे। दीपलाभ करके भूतेश नामक योनि में प्रविष्ट हो जाय।।१-४।।

पापं दहति योनिः स संहारेण प्रचोदितः।
तत्त्वबीजस्य कात्स्थानात्क्षिप्रं विगतकल्मषः ॥५॥
दग्ध्वा भूतेशयोनिं स शिवयोनिं क्रमाद्विशेत्।
ततस्तु चैकसंयुक्तौ वायुना चाचलीकृतौ ॥६॥

संहार के द्वारा प्रचोदित होने से योनिपाप का दहन हो जाता है। तत्त्वबीज में भूमि स्थान से सत्वर पापमुक्ति हो जाती है। तदनन्तर भूतेश योनि को दग्ध करके क्रमशः शिवयोनि में प्रविष्ट हो जाय। तत्पश्चात् एकत्र संयुक्त होकर वायु के द्वारा अचलता में स्थित होना चाहिये।।५-६।।

शिवाग्नी चेरतुश्चैव सर्वभूतक्षयंकरौ।
ततस्तस्मिन् समीभूते हृदि प्रोक्ते ततोऽनले ॥७॥
दहेच्छरीरं सोष्माणि मन्त्राणि परमेष्ठिनः।
असम्भारस्ततो मन्त्री दह्यमानेन चेद् धृदि ॥८॥

शिव तथा अग्नि विचरण करते हैं। वे समस्त प्राणीगण के क्षयकारक हैं। तत्पश्चात् हृदयउसमें मिलित हो जाते है। उष्मा शरीर को दग्ध कर देती है। यह परमेष्ठी का ऊष्म मन्त्र है। हृदय दह्यमान हो जाने पर मन्त्री मानरहित हो जाता है।।७-८।।

नात्मना विशयेदस्त्रं विसर्गास्त्रिमकारजम्।
द्वाराणां शीर्षरापानां विधाना च व्युपस्थितः ॥९॥

आत्मा द्वारा अस्त्र प्रवेश न कराये (?) विसर्गान्ति मकारजात है (इस श्लोक में आगे अर्थ अस्पष्ट है अत: बाकी का अनुवाद करने में असमर्थता है)।।९।।

भित्वा मूर्ध्नि कपालं तु विधिना व्ययमीश्वरम्।
यं प्राप्य न निवर्तेत योगिनः परमं शिवम् ॥१०॥

इति श्रीसाम्बपुराणे ज्ञानोत्तरे अशीतितमोऽध्यायः

●

तदनन्तर मार्ग रुद्ध हो जाने पर वह्नि यज्ञशत का विनाश करती है। मस्तक में कपाल भेदन करके अव्यय ईश्वर में प्रवेश मिलता है। जो परा शिव को प्राप्त कर लेते हैं, वे योगी पुन: जन्म ग्रहण चक्र से मुक्त हो जाते हैं।।१०।।

श्री साम्बपुराणोक्त ज्ञानोत्तर में मुक्तिमार्ग नामक अस्सीवाँ अध्याय समाप्त

●

एकाशीतितमोऽध्यायः

एतेषां परवान् योगः संवत्सरतनुं स्थितः।
अष्टानामनुपूर्वेण भिन्नाभिन्नार्थवेदने ॥१॥
प्रतिलोमप्रधिः प्रोक्तो दीपयेत् स्पर्शयेत् क्रमात्।
चतुर्विंशत्तथा वह्नित्रिकयोगेन साधकः ॥२॥
व्यञ्जनं च विसर्गस्थमादावन्त उपाश्रितम्।
अन्ततो बिन्दुसंयुक्तमाकारेण तदेव तु ॥३॥
द्वाविंशत्यन्तरायुक्ता क्रूरेणैकादशेन च।
ओंकारं च वषट्कारं यदा नैतददीप्यते ॥४॥

ये सभी श्रेष्ठ योग संवत्सररूप तनु का आश्रय करके आनुपूर्विक आठ भिन्न तथा अभिन्न अर्थ जानने के लिये हैं। प्रतिलोम प्रधि का वर्णन किया गया है। उसे क्रम से दीप्त करे तथा स्पर्श कराये। ऐसा साधक तीन वह्नियों के योग से २४ बार स्पर्श करे। विसर्गस्थ व्यञ्जन आदि में तथा अन्त में उपाश्रित है। शेष बिन्दुसंयुक्त है। आकार के द्वारा भी वही है। २२ में एकादश क्रूरयुक्त हैं। जब वे दीप्त नहीं हुये तब ओंकार तथा वषट्कार प्रकाशित हुये।।१-४।।

अन्तःस्थाश्च शलाकान्ते संयोज्यादुष्मणापि च।
उत्तमस्पर्शयुक्तानि सुषुम्नान्तर्गतो मतः ॥५॥
क्षुरिका कर्तरी चैका लोका चैकस्तथान्तगाः।
प्रसवे योजयेदेतत्प्रतिमन्त्रत्रिकं तु वै ॥६॥

शलाकान्त में अन्तःस्थ वर्णों को ऊष्म वर्ण के साथ युक्त करे। उत्तम स्पर्शयुक्त वर्णों को सुषुम्ना के अन्तर्गत जाने। क्षुरिका, कर्त्तरी का लौकिक तथा अन्तग सृष्टि के समय योग करे, किन्तु यह प्रतिमन्त्र ३ करके होगा।।५-६।।

तिस्रस्तिस्रस्तथा चैवमेकैकस्य पृथक्-पृथक्।
ऊद्ध्वं तस्य च वक्त्रादेर्योगः स्यात् प्रतिनिर्मितः ॥७॥
मन्त्राणां साधनैः सूक्ष्माद् द्रव्याणां रक्षतः परः।
प्राणानां चालने चैव नित्यं योज्याद्यनुक्रमात् ॥८॥

तीन-तीन में इस प्रकार से एक-एक करके पृथक्-पृथक् हैं। उसके ऊर्ध्व में मुखादि का योग प्रतिनिर्मित है। मन्त्रों की साधना से सूक्ष्म से सूक्ष्म द्रव्यों की भी परम रक्षा होती है। प्राणों के चालन में अनुक्रम में नित्य युक्त करे।।७-८।।

आसने क्षुरिकां दत्त्वा ततो मन्त्रं प्रयोजयेत्।
शलाका पूजने योज्या दत्त्वा चैवानुकर्तरी ॥९॥
अग्नेरर्चाविधानेषु दीपने चाभिषेचने।
जपेत्तथा वै ध्यानेषु मन्त्रे च परमो विधिः ॥१०॥
शमी बिल्वपलाशं च तथा दूर्वासितास्तिलाः।
दर्भा सुमनसां चैव गणाः स्याच्छान्तिकर्मणि ॥११॥

आसन में क्षुरिका देकर तब मन्त्रों का प्रयोग करे। शलाका-पूजन में अनुकर्त्तरी से योग करे। अग्नि के पूजाविधान, दीपन तथा अभिषेक के विषय में जप करना चाहिये। इसी प्रकार ध्यान तथा मन्त्र में भी यह श्रेष्ठ विधि है। शमी, बिल्व, पलाश की लकड़ी, दूर्वा, काला तिल, कुश एवं पुष्प शान्ति कर्म में प्रशस्त हैं।।९-११।।

योज्या क्षीरेण च तथाप्यापुष्पवृक्षयोनयः।
अवृक्षः किंशुको वृक्षो नित्यमेव धनप्रदः ॥१२॥
करवीरो कनकश्चैव कलक्षेत्रं च दायकः।
प्रियङ्गुलोध्रपुष्पं च मृत्योस्तैलविपास्यता ॥१३॥

इन सबों से दुग्ध का योग करना चाहिये। ऐसे ही अपुष्प वृक्षयोनि, अवृक्ष, किंजल्क वृक्ष—ये सब नित्य धन देने वाले हैं। कनेर, कनक (धतूरा), कलक्षेत्र, दायक, प्रियंगु तथा लोध्र के पुष्प की (आहुति द्वारा) मृत्यु से रक्षा हो जाती है।।१२-१३।।

शतपुष्पाणि बीजानि लवणं मांसमेव च।
मल्लिकादिजपैः सर्वैः योज्यः स्याद्धोमकर्मणि ॥१४॥
काकोलूकस्य पक्षाणि येषां द्वे पञ्च सर्वदा।
द्वन्द्वानान्तु तथा तेषां मृगजैर्द्वे वनान्तरम् ॥१५॥
विभीतकः खादिरश्च सहचरो वासकस्तथा।
विद्वेषे तु तथा क्रूरे इत्थं तूच्चाटनेषु च ॥१६॥

शतपुष्प, बीज, नमक, मांस, मल्लिकादि पुष्प, सभी प्रकार का जवापुष्प होमकर्म में युक्त करे। काक तथा उलूक के पंख तथा ऐसे सभी प्राणी, जिनमें परस्पर में द्वेष विपरीतता चलती है, ऐसे मृगज (पशु जैसे—मृग-व्याघ्र), विभीतक एवं खदिर, सहचर तथा वासक का विद्वेष कार्य में व्यवहार करे।।१४-१६।।

उक्ताः स्वल्पविधानेषु परतन्त्रेषु ये च वै।
सर्वे तेनैव सिध्यन्ति विधियुक्तोदितैः परैः ॥१७॥
अरसा बाह्यबीजा वा योज्याश्च सर्वकर्मणि।
दृष्ट्वा तु विधिना मन्त्रं व्योमस्थं वा महीगतम् ॥१८॥

तत्सर्वं साधयेत्तूर्णं यदुक्तं कल्पकल्पकैः ।
न च शक्तिपरीचारे मन्त्रान्ते क्रमशस्ततः ॥१९॥

यहाँ अल्प विधान का वर्णन किया गया हैं। अन्यान्य तन्त्रों में (विस्तार में) इनका वर्णन है। यथाविधि प्रयुक्त होने पर इनसे सिद्धि मिलती है। रसविहीन अथवा बाह्य बीज सर्वकार्य में युक्त करे। व्योमस्थ अथवा पृथिवीगत मन्त्र का शीघ्र साधन करे; जैसा कि कल्प-कल्प में (विधि में) कहा गया है। किन्तु शक्ति-परिचार में शीघ्रता न करे। मन्त्रान्त में क्रमशः करना होगा।।१७-१९।।

मन्त्रसम्पुटयोगेन साधयेच्च शलाकया ।
शक्रं तु कमले योगस्पर्शैः शक्तिं निरावृत्तम् ॥२०॥

मन्त्रसम्पुट योग में शलाका से साधना करनी चाहिये। इन्द्र की साधना कमल से करे। योग स्पर्श से शक्ति निरावृत हो जाती है।।२०।।

क्षुरिकाकर्त्तरीयुक्ता दक्षिणा निर्वाणमावहेत् ।
अग्निपञ्चकयोगान्ते लिङ्गे वै स्थण्डिलेऽथवा ॥२१॥
लक्षत्रयस्य वै योगात् साधयेत् परमेष्ठिनम् ।
शिलातले तु वै श्रेष्ठः क्रियाकारणसाधकः ॥२२॥

क्षुरिका तथा कर्त्तरीयुक्त दक्षिणा (दक्षिणकाली) निर्वाण प्रदान करती है। पञ्चाग्नि योग के अन्त में लिंग अथवा स्थण्डिल में तीन लाख के योग से (आहुति से) परमेष्ठि-साधन करे। क्रिया करने में साधक श्रेष्ठ शिलातल पर साधना करे।।२१-२२।।

आदित्यस्य निमित्तात्स्यात्साधनमुन्मिलोक्षिकम् ।
भूतेशं निशि वा घोरे वायुभक्षो जलाशितः ॥२३॥
साधयेत् साधनायुक्तो देहे मन्त्री च वै क्षणात् ।
बीजेशवर्या सर्वैव श्मशानभक्ष्यभोजनः ॥२४॥

आदित्य का साधन होता है उन्मीलोक्षिक (उन्मीलित आँखों से) अथवा घोर निशा के समय वायुभक्षी होकर अथवा जल पीकर भूतेश का साधन करे। साधनायुक्त होने पर साधक के शरीर में तत्काल ही समस्त श्रेष्ठ बीजों की विद्यमानता हो जाती है। श्मशान में भक्ष्य भोजन करना चाहिये।।२३-२४।।

अपक्वाशी लब्धप्रभुर्देही देहस्य साधने ।
अशीतसिकता ज्येष्ठे जपेत् सृष्टिं घृतप्लुतः ॥२५॥
जपान्ते दीपयेन्मन्त्री ह्यष्टशान्तिर्यथा शिवः ।
चरित्वा भस्मचर्यश्च भस्मशायी यवाशनः ॥२६॥

भस्मना सिद्धिमाप्नोति भस्मनिष्ठः सुसाधकः।
भास्करस्य व्रतं ह्येतदन्ते ह्युक्तं क्रमागतम् ॥२७॥

अपक्व द्रव्य भोजन करके यथालाभ से तुष्ट होकर देही देहसाधन करे। ज्येष्ठ की तप्त बालुका में घृत से लिप्त होकर सृष्टि का जप किया जाता है। जप के अन्त में मन्त्री अष्ट शान्तियुक्त शिव के समान दीप्त हो जाता है। भस्मधारी, भस्मशायी तथा यव का भोजन करके विचरण करे। भस्मनिष्ठ साधक भस्म से सिद्धिलाभ करते है। यह है—भास्कर का व्रत। बाकी क्रम से कहा जायेगा।।२५-२७।।

क्रमात्संक्रमणं चैव क्रमाद्विद्वेषतां व्रजेत्।
संक्रमेद् देहमाक्षिप्य दृष्ट्वैवं क्रमयेत् परान् ॥२८॥
इच्छया विचरेन् मन्त्री व्रतान्ते बीजवर्त्मनि।
यदुक्तां मन्त्रकोष्ठे तु तस्मिन् शास्त्रे ह्यनेकशः ॥२९॥
कन्दमूलफलं पत्रमस्विन्नं स्विन्नमेव च।
अशक्तो विधिरुक्तो यमष्टौ ग्रासानुपानयेत् ॥३०॥

क्रम से संक्रमण होता है। क्रम से विद्येश्वरत्व की प्राप्ति होती है। ऐसा देखकर अन्य का अतिक्रमण करे तथा देहत्याग करके (विद्येश्वरत्व में) संक्रमण करे। व्रत के अन्त में बीजवर्त्म में इच्छापूर्वक मन्त्रविचरण करके रहे, जैसा कि मन्त्रकोष्ठ में कहा गया है (उस प्रकार से)। उस शास्त्र में अनेक बार यह बतलाया गया है। भोजन में कन्द-मूल-फल-कच्चे पत्ते अथवा सूखे पत्ते ग्रहण करे। ऐसा करने में असमर्थ होने पर आठ ग्रास ग्रहण करना चाहिये।।२८-३०।।

भक्ष्यं वा विधिसम्पन्नं मन्त्रे सम्पानवर्जितम्।
पावकं विधिवत्सिद्धं कुर्य्यान् मन्त्रस्य साधने ॥३१॥
पूजामन्त्रस्य वै मन्त्री संवत्सरतनुस्थितैः।
व्योमस्थं वा तथाग्निस्थं कुर्यात् पूर्वं यमेन वै ॥३२॥

अथवा विधिसम्मत पानवर्जित भिक्षाद्रव्य मन्त्रों से ग्रहण करना चाहिये। मन्त्र के साधनार्थ यथाविधि अग्नि सिद्धि करे। जैसे पूर्व में यम ने व्योमस्थ अथवा अग्निस्थ मन्त्र का साधन किया था, वैसे ही संवत्सर तनुस्थित मन्त्रों द्वारा मन्त्री पूजामन्त्र की साधना करे।।३१-३२।।

अनुलोमाद्द्वयं स्यात् क्षुरिका कर्मभेदिनी।
कर्त्तरीकवचं घोरं शलाकात्रय एव च ॥३३॥
अर्गलास्तु शिरः सौम्यः स्वाकायो निःशिखा पराः।
प्रतिमास्थाः परा एता ह्यष्टौ ताः शक्तियोनयः ॥३४॥

अनुलोम में हृदय होता है। कर्मभेदिनी क्षुरिका, कर्त्तरी, कवच, घोर शलाकात्रय, अर्गल, शिर, सौम्य स्वकाय नि:शिखा तथा परा, प्रतिमास्थित परा—-ये आठ शक्तियोनि हैं।।३३-३४।।

पूर्वपश्चिमयोश्चैव दक्षिणोत्तरयोस्तथा ।
विदिक्षु चानुपूर्वेण स्वरान् सम्पूजयेत् क्रमात् ।।३५।।
प्रत्यहं यजनं कुर्याद्रात्रौ वापि हि साधकः ।
द्रव्याभावे जपेनापि साधयेन् मन्त्रतत्परः ।।३६।।

पूर्व तथा पश्चिम दिक्, दक्षिण तथा उत्तर एवं सभी विदिक् में आनुपूर्विक स्वर-समूह के द्वारा आनूपूर्विक क्रमानुरूप स्वरसमूह की सम्यक् पूजा करे। साधक नित्य यजन करे। रात्रि में भी करे। द्रव्य का अभाव होने पर जल से ही मन्त्रतत्पर होकर साधन करना चाहिये।।३५-३६।।

चतुष्कं साधयेन्नित्यमेकैकस्य पृथक्-पृथक् ।
क्षुरिकादिशलाकान्तामर्गलां चैव साधकः ।।३७।।

इति श्रीसाम्बपुराणे ज्ञानोत्तरे साधनविधिर्नामैकाशीतितमोऽध्यायः

●

चतुष्क का (चार का) नित्य साधन करना चाहिये। एक-एक का पृथक् भाव से क्षुरिका, कर्त्तरी, कवच, घोर शलाकात्रय का एवं अर्गला का साधन करे।।३७।।

श्री साम्बपुराणोक्त ज्ञानोत्तर में साधनविधि नामक इक्यासीवाँ अध्याय समाप्त

●

द्व्यशीतितमोऽध्यायः

(हृदयपुष्पम्)

अथातः परमं गुह्यं मन्त्रसारसमुद्भवम्।
यैर्व्याप्तमखिलं सर्वं मन्त्रं वै स चराचरम्॥१॥

सामान्या सर्वसैवास्ते चराणाङ्कः फलव्याधं समया तु मध्यो-मध्यो निविध्यो-मङ्क्रिक्रो समनीनाम परम परम क्षुरिकास्क फट् ना अयथाना अयन्ताना अपवासि-नोऽपि किंषु महामुखो नामकर्त्तरी। यः फट् सम्पापीड़ायोगतश्च गायवान् रुचमाश्वि गां गीं गुं पञ्चक्रमेशा नाम शलाका। परमेष्ठिनस्यैताध्यायन् प्रेतजिह्वामूलीयूपरम्। दक्षिणा। ततो हरा नाम योगशलाकार्कस्य चरणैताः। फटन्तु मूलजाह्येषायह्वाङ्ग-ददेशवायव्यादिन्द्ररोचनानाम क्षुरिका। सर्वासां मंगला ह्येषा निरोधिनी नाडीनां चतुष्कला निरञ्जनस्य क्षुरिका सर्वमन्त्रहृदया सर्वान् संक्रामयति। सर्वव्रतैश्च स्यात्प्र-योनामन्त्राणां कर्मणि करोति। लक्षकविंशके क्षुरिका समाप्ताः।

अब मन्त्रसार समुद्भव की परम गुह्य कथा कहते हैं, जिसके द्वारा चराचर सकल मन्त्र व्याप्त हैं। सामान्य इत्यादि कर्त्तरी है। 'यः फट्' इत्यादि शलाका है। 'हरा' नाम इत्यादि क्षुरिका है। सर्वमंगलरूपा नाड़ियों में निवासिनी, निरंजन की चक्षुकला, सर्वमन्त्रों की हृदयरूपा क्षुरिका सभी मन्त्रों में संक्रमण करती है। समस्त व्रतों में प्रयुक्त होकर मन्त्रों का कर्म करती है। बीस लाख में क्षुरिका मन्त्र समाप्त है।

ब्रह्मोवाच

**आलयः सर्वभूतानां लयनाल्लिङ्गमुच्यते।
हृदि भावमिदं लिङ्गं सर्वजन्मवतां स्थितम्॥२॥**

ब्रह्मा कहते हैं समस्त प्राणियों की उत्पत्ति तथा विनाश के लिये उसे लिंग कहा जाता है। जो जन्म लाभ करते हैं, उन सबके हृदय में इस प्रकार से लिंग रहता है॥२॥

**सदार्चयन्ति विद्वांसो भावपुष्पैर्हृदि स्थितैः।
भावजैः सुमनोभिश्च तमर्चेन्नान्यजैर्बुधैः॥३॥
ब्रह्माक्षरपदैर्दिव्यैर्जरामरणकारकैः।
प्रफुल्लपद्मसंस्थाने सुहृद्ये तिष्ठतो मुखे॥४॥**

विद्वान् गण सर्वदा हृदयस्थ भावपुष्पों से अर्चना करते हैं। विज्ञ व्यक्ति भावज पुष्पों से उनकी अर्चना करे; अन्य (वृक्षादि से उत्पन्न) पुष्पों से अर्चना न करे। जरा एवं मरण

को दिव्य ब्रह्माक्षर पद द्वारा प्रस्फुटित पद्मतुल्य सुन्दर हृदय में अवस्थित करके विज्ञजन को अर्चना करनी चाहिये।।३-४।।

हृदयं तु विजानीयाद्विश्वस्यायतनं महत्।
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा प्रत्युवाच महेश्वरः ।।५।।

हृदय को विश्व का महत् आयतन जानना चाहिये। उनकी यह बात सुनकर प्रत्युत्तर में महेश्वर ने कहा।।५।।

शृणु यत्नेन वचनं पुष्पाणि कथयामि ते।
अहिंसा प्रथमं पुष्पं तथा चेन्द्रियनिग्रहः ।।६।।
धृतिपुष्पं क्षमापुष्पं शौचं पुष्पं च पञ्चमम्।
अक्रोधः षष्ठपुष्पं तु ह्रीपुष्पं चैव सप्तमम् ।।७।।

सयत्न मेरी बता सुनो। तुमको (हृदयस्थ) पुष्पों की बात बतलाता हूँ। अहिंसा प्रथम पुष्प है, इन्द्रियनिग्रह है—द्वितीय पुष्प। तृतीय है—धृति पुष्प। चतुर्थ है—क्षमा पुष्प। पञ्चम है—शौच पुष्प। षष्ठ को अक्रोध कहते हैं। सप्तम पुष्प है—लज्जा।।६-७।।

सत्यं चैवाष्टमं पुष्पमेभिः प्रीयेत वै शिवः।
एतान्यष्टौ च पुष्पाणि चाक्षयान्यव्ययानि च ।।८।।
एतानि भावतो येन प्रकल्पेन निवेदयेत्।
एभिर्यस्तु सदा पुष्पैरर्चयेच्छिवमव्ययम् ।।९।।

सत्य है—अष्टम पुष्प। इन सबसे शिव प्रसन्न होते हैं। ये आठो पुष्प अक्षय एवं अव्यय हैं। इन समस्त भावनारूप को जल से निवेदित करना चाहिये। इन समस्त पुष्पों द्वारा सर्वदा जो अव्यय शिव की अर्चना करते हैं।।८-९।।

उद्घाट्य तु तमोद्वारं शिवं पश्येन्निरञ्जनम्।
कृत्वा यमैस्तु लिङ्गं वै प्रत्याहारैस्तु वैदिकम् ।।१०।।
ध्यानधारणपुष्पैस्तु चार्चयेच्छिवमव्ययम्।
शरीरे दीपयेदग्निं न्यासं कृत्वा तृणेन्धनम् ।।११।।

वे तमोद्वार को पार करके निरंजन शिव का दर्शन प्राप्त करते हैं। यम से (संयम से) लिंग तथा प्रत्याहार द्वारा वैदिक (?) का (संयमन करके) ध्यान तथा धारणरूप पुष्पों से अव्यय शिव की अर्चना करनी चाहिये। शरीर में अग्नि प्रज्वलित करे, तृण काष्ठ के समान न्यासविधान से। (जैसे भौतिक अग्नि तृण-काष्ठ से प्रज्वलित होती है, वैसे शरीराग्नि न्यास विधान से प्रज्वलित होती है)।।१०-११।।

युञ्जयेदुद्गतान् दोषान् मनःकृत्वा सुनिश्चितम्।
विस्तीर्णाद्धारणाच्चैव नासाग्रे चिन्तयेच्छिवम् ।।१२।।

चिन्तयेच्च सदा ह्येवं कृत्वा पूजां तु देहजाम्।
क्षणाद्ध्रस्वत्वमायान्ति प्रकीर्णानीन्द्रियाणि च ॥१३॥
शुद्धो दोषस्तथा मन्त्री ध्यायन् मन्त्री न लिप्यते।
ज्ञानशुद्धस्तथा मन्त्री विचरेद्विषयैरपि ॥१४॥
भावग्राह्यं मनः कृत्वा बुध्वा भोक्तारमीश्वरम्।
सदा समत्वमायाति सामान्यः सर्वगोचरः ॥१५॥

इति श्रीसाम्बपुराणे ज्ञानोत्तरे हृदयपुष्पन्नाम द्व्यशीतितमोऽध्यायः

●

मन को सुनिश्चित करके तद्गत दोषों को अग्नि में छोड़े अर्थात् दोषों का नाश करे। विस्तीर्ण धारणा से नासाग्र में शिवचिन्तन करना चाहिये।

ऐसी देहजात पूजा करके जो सदैव चिन्तन करता है, उसे क्षण काल में ह्रस्वत्व प्राप्त होता है तथा इन्द्रियाँ शुद्ध हो जाती हैं। ऐसे दोषों को शुद्ध करके मन्त्री जब ध्यान में लिप्त नहीं होता, तब भी ज्ञानशुद्ध मन्त्रज्ञ साधक विषयों के साथ भी विचरण कर सकता है (तब भी वह उसमें लिप्त नहीं होता)।।१२-१५।।

श्रीसाम्बपुराणोक्त ज्ञानोत्तर में हृदयपुष्प नामक बयासीवाँ अध्याय समाप्त

●

त्र्यशीतितमोऽध्यायः

(तत्त्वनिरूपणम्)

त्रिविधं त्रिविधाकारं त्रिविधं पञ्चसंस्थितम् ।
त्रिविधेन तु योगेन लभ्यते तत्त्वनिश्चलम् ॥१॥
यस्य योगः स्मृतः शास्त्रे परे तु परमोद्भवे ।
लिङ्गं तस्य सदा योज्यं ज्ञानयोगाच्च कर्मतः ॥२॥
अहिंसा च क्षमा चैव धृतिरिन्द्रियनिग्रहः ।
शौचमक्रोधनं सत्यं कर्मशास्त्रविदांवरम् ॥३॥
शास्त्रज्ञादथ योगाच्च गुरुदारेषु किल्विषात् ।
मुक्तिस्तत्राविकल्पेन त्रिविधा परिकीर्तिता ॥४॥

तीन, तीन आकार तथा तीन पञ्च संस्थित त्रिविध योग से तत्त्व की स्थिरता मिलती है। परमोद्भव शास्त्र जिसका योग स्मृत हुआ है, ज्ञान योग द्वारा कर्म से उसका लिंग सदा युक्त रहता है। अहिंसा, क्षमा, धैर्य, इन्द्रियसंयम, शौच, अक्रोध तथा सत्य—ये सब शास्त्रविद्गण के श्रेष्ठ कर्म हैं। शास्त्रज्ञों से, योग से, गुरुदारादि (गमन) के पाप से अविकल्प तीन प्रकार की मुक्ति कही गयी है।।१-४।।

आसने च तथा पाने निश्वासोच्छ्वासदृष्टिषु ।
त्रिषु वाप्यपचारेषु ज्ञानेन समता यदा ॥५॥
कारणानि निगृह्णीयाद्घटमानानि योगिनः ।
प्रसूते तु तथा योगः क्रीडन्ति विषयोरगैः ॥६॥

आसन, पान तथा निश्वास-उच्छ्वास-दृष्टि विषय में तीन प्रकार के किये अप-आचरण में ज्ञान द्वारा जब समता प्राप्त हो जाती है, तब योगीगण घटमान कारणसमूह को निगृहीत करते हैं। ऐसा योग होने पर विषयरूप सर्प के साथ वे क्रीड़ा करते हैं (विषयरूप सर्प उनको डस नहीं पाते)।।५-६।।

निरुद्ध्य दग्धावासस्य गुरुपूजा च सर्वदा ।
विना विज्ञानयोगाभ्यां मृतस्य न विपर्ययः ॥७॥
कर्मयोगं तु विज्ञानात् प्रवृत्तः सर्वदा दहेत् ॥८॥
ज्ञानेन केवलेनैव साधकः सर्वतश्चरेत् ।
आत्मना हि स भेदज्ञः सुखं भिन्नः समाचरेत् ॥९॥

जो निरोध करके वासना को दग्ध करते हैं, उनकी गुरुपूजा सदा सार्थक होती है; विज्ञान तथा योग के विना कभी भी मृत्यु से छुटकारा नहीं होता। योग की तुलना में ज्ञान प्रशंसनीय है। लौकिक कर्म निकृष्ट है। विज्ञान द्वारा प्रवृत्त होकर सदा कर्मयोग (लौकिक कर्म) दग्ध होता है। (तत्त्वज्ञ) साधक को केवल ज्ञान द्वारा ही सर्वतोभावेन विचरण करना चाहिये। भेदज्ञ साधक आत्मा द्वारा आदि तत्त्व से अलग होकर सुख (की खोज) का आचरण करते हैं।।७-९।।

प्रकृतिं पुरुषं चैव ज्ञात्वा ज्ञानी न तप्यते।
तेषामुपरितः सूक्ष्मः सर्वव्यापी शिवोऽव्ययः ।।१०।।
विदित्वा ज्ञानबुद्ध्यन्तं जायते वेदवित्तमः।
ततः स्वकरणैः कार्यं न योगेन च कर्मणा ।।११।।
आत्मनो ज्ञानमात्रेण वीक्ष्यते तु चराचरम्।
प्रकृतौ पुरुषो लीनः पाशैस्तु प्रकृतिर्वृता ।।१२।।
परापरस्य ज्ञाता वै नरः कर्म परित्यजेत्।
प्रकृतेः पुरुषाश्चैव प्रज्ञानो परमो भवेत् ।।१३।।

ज्ञानी प्रकृति-पुरुष को जानकर कभी भी तृप्त नहीं होते; क्योंकि इसके ऊपर अवस्थित हैं—सर्वव्यापी अव्यय शिव। ज्ञान तथा बुद्धि का शेष जानकर वेदविद्‌गण उत्तम हो जाते हैं। तदनन्तर अपने करण द्वारा कार्य करना ही उचित है, यौगिक कर्म द्वारा उचित नहीं है। आत्मा के ज्ञानमात्र से चराचर का ज्ञान तथा दर्शन होने लगाता है। प्रकृति में पुरुष लीन हैं तथा पाशों से प्रकृति आवृत हैं। पर एवं अपर तत्त्व के ज्ञाता व्यक्ति कर्म का परित्याग कर देते हैं। प्रकृति से पृथक् होकर पुरुष परम प्रज्ञान हो जाता है।।१०-१३।।

पुमांसस्तेन मुच्यन्ते परावरविचारिणः।
विपर्यये पुनस्तेषां पूर्वस्यां प्रकृतौ स्थिताः ।।१४।।
एको यदि भवेज्जीवो बन्धः कस्य भवेत् पुनः।
कैवल्यं च कथं पुंसां बन्धः प्राधानिको यदि ।।१५।।
अथ चेन्नित्यताबन्धः पुंसस्तत्र निरर्थकः।
तस्माज्ज्ञानधरो योगी सर्वदा सुखमश्नुते ।।१६।।

स्थूल तथा सूक्ष्म तत्त्व में विचरण करने वाले पुरुषगण मुक्त हो जाते हैं। विपर्यय होने पर पुरुषगण पुनः प्रकृति में अवस्थान के लिये बाध्य हो जाते हैं। यदि जीव एक है, तब बन्धन किसका होगा? यदि पुरुष का बन्धन प्राधानिक है, तब कैवल्य किसका होगा? और यदि पुरुष नित्य है, तब पुरुष का बन्धन कहना अर्थहीन है। अतएव ज्ञानधर योगी सदा सुख (लौकिक सुख) का त्याग करते हैं।।१४-१६।।

तारके ज्ञानसंस्कारे न प्रभुर्बध्यते क्वचित्।
इच्छया चरते ज्ञानी योगी कालान्तरेण तु॥१७॥
दग्धे चैव तु पाशेऽस्मिन् गुरुणा शास्त्रमात्मना।
अभिव्यक्तं रसं दिव्यं भूप्राप्तं गुरुसंस्मरेत्॥१८॥
एवं संज्ञानसंयोगाच्चाद्यपाशाद्विमुच्यते।
न हिंसेदात्मनात्मानं न हिंसेदिन्द्रियाणि च॥१९॥
यथाभागं तु वै युंज्यादन्यथा तु विपर्ययैः।
दिशो यस्य तु वै श्रोत्रे जीवः श्रोत्रे व्यवस्थितः॥२०॥

यदि तारक (ॐ) से ज्ञान-संचार होता है, तब समर्थवान् व्यक्ति कभी भी बद्ध नहीं होता। ज्ञानी स्वेच्छा से विचरण करते हैं, किन्तु योगी कालान्तर में भी विचरण कर सकते हैं। गुरु, शास्त्र तथा आत्मा से यह पाश दग्ध हो जाता है तब दिव्य रसाभिव्यक्ति होती है। ऐसे संज्ञान के संयोग से शीघ्र ही पाश से छुटकारा मिलता है। आत्मा द्वारा आत्मा की हिंसा न करे तथा इन्द्रियों की भी हिंसा न करे। यथाभाग योग करे; अन्यथा विपर्यय होगा। दिक् समूह जिनका श्रोत्र है, जीव उसी में स्थित है।।१७-२०।।

स पश्येदात्मना शुद्धः परमात्मानमात्मना।
त्यक्तवायुरिति प्रोक्तः स्पर्शस्तत्रात्मसम्भवः।
वायुश्च स्पर्शनं युक्तो स्पर्शनं त्वरितं जनः॥२१॥
चक्षुषा गृह्यते रूपं चक्षुरूपं समुद्भवम्।
जायते शक्तितस्तेन न परस्तेन लिप्यते॥२२॥
रसज्ञा रसना जिह्वा रसस्तु वरुणात्मकः।
आशश्च परतस्तत्र वरुणश्चात्र सम्भवः॥२३॥

जो शुद्ध साधक आत्मा द्वारा दर्शन करते हैं, वे उसी से परमात्मा को देखते हैं। त्यक्त वायु जहाँ है, वहाँ स्पर्श आत्मस्वरूप है। वायु का गुण है—स्पर्श। स्पर्श से लोक त्वरित होते हैं। चक्षु से रूप ग्रहण होता है अथवा उसी से (रूप से) चक्षु उत्पन्न है। (रस) वह शक्ति से उत्पन्न होता है। इसी से परवर्त्ती (चक्षु) उसमें लिप्त हो जाता है। जिह्वा रसज्ञा (रसना) है; किन्तु रस वरुणात्मक है। (रस) वह परमात्मा से व्याप्त है। वहीं से है—वरुण की उत्पत्ति।।२१-२३।।

पार्थिवस्तु तथा घ्राणे गन्धस्तु पृथिवी गुणः।
युक्तस्तु पुरुषो ह्यत्र न परः पृथिवीगतः॥२४॥
अग्निः सर्वमिति प्रोक्तः सर्वस्मिन्नात्मनि स्थितः।
वायुरप्यत्र विज्ञेयो न परो लिप्यते तदा॥२५॥

इन्द्रियस्येन्द्रगोप्तृत्वाद्धस्तौ चेन्द्रेण संयुतौ ।
पुरुषः वापि संयुक्तो न परस्तेन लिप्यते ॥२६॥

पार्थिव वस्तु घ्राण से ग्राह्य होती है। गन्ध है—पृथिवी का गुण, जहाँ पुरुष युक्त होता है; परन्तु परमात्मा पृथिवीगत नहीं है। अग्नि को सर्व कहते हैं। वह सर्वस्वरूप आत्मा में स्थित है। यहाँ अग्नि के साथ वायु को जाना जाता है; किन्तु उसमें परमात्मा लिप्त नहीं होता। इन्द्रियों का रक्षक है—इन्द्र, इसीलिये हस्तद्वय इन्द्र के साथ युक्त हैं। पुरुष हस्त से युक्त है। परमात्मा उसमें लिप्त नहीं होता।।२४-२६।।

भोक्ता विष्णुश्च पापानामपानं स्थानमुच्यते ।
पुरुषः पादसंयुक्तस्त्रिधा वै विश्वतोमुखः ॥२७॥
वायुर्वै वर्चसो मार्गस्स मित्रो मित्रयोगतः ।
पुरुषश्चात्र संयुक्तो न परः पुरुषो यथा ॥२८॥
अनिन्दं नन्दयत्यस्य विश्वात्माऽसौ प्रजापतिः ।
उद्देशान्मनसः श्रौतं परोपप्रस्थितो व्रजेत् ॥२९॥
मनसश्चात्र विज्ञेयं यत्र चैवात्मनः स्थितिः ।
न परोऽनेनसंयुक्तश्चान्द्रं रागीयतन्मनः ॥३०॥

भोक्ता है—विष्णु; पापसमूह का स्थान अपान है। पुरुष पादयुक्त है। तीन प्रकार विश्वात्मा का मुख है। वायु है तेज का पथ। उसे समित्र कहते हैं; क्योंकि उसका योजन मित्र (सूर्य) के साथ है। पुरुष यहाँ संयुक्त है, किन्तु परमपुरुष संयुक्त नहीं है। वह विश्वात्मा प्रजापति अनिन्दनीय को आनन्द देता है। मन के उद्देश्य से श्रोत्र दूसरे के द्वारा प्रेरित होकर गमन करता है। मन को जानना चाहिये, जहाँ आत्मा की स्थिति है; उससे अलग नहीं, पाप-संयुक्त नहीं। चन्द्र के समान उसका मन अनुरञ्जित होता है।।२८-३०।।

अहङ्कर्त्तेऽत्यहंकारः स रौद्रपुरुषालयः ।
अहङ्कारेण संयुक्तोऽसौ परो नात्र युज्यते ॥३१॥
परं सर्वात्मकं ब्रह्म ज्ञानब्रह्मेति बाध्यते ।
तेन बुद्ध्यत्यथो बुद्धिरज्ञानेन विपर्ययः ॥३२॥
त्रैविध्यमन्तःकरणे योऽभिजानाति तत्त्ववित् ।
दश च त्रीणि चैतानि यो विद्याद्धि स योगवित् ॥३३॥

'मैं कर्त्ता हूँ'—यह है अहंकार, रौद्र तथा पुरुष का आलय। पुरुष अहंकार से संयुक्त होता है, परमात्मा इससे युक्त नहीं होता। परमात्मा है सर्वात्मक ब्रह्म। ज्ञान ब्रह्म द्वारा बाधित होता है। उस ज्ञान से उसे पहचाना ज्ञाता है। अज्ञान से इसका विपर्यय होता है। जो अन्तःकरण के त्रैविध्य को जानते हैं, वे हैं तत्त्वविद् और जो १०, ३ इनको जानते हैं, वे हैं—योगविद्।।३१-३३।।

एषां तत्त्वेन वै चात्मा नाभाव्यो भावचिन्तकैः।
अभाव्यं भावयेद्भावं भावो भाव्यं न भावकैः ॥३४॥
भावस्य भावनाज्ञानात् प्रजानां चेद्विपर्ययः।
त्रिंशकात्प्रभृति ज्ञानं स्याद्योगवित् भ्रमात् ॥३५॥
कर्मकृच्च विदित्वैतज्ज्ञात्वैतद्वै प्रमुच्यते।
विस्तरेण तदा ज्ञेयं ज्ञानिनां दीक्षितेन च ॥३६॥
योगसाधनयोर्नित्यमविभ्रंशः प्रकीर्तितः।
बहुपाशवृतोऽप्येष जीवः कर्मवशानुगः ॥३७॥

इस तत्त्व द्वारा आत्मा की भावचिन्तन से भावना न करे। अभाव्य वस्तु की भावना करे। भाव्य वस्तु भावना द्वारा न करे अर्थात् आत्मा भाव के अन्तर्गत नहीं है। आत्मा में भाव से भावना करने से (भावना ज्ञान से) प्रजा का (उत्पन्न जीवगण का) विपर्यय घटित होता है। त्रिंशक प्रभृति ज्ञान क्रम से साधक योगविद् हो जाता है। कर्मकर्त्ता यह जानकर इसी ज्ञान से मुक्त हो जाते हैं। ज्ञानीगण के पास से दीक्षित होकर इसे विस्तार से जानना होगा। योग तथा साधन से नित्य संलग्न रहे। भ्रष्ट न हो, यह कहा गया है। बहुत से पाशों में बंधा जीव कर्म के वशीभूत होकर उसी का अनुगत हो जाता है।।३४-३७।।

तद्योगात् स चरत्यत्र तद्योगात् केवलं भवेत्।
सम्भवं प्रसवं चैव चालयं च पृथक्पृथक् ॥३८॥
करणान्याकृतिश्चित्तं त्रिकं च दशकं च तत्।
तदेव भावयेच्छिन्नो ह्यच्छेद्यं छेद्यवित्तमः ॥३९॥

कर्म के योग में वह विचरण करता है। वह ज्ञानयोग के (अनुशीलन से) कारण मुक्त हो जाता है। जन्म, उत्पत्ति तथा लय पृथक्-पृथक् होते हैं। चित्त करण की आकृति पाकर ३-१० प्रकार का होता है। श्रेष्ठ छेदनकर्त्ता उस अच्छेद्य की छिन्न रूप में भावना करते हैं।

सर्वभावैरभाव्यं तद्भावयेच्छिवमव्ययम्।
ज्ञानेन केवलेनास्य योगेनापि च भावयेत्।
कर्मणि प्राकृते चापि क्वचिद् ध्यायंस्तु शास्त्रतः ॥४०॥

इति श्रीसाम्बपुराणे ज्ञानोत्तरे तत्त्वनिरूपणन्नाम त्र्यशीतितमोऽध्यायः

●

समस्त भाव से इस अभाव्य अव्यय शिव की भावना करे। प्राकृत कर्म का कभी-कभी शास्त्रानुसार ध्यान करके ज्ञान द्वारा तथा योग द्वारा शिव की भावना करे।।४०।।

श्रीसाम्बपुराणोक्त ज्ञानोत्तर में तत्त्वनिरूपण नामक तिरासीवाँ अध्याय समाप्त

●

चतुरशीतितमोऽध्यायः

(फलश्रुतिः)

श्रीसाम्ब उवाच

भगवन् प्राणिनः सर्वे कुष्ठरोगाद्युपद्रवैः।
सदा हि पीड्यमानास्ते तिष्ठन्ति मुनिसत्तम ॥१॥
येन कर्मविपाकेन सम्भवन्ति महामते।
तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि त्वत्तो ब्रह्मविदांवर ॥२॥

साम्ब कहते हैं—भगवन् मुनिश्रेष्ठ! सकल प्राणीगण सर्वदा कुष्ठ रोगादि उपद्रव से पीड़ित होते हैं। हे महामते! जिस कर्म का विपाक ऐसा होता है, वह सब आपसे सुनने की इच्छा है। आप ब्रह्मविद्या जानने वालों में श्रेष्ठ हैं।।१-२।।

नारद उवाच

व्रतोपवासैर्यैर्भानुर्नान्यो जन्मनि तोषितः।
तेनैव हेतुना ते तु कुष्ठरोगादिभागिनः ॥३॥

नारद कहते हैं—हे यदुश्रेष्ठ! जिन्होंने अन्य जन्मों में व्रतोपवास से सूर्यदेव को सन्तुष्ट नहीं किया है, वे ही कुष्ठरोगादि को प्राप्त होते हैं।।३।।

साम्ब उवाच

तेषां रोगोपशमनं जायते च कथं मुने।
तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि सत्यं सत्य वदस्व मे ॥४॥

साम्ब कहते हैं—मुनि! उनके रोग की शान्ति कैसे होती है? वह सब सुनने की इच्छा है। मुझे बताईये।।४।।

नारद उवाच

शृणु साम्ब महाबाहो कर्तव्यं रविपूजनम्।
यत्कृत्वा सर्वरोगेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥५॥

नारद कहते हैं—महाबाहु साम्ब! सुनो। वे रवि का पूजन करें। जिसे करने से सभी रोगों से मुक्ति मिलती है। इसमें संशय नहीं है।।५।।

साम्ब उवाच

एतत्सर्वं त्वया ख्यातं बह्वर्थं श्रुतिविस्तरम्।
यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥६॥

सूर्यमुद्दिश्य किं देयं पाठकाय महात्मने।
येन तुष्येत्तु भगवान् भास्करः पापतस्करः ॥७॥

साम्ब कहते है—आपने अनेक अर्थयुक्त श्रुतिविस्तर यह सब कहा, जिसे सुनकर सब पापों से मुक्ति मिलती है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। सूर्य के उद्देश्य से पाठक को (जो इस पुराण के पाठक है या सुना है) क्या देना उचित है, जिससे पापनाशक भगवान् भास्कर प्रसन्न हो जायँ?।।६-७।।

नारद उवाच

शृणु साम्ब महाबाहो कथयामि तवानघ।
तमेव सूर्यं विज्ञाय पूजयित्वा यथाविधि ॥८॥
गन्धपुष्पाक्षतैश्चैव धूपदीपैस्तथोत्तमैः।
स्वर्णालङ्कारवस्त्रैश्च शिरोरत्नविभूषणैः ॥९॥
प्रपूज्य सूर्यरूपं तं देया च कपिला शुभा।
गोधूमयवधान्यानि माषमुद्गांस्तिलांस्तथा ॥१०॥
गजाश्वमहिषीर्दद्याद्रत्नानि विविधानि च।
हिरण्यं रजतं चैव कांस्यं ताम्रस्य भाजनम् ॥११॥
दासदास्यौ तथा दद्याद् भूमिं शस्यवतीं तथा।
पट्टवस्त्राण्यनेकानि दद्याद्वै शुद्धमानसः ॥१२॥

नारद कहते हैं—महाबाहु साम्ब! सुनो! तुम जैसे निष्पाप से कहता हूँ। उन सूर्य को जानकर यथाविधि पूजन करे। तत्पश्चात् गन्ध-पुष्प-अक्षत-धूप-दीप-उत्तम द्रव्य, स्वर्ण, अलंकार, वस्त्र, मस्तक का रत्नविभूषण—इन सबसे सूर्यरूप उनकी पाठक पूजा करे तथा शुभ कपिला गौ प्रदान करे। गेहूँ-जौ-धान्य-मूँग-तिल, हाथी, घोड़ा, भैंस, विभिन्न रत्न तथा चाँदी-कास्य तथा ताम्रपात्र प्रदान करे।।८-१२।।

निक्षुभा च तथा राज्ञी द्वे भार्ये च विवस्वतः।
उद्दिश्य तानि देयानि वस्त्रालङ्करणानि च ॥१३॥
एवं यः कुरुते भक्त्या स मर्त्योऽत्र महीतले।
पुत्रपौत्रादिसंयुक्तो हर्षनिर्भरमानसः ॥१४॥

निक्षुभा तथा राज्ञी सूर्य की भार्या हैं। उनके लिये वस्त्र तथा अलंकार प्रदान करे। जो मरणधर्मा व्यक्ति भक्ति से ऐसा करते है, वे इस पृथ्वी में पुत्र-पौत्रादि से युक्त होकर आनन्द से निरुद्वेग चित्त हो जाते हैं।।१३-१४।।

भुक्त्वा तु सकलान् भोगान् सूर्यलोके महीयते।
अष्टादशपुराणानां श्रवणे यत्फलं लभेत्।
तत्फलं समवाप्नोति सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥१५॥

इति श्रीसाम्बपुराणे वशिष्ठबृहद्बलसंवादे
फलश्रुतिर्नाम चतुरशीतितमोऽध्यायः

●

इस संसार में समस्त भोगों का उपभोग करके वे सूर्यलोक में पूजित होते हैं। १८ पुराणों के सुनने से जो फल मिलता है, वह सब इसके पाठ से मिलता है; तुमसे यह सत्य-सत्य कहता हूँ।।१५।।

श्री साम्ब पुराणोक्त वशिष्ठ-बृहद्बल संवाद में फलश्रुति
नामक चौरासीवाँ अध्याय समाप्त

●

शुभं भवतु

॥ समाप्तोऽयं ग्रन्थः ॥

योगवासिष्ठः
(महारामायणम्)

भाषानुवादकारः
स्व. पण्डित श्री कृष्ण पन्त शास्त्री
अध्यक्ष, अच्युतग्रन्थमाला-काशी

सम्पादकौ
स्व. पण्डित श्री कृष्ण पन्त शास्त्री
स्व. पण्डित श्री मूलशङ्कर शास्त्री

भूमिकालेखकः संशोधकश्च
प्रोफेसर मदनमोहन अग्रवाल

योगवासिष्ठ, वेदान्तशास्त्र के मुख्य प्रमाणित ग्रन्थ प्रस्थानत्रयी = उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र और गीतादि में एक संस्कृत भाषा का बृहत् ग्रन्थ है । बृहद् योगवासिष्ठ में लगभग बत्तीस हजार (32000) या तैंतीस हजार (33000) श्लोक है । यह ग्रन्थ योगवासिष्ठमहारामायण, महारामायण, आर्षरामायण, वासिष्ठ रामायण, ज्ञानवासिष्ठ और वासिष्ठ आदि नामों से भी ज्ञात है । यह ग्रन्थ अत्यन्त आदरणीय है, क्योंकि इसमें किसी सम्प्रदायविशेष का उल्लेख नहीं है । भारत के एक कोने से दूसरे काने तक इसका पाठ, मूल तथा भाषानुवाद में, चिरकाल से होता चला आ रहा है । जो महत्त्व भगवद् भक्तो के लिए भागवतपुराण और रामचरितमानस का है, तथा कर्मयोगियों के लिए भगवद्गीता का है, वही महत्त्व ज्ञानियों के लिए योगवासिष्ठ का है । सहस्त्रों स्त्री-पुरुष–राजा से रङ्क तक–इस अद्भुत ग्रन्थ के अध्ययन से प्रतिदिन के जीवन में आनन्द और शान्ति प्राप्त करते रहे हैं । इस ग्रन्थ में प्रायः सभी प्रकार के पाठकों के अनुयोग के लिए सामग्री प्रस्तुत हैं । जहाँ अबोध बालक भी इसकी कहानियाँ सुनकर प्रसन्न होते हैं, वहा बड़े-बड़े विद्वानों के लिए गहनतम दार्शनिक सिद्धान्तों का इसमें प्रतिपादन है । ऐसा कोई भी प्रश्न नहीं है, जिसका समाधान इसमें प्राप्त न हो । यह ऐसा अद्भुत ग्रन्थ है कि इसमें काव्य, उपाख्यान तथा दर्शन—सभी का आनन्द वर्तमान है यह सब श्रुतियों का सार एवं माण्डूकारिका का वार्तिक = व्याख्यान ग्रन्थ है । महर्षि वसिष्ठ नें स्वयं कहा है—

'यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत्क्वचित् । इमं समस्तविज्ञानशास्त्रकोशं विदुर्बुधाः ॥''

योगवासिष्ठ के प्रस्तुत संस्करण में संस्कृत के प्रत्येक श्लोकों की अत्यन्त सरल हिन्दी भाषा में सुन्दर विवेचना की गई है, जो इसकी प्रमुख विशेषता है । कोई भी व्यक्ति, जो संस्कृत से सर्वथा अपरिचित है, इसका सरलतापूर्वक अध्ययन कर योगवासिष्ठ के गूढ़दार्शनिक स्थलों को हृदयंगम कर सकेगा और उसकों मुक्तिलाभ के लिए अन्य साधनों की अपेक्षा नहीं रह जाती है । मोक्षप्राप्ति के उपाय ढूँढने की चेष्टा में व्यक्ति को आत्मानुभव होता है । इस ग्रन्थ के अध्ययन से व्यक्ति के सम्पूर्ण क्लेशों - दुःखों का अन्त होकर उसके हृदय में अपूर्व शान्ति प्राप्त होगी । अध्ययनार्थी सांसारिक सुख-दुःख की परिधि से बाहर निकलकर परम आनन्द का अनुभव करेगा । मनोयोगपूर्वक अध्ययन करनेवाले निश्चय ही इस जीवन में ब्रह्मज्ञान कर मुक्ति को प्राप्त करेंगे । यह ग्रन्थ ज्ञान का भण्डार है । वेदान्त के ग्रन्थों में यह चमकता हुआ रत्न है । मुमुक्षु, के लिए यह ग्रन्थ नित्य स्वाध्याय-योग्य है । ग्रन्थ की मौलिक उपादेयता की दृष्टि से आशा की जा सकती है कि वेदान्त के सच्चे जिज्ञासुओं में इसका विशेष प्रचार होगा ।

प्रथम संस्करण : 2011 **मूल्य : 10000/- (1-6 भाग सम्पूर्ण)**

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन-वाराणसी

हिन्दीभाष्यकारः श्रीकपिलदेवनारायण

'श्रीविद्या' शब्द श्रीत्रिपुरसुन्दरी के मन्त्र एवं उसके अधिष्ठात्री देवता-इन दोनों का बोधक है। सामान्यता 'श्री' शब्द 'लक्ष्मी' अर्थ में प्रसिद्ध है; परन्तु हारितायन संहिता, ब्रह्माण्डपुराण-उत्तरखण्ड आदि पुराणेतिहासों में वर्णित आख्यायिकाओं के अनुसार 'श्री' शब्द का मुख्य अर्थ 'महात्रिपुरसुन्दरी' ही है। श्री महालक्ष्मी ने महात्रिपुरसुन्दरी की चिरकाल-पर्यन्त आराधना कर जो अनेक वरदान प्राप्त किये हैं, उनमें एक वरदान 'श्री' की आख्या से लोक में ख्याति प्राप्त करने का भी है। अस्तु; 'श्री' शब्द का 'महालक्ष्मी' अर्थ तो गौण ही है; मुख्य अर्थ है-'श्री' अर्थात महात्रिपुरसुन्दरी की प्रतिपादिका विद्या-मन्त्र = 'श्रीविद्या'। वाच्य एवं वाचक का भेद मानकर इस मन्त्र की अधिष्ठात्री देवता भी 'श्रीविद्या' ही सिद्ध होती है। इस श्रीविद्या के उपासकों को लौकिक फल तो प्राप्त होते ही है; आत्मज्ञानी को प्राप्त होने वाला शोकोत्तीर्णतारूप फल भी श्रीविद्यापासकों को निश्चित रूप से प्राप्त होता है; साथ ही यही फल ब्रह्मविद्या से भी प्राप्त होता है; अतः फलैक्य होने के कारण श्रीविद्या ही ब्रह्मविद्या है-यह निर्विवाद सत्य प्रतिष्ठापित होता है। 'श्रीविद्या' का साङ्गोपाङ्ग विवेचन करने वाला सर्वप्रामाणिक महनीय ग्रन्थ 'श्रीविद्यार्णवतन्त्रम्' न केवल श्री विद्या; अपितु दश महाविद्याओं के विशद् विवेचन के साथ-साथ शैव, शाक्त, गाणपत्य, वैष्णव, सौर आदि सभी मन्त्रों एवं उनके तत्तद् यन्त्रों से पाठक को साक्षात्कार कराने वाला एक वृहत्काय ग्रन्थ है। स्वामी विद्यारण्य यति द्वारा छत्तीस श्वासों में गुम्फित यह ग्रन्थरत्न पूर्वार्द्ध एवं उत्तरार्द्ध रूप दो खण्डों में समुपलब्ध है। श्रीविद्या के सविधि विवेचन के साथ-साथ अन्य देवी-देवताओं के भी मन्त्र-यन्त्रों का समग्र रूप में विवेचन, उनके उपसना की विधि एवं उपासना के फलस्वरूप प्राप्त होने वाले फलों को स्पष्टतया अभिव्यक्त करना इस ग्रन्थ की सर्वातिशायी विशेषता है। अन्य ग्रन्थों में जहाँ किसी भी उपास्य देवता के एक, दो, चार अथवा कतिपय प्रमुख मन्त्र-यन्त्रों का ही विवेचन उपलब्ध होता है; वहीं इस ग्रन्थ में विवेच्य समस्त देवी-देवताओं के प्रसिद्ध-अप्रसिद्ध सभी मन्त्र-यन्त्रों को उनकी विधियों सहित स्पष्ट रूप से प्रतिपादित किया गया है; फलस्वरूप सम्बद्ध देवता के किसी भी मन्त्र-यन्त्र अथवा उसकी विधि को जानने के लिये साधक को किसी अन्य ग्रन्थ का अवलम्ब ग्रहण करने की लेशमात्र भी आवश्यकता नहीं रह जाती। संक्षेप में कहा जा सकता है कि श्रीविद्यारण्य यति-प्रणीत 'श्रीविद्यार्णवतन्त्रम्' एकमात्र ऐसा ग्रन्थ है, जो साधक के समस्त कामनाओं की पूर्ति करने में सर्वतोभवेन समर्थ है। अस्तु; यह ग्रन्थ अद्यावधि अपने मूल स्वरूप में ही, बिना किसी भाषा-टीका के उपलब्ध था, जिससे जिज्ञासु साधकों को आराधना में पग-पग पर दुरूह कठिनाइयों का अनुभव होता था एवं ग्रन्थ के तात्पर्य से अवगत न हो पाने के कारण वे बार-बार विशयग्रस्त हो जाते थे। इसी को हृदयङ्गम कर तन्त्रग्रन्थों के ख्यातिनाम भाषा-भाष्यकार श्री कपिलदेव नारायण ने इस विशालकाय ग्रन्थ को भाषा टीका से अलंकृत कर सर्वनह्रद्य बनाने का साहसिक प्रयास किया है। पूर्वार्द्ध-उत्तरार्द्ध के विभाजन से दो भागों में विभक्त यह विशालकाय ग्रन्थ भाषा-भाष्य से अलंकृत होने के फलस्वरूप और भी बृहद् कलेवर को प्राप्त हो गया; फलस्वरूप जिज्ञासुओं के सौकर्य को दृष्टिगत कर इसे पाँच भागों (पूर्वार्द्ध-दो भाग एवं उत्तरार्द्ध-तीन भाग) में प्रकाशित किया जा रहा है। विद्वान भाष्यकार श्री कपिलदेवनारायण द्वारा प्रयोगपरक भाषा भाष्य से अलंकृत यह ग्रन्थ जिज्ञासुओं की समस्त जिज्ञासाओं का शमन करने में सर्वविध समर्थ होगा-इसमें विचिकित्सा के लिये लेशमात्र भी स्थान नहीं है।

(सम्पूर्ण पाँच भागों में)

वितरक
चौखाम्बा पब्लिशिंग हाऊस
नई दिल्ली - 110002
फोन नं. 011-23286537, 32996391

प्रकाशक
चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
वाराणसी-221001
फोन नं. 0542-2335263, 2335264